स्वराज्य-दान

❀

गुरुदत्त

स्वराज्य-दान

लेखक के अन्य उपन्यास

१. स्वाधीनता के पथ पर

२. पथिक

३. उन्मुक्त-प्रेम

४. विकृत छाया

स्वराज्य-दान

लेखक
श्री गुरुदत्त

विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई देहली

प्रकाशक
विद्या मन्दिर लिमिटेड,
कनॉट सरकस, नई देहली।

प्रथम बार
१९४९

* * *

गोडल्स प्रेस,
नई देहली।

निवेदन

देश की राजनीतिक परिस्थिति की पृष्ठभूमि पर लिखे हुए मेरे दो उपन्यासों को जिस आदर से पाठकों ने स्वीकार किया है उससे उत्साहित होकर ही, उसी क्रम में, यह तीसरा उपन्यास प्रस्तुत कर रहा हूं। इस क्रम में प्रथम उपन्यास है "स्वाधीनता के पथ पर"। यह १६२१ से लेकर १६३० तक के देश के राजनीतिक इतिहास के आधार पर लिखा गया है। इसमें, जैसा कि पाठकों को विदित है, अहिंसा और हिंसा के परस्पर विरोधी सिद्धान्तों पर विचार-विनिमय किया गया है। इस क्रम में दूसरा स्थान "पथिक" को प्राप्त है। यह १६३५ से १६४० तक की राजनीतिक परिस्थिति के आधार पर लिखा हुआ उपन्यास है। इसमें हिन्दू-मुसलिम समस्या पर प्रकाश डालने का यत्न किया गया है।

यह नवीन उपन्यास "स्वराज्य-दान" भी इसी शृंखला में बद्ध है। इसकी पृष्ठभूमि १६४२ से १६४७ तक का भारतवर्ष है। यह वह समय था जब विश्व-व्यापी युद्ध चल रहा था। नगर पर नगर वायु-यानों से फेंके हुए बमों से ध्वंस किये जा रहे थे। सौ सौ टन के टैंक विपक्षी सेनाओं को मूंग की भांति दलते हुए, गुर्राते हुए युद्ध-क्षेत्रों में घूम रहे थे। तब नर-रक्त का मूल्य जल से भी कम रह गया था और सभ्यता का दावा करने वाले देश अधिक से अधिक हत्यारे और विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्र बनाने में संलग्न थे। ऐसी स्थिति में भारतवर्ष जैसे सभ्य देश के लोगों में अपने देश को स्वतंत्र करने की इच्छा उत्पन्न न होनी असम्भव थी। इस प्रलयकारी महायुद्ध के कारण फैली नर-रक्त की गंध में यदि भारतवर्ष में सशस्त्र क्रान्ति का विचार उत्पन्न हुआ और

उसकी योजना बनाई गई तो विस्मय करने की क्या बात है ?

श्री सुभाषचन्द्र बोस ने अपने नेतृत्व में आज़ाद हिन्द फ़ौज का संगठन तथा संचालन कर जिस वीरता का परिचय दिया वह उस समय के वातावरण के अनुकूल ही था। १६४२ के अगस्त तथा सितम्बर मास में महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आदेश के विपरीत जो हिंसात्मक कार्य किये गये वे भी परिस्थिति-जन्य ही थे।

हिंसा से हिंसा उत्पन्न होती है और यही हुआ भी, परन्तु अनिच्छा से, न न करते हुए और असंगठित रूप में। भारतवर्ष का प्रत्येक स्त्री-पुरुष वातावरण की प्रेरणा से प्रेरित, जिस-किस प्रकार से भी हो, स्वतंत्र होने के स्वप्न देखता, योजनाएं बनाता और फिर फल के पाने की आशा का सुख-स्वादन करता था।

यह पुस्तक उन्हीं स्वप्नों, आयोजनों तथा हवाई किलों के बनाने का परिणाम है। क्या होना था और क्या हो गया, चित्रण करने का यत्न किया गया है, परन्तु विचार विभिन्नता का ध्यान रखते हुए कोई निर्णयात्मक निष्कर्ष नहीं निकाला गया।

वास्तविक बात तो यह है कि स्वराज्य-प्राप्त होने पर मतभेद हो जाना अनिवार्य ही था। स्वराज्य से पूर्व तो इसके प्राप्त करने की धुन सवार थी। राजनीति में भिन्न-भिन्न मत रखने वाले भी स्वराज्य प्राप्त करना आवश्यक समझते थे और अपने अपने मत के अनुसार इसकी प्राप्ति में संलग्न थे, परन्तु स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् इसकी रूप-रेखा में भिन्न-भिन्न धारणा रखने के कारण सब का सन्तुष्ट होना आवश्यक नहीं।

ब्रिटिश सरकार की विवशता तथा कूटनीति से दिये गये स्वराज्य का उपभोग हम कर रहे हैं अथवा कांग्रेस और महात्मा गान्धी के अहिंसात्मक आन्दोलनों के भार से निचोड़कर निकला स्वराज्य हमारे

सिर पर छत्र बन रहा है, यह विवाद का विषय है। फिर कुछ लोग कहते हैं कि मनोवाञ्छित स्वराज्य मिल गया है। कुछ कहते हैं कि मिला नहीं, परन्तु भारतवर्ष उस ओर जा रहा है; और कुछ ऐसे भी हैं जिनको परतंत्रता की घोर घटायें ज्यों की त्यों मंडराती दिखाई देती हैं। इसमें कारण स्वराज्य के विषय में भिन्न-भिन्न धारणायें ही हैं।

इस अस्त-व्यस्त, अस्पष्ट भविष्य की प्रतीति की झलक-मात्र में पुस्तक की इतिश्री करना ही उचित मान शेष फिर किसी समय के लिये छोड़ दिया गया है। इसके लिये मैं क्षमा चाहता हूं, परन्तु संजय की सी दिव्य-दृष्टि पाने की प्रतीक्षा में हूं।

उपन्यास होने से पात्र, स्थान तथा घटना-चक्र सब के सब काल्पनिक हैं। किसी के मान तथा अपमान से इस पुस्तक का कोई अभिप्राय नहीं।

इस क्रम के प्रथम दो उपन्यास 'स्वाधीनता के पथ पर' तथा 'पथिक' की भांति इस उपन्यास के भी विषय प्रस्तुत करने तथा मुद्रण करने में श्री रामप्रताप जी गोंडल एम० ए०, साहित्यरत्न, की सहायता के लिये मैं आभारी हूं।

—गुरुदत्त

विषय-क्रम

प्रथम भाग

प्रतिकार की भावना

"भूल जाना मनुष्यता से नीचे की बात है। मनुष्यों में और अन्य प्राणियों में स्मरण-शक्ति का ही अन्तर है। मनुष्य उन्नति कर रहा है और अन्य प्राणी नहीं कर रहे। इसमें कारण स्मरण-शक्ति ही है। पूर्व अनुभवों को मनन कर ही विचारों को आगे ले जाया जा सकता है। अन्य प्राणी अपने अनुभवों को भूल जाते हैं, इससे वे अपनी भूलों को सुधार नहीं सकते। मनुष्य अपनी देखी-सुनी, अनुभव की हुई अथवा विचार की हुई बातों को स्मरण रखकर ही उन्नति के मार्ग पर चलता आ रहा है। लिखने की विद्या का आविष्कार भी तो स्मरण-क्रिया को और अधिक स्थायी करने के लिये ही है।

"यह जानते हुए भी आप मुझे क्यों कहते हैं कि जो जो अन्याय और अत्याचार मुझ पर अथवा मेरे भाई-बन्धुओं पर हुए हैं, मैं भूल जाऊं? भूल जाऊंगा तो फिर उनका पुनः किया जाना कैसे रोका जा सकेगा?"

यह वार्तालाप नई दिल्ली में कर्ज़न रोड पर एक कोठी के ड्रायंग-रूम में, एक गद्देदार आराम कुर्सी पर बैठे हुए अधेड़ उमर के पुरुष और खड़े हुए एक युवक में हो रहा था। युवक की आयु लगभग पच्चीस वर्ष की प्रतीत होती थी। युवक का उक्त कथन उस अधेड़ आयु के पुरुष के नीचे लिखे कथन के सम्बन्ध में था। वह पुरुष कह रहा था:—

"नरेन्द्र, देखो तुम्हारी माता का देहान्त हो चुका है। तुम दो

वर्ष के थे जब तुम्हारे पिता मारे गये थे। तब से उस बेचारी ने बहुत धैर्य और परिश्रम से तुम्हारा पालन-पोषणकर तुम्हें इतना बड़ा किया है। यह बीस-बाईस वर्ष की तपस्या किस लिये की गई थी? इसीलिये ही न, कि तुम पढ़-लिखकर बड़े हो जाओ, विवाह करो और अपने पिता का वंश चलाओ। अब तुम्हारे लिये अवसर है कि तुम अपनी मां की इच्छा पूर्ण करो और उसकी पवित्र स्मृति को चिरस्थायी करो। मैंने तुम्हारे लिये एक बहुत अच्छी लड़की ढूंढी है। वह पढ़ी-लिखी है, अति सुन्दर है, सुशील है, सुघड़ है और अति मीठा बोलने वाली है। एक बार चलकर लड़की को देख लो। देखने से जी भर जाएगा। देखो, मां के परिश्रम का स्वाभाविक फल यही है। वह बेचारी जीती होती तो बहू की बात सुन कितना आनन्द अनुभव करती।"

युवक का कहना था, "चाचा जी, आप नहीं जानते कि माता जी ने मुझे पढ़ाया-लिखाया क्यों है। आप समझते हैं कि पिता जी के वंश को चलाना उनके इस प्रयास का ध्येय था। यह तो बहुत छोटी बात है। वे इस प्रकार के छोटे विचार की स्त्री नहीं थीं। सुनिये, मैं बताता हूं। मैंने मैट्रिक पास करने के पश्चात् एक बार उनसे कहा था, 'मां, तुम्हें मेरे लिये बहुत गरीबी सहन करनी पड़ रही है, यदि तुम कहो तो कहीं नौकरी कर लूं। अब कहीं न कहीं नौकरी तो मिल ही जायगी।'

"माता जी ने मेरी बात सुन, माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा था, 'देखो नरेन्द्र, तुम्हारे चाचा जो कुछ भेजते हैं उससे तो तुम्हारी फीस और किताबों का खर्च भी नहीं चलता। शेष घर की और तुम्हारी आवश्यकताओं के लिये मुझे कपड़े सीने का काम करना पड़ता है। तुम्हें अखाड़े से कसरत करके आने पर बादाम और दूध देने तथा तुम्हारे कपड़े और अन्य आवश्यक बातों के लिये जो मैं दिन-रात मेहनत कर रही हूं क्या केवल तीस रुपये मासिक का क्लर्क बनाने के लिए है? तुम्हारे खाने, पहरने, पुस्तकों और स्कूल इत्यादि की फीस

के लिए, रात-रात भर बैठ, लोगों के कपड़े सी-सीकर, आंखें इसलिये ख़राब नहीं कर रही कि तुम विदेशी सरकार की नौकरी करने के योग्य हो जाओ। देखो बेटा, मैं तुम्हें सबल और योग्य इसलिये बना रही हूं कि तुम अपने पिता और मेरे अपमान का बदला ले सको।

'सन् १६१६, अप्रैल मास के दिन थे। महात्मा गान्धी पंजाब आ रहे थे और पंजाब सरकार ने उन्हें आने से रोक दिया था। जब उन्होंने आने का हठ किया तो सरकार ने उन्हें बन्दी बना लिया। लोगों ने हड़ताल कर दी, जो कई दिन तक रही। उस समय तुम दो वर्ष के थे। तुम्हारे पिता हाल बाज़ार में बिसाती की दूकान करते थे। वे भी दूकान बन्द कर घर आ बैठे।

'वैशाख की संक्रान्ति थी। उनके मन में आया कि 'दरबार साहब' में स्नान तथा दर्शन कर आवें। मैं भी साथ जाती, परन्तु तुम्हारी बहन, राधा, पेट में थी। अतएव मैं और तुम घर में रहे और वे एक लोटा ले चले गये। उनका विचार था कि अमृतसर के जल का लोटा भरकर मेरे और तुम्हारे लिए लायेंगे।

'वे गये और फिर नहीं आये। सायंकाल तक मैं प्रतीक्षा करती रही। उनके न आने पर मैं बेचैन हो उठी। मुहल्ले में हल्ला मच गया कि जलियां वाले बाग़ में लोग जलसा कर रहे थे कि फ़ौज ने गोली चला कर सहस्रों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। मेरा माथा ठनका। यद्यपि वे कभी ऐसे जलसे-जुलूसों में सम्मिलित नहीं होते थे, फिर भी मुझे विश्वास सा होने लगा था कि वे वहां पर मारे गये हैं। मैंने तुम्हें एक पड़ोसन के घर छोड़ा और जलियां वाले बाग़ को चल पड़ी। मुहल्ले के लोगों ने मना किया, पर मैं उतावली हो रही थी। वे कहते थे कि सायंकाल होने वाला है और 'कर्फ्यू आर्डर' लगा हुआ है; किसी फ़ौजी ने देख लिया तो वह गोली मार डालेगा। मैं भगवान के भरोसे पर थी। बाज़ार सुनसान पड़े थे। कोई पक्षी तक भी फड़क नहीं रहा था। मैं मकानों के साथ साथ होती हुई चली गई। मेरे मन

में मेरे अपने लिए भय नहीं था। मुझे विश्वास सा हो रहा था कि तुम्हारे पिता जीवित नहीं हैं। जीवित होते तो अवश्य घर लौट आते। इस बात का निश्चय करना मेरे लिये नितान्त आवश्यक था। मैं चलती गई। अभी प्रकाश पर्याप्त था और मैं वहां पहुंच गई।

'जलियां वाले अहाते में जाने के दो मार्ग हैं। एक बड़ा फाटक सा है, और दूसरे को तो केवल खिड़की ही कहना चाहिये। मैं फाटक के मार्ग से भीतर गई थी। सामने हाय हाय मची हुई थी। हजारों के मुख से आर्त्तनाद निकल रहा था। कोई कोई बिरला उनमें खड़ा अपने किसी सम्बन्धी को पहिचान रहा था। ये, अपने सम्बन्धियों को ढूंढने वाले, कभी कभी शवों को घसीटकर इधर-उधर करते थे। कभी कोई पानी मांगता तो सुनने वाले सिवाय दुख अनुभव करने के और कुछ कर नहीं सकते थे। सूर्यास्त होने में कुछ मिनट ही रह गये थे और ढूंढने वाले अनुभव कर रहे थे कि शीघ्र ही उनको लौट जाना है। सूर्यास्त के पश्चात् शव ले जाना तो एक तरफ रहा उनका घर पहुंचना भी भयरहित नहीं रह जावेगा।

'मैं इस भयानक दृश्य को देख हतोत्साह हो गई। मेरा दिल बैठने लगा और मैं टांगों पर खड़ी न रह सकी। जहां मैं बैठी थी वहां समीप ही एक घायल पड़ा था। वह मुझे देखते ही पानी मांगने लगा। मैंने उसकी ओर देखा। उसकी जांघ में गोली लगी थी और वह हिल नहीं सकता था। वहां न लोटा था, न कुँआ। पानी लाती भी तो कहां से? मेरे आंसू बहने लगे।

'जिन ढूंढने वालों को अपने आदमी मिल जाते थे वे उन्हें उठा कर चले जा रहे थे। एक, जो किसी को ढूंढ रहा था, मुझे चुपचाप बैठे और रोते देख बोला, 'माई, जल्दी चली जाओ। साढ़े सात बज रहे हैं। 'कर्फ्यू आर्डर' का समय हो गया है। इतना कहते कहते वह रुक गया। वह खड़ा हो गया। शायद वह मेरी गर्भावस्था जान गया था और मन में कुछ सोच पूछने लगा, 'तुम इसे कहां ले जाना चाहती हो?' उसने

समीप पड़े घायल को मेरा सम्बन्धी समझ लिया था।

'मैंने कहा, 'इसे थोड़ा पानी पिला दो।' मैं उसे होठों पर ज़बान फेरते देख तुम्हारे पिता के विषय में भूल गयी थी। वह आदमी विचार में पड़ गया। बोला, 'बहन, यहां पानी नहीं है। चलो, मैं इसे उठाकर ले चलता हूं। आपने इसे कहां ले चलना है?'

'मुझे तुम्हारे पिता की याद आगई। मैंने कहा, 'मैं इसे नहीं जानती, मैं तो किसी और को ढूंढने आई थी।'

'वह मिला?'

'नहीं, अभी नहीं। मुझ में यह सब कुछ देख ढूंढने की हिम्मत नहीं रही।'

'वह आपका क्या है?'

'मेरे पति हैं।'

'उस भले पुरुष के मुख पर दया की झलक दिखाई दे रही थी। वह बोला, 'चलो उसे भी देख लो, बहन। शायद उसे भी पानी की आवश्यकता हो।'

'उसने मुझे आश्रय दे उठाया और हम ढूंढने लगे। अहाते के एक ओर एक दीवार थी और सब से अधिक लाशें उसी दीवार के समीप थीं। एक स्थान पर लाशों का ढेर लगा था। मैं ढूंढती हुई वहां पहुंची। उफ़! कितना भयंकर दृश्य था। अब भी स्मरण आता है तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। एक एक शव को पकड़कर मुख देखती थी और पहिचानती थी। जब निश्चय हो जाता था कि तुम्हारे पिता नहीं हैं, तो उसे घसीटकर एक तरफ़ कर देती थीं और फिर दूसरों को देखती थी। सभी लोग इस प्रकार कर रहे थे। इस पर भी यह कार्य इतना कठोरतापूर्ण था कि साधारण परिस्थिति में कोई अति कठोर-हृदय भी शायद ही उसे कर सकता। मुझसे यह कुछ न हो सकता, यदि वह भला पुरुष मेरी सहायता न कर रहा होता। आखिर लाशों के एक ढेर के नीचे से उनका शव भी निकला। उनके सिर में गोली

लगी थी और खोपड़ी के दो टुकड़े हो गये थे। उनका मुख पहिचाना नहीं जाता था, परन्तु कपड़ों से पहिचान गई थी। उनको देख अपनी क्षीण सूत्रवत् आशा, कि शायद वे भी घायल पड़े हों, विलुप्त हुई जान मैं ग़श खाकर गिर पड़ी।

'जब मुझे चेतना हुई तो वही भला पुरुष मेरे मुख पर पानी के छींटे लगा रहा था। अन्धेरा पर्याप्त हो चुका था इसलिये पहले तो मैं उसको पहचान भी नहीं सकी। इस समय उसके साथ एक आदमी था। वह हाथ में एक गगरा पानी लिये खड़ा था। जब पहिचान गई तो मैंने पूछा, 'उसे पानी पिलाया है भैया ?'

'बहिन, जब तुम बेहोश हो गई थी, मैं पानी लेने चला गया। मैंने विचार किया था कि तुम्हें सचेत करने के लिये भी तो पानी चाहिये। बाज़ार में कूँआ तो था पर गगरा नहीं था। एक मकान का दरवाजा खटखटाया और लोटा और गगरा मांगा। उस घर वालों ने एकदम इन्कार कर दिया। कई स्थानों पर यत्न करते करते ये सज्जन मिले। घर पर ये अकेले थे। जब मैंने अपना आशय वर्णन किया, तो दांतों को पीसते हुए गगरा और लोटा ले मेरे साथ चल पड़े। इस सब प्रयत्न में एक घंटा लग गया है, और इस अवसर में वह आदमी चल बसा है। अब हम उसकी सहायता नहीं कर सकते।'

"मैं पगली-सी इन बातों को सुन रही थी। मुझे न तो अपनी जान का भय रह गया था और न ही उनके भय का अनुमान लगाने की मुझ में शक्ति रह गई थी। गगरा लिये हुए आदमी ने दूसरे घायलों को पानी पिलाना आरम्भ कर दिया। एक गगरे से वहां क्या हो सकता था। देखते देखते समाप्त हो गया। अब वह हमारे समीप आया और बोला, 'माता जी, अब चलना चाहिये। आपको घर पहुँचा दूं तो इन के लिये और जल का प्रबन्ध करूं।'

'मैंने अपनी गली का नाम बताया तो उन दोनों ने तुम्हारे पिता का शव कंधों पर उठा लिया और मुझे साथ ले घर पहुँचा गये। उस

रात यद्यपि 'कर्फ्यू आर्डर' लगा हुआ था, परन्तु तमाम अमृतसर में एक भी पुलिस अथवा फ़ौज का सिपाही नहीं था। ऐसा प्रतीत होता था कि ये लोग डर रहे थे कि उनके लिये शहर के भीतर आना मौत का आवाहन करना है। इस झूठे भय के कारण लोगों को रात के समय अपने घायल सम्बन्धी अथवा उनकी लाशें जलियां वाले बाग़ से लेजाने का अवसर मिल गया। प्रातःकाल तक कुछ लावारिस शवों के अतिरिक्त सहस्रों घायल तथा मृत वहां से ले जाये जा चुके थे।

'दूसरे दिन केवल पांच आदमियों की सहायता से तुम्हारे पिता का दाह-संस्कार किया गया। श्मशान-भूमि तक जाने के लिये भी पांच से अधिक लोगों का एकत्रित होना रोक दिया गया था।

'जलियां वाले बाग़ में गोली चलाने वाला कर्नल डायर था। उस निर्दयी ने निहत्थे लोगों पर, जो शान्तिपूर्वक बैठे जलसा कर रहे थे, तब तक गोलियां चलवाईं जब तक कि उसके सिपाहियों के कारतूस समाप्त नहीं हो गये।'

'बात यहीं समाप्त नहीं हुई। हमारी गली के बाहर फ़ौजियों का पहरा बैठ गया। वे आने-जाने वालों को पेट के बल रेंगने पर बाध्य करते थे। हमारी गली वालों ने इस अपमान को न सह सकने के कारण घर से निकलना बंद कर दिया। दुर्भाग्य से हमारे घर में रसद-पानी चुक गया। गली में प्रायः सब घरों का ऐसा ही हाल था। मैंने एक पड़ोसी से कुछ ला देने को कहा। उसने साफ़ इन्कार कर दिया। मैंने कहा, 'नन्हा भूख से बिलख-बिलखकर रो रहा है।' वह पड़ोसी चुप था। उसके मुख पर विवशता की छाप स्पष्ट दिखाई देती थी। तुम्हें कुछ खाये चौबीस घंटे से ऊपर हो चुके थे। एक-दो बार तुम्हें चीनी घोलकर पानी दिया। उससे तुम्हारी तृप्ति नहीं होती थी और फिर चीनी भी चुक गई थी। नगर में एक सप्ताह से ऊपर दूकानें बन्द रही थीं, और जब दूकानें खुलीं तो गली के बाहर यह आफ़त आ बैठी। परिणाम-स्वरूप गली में प्रायः सब फ़ाके कर रहे थे। मांगती भी तो

किस से ? जब तुम बहुत रोने लगे तो मैंने इस अपमान को सहन करने की ठान ली। मेरे मन में पागलपन समा रहा था। मैं सोचती थी कि मैंने, तुमने और तुम्हारी बहन ने, जो अभी पेट में थी, उन लोगों का क्या बिगाड़ा है। वे मुझे रेंगने के लिये क्यों कहेंगे ? मैंने कपड़े बदल लिये। सलवार, कुर्ता, और दुपट्टा ओढ़ और हाथ में सामान के लिये चादर ले चल पड़ी।

'जब गली से बाहर निकली तो गोरे सिपाही मुझे देख खिलखिला कर हंसे। मैं उनको कहना चाहती थी कि बच्चा भूख से तड़प रहा है, परन्तु उनको हंसता देख मेरा साहस टूट गया। मैं चुप खड़ी रह गयी। जब वे हंस चुके तो एक ने कहा, 'ठेर जाओ, ठेर जाओ।' मैं अपने पेरों की ओर देखकर बोली, 'मुझ पर दया करो। मुझसे लेटकर नहीं जाया जासकेगा।' शायद वे मेरी बात नहीं समझे, या शायद समझ गये थे परन्तु उनके मन में दया नहीं आई। मैं जाने लगी तो एक ने मुझे पकड़ कर बलपूर्वक लेटा दिया। मैं लौट जाना चाहती थी, परन्तु तुम्हारा बिलख बिलखकर रोना स्मरण हो आया और मैं घुटनों और हाथों के बल चलने लगी।

'अभी कुछ ही पग गयी थी कि किसी ने मेरी पीठ पर ठोकर मारी और कहा 'क्रॉल ? क्रॉल' (रेंगो) मेरे सिर में चक्कर आने लगा और कुछ क्षण तो अचेत पड़ी रही। फिर ज्यों-त्योंकर वह सब मार्ग रेंगकर पार किया। मेरा मुख आंसुओं से भर रहा था। मेरी कुहनियां और घुटने छिल-कर लोहू-लुहान हो गये थे। इस पर भी उठी और बनिये की दूकान पर जा पहुँची। वहां से आटा, दाल, चीनी, नमक और मिर्च खरीदीं। बनिया मुझे देखकर समझ गया था, कि मुझे क्या हुआ है। मुझे रोती देख उस की भी आंखें भर आईं और कांपते हुए हाथों से मुझे रसद देते हुए उसने पूछा, 'बहन, अब कैसे जाओगी ?'

'जैसे आई हूं।'

'भगवान इनका सत्यानाश करे।'

'मेरे मुख से एकाएक निकल गया, 'भगवान मर गया है।'

'नहीं बहन, वह अब अवश्य अवतार लेगा। दुष्टों को मारने के लिये और साधुओं के कष्ट निवारण के लिये अब अवश्य आवेगा।'

'लौटते समय अधिक कष्ट हुआ। कारण यह कि रसद का बोझ भी साथ था। जब मैं भूमि पर रेंगती हुई लौट रही थी तो मन में सोच रही थी, 'इस अपमान, अन्याय और दुर्व्यवहार का बदला कैसे लूंगी?'

'इसके पश्चात् राधा पैदा हुई और तुम्हारे चाचा को जो दिल्ली में दूकान करते थे, मेरे कष्ट का पता चला। मार्शल-लॉ हट गया तो वे अमृतसर आये और बीस रुपया मासिक भेजने का वचन दे चले गये। उन का लाख लाख धन्यवाद है कि वे अभी तक सहायता भेज रहे हैं। परन्तु मैं तो केवल एक बात के लिये जीती हूं और वह है अपने अपमान और अन्याय का बदला लेना।

'मैं उस दिन का पचास गज़ रेंगकर जाना और आना भूल नहीं सकती। उस दिन की बात याद कर पूर्ण शरीर का रक्त सिर को चढ़ जाता है, और मैं उतावली हो उठती हूं। मैं सोचती हूं कि आखिर क्यों मुझे इतना अपमानित किया गया था? मैंने उनका क्या बिगाड़ा था?

'बेटा नरेन्द्र, यह अपमान मैंने तेरे लिये सहन किया था और मैं इसका बदला लेने का भार तुम पर ही डालना चाहती हूं। इस बदला लेने की क्षमता तुम में पैदा करने के लिये मैं तुम्हें पढ़ने भेजती हूं, तुम्हें अखाड़े में कुश्ती, फुटबॉल और हॉकी खेलने के लिये भेजती हूं। इसके लिये ही मैं दिन-रात परिश्रम करती हूं।"

"चाचा जी, यह है मां का मुझे पढ़ाने का प्रयोजन और इसे मैंने पूर्ण करना है।"

नरेन्द्र के चाचा ने कहा था, "देखो नरेन्द्र, ये बातें भूल जानी चाहियें। रोना-धोना औरतों के लिये है। यह तुम जैसे सुन्दर जवान आदमी के मुख से शोभा नहीं देता।"

इसके उत्तर में नरेन्द्रकुमार ने यह बात कही थी जो हमने इस

अध्याय के आरम्भ में लिखी है।

[२]

नरेन्द्र के चाचा का नाम हरवंशलाल था और पिता का हरभजनलाल। इनका जन्म स्यालकोट पंजाब का था। अपने पिता के देहान्त के पश्चात् दोनों भाई स्यालकोट छोड़ आये थे। हरभजन लाल ने अमृतसर में बिसाती की दूकान कर ली। जब हरभजनलाल का विवाह हो गया तो हरवंशलाल कामकाज के लिये दिल्ली चला गया। वहां उसने बाइसिकलों की मरम्मत की दूकान खोल ली।

हरवंशलाल स्वभाव से मिलनसार और बातें करने में बहुत चतुर था। जिन जिन के सम्पर्क में वह आया उनसे घनिष्ठता के दर्जे तक पहुँचने में उसे देर नहीं लगी। दूकान काश्मीरी गेट के अन्दर थी और वहां के थानेदार पंडित रघुबरदयाल से उसका सम्बन्ध बन जाना एक साधारण सी बात थी। शायद रघुबरदयाल उसके बहुत समीप न आता यदि हरवंशलाल का उसके घर आना-जाना आरम्भ न हो जाता। थाने-दार का स्वभाव था कि अपनी बाइसिकल मरम्मत के लिये उसकी दूकान पर छोड़ जाता और कह जाता कि घर पर पहुंचा देना। हरवंश लाल बाइसिकल मरम्मत कर घर छोड़ने जाता तो पंडित जी की स्त्री से सामना हो जाता। एक दिन पंडित रघुबरदयाल की स्त्री ने पूछ ही लिया, "कहां के रहने वाले हो तुम?"

"स्यालकोट के, बहन जी।"

"ओह! मेरे मायके भी वहीं हैं। तुमने पंडित शिवदयाल ज्योतिषी का नाम सुना है?"

"जी, मेरे पिता जी के परिचित थे।"

"वे मेरे पिता हैं।"

"ओह! तब तो आप मेरी वतन की बहन हुईं।"

इसके पश्चात् घर की आवश्यकताओं को लाने का बोझ हरवंशलाल पर पड़ने लगा। पं० रघुबरदयाल धीरे धीरे उसे समीप का आदमी

मानने लगे। थाने की बाइसिकलों का काम उसे मिलने लगा। लोगों ने जब हरवंशलाल और थानेदार की घनिष्ठता बढ़ती देखी तो उस से अपना परिचय पैदा करने के लिये उससे अपना काम अधिक और अधिक करवाना आरम्भ कर दिया। हरवंशलाल को कई मामलों में थानेदार से सिफारिश भी करनी पड़ती थी और उसका सिफारिश का ढंग ऐसा होता था कि पंडित जी को रियायत करनी ही पड़ जाती थी।

इस सब का परिणाम यह हुआ कि पहले तो चान्दनी चौक और सदर बाज़ार के थोक बाइसिकल वालों से उनका माल बिकवाने में उस की कमीशन मुकर्रर हो गयी और पीछे वह स्वयं नई बाइसिकलें बेचने वाला बन गया। एक-दो साल में ही वह थोक माल कलकत्ते से खरीद कर लाने लगा था।

इस उन्नति का रहस्य हरवंशलाल का प्रसन्न वदन और सत्य व्यवहार था। उसके हृदय और वाणी में अन्तर नहीं होता था। नगर भर में यह विख्यात होता जा रहा था कि हरवंशलाल की दुकान पर सत्य व्यवहार होता है। लोग निधड़क वहां जाते और बिना भाव-ताव किये माल खरीदते थे और उन्हें इसके लिये कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता था।

हरवंशलाल और पं० रघुवरदयाल में मित्रता बढ़ाने वाली एक और घटना घटी। हरवंशलाल बाइसिकलें खरीदने कलकत्ते गया था। वह माल खरीद, रेल गाड़ी में बुक करवा जब वापिस आने लगा तो रेल के स्टेशन पर उसने एक लड़की को, घबराये हुए, प्लेटफार्म पर घूमते देखा। वह स्वयं कालका मेल में एक 'सैकण्ड क्लास' की सीट रिज़र्व करवा कर बैठा था। उसने देखा कि वह लड़की प्लेटफार्म के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जल्दी जल्दी गाड़ियों में झांकती हुई कई चक्कर काट चुकी है। एक-दो बार उसने उस डिब्बे के बाहर बंधे हुए 'रिज़र्वेशन' कार्ड को आकर पढ़ा और फिर प्लेटफार्म पर आने के दरवाज़े तक चली गई। लड़की बंगालिन थी। लम्बी, गोरी, सुन्दर रूप-रेखा

वाली और खद्दर के कीमती कपड़े पहने हुए होने से हरवंशलाल के अतिरिक्त और लोगों के लिये भी आकर्षण बन रही थी।

गाड़ी चलने में एक मिनट रह गया था। सिगनल हो चुका था। वह लड़की गाड़ी के एंजिन की ओर से आई और पुनः रिजर्वेशन कार्ड पढ़ने लगी। इस बार हरवंशलाल से नहीं रहा गया। वह गाड़ी में खिड़की के पास बैठा था। उसने पूछ ही लिया, "आप किसको देख रही हैं?"

"मिस्टर सआदतहुसैन को।"

"हां ये नम्बर तीन और पांच की सीटें उनके लिये रिजर्व हैं, मगर वे नहीं आये।"

"यह तो मैं भी देख रही हूं। उनको अब तक तो आजाना चाहिये था।"

"किसी काम से रह गये होंगे। मगर आप इतनी बेचैन क्यों हैं?"

"उनका टिकट मेरे पास है।"

"तो फिर क्या हुआ। टिकट वापिस हो सकेगा।"

"हां। मगर......।"

इस समय एंजिन ने सीटी बजाई। इससे उस लड़की का रंग पीला पड़ गया। हरवंशलाल ने कहा, "मगर, से क्या मतलब?"

ज्यों-ज्यों गाड़ी के चलने का समय होता जाता था उसकी घबराहट बढ़ती जाती थी। रेल की सीटी सुन उसके मुख पर निराशा झलकने लगी थी। हरवंशलाल ने फिर पूछा, "क्या बात है? क्या मैं आपकी कुछ सहायता कर सकता हूं?"

"आप कहां जा रहे हैं?" उस लड़की ने घबराकर पूछा।

"दिल्ली।"

"हमें भी वहीं जाना था।"

"तो चलिये।"

"उनका टिकट।"

"तो न जाइये ।" हरवंशलाल की मुस्कराहट निकल रही थी ।

गाड़ी चल पड़ी । वह लड़की गाड़ी के हैंडिल को पकड़े साथ साथ चल पड़ी । हरवंशलाल लड़की के मन में होने वाले द्वन्द्व युद्ध को प्रत्यक्ष उसके व्यवहार में देख रहा था । "गाड़ी के साथ साथ इस प्रकार चलना भयरहित नहीं," हरवंशलाल ने उसको सचेत करने के लिये कहा, "यदि दिल्ली चलना है तो भीतर आजाइये ।"

वह लपककर गाड़ी पर सवार हो गई और दरवाज़ा खोल भीतर आकर खिड़की में झांक पीछे छूटते हुए प्लेटफार्म की ओर तृषित नेत्रों से देखने लगी । हरवंशलाल को इस लड़की का व्यवहार आईने की भांति स्पष्ट प्रतीत होता था । उसका अनुमान था कि वह कलकत्ते से जा रही है, शायद भागकर । परन्तु जिसके साथ जाना चाहती थी वह नहीं आया । इसके पास टिकट तो है पर और कोई सामान नहीं । शायद रुपये भी नहीं । यह हिन्दू प्रतीत होती है पर साथी का नाम बता रही है मुसलमान । किसी भले घर की प्रतीत होती है पर इसे छोड़ने कोई नहीं आया । मतलब यह कि अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से चोरी से जा रही है ।

गाड़ी स्टेशन से बाहर निकल गई थी और स्टेशन के यार्ड में खटखट करती लाइन बदलती चली जा रही थी । इसमें लड़की को कुछ रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ । वह पीछे हटकर सीट पर बैठ गई । हरवंशलाल ने उसकी ओर देखा तो उसे प्रतीत हुआ कि उसकी आंखें आंसुओं से डबडबा आई हैं । इसने हरवंशलाल के मन में उसके विषय में जानने के लिये और भी रुचि उत्पन्न कर दी । उसने कहा, "आप रो रही हैं ?"

इससे आंसू रुकने के बजाय बहने लगे । हरवंशलाल चुपचाप देखता रहा । लगभग आध घंटे में वह शान्त हुई । तब हरवंशलाल ने पूछा, "दिल्ली में आपके सम्बन्धी हैं ?"

लड़की ने केवल एक लम्बा सांस ले लिया । कुछ देर ठहरकर

वाली और खद्दर के कीमती कपड़े पहने हुए होने से हरवंशलाल के अतिरिक्त और लोगों के लिये भी आकर्षण बन रही थी।

गाड़ी चलने में एक मिनट रह गया था। सिगनल हो चुका था। वह लड़की गाड़ी के एंजिन की ओर से आई और पुनः रिजर्वेशन कार्ड पढ़ने लगी। इस बार हरवंशलाल से नहीं रहा गया। वह गाड़ी में खिड़की के पास बैठा था। उसने पूछ ही लिया, "आप किसको देख रही हैं ?"

"मिस्टर सआदतहुसैन को।"

"हां ये नम्बर तीन और पांच की सीटें उनके लिये रिजर्व हैं, मगर वे नहीं आये।"

"यह तो मैं भी देख रही हूं। उनको अब तक तो आजाना चाहिये था।"

"किसी काम से रह गये होंगे। मगर आप इतनी बेचैन क्यों हैं ?"

"उनका टिकट मेरे पास है।"

"तो फिर क्या हुआ। टिकट वापिस हो सकेगा।"

"हां। मगर······।"

इस समय एंजिन ने सीटी बजाई। इससे उस लड़की का रंग पीला पड़ गया। हरवंशलाल ने कहा, "मगर, से क्या मतलब ?"

ज्यों-ज्यों गाड़ी के चलने का समय होता जाता था उसकी घबराहट बढ़ती जाती थी। रेल की सीटी सुन उसके मुख पर निराशा झलकने लगी थी। हरवंशलाल ने फिर पूछा, "क्या बात है ? क्या मैं आपकी कुछ सहायता कर सकता हूं ?"

"आप कहां जा रहे हैं ?" उस लड़की ने घबराकर पूछा।

"दिल्ली।"

"हमें भी वहीं जाना था।"

"तो चलिये।"

"उनका टिकट।"

"तो न आइये।" हरवंशलाल की मुस्कराहट निकल रही थी।

गाड़ी चल पड़ी। वह लड़की गाड़ी के हैंडिल को पकड़े साथ साथ चल पड़ी। हरवंशलाल लड़की के मन में होने वाले द्वन्द्व युद्ध को प्रत्यक्ष उसके व्यवहार में देख रहा था। "गाड़ी के साथ साथ इस प्रकार चलना भयरहित नहीं," हरवंशलाल ने उसको सचेत करने के लिये कहा, "यदि दिल्ली चलना है तो भीतर आजाइये।"

वह लपककर गाड़ी पर सवार हो गई और दरवाज़ा खोल भीतर आकर खिड़की में झांक पीछे छूटते हुए प्लेटफार्म की ओर तृषित नेत्रों से देखने लगी। हरवंशलाल को इस लड़की का व्यवहार आईने की भांति स्पष्ट प्रतीत होता था। उसका अनुमान था कि वह कलकत्ते से जा रही है, शायद भागकर। परन्तु जिसके साथ जाना चाहती थी वह नहीं आया। इसके पास टिकट तो है पर और कोई सामान नहीं। शायद रुपये भी नहीं। यह हिन्दू प्रतीत होती है पर साथी का नाम बता रही है मुसलमान। किसी भले घर की प्रतीत होती है पर इसे छोड़ने कोई नहीं आया। मतलब यह कि अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से चोरी से जा रही है।

गाड़ी स्टेशन से बाहर निकल गई थी और स्टेशन के यार्ड में खटखट करती लाइन बदलती चली जा रही थी। इसमें लड़की को कुछ रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। वह पीछे हटकर सीट पर बैठ गई। हरवंशलाल ने उसकी ओर देखा तो उसे प्रतीत हुआ कि उसकी आंखें आंसुओं से डबडबा आई हैं। इसने हरवंशलाल के मन में उसके विषय में जानने के लिये और भी रुचि उत्पन्न कर दी। उसने कहा, "आप रो रही हैं?"

इससे आंसू रुकने के बजाय बहने लगे। हरवंशलाल चुपचाप देखता रहा। लगभग आध घंटे में वह शान्त हुई। तब हरवंशलाल ने पूछा, "दिल्ली में आपके सम्बन्धी हैं?"

लड़की ने केवल एक लम्बा सांस ले लिया। कुछ देर ठहरकर

हरवंशलाल ने कहा, "आगे तो बहुत सर्दी होगी और आपके पास गरम कपड़ा नहीं है।"

लड़की ने अब भी उत्तर नहीं दिया। इस डिब्बे में और कोई नहीं था इससे लड़की संकोच से सिकुड़ रही प्रतीत होती थी। अतएव उस के मन में विश्वास जमाने के लिये हरवंशलाल ने कहा, "आप डर रही हैं मानो मैं कोई हिंसक पशु हूं। मैं देख रहा हूं कि आप तकलीफ में हैं, इस पर भी आप नहीं बतातीं, ताकि आपकी कोई सहायता न कर दे।"

"आप क्या सहायता कर सकेंगे?"

"आप बतायें तो सही।"

"आप मिस्टर सआदतहुसैन को जानते हैं? वे भी दिल्ली के रहने वाले हैं।"

"नाम सुना है। बैरिस्टर हैं। कांग्रेस का काम करते हैं। उनकी सूरत भी देखी है, परन्तु परिचय नहीं है।"

"मैं उनके घर जाना चाहती हूं।"

"बहुत मामूली बात है। आप मेरे साथ चलें। मैं घर का पता पूछकर आपको वहां पहुंचा दूंगा।"

"वे तो कलकत्ते में थे। इसी गाड़ी से दिल्ली आने वाले थे। घर पर न जाने कोई होगा या नहीं।"

"बस! आप किसी परिचित के घर ठहर जाइयेगा और जब वे दिल्ली आजावें उनके पास चली जाइयेगा।"

"मेरा दिल्ली में परिचित कोई नहीं है।"

"एक तो है। आप भूल कर रही हैं।"

"कौन?"

हरवंशलाल ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं।"

"ओह! परन्तु आपसे मैं परिचित हूं, अभी कैसे कह सकती हूं?"

"क्यों?"

"मैं तो आपको नहीं जानती कि आप कौन हैं ?"

"देखिये, एक बात आप जान गई हैं और वही सब कुछ है। मैंने अभी बताया है कि मैं आपकी सहायता करूंगा। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वह कुछ अधिक आवश्यक नहीं है। मैं किस का लड़का हूं, कहां का रहने वाला हूं, क्या काम करता हूं, इत्यादि आपको जान कर भी मेरे विषय में कुछ मालूम न होगा। जो बात, परिचय में आवश्यक है, वह यह है कि मैं इन्सान हूं और एक दूसरे इन्सान को तकलीफ़ में देखकर हमदर्दी रखता हूं।"

वह बंगाली लड़की समझ गई कि बातें करने वाला कोई साधारण व्यक्ति नहीं। इस पर भी उसने कहा, "मान लें, कि आपके विषय में मैं इतना मान लेती हूं, परन्तु आप तो मेरे विषय में कुछ नहीं जानते। परिचय तो दोनों ओर से होना चाहिये न ?"

"आपके विषय में मैं कुछ तो जानता हूं। देखिये, आप एक हिन्दू लड़की हैं। आपके पिता कांग्रेस में काम करते हैं। वे धनी भी हैं। साथ ही आप घर से भागकर दिल्ली जा रही हैं और फिर एक मुसल-मान के घर। क्या यह परिचय पर्याप्त नहीं ?"

"और इसमें आप सहायता कर रहे हैं ?"

"मैं आपकी कठिनाई दूर करने में सहायता कर रहा हूं। इसको दूर करने के कई ढंग हो सकते हैं।"

"तो आप अपने ढंग से मेरी सहायता करेंगे ?"

"आपकी अनुमति से। यदि मेरा सहायता करने का ढंग आपको पसन्द न हुआ तो आप मानेंगी थोड़े ही और फिर उससे लाभ ही क्या होगा कठिनाई तो आपकी मिटानी है, न कि किसी और की ?"

इस स्पष्टीकरण से लड़की गम्भीर विचार में पड़ गई। हरवंश लाल नहीं चाहता था कि व्यर्थ में अपने विचार उस पर लाद दे। उसका प्रयत्न यह था कि वह उस पर विश्वास करने लगे और वह समझता था कि इसमें उसे सफलता मिल रही है।

इन्हीं विचारों में बर्दवान आगया। हरवंशलाल अपने स्थान से उठा, ऊपर की सीट से उसने अपना होलडॉल उतारा और खोलकर उसमें से दो बिस्तर लगा दिये।

"यह दूसरा बिस्तर आप किस के लिये लगा रहे हैं ?" उस लड़की ने पूछा।

"आपके लिये," हरवंशलाल का उत्तर था। स्टेशन पर से दो आदमियों के लिये खाना मंगवा लिया। जब खाना आया तो वह बोला, "खाइये।"

"मुझे भूख नहीं है।"

"वाह वाह, यह भी कोई बात है। मैं देख तो रहा हूं कि आप बेसरो-सामान हैं। जब गाड़ी कलकत्ते से चली थी तो अभी खाने का समय नहीं था। क्या भूखे रहने से आपकी समस्या सुलझ जाएगी ?"

"कौन समस्या ?"

"पहले खाना खा लीजिये तब बात होगी।"

लड़की ने देखा कि यह युवक जबरदस्ती उसके आन्तरिक विचारों तक पहुँचता चला आता है। विवश वह उठी और खाने के थाल को दूसरी सीट पर रख खाने लगी। खाते हुए उसने कहा, "आपको बहुत कष्ट हो रहा है।"

"देखिये, खाना पेट में जाते ही बुद्धि ठिकाने आती प्रतीत होने लगी है। अब पेट भर खाइयेगा तो चिन्ता, निराशा, उत्साहहीनता और भीरुता सब दूर हो जायेंगी। तब ही आप अपनी समस्या को ठीक समझ और सुलझा सकेंगी।"

"यह समस्या क्या कह रहे हैं ? मेरी कौन सी समस्या है ?"

"आप नहीं जानतीं ? शायद समझती हैं कि मैं समझने की योग्यता नहीं रखता। देखिये, मैं बताता हूं। मिस्टर सआदतहुसैन दिल्ली के कांग्रेसी नेता हैं। आजकल कलकत्ते में राजनैतिक सम्मेलन हो रहा है। वे वहां अवश्य आये होंगे। आप किसी कांग्रेसी कार्यकर्ता की

लड़की हैं। आपसे उनकी भेंट हुई है। आप उनसे प्रेम करने लगी हैं। शायद उनसे आपका गहरा सम्बन्ध हो गया है जिससे आपका अपने सम्बन्धियों से झगड़ा हो गया है। आपने मिस्टर सआदतहुसैन से भाग जाने की राय की है। दोनों ने इसी गाड़ी से जाने के लिये सीटें रिज़र्व कराई हैं। आप घरवालों से लड़कर भाग आई हैं परन्तु वे नहीं आये। आप घर वापिस जाने में लज्जा अनुभव कर रही थीं और डूबते को, मेरे रूप में, तिनके का सहारा मिल गया है। क्यों ठीक है न?"

"तो?"

"तो क्या? यदि यह ठीक है तो प्रश्न जो आपके सम्मुख होना चाहिये वह यह है कि सआदतहुसैन को ढूंढा जाय और उनको, जो वचन उन्होंने आपसे किये होंगे, पूरा करने पर मजबूर किया जाय। यदि वे मान जायें तो आप उनसे विवाह कर लें और यदि वे न मानें तो फिर क्या किया जाय यह सोचना पड़ेगा। क्या ये छोटी-मोटी समस्यायें हैं?"

लड़की ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप खाना खाती रही। जब खाना समाप्त हो गया तो उसने थाल उठाकर एक ओर सीट के नीचे रख दिया ताकि अगले स्टेशन पर रैस्टोरेंट का नौकर आकर उठा ले जाये। हरवंशलाल ने भी वैसा ही किया। इसके पश्चात् हरवंश लाल एक किताब निकाल पढ़ने लगा। लड़की उस बिस्तर पर, जो उस के लिए लगाया गया था, जा बैठी और फिर गम्भीर विचार में पड़ गई। अगले स्टेशन पर नौकर आया, दाम वसूल कर, बर्तन उठा, चला गया। लड़की अभी भी कुछ सोच रही थी। हरवंशलाल ने एक पशमीने की चादर उसे दे रखी थी। उसने कहा, "ज्यों ज्यों गाड़ी पश्चिम की ओर जाएगी सर्दी बढ़ती जाएगी। यह चादर है ओढ़कर सो जाइये।"

इतना कह वह स्वयं अपने बिस्तर की चादर ओढ़कर लेट गया। गाड़ी धकाधक पश्चिम को भागी जा रही थी। हरवंशलाल दिन भर कलकत्ते में घूमता रहा था। इस कारण उसे नींद आ रही थी। बीच

बीच में जब नींद खुलती थी तो वह देखता था कि लड़की अभी भी बैठी है, सोई नहीं। अब लड़की ने वह पशमीने की चादर अपने शरीर पर लपेट ली थी। कुछ कुछ सर्दी हो गई थी।

पटना पहुँचकर हरवंश की नींद खुल गई। दिन के चार बज गये थे। लड़की अभी भी बैठी थी। हरवंश ने पूछा, "सोई नहीं हैं आप?"

"सोने का यत्न तो किया है पर नींद नहीं आई।"

"ऐसा प्रतीत होता है," हरवंश ने उठकर बैठते हुए कहा, "कि अभी भी आप अपनी समस्या को सुलझा नहीं सकीं।"

"बात यह है कि सआदतहुसैन, जैसा कि आपने अनुमान लगाया है, राजनैतिक सम्मेलन पर कलकत्ते आये थे। मेरे पिता जी के घर महमान ठहरे थे। उनकी सेवा का भार मुझ पर ही था। वे तीन दिन हमारे घर रहे और इन तीन दिनों में उन्होंने मुझ पर ऐसा जादू किया कि मैं सब प्रकार से उनकी हो गई। कल हमने निश्चय किया था कि इकट्ठे दिल्ली जायेंगे। मैंने दो टिकट खरीद सीटें रिज़र्व करवा लीं। आज प्रातः वे हमारा घर छोड़ चले गये। जाते समय नौकर को मेरे नाम की एक चिट्ठी दे गये। मैंने अपने पिता जी से कह दिया कि मैं दिल्ली जा रही हूं। जब उन्होंने पूछा कि वहां क्या है तो मैंने बता दिया कि उनसे विवाह कर लूंगी। इससे वे क्रोध में आगये। मैंने भी कह दिया कि मैं अब बालिग़ हूं और जो चाहूं कर सकती हूं। इससे उन्होंने कह दिया कि मैं उनके घर से निकल जाऊं। मैं निकल आई, परन्तु वे स्टेशन पर नहीं पहुँचे। आप मेरी निराशा और क्रोध का अनुमान लगा सकते हैं। अब मैं सोच रही हूं कि क्या करूं। आपका कहना सर्वथा सत्य है कि मुझे अभी तक कुछ भी सूझ नहीं रहा।"

"तो क्या मैं इसमें राय दे सकता हूं?"

"आपकी इच्छा है।"

"ठीक है। मैं केवल सम्मति ही तो दे रहा हूं। मानना, न मानना आपका काम है। देखिये, मेरी राय है कि दिल्ली पहुँचकर आप मेरे

घर ठहरें। वहां से आप अपने पिता जी को एक पत्र लिखें जिसमें उन से क्षमा मांगें और वापिस उनके घर जाने की स्वीकृति मांग लें। मुझे पूर्ण आशा है कि वे आपको क्षमा कर देंगे।"

लड़की ने सिर हिलाकर इस तजवीज़ को अस्वीकार कर दिया। हरवंशलाल ने पूछा, "क्यों?"

"मैं घर से लड़-झगड़कर निकली हूं। हम चौदह बहन-भाई हैं और सब के सम्मुख मुझे लज्जित किया गया है। मैं अब उनकी आंखों में वह मान नहीं पा सकती जो मुझे पहले प्राप्त था और इस प्रकार का अपमानित जीवन मुझे पसन्द नहीं। और सब से बड़ी बात तो यह है कि अब तक मेरी इतनी बदनामी हो चुकी होगी कि मैं अब किसी अच्छे परिवार में विवाह की भी आशा नहीं कर सकती।"

"यदि आप कलकत्ता वापिस नहीं जाना चाहतीं तब भी मेरी राय है कि आप अपने पिता जी से क्षमा मांग लें।"

"और उनको लिख दूं कि जिसका भरोसा कर घर से निकली थी वह धोखा दे गया है और अब आवारागर्दी कर रही हूं?"

"आवारागर्दी क्यों? आप दिल्ली में किसी और से विवाह कर लें। विवाह के लिये ही तो घर से निकली हैं न?"

"बिना प्रेम के ही विवाह कर लूं? भला यह भी कोई नौकरी है कि जहां मिली कर ली।"

"प्रेम कर के देख लिया है न? उनसे तो इतना भी नहीं बन पड़ा कि स्टेशन पर पता भेज देते कि वे आ नहीं सकते।"

"तो क्या इसलिये ही, कि एक बार धोखा हुआ है, अब अंधेरे में किसी से जाकर लिपट जाऊं?"

हरवंशलाल की हंसी निकल गई। वह बोला, "आंखें मूंदकर तो आप पहले लिपटी थीं। अब तो आपके पास समय है, धैर्य है और एक सलाहकार भी है। अब भला अन्धेरे में लिपटने की बात थोड़े ही होगी।"

"तो और क्या होगी? आप मेरे लिये वर ढूंढ देंगे और मेरा विवाह कर देंगे। यही तो न?"

"देखिये, श्रीमती जी, जो कुछ आपने पहले किया है वह सर्वथा अंधे कूयें में ईंट फेंकने की बात थी। आपने एक नवयुवक को देखा और उस पर लट्टू हो गईं। आपने उसका क्या देखा था? और अब यदि मैं कोई लड़का ढूंढूंगा तो उसके माता-पिता, भाई-बन्धु, उसका काम, उसकी आर्थिक स्थिति, उसका अपना चरित्र, उसका स्वास्थ्य, उसके मित्रों का आचार-व्यवहार और फिर उसके अपने विचार, यह सब देखूंगा। आपको बताऊंगा। आप जो कुछ आपत्ति उठायेंगी उसके विषय में सोचूंगा। तब कहीं आपके विवाह की बात पक्की करूंगा। बताइये, यह अंधेरे में कूदना है या जो आपने किया था वह अंधेरे में कूदना है?"

लड़की फिर गम्भीर विचार में पड़ गई। दिन चढ़ने पर गाड़ी मुग़लसराय पहुँच गई। वहां डिब्बे में कुछ और सवारियां आगईं। इससे बातचीत का सिलसिला और आगे नहीं चल सका। वहां से दिल्ली पहुँचने तक हरवंशलाल और उस लड़की में इस विषय पर बातचीत नहीं हो सकी। उनको एकान्त नहीं मिला। गाड़ी रात के नौ बजे दिल्ली स्टेशन पर पहुँची। दोनों गाड़ी से उतर स्टेशन से बाहर निकल आये। बाहर निकलते समय लड़की ने पूछा, "अब?"

"आप मेरे घर चलती हैं न?"

"तो और कहां जाऊं? मैं तो घर से एक फूटी कौड़ी लेकर भी नहीं आई।"

"तो चलिये।"

"पर मैं तो आपका नाम तक भी नहीं जानती।"

"मेरे विषय में इतना कुछ जानने के पीछे क्या इसकी भी आवश्यकता है?"

दोनों तांगे में बैठ गये। लड़की ने फिर कहा, "आपने मेरा नाम

भी तो नहीं पूछा ?"

"इसकी आवश्यकता समझ नहीं पड़ी।"

"आप विचित्र आदमी हैं! आपका विवाह हुआ है या नहीं ?"

"नहीं।"

"घर में कोई मां-बहन इत्यादि स्त्री तो होगी ?"

"नहीं, मैं अकेला ही रहता हूं। रोटी बनाने को एक नौकर है।"

"तो ?"

"तो क्या ? आपको मुझसे डर लगता है क्या ?"

लड़की ने कहा, "लोग क्या कहेंगे ?"

"तो आप लोगों की सम्मति का अपने माता-पिता, भाई-बहनों की सम्मति से अधिक विचार करती हैं ?"

लड़की समझने लगी थी कि यह आदमी वास्तव में बहुत समझदार और बातें करने में चतुर है।

[३]

हरवंशलाल इन दिनों दरियागंज में एक मकान में रहता था। वह इस बंगाली लड़की को वहां लेगया। मकान में तीन कमरे थे। एक में वह सोया करता था। एक बैठक बना रखी थी और तीसरा पूजा-पाठ के लिये नियत था। घर पर पहुंच उसने लड़की से कहा, "इनमें से जो कमरा पसन्द हो अपने लिये चुन लें।" उसने पूजा का कमरा पसन्द किया।

इसके पश्चात तीसरे दिन की बात है। लड़की ने सायंकाल का खाना खाते समय हरवंशलाल से कहा, "मैंने तो आपका नाम जान लिया है।"

"बहुत बहादुरी की बात की है न ? बधाई।"

"परन्तु आपको मेरा नाम अभी भी पता नहीं है।"

"इसकी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। ज़रूरत होती तो पूछ लेता।"

हरवंशलाल की इस बेपरवाही से वह ऊब गई थी। उसने कुछ चिढ़कर कहा, "तो आप मेरे विषय में जानना आवश्यक नहीं समझते ?"

"जानने की इच्छा तो कई बार हुई है, परन्तु जब तक आप स्वेच्छा से नहीं बतायेंगी, नहीं पूछूंगा।"

"मेरा नाम वीणा है।"

"बहुत सुन्दर नाम है।"

"मैं गाना भी जानती हूं।"

"ओह ! तब तो अहो भाग्य हैं। कभी सुनने को मिलेगा।"

"मैं कलकत्ता यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट हूं।"

"आपके होने वाले पति का सौभाग्य है।"

"कौन होगा वह ?"

"आप कहें तो एक नाम तजवीज़ करूं ?"

"पहले उसे दिखाइये। फिर उसके माता-पिता, भाई-बन्धु, रिश्ते-दारों का परिचय दीजिये। उसकी आयु, उसका नाम, उसका चरित्र और विचारों का परिचय दीजिये, तभी तो बात होगी।"

"अब तो वीणा रानी समझदार हो गई हैं।"

"आपकी संगत का फल ही तो है।"

"तो सुनिये, उस लड़के के पिता स्यालकोट पंजाब में रहते थे। बहुत भले आदमी थे। उनका देहान्त हुए बहुत वर्ष हो गये हैं। उस लड़के का एक भाई था। वह जलियां वाले बाग़, अमृतसर के हत्याकाण्ड में मारा गया था। उसकी एक विधवा, एक लड़का और एक लड़की अमृत-सर में हैं। वह लड़का स्वयं दिल्ली में बाइसिकल मरम्मत करने की दूकान खोलकर बैठा था और तरक्की करता करता अब बाइसिकलों का सौदागर हो गया है। आगे उसका विचार मोटरकारों की एजेन्सी लेने का है। इस समय उसकी सम्पत्ति काफी है। मैट्रिक तक पढ़ा है। पर समझदार और चरित्रवान है। आयु चौबीस वर्ष, रंग गोरा, शरीर मज़बूत और बाजार में सत्य बोलने वाला मशहूर है। आपने उसे देखा

है।"

वीणा हरवंशलाल के मुख पर देख रही थी। जब उक्त कथन समाप्त हो चुका तो वह बोली, "उस लड़के का नाम हरवंशलाल है क्या?"

"हां, उसे लोग इसी नाम से पुकारते हैं।"

"तो आप मुझसे विवाह करेंगे?"

"इस में हानि ही क्या है?"

वीणा चुप कर गई। दोनों खाना खा रहे थे। दो-तीन ग्रास जल्दी जल्दी मुख में ठूंस कर वीणा चबाने लगी। हरवंशलाल विवाह का प्रस्ताव कर थाली की ओर देख रहा था। अब उसको साहस नहीं होता था कि वीणा की आंखों में देखे। अंत में वीणा ने पूछा; "आप मुझ पर दया कर रहे हैं या मज़ाक?"

"दोनों में से कुछ भी नहीं। मैं अब विवाह करने की इच्छा रखता हूं। मेरे एक मित्र हैं। वे पुलिस में थानेदार हैं। कल उन्होंने आपको मेरे साथ देखा था। आज मिले तो कहने लगे कि मैं आपसे विवाह कर लूं। उनका अनुमान है कि आप भले घर की लड़की हैं। धोखे में आकर घर से निकल आई हैं।"

"तो एक थानेदार ने मेरी सिफारिश की है?"

"हां, मगर मैंने कहा था कि आप मेरी अतिथि हैं, इसलिये मैं यह प्रस्ताव कर अपने आतिथ्य को कलंकित नहीं करना चाहता। परन्तु जब आपने पूछ ही लिया है तो मैंने बताना उचित समझा। परन्तु आप तो मेरे विषय में बहुत पूछगीछ करती रहती प्रतीत होती हैं।"

"हां, यों तो आप प्रत्येक प्रकार से योग्य हैं, इस पर भी मैंने अभी कुछ निर्णय नहीं किया। आपका पड़ोसी और आपका नौकर मुझे आपकी स्त्री ही समझते हैं और उनके ऐसा समझने ने मेरे मन में कई बार यह प्रश्न उपस्थित किया है कि आखिर आपसे विवाह क्यों नहीं कर सकती, परन्तु मन नहीं माना। क्यों? मैं न जानती हूं और न ही बता सकती हूं।"

हरवंशलाल इससे कुछ फीका अवश्य पड़ गया, परन्तु वह इस सम्बन्ध में इतनी सुगमता से सफलता की आशा भी नहीं रखता था। इससे उसने लापरवाही दिखाते हुए कहा, "ठीक है, मेरे में बहुत त्रुटियां हैं। आप स्पष्ट रूप में न कहें यह आपकी कृपा है, परन्तु मैं जानता हूं। खैर छोड़िए इस बात को। संसार में विवाह ही एक काम नहीं है। बीसियों और काम हैं जो जीवन में करने को हैं।"

"ठीक, यही मैं सोच रही हूं।"

बस उस दिन बात यहीं समाप्त हो गई। पं० रघुवरदयाल की स्त्री वीणा को देखने आई और उसने उसे हरवंश के लिये योग्य पत्नी मान लिया। इसके पश्चात कई दिन तक कोई बातचीत नहीं हुई। हरवंशलाल ने सआदतहुसैन का पता पूछकर वीणा को बता दिया। वीणा ने उसे एक पत्र लिखा। सआदतहुसैन उसे हरवंशलाल के घर मिलने आया। हरवंशलाल को मालूम नहीं हुआ कि उनमें परस्पर क्या बातचीत हुई, परन्तु उन बातों का परिणाम यह हुआ कि एक रात वीणा ने कह दिया, "मैं समझती हूं कि मिस्टर सआदतहुसैन से मेरा सम्बन्ध एक भूल थी। मुझे उसका खेद है।"

"अब आपका क्या विचार है?" हरवंशलाल ने पूछा।

"जब विवाह ही करना है तो आप किसी प्रकार से भी खराब आदमी नहीं हैं, परन्तु मैं तो अब यही विचार करती रहती हूं कि विवाह करूं या न?"

इसमें उत्तर देने को कुछ नहीं था। इस कारण हरवंशलाल चुप रहा। कुछ देर विचारकर वीणा ने कहा, "आपसे यदि विवाह होजाये तो आप मेरा वह मान नहीं कर सकेंगे जो एक पुरुष को अपनी स्त्री का करना चाहिये।"

"मैं क्या कर सकूंगा या क्या नहीं कर सकूंगा इसकी चर्चा की आवश्यकता नहीं। मैं तो यह देख रहा हूं कि आप मेरा सदैव अपमान कर सकती हैं। जब आप सआदतहुसैन से निराश हो जाती हैं तो यह

समझने लगती हैं कि चलो मैं तो हूं ही। जब भी चाहेंगी मैं विवाह के लिये तैयार हो जाऊंगा। मैं समझता हूं कि यह आपका भ्रम है।"

"तो आप नाराज हो गये हैं ?"

"नहीं, मैं तो केवल यह चाहता हूं कि मेरे विषय में आज अन्तिम बात हो जाये। क्या आप मेरी स्त्री बनकर रह सकेंगी ? नहीं तो मैं आप को अपनी बहन घोषित कर दूंगा। यदि एक बार ऐसा विचार कर लिया तो फिर मेरे साथ विवाह की बात पाप हो जायेगी।"

"आप पुराने विचार के आदमी प्रतीत होते हैं ?"

"हां, इस विषय में मैं अपनी पुरानी विचारधारा को ठीक समझता हूं। आजकल के उन युवकों की भांति मैं यह नहीं कर सकता कि दिन में एक लड़की को बहन कहूं और रात को विवाह का प्रस्ताव करूं।"

"यदि मैं आपको कह दूं कि मेरा आपसे विवाह नहीं हो सकता तो आप मुझे घर से निकाल देंगे ?"

"नहीं, मेरी सहोदर बहन की भांति आप मेरे घर में रहेंगी।"

"तो मैं आपसे विवाह करूंगी।"

"अच्छी बात है। परन्तु अब आप मेरी बीवी होकर पर-पुरुष के विषय में पति की धारणा नहीं रख सकतीं। ऐसा करना न तो हिन्दू आचार-व्यवहार के अनुकूल है और न ही मुझे पसन्द है। मैं भी वचन देता हूं कि आपके अतिरिक्त दूसरी सब स्त्रियां मेरे लिये माता, बहन तथा लड़की के समान होंगी।"

वीणा मन में सोच रही थी कि कम से कम एक दृढ़ चरित्रवाला पति तो मिला है।

[४]

अगले दिन से विवाह की तैयारी होने लगी। पं० रघुवरदयाल ने तजवीज़ की कि वीणा अब उनके घर में चली जाये और विवाह तक वहीं रहे। विवाह की तैयारी शीघ्रता से की जाने लगी। विवाह का दिन निश्चित हो गया। हरवंशलाल ने अपनी भाभी को, जो अमृतसर में

थी, चिट्ठी लिख दी। अब एकाएक वीणा पं० रघुवरदयाल के घर से चली गई और उसकी चिट्ठी हरवंशलाल को मिली। चिट्ठी में लिखा था:—

"लाला जी, मुझे क्षमा करें। मुझसे भारी भूल हुई है। मैं अपने मन की बात गलत समझती रही। मैंने निश्चय से जान लिया है कि मेरा आपसे विवाह ठीक नहीं होगा। मैंने कल रात सआदतहुसैन से विवाह कर लिया है और मैं उसके घर चली गई हूं। सब से बड़ी बात जिसने मुझे ऐसा करने को विवश किया है वह मेरे जीवन का कार्य है, जो आपकी रुचि के अनुकूल नहीं है और सआदतहुसैन साहब के जीवन-कार्य से सर्वथा मिलता है। मैं राजनैतिक काम को अपना जीवन-कार्य बनाना चाहती हूं। यह एक दूकानदार की स्त्री को शोभा नहीं देता। क्या मैं अब भी आपसे मेल-मुलाकात और मित्रता रख सकती हूं? आपने मेरी बहुत सहायता की है इसके लिये जन्म भर आपकी अहसानमन्द रहूंगी।"

आपकी,
वीणा।

हरवंशलाल को इससे अचम्भा भी हुआ और दुख भी। इस पर भी उसने इसे अच्छा ही समझा। पं० रघुवरदयाल की स्त्री ने इस स्थिति को बहुत यत्न से सम्भाला। विवाह की निश्चित तिथि को हरवंशलाल का विवाह हो गया और इस अवसर पर हरवंशलाल ने वीणा और सआदतहुसैन को भी निमन्त्रण भेजा। इस निमन्त्रण को पढ़ वीणा चकित रह गई। सआदतहुसैन ने कहा, "चलना चाहिये। उस भले आदमी से सम्बन्ध रखने में लाभ ही होगा।"

विवाह के पश्चात जब बहू को लेकर हरवंशलाल घर आया तो वीणा और सआदतहुसैन हरवंशलाल को बधाई देने आये। वीणा ने हरवंशलाल को अलग लेजाकर पूछा, "आप मुझसे नाराज़ हैं?"

"नहीं। आप खुश हैं?"

"नहीं।"

"अब क्या बात है, वीणादेवी जी? आप अपने मन-पसन्द का पति पागई हैं फिर नाराज़गी की कौन बात है?"

"मैं आपके सम्मुख वर्णन नहीं कर सकती।" इसके पश्चात वीणा ने बात बदल दी, "क्या मैं आपकी स्त्री को देख सकती हूं?"

"क्यों नहीं। आपसे अधिक सुन्दर है।"

"आपने देखी है?"

"हां। अभी, अभी, पहली बार।"

"तो सुन्दर शरीर को देखकर प्रसन्न हैं?"

"शेष मेरे मित्र पं० रघुवरदयाल की स्त्री ने बताया है कि घर के काम-काज में बहुत चतुर है।"

"तो अच्छा नौकर मिल गया है! बीबी की बीबी और नौकर का नौकर।"

हरवंशलाल हंस पड़ा और कहने लगा, "केवल बीबी और नौकर ही नहीं, प्रत्युत सुख-दुख का साथी भी। इनका परिवार पक्का सनातन धर्मावलम्बी है।"

वीणा अनुभव कर रही थी कि हरवंशलाल उस पर कटाक्ष कर रहा है। वह भीतर चली गई और बहू के पास जा बैठी। लड़की भूषणों से लदी पड़ी थी। किनारी और ज़री से जड़े कपड़े पहने थी। हाथों में हाथी-दांत की चूड़ियां थीं और उनके आगे दो मोटे मोटे सोने के कंगन थे। वीणा को आता देख बहू ने आंखें नीची कर लीं। वीणा ने ठुड्डी ऊपर उठाकर उसका मुख देखा और उसके मुख से भी निकल गया, "वास्तव में तुम सुन्दर हो।"

बहू का मुख लज्जा से लाल हो गया। वीणा ने कहा, "शर्मा गई हो?"

बहू मुस्करा पड़ी, "देखो, मैं उनकी धर्म की बहन हूं और तुम्हारे लिये भेंट लाई हूं।" इतना कह वीणा ने अपने हैंड-बैग में से हाथी-दांत

की अति सुन्दर माला निकालकर उसके गले में डाल दी।

माला को बहू ने देखा। उसे बहुत भली प्रतीत हुई और उसने वीणा को कहा, "धन्यवाद।"

"ओहो! तो तुम पढ़ी भी हो?"

सिर हिलाकर बहू ने स्वीकार कर लिया। वीणा ने पूछा, "कितनी कक्षा तक?"

"हिन्दी प्रभाकर, इंगलिश मैट्रिक।"

"बस?"

"बस।"

[५]

इस विवाह की घटना ने रघुवरदयाल और हरवंशलाल को बहुत समीप कर दिया था। दूसरी ओर वीणा का मान-मर्दन हुआ। हरवंश लाल के घर पहली सन्तान हुई और वीणा अभी भी निस्सन्तान थी। दूसरी सन्तान हुई और वीणा ज्यों की त्यों निस्सन्तान थी। यद्यपि वीणा और सआदतहुसैन देश के कार्य में व्यस्त रहकर इस सन्तान न होने की त्रुटि को मन में जमने नहीं देते थे, इस पर भी यह थी, और कभी जब वे सार्वजनिक कामों से छुट्टी पा सोने के समय अपने मकान को बच्चों के शोर-गुल से रहित पाते तो एकाएक गम्भीर हो सोचा करते थे।

हरवंशलाल का विवाह सन १९२३ में हुआ था और जहां एक ओर उसकी मैत्री रघुवरदयाल से दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही थी, वहां सआदतहुसैन और उसकी बीवी वीणा भी हरवंशलाल के परिवार के समीप आरहे थे। एक समझदार पुलिस-अफ़सर होने से रघुवरदयाल राष्ट्रीय संस्था, जिसके सआदतहुसैन और वीणा एक उच्च कोटि के नेता थे, के विषय में बहुत सी बातें हरवंशलाल के घर से मालूम कर लिया करता था। वीणा बंगाली लड़की होने के कारण अपने पति से अधिक उग्र विचार रखती थी और उसके मस्तिष्क में

षडयन्त्र और छुपकर कार्य करने की बात भी रहती थी। वह धीरे धीरे अपने विचार के लोग अपने आसपास एकत्रित करती रहती थी। रघुवरदयाल ये सब बातें हरवंशलाल के घर से मालूम करता था और उनको, पुलिस के महकमे में, अपनी स्थिति को उन्नत करने में प्रयोग किया करता था। वह थानेदार से सुप्रिन्टेन्डेन्ट-पुलिस और फिर डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल इन ही साधनों से बन गया था।

अब सन १६४२ के वर्ष का आरम्भ था। नरेन्द्र की माता का देहान्त हुआ तो वह दिल्ली चला आया। अमृतसर में वह हिन्दू-सभा कॉलेज में प्रोफैसर के पद पर नियुक्त था। उसकी बहन राधा का विवाह लाहौर के एक वकील दीनानाथ ढींगरा से हो चुका था। मां ने मरते समय नरेन्द्र को फिर याद दिलाया था कि उसके जीवन का लक्ष्य क्या है। उसने कहा था, 'बेटा, मेरी कुहनियां और घुटनों के घाव अभी भी पीड़ा करते हैं।' नरेन्द्र इसका अर्थ समझता था। उसने उत्तर में कहा था, 'मां, विश्वास रखो। इस अपमान का बदला लेना मेरे जीवन का लक्ष्य है। मेरी सब आवश्यकताएं इस प्रतिकार से दूसरे दर्जे पर रहेंगी।'

जब नरेन्द्र दिल्ली में आया तो कॉलेज की नौकरी छोड़कर आया था। यहां वह स्वाध्याय और देश की परिस्थिति को गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने में लग गया। उसका स्वभाव बहुत ही मिलनसार था और जिस किसी के भी सम्पर्क में वह आता था उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। हरवंशलाल के बच्चों से तो वह बिलकुल हिलमिल गया था। हरवंशलाल की लड़की कमला तो उससे बहुत ही स्नेह करने लगी थी।

रघुवरदयाल, जो इस समय डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल की पदवी पर नियुक्त था, अभी भी हरवंशलाल के घर आता-जाता था। वह भी नरेन्द्र को देख उसकी रूप-रेखा, प्रतिभा और मस्तक पर के ओज से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। उसने हरवंशलाल से लड़के का परिचय

प्राप्त कर एक दिन कह ही दिया, "भाई हरवंशलाल, यह लड़का मेरा रहा। मनोरमा अब विवाहने योग्य हो गयी है। और मैं समझता हूं कि यह लड़का सब प्रकार से उसके योग्य है।"

हरवंशलाल डिप्टी साहब के विचार सुन बहुत प्रसन्न था। डिप्टी साहब के चले जाने के पश्चात् हरवंशलाल ने नरेन्द्र को कोठी के ड्रायंग-रूम में बुलाकर वह बातचीत की थी जो हम प्रथम अध्याय में लिख आये हैं। उस वार्तालाप के अंत में नरेन्द्र ने अपने चाचा से कहा था, 'चाचा जी, मुझे अभी विवाह नहीं करना।'

दूसरे दिन हरवंशलाल डिप्टी साहब के बंगले पर गया तो नरेन्द्र के विषय में बातचीत आरम्भ हो गयी। हरवंशलाल नरेन्द्र की सब बातें बताना नहीं चाहता था, इस कारण उसने केवल यह कह दिया, "नरेन्द्र अभी विवाह नहीं करना चाहता।"

"मैं भी यही चाहता हूं। मैं अभी उसे पुलिस में भरती करवा दूंगा। वह वहां ट्रेनिंग लेकर एक वर्ष में कहीं इन्सपेक्टर लग जायेगा। तब तक उसकी माता की बर्षी भी हो जाएगी। पश्चात् विवाह हो जायेगा। अभी तो केवल सगाई हो जानी चाहिये।"

"वह तो कहता है कि विवाह करेगा ही नहीं।"

"ला० हरवंशलाल, तुम बहुत ही भोले आदमी हो। लड़के-लड़कियां तो सदा ऐसे ही कहा करते हैं।"

"मेरा उस पर दबाव नहीं है।"

"छोड़ो जी। दबाव की क्या आवश्यकता है? तुमको तो हमारी लड़की स्वीकार है न? शेष मैं सब निपट लूंगा।"

"मुझे तो मनोरमा बहुत प्यारी लगती है। और फिर मेरी गोदी में खेली है। परन्तु मानने की बात तो नरेन्द्र की है।"

"भाई, उसे मैं मना लूंगा। देखो, कल मनोरमा और उसकी मां नरेन्द्र को देखने आवेंगी। विनय की मां को कहकर परस्पर भेंट करा देना। उसे अभी बताना नहीं कि यह लड़की कौन है। पीछे मैं समझ

लूंगा।"

अगले दिन नरेन्द्र अपने कमरे में बैठा किसी पुस्तक से टिप्पणियां लिख रहा था। इस समय उसकी चाची, मनोरमा, मनोरमा की मां और हरवंशलाल की लड़की कमला उसके कमरे में चले आये। नरेन्द्र उनको आया देख कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर नमस्ते कहने लगा। नरेन्द्र की चाची ने कहा, "बैठो बेटा, ये लोग कोठी देखना चाहते थे। मैंने कहा चलो दिखा लाऊं। तुम अपना काम करो।"

इतना कहकर उसने मनोरमा की मां को कहना आरम्भ कर दिया, "यह मेरी जेठानी का लड़का है। बेचारी को सात दिन ही ज्वर आया और चल बसी। नरेन्द्र बहुत ही सीधा लड़का है। सिवाय पढ़ने-लिखने के और कुछ काम ही नहीं। एम० ए० की परीक्षा में प्रथम स्थान पर आया था। नौकरी तो इसे पास करते ही मिल गयी थी, परन्तु इसे पसन्द ही नहीं आई। छोड़-छाड़ यहां चला आया है।"

इस पर मनोरमा की मां ने कहा, "कॉलेज की नौकरी में डेढ़ सौ ही तो मिला होगा, और फिर ऊपर से कुछ आमदन नहीं। इतना पढ़ने के बाद यह तो कुछ नहीं।"

जब दोनों बातें कर रही थीं, मनोरमा और कमला वह पुस्तक देखने लगीं, जिसमें से नरेन्द्र नोट लिख रहा था। पुस्तक थी 'रूस की क्रांति' (Russian Revolution)। ट्राट्स्की की लिखी हुई थी। मनोरमा ने भी बी० ए० में इतिहास लिया था। वह पुस्तक को उठा रुचि से देखने लगी। नरेन्द्र मनोरमा की ओर देखने लगा। वह सोच रहा था, कि ये लोग यहां क्यों आ टपके हैं। उसका समय व्यर्थ जा रहा था।

मनोरमा ने नरेन्द्र को अपनी ओर देखते हुए देख लिया। उसने बात आरम्भ कर दी, "यह आप कोई अन्वेषण-पत्रक (Thesis) लिख रहे हैं?"

नरेन्द्र को शिष्टाचार के नाते उत्तर देना पड़ा, "नहीं जी, मैं एक

पुस्तक लिख रहा हूं। इस पुस्तक का विषय है, "Creation of fundamental conditions for a successful revolution (सफल क्रान्ति के लिये उचित वातावरण प्रस्तुत करना।)

"बहुत लम्बा नाम है," मनोरमा ने कहा।

"यह नाम नहीं, यह तो पुस्तक का विषय है। नाम तो होगा 'सफल क्रान्तियां'।"

"आपने विषय बेढब चुना है।"

"यह मेरा प्यारा विषय है।"

"क्रान्ति के नाम से नर-रक्त की बू आती है।"

"आप क्रान्ति से डरती क्यों हैं? यह तो प्रकृति का प्रवाह है। इसे कोई रोक नहीं सकता। हां, इसे नियम-बद्ध कर सकते हैं जिससे कम से कम नर-हत्या हो।"

"क्रान्ति के स्थान पर विकास क्या अच्छा नहीं?"

"हम लोग जो उन्नति की इच्छा करते हैं विकास का विरोध नहीं करते। विरोध तो वे करते हैं जो उन्नति अर्थात् परिवर्तन नहीं चाहते। क्रान्ति स्वाभाविक विकास के विरोध का सीधा परिणाम होती है।"

"आपने एम० ए० इतिहास में किया है?"

"जी हां।"

"मैंने भी बी० ए० की परीक्षा में इतिहास लिया था।"

"तब तो आप मेरी बात भली भांति समझ सकेंगी। मैं इतिहास पढ़ने से इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि जब कोई व्यक्ति अथवा जाति उस पदवी पर पहुँच जाती है जिसके वह योग्य नहीं थी अथवा नहीं रही और वह व्यक्ति अथवा जाति हठ कर उस पदवी को छोड़ना नहीं चाहती तो क्रान्ति की आवश्यकता होती है।"

"जिसने जो पदवी योग्यता से प्राप्त की है वह उसके योग्य क्यों नहीं रहती?"

"परिस्थिति, समय और काल के बदलने से अथवा अधिक योग्य

व्यक्ति के क्षेत्र में आजाने से।"

"अपनी पदवी छोड़ने में सब को दुख होता है।"

"व्यक्तिगत अवस्था में तो मृत्यु क्रान्ति का स्थान लेती है, परन्तु एक जाति की अवस्था में या तो उसे अपने में पुनर्जीवन का संचार करना होता है और यदि वह ऐसा नहीं कर सकती तो क्रान्ति उसे पदच्युत करने के लिये आजाती है।"

"आपके विचार युक्तियुक्त तो हैं। क्रान्ति-सम्बन्धी आपके पास कोई और पुस्तक है?"

"हां, आप पढ़ेंगी?"

"यदि आप दें तो।"

नरेन्द्र ने दीवार में बनी अलमारी खोल उसमें से एक पुस्तक निकालकर कहा, "इसे पढ़िये।"

पुस्तक का नाम था, 'Place of Revolution in Human Evolution,' (मनुष्य के विकास में क्रान्ति का स्थान)। मनोरमा ने पुस्तक लेते हुए कहा, "धन्यवाद। कब तक लौटा दूं?"

"जब पढ़लो। मेरे पास बहुत रुपये नहीं अन्यथा यह आपको भेंट कर देता।"

"भेंट की कुछ आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं आकर दे जाऊंगी।"

भेंट करने की बात मनोरमा की माता ने सुनली। वह हंस पड़ी। इसके पश्चात नरेन्द्र की चाची मनोरमा इत्यादि को लेकर चली गयी।

[६]

मनोरमा कई बार पुस्तक लौटाने और कोई दूसरी पुस्तक लेने आई। प्रत्येक बार वह नरेन्द्र से मिलती थी और उससे बातें करती थी। नरेन्द्र ने उससे कभी भी उसका नाम तथा परिचय नहीं पूछा था। वह तो उसे केवल कमला की एक सहेली-मात्र समझता था।

मनोरमा को विदित था कि उसके पिता नरेन्द्र से उसका विवाह करना चाहते हैं। पहले ही दिन जब वह नरेन्द्र से मिलकर गई थी तो

उसकी मां ने पूछा, "क्या बातें कर रही थीं उससे ?"

"वह एक पुस्तक पढ़ रहा था। मैंने उसके विषय में पूछा था।"

मां ने कह दिया, "तुम्हारे पिता उससे तुम्हारे विवाह का विचार कर रहे हैं। तुम क्या समझती हो ?"

मनोरमा का मुख लज्जा से लाल हो गया। उसकी आंखें नीचे झुक गयीं। मां ने कुछ और विस्तार से कह दिया, "कमला के ताऊ का लड़का है। उसके पिता की मृत्यु जलियां वाले बाग के हत्याकाण्ड में हुई थी। तब वह दो वर्ष का था। उसकी मा ने भारी परिश्रम से उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है और एम० ए० तक पढ़ाया है। उसकी एक बहन भी है, जिसका विवाह लाहौर में हो चुका है। वैसे तो वह गरीब लड़का है, परन्तु तुम्हारे पिता का विचार है कि उसका उन्नत मस्तक देख यह कहना कठिन नहीं कि एक दिन वह उच्च पदवीधारी हो सकेगा। देखने में भी अच्छा, सुन्दर प्रतीत होता है।"

मां जब कह चुकी और मनोरमा के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी तो वह चुपचाप उठी और अपने कमरे में चली गई। जब यह वृत्तान्त मनोरमा की मां ने डिप्टी साहब से कहा तो वे बोले, "इससे तो यही समझ पड़ता है कि उसे यह सम्बन्ध पसन्द है।"

दूसरे-तीसरे दिन मनोरमा कमला से मिलने आती तो कोई न कोई बहाना निकाल नरेन्द्र से मिल लेती। कभी कभी वे परस्पर घंटों ही बातें करते रहते थे। उनके वार्तालाप का विषय सदैव राजनैतिक होता था। मनोरमा स्वयं कभी अपने विवाह के विषय में कह नहीं सकी और नरेन्द्र को विवाह के विषय में सोचने का अवकाश ही नहीं था। उसे तो जीवन में केवल एक ही कार्य था और वह था अपनी मां के अपमान का बदला लेना।

जब उसकी मां ने उसे अपने साथ हुए अन्याय और अपमान की कहानी बताई थी तो वह आयु में अभी सोलह वर्ष का था। उसकी बुद्धि अभी विकसित नहीं हुई थी। वह समझता था कि किसी एक

गोरे सिपाही को मार डालने से उसकी मां का बदला चुक जायेगा। परन्तु आयु बढ़ने से और ज्ञान-वृद्धि से उसे यह समझ में आने लगा था कि यह अपमान न तो किसी एक व्यक्ति ने किया है और न ही किसी एक व्यक्ति पर किया गया है। इसे करने वाली सारी अंग्रेज़ जाति है और यह सारे हिन्दुस्तान में बसने वाली स्त्री जाति का हुआ है। इसका बदला किसी एक-आध अंग्रेज की हत्या से नहीं चुक सकता। इसके लिये तो सारी अंग्रेज़ जाति दोषी है और सारी जाति को ही दंड मिलना चाहिये।

जब उसने सन् १६१६ के पंजाब में मार्शल-लॉ का इतिहास पढ़ा तो उसकी यह धारणा और भी दृढ़ हो गई। जब उसने यह पढ़ा कि डायर को पेन्शन देकर विलायत भेजने के पश्चात विलायत के अंग्रेजों ने उसे एक लाख पौण्ड की थैली भेंट की थी तो वह सोचता था कि यह कार्य किस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने सहन किया था। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि ब्रिटिश सरकार ने डायर और मार्शल-लॉ के अफसरों के कारनामों को पसन्द किया था?

ऐसी अवस्था में वह इस निश्चय पर पहुंचने को विवश होगया था कि सारी ब्रिटिश जाति उसकी मां पर किये गये अन्याय के पाप की भागी है। वह अपने को सारी अंग्रेज़ जाति का शत्रु समझता था।

जब कभी वह राष्ट्रीय संस्था के नेताओं को अथवा दूसरे हिन्दुस्तानियों को कुछ अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों की प्रशंसा करते सुनता था तो उस के मन में उनके लिये भी घृणा उत्पन्न हो जाती थी। वह समझता था कि यह बात सत्य से दूर है।

ऐसे ही भाव वह अपने वार्तालाप में मनोरमा के कानों में डालता रहता था। उसने मनोरमा के एक प्रश्न के उत्तर में अपने जीवन का ध्येय बता दिया। उसने कहा, "इस जाति को इसके इस प्रभुत्व से गिराकर बहुत ही साधारण अवस्था पर पहुंचाने के यत्न में जीवन व्यय करना चाहता हूं।"

"मरुभूमि में वर्षा की एक बूंद की भांति आपके जीवन का परिणाम होगा। ब्रिटिश साम्राज्य बहुत विस्तृत है। आप जैसे लाखों के विरोध करने पर भी इसमें टस से मस नहीं होगी।"

"मैं अपना पूर्ण बल लगा दूंगा।"

"कुछ लाभ नहीं होगा।"

"मुझे इसकी चिन्ता नहीं।"

"आप अपना जीवन व्यर्थ खो रहे हैं। मैं समझता हूं कि आप जैसी प्रतिभा रखने वाले के लिए भविष्य अपने गर्भ में बहुत कुछ रखता है। आप किसी भी महकमे में चले जायें, आपके लिए मानयुक्त स्थान वहां ही हो जायेगा।"

"मुझे सरकारी नौकरी नहीं करनी।"

डिप्टी साहब मनोरमा का नरेन्द्र के साथ मेल-मिलाप बढ़ता देख बहुत प्रसन्न थे और अपने मन में नरेन्द्र के लिये काम-धंधा सोच रहे थे। कभी तो उनका विचार होता था कि गवर्नमैंट आफ इंडिया के किसी दफ्तर में उसे भरती करवा दें। कभी पुलिस में भरती करवाने का विचार भी होता था। जब वे किसी अंतिम निर्णय पर नहीं पहुंच सके तो उन्होंने अपने अफसर पुलिस-कमिश्नर से राय की। उसने कहा, "एक ग़रीब आदमी के लिये दुनिया में सब से पहला काम अमीर बनना है, और अमीर बनने के लिये जेल के दारोग़ा का काम बहुत बढ़िया है। एक बार पंजाब के एक वज़ीर ने भरी कौंसिल में कहा था कि वह जेल के दारोग़ा के पद के लिये वज़ारत छोड़ने को तैयार है।"

डिप्टी साहब ने खुशामद का भाव दिखाते हुए कहा, "हुजूर, उसके लिये मेरी सहायता कीजिये।"

"वह लड़का तुम्हारा क्या लगता है?"

"मेरा होने वाला दामाद है।"

"वेरी वैल! मैं पूरी कोशिश करूंगा। तुम उससे एक प्रार्थना-पत्र लिखवाकर मुझे देना। यह चीफ़ सेक्रेटरी, पंजाब गवर्नमैंट के नाम

चाहिये ।"

उसी रात डिप्टी साहब ने मनोरमा को कहा कि नरेन्द्र से ऐसा प्रार्थना-पत्र लिखवा लाये । मनोरमा का उत्तर था, "पिता जी, मुझसे यह नहीं हो सकेगा ।"

"क्यों ?"

"वे मुझसे कहते हैं कि नौकरी नहीं करेंगे ।"

"तो खाना-पीना कैसे होगा ? जेब में रुपया होता तो कोई व्यापार ही करवा देता ।"

"वे ऐसी कोई बात करना नहीं चाहते ।"

"तो किसी मुकाबले की परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं ?"

"नहीं पिता जी ।"

"तो वे क्या करना चाहते हैं ?"

"वे तो देश में क्रान्ति पैदा करना जीवन का लक्ष्य समझते हैं और इसके लिये तैयारी कर रहे हैं ।"

"क्रान्ति ?" बहुत ही अचम्भे में डिप्टी साहब ने पूछा । वे आंखें फाड़-फाड़कर लड़की को सिर से पांव तक देखने लगे, "और तुम उसके साथ इस विषय की बातें करती रहती हो ?"

"उनको तो किसी अन्य विषय में रुचि ही नहीं । मैं जब किसी भी विषय पर बात करती हूं तो घुमा-फिराकर कुछ ही काल में क्रान्ति की बातें होने लगती हैं । उनके मस्तिष्क में प्रत्येक बात का प्रवाह क्रान्ति की ओर ही जाता है ।"

डिप्टी साहब इस बात से गम्भीर विचार में पड़ गये ।

[७]

दूसरे ही दिन डिप्टी साहब स्वयम् ही हरवंशलाल की कोठी में नरेन्द्र से बात करने जा पहुँचे । नरेन्द्र से लाला जी ने डिप्टी साहब का परिचय कराया, "आप हैं राय साहब रघुवरदयाल, डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस । आप मेरे परम मित्र हैं । यहां दिल्ली में इनका भारी रसूख

है। सन १६३०-३२ के आन्दोलन में आपने सरकार की जी-जान से सेवा की थी, इस कारण आपको यह पदवी, जो कभी ही किसी हिन्दुस्तानी को दी जाती है, मिली है। इसके अतिरिक्त जिला मिन्टगुमरी में आपको पांच मुरब्बे भूमि मिली है। बड़े बड़े अफसरों से आपकी मेल-मुलाकात है।"

इतना लम्बा परिचय कराने में हरवंशलाल का विशेष प्रयोजन था। परन्तु नरेन्द्र पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। जब हरवंशलाल अपने भतीजे का परिचय कराने लगा तो वह बीच में ही बोल उठा, "मैं स्वयं ही निवेदन कर देता हूं। मेरा नाम नरेन्द्रकुमार है। मैं आपका भतीजा हूं। मेरे पिता जलियां वाले बाग में डायर के सिपाहियों की गोलियों से मारे गये लोगों में से एक थे। मेरी मां को, जब वह पेट में नौ मास का बच्चा लिये हुए थी, अंग्रेज़ सिपाहियों ने बाज़ार में रेंगने पर विवश किया था। पश्चात् मेरे पिता के मारे जाने के प्रतिशोध में मेरी मां को दयालु सरकार ने आठ सौ रुपया देना चाहा था जो मेरी मूर्ख मां ने अस्वीकार कर दिया।......"

हरवंशलाल नरेन्द्र को इस प्रकार अपना परिचय देते देख घबरा उठा। वह बीच में ही बात काटकर कहने लगा, "क्या बच्चों की सी बातें करते हो, नरेन्द्र ? जानते हो किन से बातें कर रहे हो ?"

"चाचा जी, आपने बताया है न, कि आपके परम मित्र हैं। इन्हें अपने मन के भाव और भावनायें बताने में क्या हानि है ? आप अपने मित्र के भतीजे से दगा थोड़े ही करेंगे ? हां, तो मैं बता रहा था कि मेरी मां ने सरकार से अपने पति का दाम आठ सौ स्वीकार नहीं किया। चाचा जी की दयालुता का, वह और मैं, आभारी रहे हैं और हैं। आप अब तक हमारा तीस रुपया मासिक वज़ीफ़ा लगाये हुए हैं। परन्तु आप समझ सकते हैं कि इतने रुपये में घर का खर्च और मेरी एम० ए० तक पढ़ाई हो नहीं सकती थी। इसके लिये मां को दिन-रात लोगों के कपड़े सीने का काम करना पड़ता था। मैंने कुश्ती लड़नी सीखी है। मैं

पहले दर्जे का जिमनास्ट हूं और कॉलेज की हॉकी और फुटबॉल की फर्स्ट टीम का मेम्बर था। मेरे पास इन सब बातों में मानयुक्त भाग लेने के बीसियों तमगे भी हैं। एक फर्स्ट क्लास खिलाड़ी के खाने-पीने का, उसकी एम० ए० तक की पढ़ाई और दिन प्रति दिन नई नई पुस्तकों के खरीदने का खर्च मुशकिल से चलता था। परिणाम यह है कि मेरे पास एक पाई की सम्पत्ति भी नहीं है। अभी भी चाचा जी के वज़ीफ़े की आवश्यकता बनी हुई है।"

डिप्टी साहब, जो लड़के के मनोद्गारों को बहुत ध्यान देकर सुन रहे थे, कहने लगे, "बेटा नरेन्द्र, इसी विषय पर बातचीत करने के लिये मैं यहां आया हूं।"

"आपने बहुत कृपा की है। मैं आपका कृतज्ञ हूं।"

"बेटा, आज दुनिया में धन एक बहुत प्रबल शक्ति है। बिना धन के देवता भी गधा बना रहता है और रुपये के बल पर मूर्ख-गंवार भी बुद्धिमान और सभ्य माना जाता है। मैं तुम्हें यह राय देने आया हूं कि मां बेचारी ने तो इतना परिश्रम कर तुम्हें पढ़ा-लिखाकर योग्य किया है, अब तुम इस योग्यता का उपयोग कर धन पैदा करो और उस देवी का नाम उज्ज्वल करो।"

"आप ठीक कहते हैं। मैं दिन-रात इसी सोच में लगा रहता हूं कि किस प्रकार लक्ष्मीतुल्य अपनी मां का नाम उज्ज्वल करूं। इसके लिये मैं योजना बना रहा हूं। इस योजना में अभी बहुत न्यूनतायें हैं और मैं उनको पूरा करने में लगा हुआ हूं।"

"ज़रा हमें भी तो बताओ कि वह योजना क्या है। शायद हम भी उसमें सहायता कर सकें।"

"मैं समझता हूं कि आप उसमें सहयता नहीं कर सकते। यह काम तो मेरे करने का ही है।"

"देखो नरेन्द्र, एक योजना मैंने भी बनाई है। मैंने कमिश्नर-पुलिस से तुम्हारे विषय में बातचीत की है। उन्होंने अति दया कर मुझे कहा

है कि मैं तुमसे एक प्रार्थना-पत्र लिखवा कर उन्हें दे दूं। उनका विचार है कि तुम्हारे लिये जेल के दारोगा का स्थान सर्वोत्तम रहेगा। लाखों रुपये कमाने वाली जगह है।"

नरेन्द्र जेल का दारोगा बनने की बात सुन हंस पड़ा और बोला, "यदि किसी ने मुझे यह पद दे दिया तो मेरा पहला काम यह होगा कि जेल का फाटक खोल दूं और सब कैदियों को स्वतंत्र हो जाने दूं।"

"क्यों?"

"मुझे सरकार की कचहरियों में दोषी सिद्ध हुए लोगों के दोषी होने में विश्वास नहीं रहा। इन कचहरियों में अभियुक्त का दोषी अथवा निर्दोष होना सिद्ध नहीं होता अपितु यह निर्णय होता है कि उनका वकील कितना योग्य और मेहनती है। जिस गरीब के पास किसी अच्छे वकील को खरीदने के लिये धन नहीं उसे अपने को दोषी मान ही लेना पड़ता है और वह दंड पाता ही है।"

"यह ठीक है। फिर भी जेलों में निन्यानवे प्रति शत दोषी होते हैं।"

"यह आपका विचार है न। आप तो लोगों को जेल भेजने वाली संस्था के सदस्य हैं। आपके कथन को पक्षपातरहित नहीं माना जा सकता। जब तक न्यायालयों में न्याय सस्ता और सुलभ नहीं हो जाता, जब तक पेशेवर वकीलों से इन्हें मुक्त नहीं कर दिया जाता, जब तक मैजिस्ट्रेट महकमा-पुलिस से स्वतंत्र नहीं हो जाते, जब तक कचहरियों के कर्मचारियों की उन्नति तथा नियुक्ति महकमा-पुलिस की सिफारिश से मुक्त नहीं हो जाती और जब तक खुफिया-पुलिस साधारण पुलिस से पृथक नहीं कर दी जाती तब तक न्यायालयों में न्याय होता है, ऐसा मानने को जी नहीं चाहता।"

"देखो नरेन्द्र, मैं तुम्हारे भविष्य में भारी दिलचस्पी रखता हूं और मैं तुम्हें सच्चे हृदय से कहता हूं कि ये राजनीति की बातें गरीबों के लिये नहीं हैं। ये धनी लोगों के मनोरञ्जन की बातें हैं। तुम जैसे गरीबों को तो राजपदवी मिल नहीं सकती। ईश्वर की कृपा है कि तुम्हारे चाचा

तुम्हें खाने-पहनने को देते हैं। परन्तु यह कब तक होगा ? आखिर तुम्हें अपनी टांगों पर खड़ा होना पड़ेगा। इस संसार में बातों से कुछ नहीं बनता। हाथ-पांव हिलाने ही पड़ेंगे।"

"यह बात तो मैं आपकी मानता हूं। मैं शीघ्र ही दूसरों पर से अपना बोझ उठाने की चिन्ता में हूं। मैं आशा करता हूं कि आपका यह संकेत मैं भूलूंगा नहीं।"

"इसी बात में तो मैं तुम्हारी सहायता करना चाहता हूं। मनोरमा को तो तुम जानते ही हो। वह मेरी लड़की है।"

"मनोरमा आपकी लड़की है!" नरेन्द्र ने विस्मय से कहा। "मुझे उसने कभी बताया नहीं, परन्तु मैंने कभी पूछा भी तो नहीं। हां, एक बात है। उसका मेरे सम्पर्क में आना अच्छा नहीं हुआ। एक पुलिस-अफसर की लड़की मेरे जैसे विचारोंवाले की संगति में कुछ अच्छी नहीं लगती।"

"तुम उसे कैसी समझते हो ?"

"मनोरमा को ? वह बहुत ही समझदार और चतुर लड़की है।"

"तुम्हें वह पसन्द है ?"

"यदि वह लड़की न होकर लड़का होती तो हम दोनों अपने कार्य को बहुत अच्छी तरह चला सकते। मुझे उस जैसा योग्य साथी कहीं मिल नहीं रहा।"

"लड़की से लड़का अब बन नहीं सकती," डिप्टी साहब ने हंसते हुए कहा, "और फिर लड़की होने से तुम्हारे बहुत ही समीप हो सकती है। तुम्हारी पत्नी बन सकती है। यदि लड़का होती तो तुम्हारे इतने समीप कैसे हो सकती थी ?"

"आपका अतीव धन्यवाद है, परन्तु मुझे विवाह नहीं करना। यदि वह मेरे पास इसलिये आती है कि मुझसे विवाह कर सकेगी, तो वह भूल कर रही है।"

"क्यों ?"

"मैं आपका दामाद बनने के योग्य नहीं हूं। मेरे और आपके विचारों में आकाश-पाताल का अंतर है, और फिर मुझे विवाह करना ही नहीं।"

इतना कह नरेन्द्र अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़, नमस्ते कह पूछने लगा, "क्या मैं अब जा सकता हूं?"

डिप्टी रघुवरदयाल और हरवंशलाल अवाक् मुख देखते रह गये। जब उन दोनों ने कुछ नहीं कहा तो वह ड्रायंग-रूम से बाहर निकल अपने कमरे में चला गया।

डिप्टी साहब के मुख पर दुःख और चिन्ता की रेखायें दिखाई देने लगी थीं। अपने स्थान से उठते हुए वे कहने लगे, "मैंने अपने जीवन में पहली भूल की है जो इस छोकरे पर मन रिझाया है। लाला हरवंशलाल, मैं आपको भी सचेत कर देना चाहता हूं कि यह लड़का फांसी के तख्ते पर लटकेगा। ऐसा न हो कि आपको भी विपत्ति में डाल दे।" इतना कह डिप्टी साहब सिर झुकाये, नमस्कार किये बिना ही, कोठी से बाहर निकल गये जैसे कोई प्लेग से दूषित स्थान से भाग खड़ा होता है।

[८]

डिप्टी साहब और अपने चाचा को ड्रायंग-रूम में छोड़, नरेन्द्र अपने कमरे में चला आया। वह चाचा का आश्रय छोड़ने के विषय में विचार करने लगा था। यद्यपि उसके चाचा ने कुछ नहीं कहा था, परन्तु डिप्टी साहब का कहना कि उसे चाचा के आश्रय पर अधिक काल तक नहीं रहना चाहिये, उसके मन लगा था। वह इस घर को छोड़ देने पर विचार करने लगा था। सब से जटिल प्रश्न निर्वाह का था। उसके पास अपना तो एक पैसा भी नहीं था और कार्य, जो उसने अपने सिर पर लिया था, हिमालय पर्वत से भी अधिक भारी था। वह ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों में तेल देने का एक बृहत् प्रयत्न करना चाहता था। मां के ऋण से उऋण होने का यही एक उपाय था।

इस समय उसे अपनी पुस्तक स्मरण हो आई। वह अधूरी पड़ी थी। उसने सोचा कि उसे छपवाने का प्रबन्ध करना चाहिये। यदि कोई

ईमानदार प्रकाशक मिल जायें तो कुछ काल के लिये तो निर्वाह का झगड़ा टल जायेगा। वह अपने कमरे में पहुँच खाट पर लेटा हुआ यह विचार कर रहा था। जब वह इस निर्णय पर पहुँचा, तो खाट से उठ अलमारी में रखी पुस्तक की पांडुलिपि निकाल मेज़ की ओर घूमा। वहाँ कुर्सी पर मनोरमा बैठी थी। वह उसे देख चौंक पड़ा। मनोरमा उसे इस प्रकार विस्मित देख हंस पड़ी। नरेन्द्र ने पूछा, "आप कब आई हैं?"

"आपको इधर देखने का अवकाश ही कहां है? मैं तो आपके यहां आने से पहले ही यहां विराजमान थी। आपने इधर देखा तक नहीं।"

"मैं आज एक उलझन में फंस गया हूं," इतना कहते कहते उसे डिप्टी साहब का कहना, कि मनोरमा उनकी लड़की है और उसके साथ उसके विवाह का प्रस्ताव है, स्मरण हो आया। वह एकदम रुक गया और पुनः खाट पर जाकर बैठ गया। उसने हस्तलिखित पांडुलिपि को खाट पर ही एक ओर रख दिया और मनोरमा को चुपचाप देखने लगा। मनोरमा इस समय तक गम्भीर हो गयी थी। उसने पूछा, "क्या वह बात बताने की नहीं?"

"आप ही को तो बताने की है। मैं तो सोच रहा हूं कि कहां से आरम्भ करूं।"

"आरम्भ से ही आरम्भ कीजिये।" मनोरमा का हृदय धक-धक कर रहा था। वह समझ रही थी कि उसके विवाह का सम्बन्ध इससे अवश्य है। शायद पिता जी ने नौकरी के विषय में बात की होगी। वह गम्भीर हो अपने भाग्य का निर्णय सुनने के लिये अपने को तैयार कर रही थी।

"तो सुनिये," नरेन्द्र ने अपने विचारों को संग्रह करते हुए कहा, "एक फ़कीर था जो अपने भोजन तक के लिये दूसरों पर आश्रित था। वह अमरत्व की खोज में घूम रहा था। घूमता घूमता राज-महल में पहुँच गया। राजा ने समझा कि कोई पहुँचा हुआ 'औलिया' (तत्त्वदर्शी) है। उसने उसे आदर-सत्कार से बैठाया, खिलाया-पिलाया और पूछने लगा, 'भगवन, शान्ति कैसे मिल सकती है?'

"इस प्रश्न से फ़कीर बहुत विस्मित हुआ। वह शान्ति के विषय में कुछ नहीं जानता था। स्वयं उसके मन में अशान्ति भरी पड़ी थी। वह जिस वस्तु की खोज में था मिल नहीं रही थी। इससे उसकी अशान्ति और भी बढ़ रही थी। परन्तु राजा ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया था। अतः उसे भय था कि यदि कुछ अच्छा उत्तर न दिया तो कहीं जूतों से पिटवाया न जाय। परन्तु जो बात उसके मन में सब से ऊपर थी मुख से निकल गयी। उसने कहा, 'राजन्, अशान्ति में रहने से।'

"राजा इस उत्तर से चकाचौंध रह गया और 'वाह! वाह!' बोल उठा। राजा क्या समझा, फ़कीर को स्वयं समझ नहीं आया। राजा के हाव-भाव से उसे यह तो प्रतीत हुआ कि राजा अपने मन में बहुत कुछ समझ गया है। पूर्व इसके कि राजा कुछ और पूछ बैठे फ़कीर उठ खड़ा हुआ और राजा को आशीश दे चलने लगा। राजा ने फ़कीर के पांव पकड़ लिये और पूछा, 'फिर कब दर्शन देंगे?'

'जब आवश्यकता होगी।'

"राजा ने समझा जब राजा को आवश्यकता होगी। फ़कीर का अभिप्राय था, जब उसे फिर भोजन करना होगा। दुर्भाग्य से अथवा सौभाग्य से, फ़कीर को नित्य भूख लग आती थी और राजा को नित्य ही कुछ पूछने की धुन सवार हो जाती थी। परिणाम यह हुआ कि दोनों प्रायः नित्य मिलने लगे। राजा जब कोई प्रश्न पूछता तो फ़कीर जो मन में आता कह देता। राजा उसमें कोई छिपे अर्थ समझ विचार करने लगता और अन्त में फ़कीर के निरर्थक कथन में कोई गूढ़ रहस्य की बात ढूंढ निकालता।

"राजा की रोटियां खाते-खाते फ़कीर अपने उद्देश्य को ही भूल गया। एक दिन वह राजा के महल की ओर आ रहा था कि उसे कुछ लोग एक मनुष्य का शव श्मशान-भूमि की ओर ले जाते दिखाई दिये। उसके मन में, एकाएक, प्रश्न उठा, 'यह क्या? इसको क्या हो गया है?' मन ने उत्तर दिया, 'मर गया है।' फ़कीर को याद आगयी कि वह भी

एक दिन मरेगा। अमरत्व की खोज, जिसमें वह लगा हुआ था, उसे याद आगयी। वह वहीं खड़ा होगया और राजा के महल को अपनी ओर मृत्यु समान देखते देख भयभीत हो अपनी झोंपड़ी को लौट पड़ा।

"राजा ने जब देखा कि फ़कीर नहीं आया तो वह स्वयं उससे मिलने गया। फ़कीर के मस्तिष्क से राजा की रोटियों का नशा उतर चुका था। उसका मन फिर साफ़ हो गया था और वह अपनी खोज को आरम्भ करने की चिन्ता में था। राजा वहां पहुँचा और फ़कीर से पूछने लगा, 'भगवन्, आज आप आये क्यों नहीं ?' फ़कीर का उत्तर था, 'मैं अपना मार्ग भूल गया था। अब भूल का ज्ञान होगया है।'

"राजा ने प्रसन्न हो कहा, 'तो फिर अब चलिये। आपका भोजन परसा रखा है।"

'आपके भोजन ने ही तो मुझे भूल में डाला था।'

'यह कैसे ?'

'मैं तो एक बहुत ही साधारण सा मनुष्य हूं। मैं किसी भी प्रकार की कोई भी विशेषता नहीं रखता। आपकी रोटियां खाते ही मेरे मस्तिष्क में यह बात समा जाती थी कि मैं बहुत ऊंचा आदमी हूं। यथार्थ में, महाराज, मुझे कुछ भी आता-जाता नहीं है। मैं उजड्ड मूर्ख हूं ?' इतना कह फ़कीर राजा को झोंपड़ी में बैठे छोड़ जंगल में भाग गया।

नरेन्द्र यह कथा सुना चुप कर गया। मनोरमा इस कथा का अर्थ लगाने में लीन थी। नरेन्द्र पुनः खाट पर लेट गया और अपनी परिस्थिति पर विचार करने लगा। कई मिनट तक दोनों अपने अपने विचारों में लीन रहे। आखिर मनोरमा ने शान्ति भंग की और कहा, "क्या आप मुझे राजा की भांति बुद्धिमान समझते हैं कि मैं आपकी निरर्थक बातों में भी गूढ़ रहस्य ढूंढ निकालूंगी। मुझे आपकी बात समझ में नहीं आई।"

नरेन्द्र फिर उठकर बैठ गया और कहने लगा, "बात स्पष्ट ही है। मैं इतना योग्य आदमी नहीं हूं जितना कि आप लोग मुझे समझ रहे

है। यदि आप मेरी कीमत साधारण मनुष्यों की सी नहीं लगाते तो मुझे यहां से भाग जाना पड़ेगा।"

"आप लोगों से आपका अभिप्राय किन किन लोगों से है?"

"आपसे, आपके पिता जी से और शायद कुछ अन्य लोगों से भी।"

"दूसरों के विषय में मैं नहीं जानती। मैं तो केवल अपने मन की बात जानती हूं, और वह यह कि आप देवता हैं।"

"और मैं कहता हूं कि मैं देवता नहीं हूं। मैं एक भूखा-नंगा, साधारण मनुष्य हूं। मुझ में सुख, दुख, इच्छा, द्वेष आदि वैसे ही विद्यमान हैं जैसे किसी भी दूसरे मनुष्य में। मैं भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा इत्यादि अवगुणों को रखता हूं।"

"आप अपने विषय में स्वयं ही न्यायकर्ता बन गये हैं। यह तो न्याय-युक्त व्यवहार नहीं। आपके विषय में तो दूसरों की ही सम्मति माननीय होनी चाहिये।"

"मेरे विषय में जितना कुछ मैं जानता हूं वह दूसरा भला क्या जान सकता है?"

"प्रायः लोग अपने विषय में अपने साथ रियायत से व्यवहार करते हैं और आप भी वैसा ही कर रहे हैं।"

"मैं अपने साथ रियायत कर रहा हूं?"

"हां, अपने दुर्गुणों को बढ़ाचढ़ाकर वर्णन कर रहे हैं।"

"यह अपने साथ रियायत हुई? वाह......"

मनोरमा ने बात बीच में ही काटकर कहा, "इसमें सन्देह ही क्या है। आपने अपनी प्रकृति के एक भाग को बढ़ाचढ़ाकर कहा है। यथार्थ बात तो मैं जानती हूं। ये दुर्गुण तो आप में हैं ही नहीं," मनोरमा ने इतना कहकर मुस्करा दिया।

"तो आप समझती हैं कि मैं मन में द्वेष-भाव नहीं रखता?"

"यह द्वेष किसी से प्रगाढ़ प्रेम का प्रतीक है। आप अपनी माता से अत्यन्त प्रेम करते हैं।"

नरेन्द्र मनोरमा को राजनैतिक बातों में प्रायः नित्य परास्त किया करता था, परन्तु आज उसे इस विषय में हार माननी पड़ी। इस पर भी वह अपना आशय प्रकट करने के लिये कहने लगा, "मनोरमा जी, सुनिये। आपके पिता यह समझते थे कि मैं जीवन में सुख, आराम और भोग-विलास का इच्छुक हूं। उन्होंने मुझे इन बातों को प्राप्त करने का मार्ग बताया और उस पर चलने में सहायता देने की इच्छा प्रकट की। मैंने उनके भ्रम को आज दूर कर दिया है। इसी प्रकार आप भी मुझे इस ढंग से समझती हैं कि मैं विवाह कर गृहस्थ-जीवन में रहने की इच्छा रखता हूं; बाल-बच्चे पैदा करूंगा और फिर उनके लालन-पालन में अपनी प्रत्येक शक्ति का व्यय कर, एक दिन पुत्र पौत्रों से घिरा हुआ परलोक-गमन करूंगा। यह कितना मिथ्या अनुमान है, मेरी प्रकृति का और मेरी इच्छाओं का।"

"यह आज आपको हो क्या गया है?"

"मुझे उसी फ़क़ीर की भांति आज ज्ञान का प्रकाश हुआ है, और मैं अपनी इस झोंपड़ी को छोड़ जंगल में विलीन होने की सोच रहा हूं।"

"पर मैं पूछती हूं क्यों?"

"केवल इसलिये कि आप मुझे ग़लत समझ रही हैं।"

"मैं? बिलकुल नहीं। यह आपको भ्रम हो गया है कि आपसे कोई विवाह करने को कह रहा है। भला आप जैसे फक्कड़ से कोई विवाह करेगा ही क्यों? नहीं साहब, मैं आपसे विवाह की याचना करने नहीं आती।"

मनोरमा यह सब इतने आवेश में कह रही थी कि उसका पूर्ण शरीर कांप रहा था। उसका मुख तांबे की भांति लाल हो उठा था और उसकी मोटी मोटी आंखों में आंसू भर आये थे। नरेन्द्र उसकी अवस्था देख समझने लगा था कि उसने उसका अपमान कर दिया है। वह खाट से उठ खड़ा हुआ और प्रसन्नता प्रकट कर बोला, "सत्य कहती हैं आप? आपका नित्य यहां आना मुझे विवाह-जाल में फंसाने के

लिये नहीं था ?"

"नहीं ! नहीं !! नहीं !!!" मनोरमा ने कुर्सी से उठकर एक हाथ की मुट्ठी को दूसरे हाथ पर ठोकते हुए कहा, "मैं हज़ार बार कहती हूं, नहीं।"

"तब ठीक है। मनोरमा जी, मुझे क्षमा करें। मैंने आपके यहां आने का आशय ग़लत समझा था। परन्तु आपके पिता जी ने जो बातें मुझसे की हैं उनसे ही मैं इस परिणाम पर पहुंचा था। वे चाहते थे कि मैं सरकारी नौकरी के लिये प्रार्थना-पत्र दे दूं। वे मुझे जेल का दारोगा बन, हज़ारों-लाखों घूंस लेकर धनी बना देखना चाहते थे, ताकि मैं तुम से विवाह कर तुम्हें और तुम्हारी सन्तान को महलों में रख सकूं, आभूषणों और मखमल तथा अतलस के कपड़ों से लाद सकूं। फिर तुम्हारे लड़के-वालों के विवाह किसी ऐसे ही धनी लोगों की सन्तान से कर सकूं। कितना निरर्थक, निष्प्रयोजन और फीका जीवन व्यतीत करने को वे कहते थे। और यह सब कुछ जानती हो क्या दाम देकर ? जेल का दारोगा बनकर। जेल जिसमें देश-भक्त, जाति का दिन-रात हित-चिन्तन करने वाले, बिना मुकदमा किये या कभी झूठमूठ मुकदमे का बहाना कर ठूस दिये जाते हैं। ऐसे किसी जेल का दारोगा बन सदा इन लोगों पर दृष्टि रखूं कि कहीं ये स्वतंत्र हो पुनः देश, जाति और समाज का भला न कर सकें।

"यह क्या मेरे साथ, मेरी बुद्धि का और मेरे विचारों का मज़ाक नहीं था। इससे मुझे भ्रम हो गया था कि शायद आप भी मेरी हंसी उड़ा रही हैं।"

मनोरमा जो बहुत आवेश में थी नरेन्द्र के मनोद्‌गारों को सुन लज्जा अनुभव करने लगी। उसे नरेन्द्र जैसे आदमी को सरकारी नौकरी के लिये कहना ही उसका भारी अपमान प्रतीत होने लगा। उसे अपने पर भी लज्जा आई क्योंकि नरेन्द्र को उसने डांटकर कहा था कि वह उस से विवाह करने का विचार नहीं रखती। यथार्थ बात तो यह थी कि जब

से उसने उसे देखा था उससे प्रेम करने लगी थी और उससे विवाह करने का केवल विचार ही नहीं प्रत्युत उत्कट इच्छा रखती थी और अब उसके विचारों को सुन वह दूर नहीं प्रत्युत उसके समीप ही आई थी। 'नहीं! नहीं!' तो केवल उत्तर में कहने की बात थी। इससे उसे अपने कहने पर शोक होने लगा और उसके मुख का रंग राख की भांति फीका पड़ गया।

नरेन्द्र ने जब उसके मुख की विवर्णता को देखा तो पूछने लगा, "मनोरमा, क्यों क्या बात है। तबीयत तो ठीक है?"

मनोरमा अपने मन में अपने को बहुत छोटा मानने लगी थी। उस के मन में इच्छा हो रही थी कि कहीं एकान्त में बैठकर खूब रोये। वह बिना नरेन्द्र के प्रश्न का उत्तर दिये उसके कमरे से निकल आई और घर को चल पड़ी।

[६]

द्वितीय विश्वव्यापी युद्ध को जन्म देने में अंग्रेजों का भी भारी हाथ था। रूस से भिड़ जाने के लिए हिटलर और नाज़ी पार्टी को बल पकड़ने का अवसर और सहायता देने में अंग्रेजों ने कोई कसर उठा नहीं रखी थी। जो दूसरों के लिए गढ़हा खोदता है वह स्वयं उसमें गिरता है, यह कहावत अंग्रेजों पर सर्वथा लागू हुई। जर्मनी और रूस में युद्ध होने के स्थान पर जर्मन और अंग्रेज़ों में युद्ध हो गया।

हिटलर ने एक भूल की। १६४० में इंगलैंड पर आक्रमण करने के बजाय रूस पर कर दिया और फिर १६४१ में जापान ने अमेरिका के 'पर्ल हार्बर' पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार जर्मनी, जापान, और इटली के विरुद्ध इंगलैंड के सहायक रूस और अमेरिका भी हो गये। फ्रांस तो इस समय तक नाज़ी फौजों के बूटों के नीचे रौंदा जा चुका था।

जापान का आक्रमण आरम्भ में तो सफल रहा। पहले ही हल्ले में जापान की सेना का अधिकार इंडोचाइना, सिंगापुर, थाईलैंड, मलाया,

बर्मा इत्यादि देशों पर हो गया और १९४२ के अप्रैल मास तक जापानी फ़ौजें आसाम की सीमा पर आ पहुंची।

अंग्रेजों की इस हार ने भारतवर्ष में विशेष परिस्थिति उत्पन्न कर दी। हिन्दुस्तान की सरकार घबरा उठी। लोगों में भय समा गया। हिन्दुस्तान के लोग छोटे-बड़े सब यह समझने लगे कि जापान हिन्दुस्तान पर आक्रमण करेगा। हिन्दुस्तान में न तो पर्याप्त फ़ौज थी और न ही फ़ौज़ी सामान। जापान की विजय निश्चित सी प्रतीत होने लगी। जहां जन-साधारण तो 'किंकर्तव्यविमूढ़' की भांति अन्यमनस्क से हो रहे थे, वहां धनी-मानी लोग अपने जान व माल को लेकर नगरों से देहातों में जाने लगे थे। देश के बुद्धिमान लोग जापानियों के हाथ से देश की रक्षा करने के उपाय सोचने लगे।

भारतीय कांग्रेस के नेता, इससे पूर्व भारत सरकार से रुष्ट हो, प्रान्तीय कौंसिलों से बाहर आचुके थे। जापान के आक्रमण और सफलता से भयभीत ये नेता लोग भी अपने ढंग से भारत-रक्षा के उपाय सोचने लगे। वे इस परिणाम पर पहुंचे कि देश के लोगों की सहायता के बिना देश की रक्षा असम्भव है। इससे देश के प्रतिनिधियों के हाथ राज्य की बागडोर सौंप दी जाय। कांग्रेस के मनोनीत नेता महात्मा गान्धी ने यह मांग उपस्थित की कि भारत में स्वदेशी राज्य स्थापित हो जाय। इस मांग को 'क्विट इंडिया' शब्दों में घोषित किया। भारत-सरकार ने महात्मा जी की इस मांग को स्वीकार नहीं किया। इस पर महात्मा जी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन चलाने की धमकी दी।

सब से विचित्र बात तो यह थी कि महात्मा गान्धी और कांग्रेस ने ऐसे आन्दोलन के लिये तैयारी नहीं की थी। ऐसे आन्दोलन की रूप-रेखा वर्षों पहले बन जानी चाहिये थी और साथ ही उसके लिये तैयारी होनी चाहिये थी। यहां तो इस आन्दोलन का विचार महात्मा गान्धी के मन में आया और बिना विचार किये कि इसमें लोगों को क्या करना होगा और बिना जाने कि लोग उसको करने के लिये तैयार हैं या नहीं,

दुनिया भर में गुल-गपाड़ा कर दिया गया।

नरेन्द्र, जो कई वर्षों से भारत में क्रान्ति के विषय में विचार कर रहा था, एकाएक महात्मा गान्धी को एक क्रान्तिकारी आन्दोलन खड़ा करते देख चकित रह गया। वह देखता था कि प्रत्यक्ष में तो इस क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिये कोई तैयारी नहीं है। महात्मा जी का निर्माण-कार्य किसी भी प्रकार से क्रान्ति करने की तैयारी नहीं कहा जा सकता था।

नरेन्द्र राष्ट्रीय संस्था को बिना तैयारी के देशव्यापी आन्दोलन खड़ा करते देख बेचैन हो उठा था। उसके मन में यह बात पक्की जमती जाती थी कि उसकी पुस्तक, 'सफल क्रान्तियाँ' शीघ्र छपकर देश के नेताओं के हाथ में चली जानी चाहिये, जिससे वे समझ सकें कि आन्दोलन चलाने से पूर्व किस प्रकार की तैयारी की आवश्यकता है। इससे उसे अपनी पुस्तक समाप्त करने और छपाने की चिन्ता और भी बढ़ गयी।

मनोरमा के नाराज़ होकर चले जाने से उसे असन्तोष ही हुआ था। वास्तव में मनोरमा ने उसके हृदय में एक स्थान बना लिया था और यदि डिप्टी साहब नौकरी का प्रश्न न उठाकर केवल विवाह की बात करते तो उसे अरुचिकर न होती। उसे मनोरमा के रूठकर चले जाने से दुख हुआ था, परन्तु देश की परिस्थिति दिन प्रति दिन बदलती देख उसे अपनी पुस्तक की ओर अधिक और अधिक ध्यान देना पड़ा, जिससे वह अपने निजी सुख-दुख की बातों को भूल गया। वह मन में सोचता था कि जब तक क्रान्तिकारी नेता महात्मा गान्धी से अधिक प्रभावशाली नहीं बन जाता तब तक देश को काल्पनिक भलमनसाहत के आडम्बर से बाहर करना कठिन है। देश में शुद्ध राजनैतिक प्रवृत्ति का प्रसार करना आवश्यक है। इसलिये विवाह के विषय में सोचने को उसे अभी अवकाश न था।

[१०]

सआदतहुसैन और वीणा का सम्बन्ध हरवंशलाल के परिवार से अधिक गहरा ही होता गया। वीणा के कोई सन्तान नहीं थी।

हरवंशलाल के बच्चों से उसे मोह-ममता हो गयी थी और प्रायः वह अपने पति के साथ वहां आया-जाया करती थी। इससे नरेन्द्र का इन लोगों के सम्पर्क में आना स्वाभाविक ही था। सआदतहुसैन अभी भी राष्ट्रीय सभा के मुख्य कार्यकर्ताओं में था और वीणा भी उसके साथ साथ राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेती रहती थी। सन १६३० और १६३२ में वह भी जेल-यात्रा कर चुकी थी। इससे लोगों की दृष्टि में उसकी मान-प्रतिष्ठा भी बढ़ रही थी।

महात्मा जी ने 'भारत छोड़ो' का विचार जब अपने साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' में छापा तो कांग्रेस-क्षेत्र में बिजली के समान उत्तेजना दौड़ गयी थी और सआदतहुसैन तथा उसकी स्त्री भी इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। सन १६३०–३२ के आन्दोलन के समय हरवंशलाल ने इन को पर्याप्त आर्थिक सहायता दी थी और इस समय भी, यदि आन्दोलन खड़ा हुआ तो, वे हरवंशलाल से भारी आशा रखते थे। अतः जब वे हरवंशलाल की कोठी में खाने पर आये हुए थे तो इस आने वाले आन्दोलन की चर्चा करने लगे। नरेन्द्र भी खाने पर विद्यमान था। वीणा ने महात्मा जी की बात कहते हुए कहा, "महात्मा जी अब फिर युद्ध करने के विचार में हैं।"

सआदतहुसैन ने सिर हिलाते हुए कहा, "इस बार सरकार को पता चलेगा।"

वीणा का कहना था, "मैं समझती हूं कि युद्ध की अवस्था होने के कारण सरकार को देश को मर्दन करने का अच्छा अवसर मिल जायेगा।"

"तो क्या ? इससे राष्ट्रीय भावना तो और भी जाग्रत हो उठेगी और अंत में सरकार को भारत छोड़ना ही पड़ेगा।"

नरेन्द्र ने जिज्ञासु की भावना में पूछा, "आप तो कांग्रेस के मुख्य लोगों में हैं। आपको तो विदित होगा कि युद्ध के समय किसी आन्दोलन को चलाने के लिये कितनी तैयारी की आवश्यकता है। कांग्रेस के पास

कितने स्वयं सेवक हैं ?"

"स्वयं सेवकों का क्या करना है। यहां किसी जलसे व जुलूस का प्रबन्ध थोड़े ही करना है। मैं तो समझता हूं कि देश में असन्तोष फैला हुआ है। केवल संकेत करने की देरी है और देश के एक कोने से दूसरे कोने तक आग भड़क उठेगी।"

"आप लोगों पर बहुत आशा लगाये हुए हैं, परन्तु क्या लोगों को आप बता चुके हैं कि उन्हें संकेत पाने पर क्या करना चाहिये ?"

"यह तो महात्मा जी अपने पिछले तीन आन्दोलनों में बता चुके हैं कि कानून का मानना बन्द कर दें।"

"आपका अभिप्राय सरकारी कानूनों से है न ? मैं पूछता हूं कि सरकारी कानून के स्थान पर कौन सा कानून माना जायेगा अथवा सरकारी अफसर के स्थान पर किस की आज्ञा मानी जायेगी ?"

"डिक्टेटर तो मुकर्रिर किये ही जायेंगे, परन्तु अभी उनका समय नहीं आया। महात्मा जी अभी लोगों में 'भारत छोड़ो' की भावना का अर्थ स्पष्ट करेंगे। पश्चात कांग्रेस वर्किंग कमेटी में इस पर विचार-विनिमय होगा, पीछे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में इस पर प्रस्ताव होगा। महात्मा जी वाइसराय को एक चिट्ठी लिखेंगे जिसमें उनसे वे कहेंगे कि 'भारत छोड़ दो'। जब वाइसराय अर्थात सरकार नहीं मानेगी तब फिर विचार किया जायेगा कि आन्दोलन का क्या रूप हो।"

"क्या आप समझते हैं," नरेन्द्र कुछ उद्विग्न हो उठा था, "कि सरकार भी महात्मा गान्धी की भांति अपनी भूलों का सुधार नहीं करेगी ? आपको क्या विदित नहीं कि सन १९३२ का आन्दोलन कैसे कुछ ही दिनों में मिटा दिया गया था। इस बार तो उतना भी अवसर नहीं मिलेगा। यदि कुछ करना है तो हल्ला करने से पूर्व कोई योजना बना लेना क्या ठीक नहीं ?"

"देखो मिस्टर नरेन्द्र, पिछले सप्ताह मैं वर्धा में था और ठीक यही प्रश्न मैंने महात्मा जी से पूछा था। उनका उत्तर था, 'सत्य और

अहिंसा पर विश्वास रखने वाले के लिये लम्बी-चौड़ी योजनाओं की आवश्यकता नहीं। योजना तो वे लोग बनाते हैं जिन्हें अपने पर और परमात्मा के न्याय पर विश्वास नहीं होता। मैं तो शुद्ध मन और भावना से अपने को परमात्मा के अर्पण करने के लिये सदैव तैयार हूं। मुझे इस में बहुत कुछ सोच-विचार करने की आवश्यकता नहीं है।'

"इतना सुनकर महात्मा जी में और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती। अब तो अपने आपका होम करने की बात है।"

नरेन्द्र इसमें महात्मा जी की शुद्ध भावना को तो मानता था। यदि महात्मा जी का अपना निजी प्रश्न अथवा एक-दो व्यक्तियों की निजी बात होती तब तो कुछ बात नहीं थी, परन्तु पूर्ण देश की बात में एक-आध व्यक्ति की शुद्धता और सचाई क्या कर सकेगी? महात्मा जी जैसी श्रद्धा और ईश्वर में निष्ठा कितनों में है, यह वह भली भांति जानता था। फिर जिन लोगों से 'भारत छोड़ो' कहना है वे कितने चतुर, स्वार्थी और राजनीतिज्ञ हैं, यह बात भी छिपी नहीं थी। वे 'भारत छोड़ो' के आन्दोलन का किस प्रकार विरोध करेंगे यह अनुमान करना कठिन नहीं था। सआदतहुसैन के कहने का केवल एक ही शब्द में उत्तर नरेन्द्र ने दिया, "सब जग महात्मा नहीं है।"

जब भोजन हो चुका तो हरवंशलाल और सआदतहुसैन उठकर दूसरे कमरे में चले गये। कमला, हरवंशलाल की लड़की, वीणा के समीप बैठी थी। कहने लगी, "मौसी, तो क्या अब सब लोग फिर जेल में जायेंगे?"

वीणा ने हंसते हुए कहा, "मैं तो जाना नहीं चाहती, पर क्या करें महात्मा जी का युद्ध का ढंग ही निराला है। वे कहते हैं कि किसी भी बात में लुकाव-छुपाव नहीं होना चाहिये। वे छुपकर आन्दोलन (underground movement) को पसन्द नहीं करते। मेरा तो मन कहता है कि शोर मचाने के स्थान पर चुपचाप ऐसा संगठन करना चाहिये ताकि छापा डालकर राज्य अपने हाथ में कर लें।"

नरेन्द्र, जो अभी तक वहां बैठा था, यह सुनकर भड़क उठा और बोला," तो आप ऐसा संगठन क्यों नहीं करतीं ?"

"कहने और करने में अन्तर है, नरेन्द्र ! मुझ में इतना बल कहां है ? जानते नहीं हो कि सुभाष बोस का, ज्यों ही महात्मा जी से मतभेद हुआ, क्या परिणाम हुआ था । बोस बाबू को कांग्रेस के प्रधान-पद से त्याग-पत्र देना पड़ा था ।"

"बोस बाबू अब जर्मनी में हैं और उसकी ओर से प्रचार-कार्य कर रहे हैं ।"

"यहां हम लोग उनसे मतभेद रखते हैं। हम समझते हैं कि किसी विदेशी राज्य-सत्ता की सहायता से यहां स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता ।"

"यह तो ठीक है," नरेन्द्र का कहना था, "परन्तु एक विदेशी सत्ता को ढीला करने के लिये किसी दूसरे विदेशी राज्य की सहायता क्यों नहीं ले सकते ? ब्रिटिश साम्राज्य को शक्तिहीन करना एक बात है और हिन्दुस्तान में स्वराज्य स्थापित करना दूसरी । बोस बाबू एक कार्य कर रहे हैं, दूसरा कार्य हमें यहां भारतवर्ष के अन्दर करना चाहिये । मुझे दुख तो इस बात का है कि स्वराज्य स्थापित करने के लिये हम भारतवर्ष के भीतर जो यत्न कर रहे हैं वह न तो ठीक मार्ग पर है न ही ठीक मात्रा में ।"

वीणा ने बताया कि कांग्रेस-क्षेत्र में भी ऐसे लोग हैं जो महात्मा जी से सोलह आने सहमत नहीं, इस पर भी उनकी सुनवाई नहीं होती और उन्हें मस्तक नत करना पड़ता है ।

इस वार्तालाप से नरेन्द्र की धारणा अपने कार्य में कुछ कम नहीं हुई, प्रत्युत वह सोचता था कि कांग्रेस-क्षेत्र में रहकर तो बात चल नहीं सकेगी । जो लोग कांग्रेस-क्षेत्र में काम करते थे उनमें महात्मा गान्धी के लिये इतनी श्रद्धा-भक्ति है कि वे किसी दूसरी बात को सुन भी नहीं सकते । इससे वह यह सोचता था कि कांग्रेस से पृथक, परन्तु उससे

अधिक बलशाली संस्था बनाने की आवश्यकता है। कांग्रेस का विरोध करने से काम नहीं चलेगा। ऐसा करने से हिन्दू महासभा अपनी प्रतिष्ठा खो बैठी है। आदर्श और भावनायें वही होनी चाहियें परन्तु कार्यक्रम भिन्न होना चाहिये।

[११]

उस दिन से मनोरमा का नरेन्द्र से मिलने के लिए आना बन्द कर दिया गया था। डिप्टी साहब ने घर पहुंचते ही आज्ञा दे दी, "देखो मनोरमा, नरेन्द्र अच्छा आदमी नहीं है। उससे मेलजोल की मैं स्वीकृति नहीं दे सकता।"

मनोरमा की इच्छा थी कि एक बार नरेन्द्र से मिलकर अपने मन के भावों की सफाई उपस्थित कर दे। इससे उसने पूछा, "क्यों?"

"वह विवाह करेगा नहीं, इसलिये उसके पास जाकर अपमान के अतिरिक्त और मिलेगा ही क्या? मैं महकमा-पुलिस में एक बड़ा अफसर हूं और नहीं चाहता कि मेरी लड़की किसी ऐसे से सम्पर्क रखे जिसके सिर पर फांसी की रस्सी लटक रही है।"

नरेन्द्र ने मनोरमा के न आने को अनुभव नहीं किया। उसे अपनी पुस्तक लिखने से अवकाश ही नहीं था। सोलह-सत्रह घंटे नित्य लिखता और पढ़ता था। जब पुस्तक लिखी गयी तो फिर इसके छपवाने की चिन्ता होने लगी।

डिप्टी साहब ने हरवंशलाल को चेतावनी दे दी थी कि नरेन्द्र का उसके घर रहना ठीक नहीं है, परन्तु हरवंशलाल ने उसे घर से नहीं निकाला। डिप्टी साहब एक दिन लाला जी से मिले तो पूछने लगे, "नरेन्द्र चला गया है क्या?"

"नहीं तो।"

"तो बहुत बुरा होगा। वह लड़का क्रान्तिकारी है। उसके विचार ऐसे हैं कि किसी समय भी उसके पकड़े जाने की सम्भावना है और उस समय आपको भी कष्ट होगा।"

हरवंशलाल तो शायद नरेन्द्र को घर से निकाल ही देता पर उस की स्त्री और उसका लड़का विजय जो इस समय बी० ए० में पढ़ता था इस बात का विरोध करते थे। हरवंशलाल की स्त्री सरकारी कानून से अधिक लोक-लाज से डरती थी। वह कहती थी, 'कमला का विवाह करना है या नहीं। लोग क्या कहेंगे कि लड़की के माता-पिता इतने कमीने हैं कि ग़रीब भाई के लड़के को रोटी तक नहीं खिला सके।' विजय का विरोध दूसरे कारण से था। उसने पिता से कहा था, 'पिता जी, अब समय बदल गया है। पुलिस-अफसरों की बातें इस दिल्ली जैसे शहर में कुछ कीमत नहीं रखतीं। नरेन्द्र भैया यदि विवाह करना नहीं चाहते तो डिप्टी साहब उसे घर से बाहर निकाल कर कैसे मना लेंगे? हमसे तो यह धमकी सही नहीं जा सकती। आखिर नरेन्द्र कर ही क्या रहा है जो आपत्तिजनक है।'

वास्तविक बात यह थी कि मनोरमा डिप्टी साहब से रूठी हुई थी और डिप्टी साहब का अनुमान था कि यदि नरेन्द्र दिल्ली से बाहर चला जाये तो मनोरमा की नाराज़गी मिट जायेगी। तब वे उसे कमला से मिलने के लिये उसके घर भेज सकेंगे। नरेन्द्र के हरवंशलाल की कोठी में रहते मनोरमा का वहां जाना वे उचित नहीं मानते थे।

नरेन्द्र अपने चाचा के घर में ही ठहरा था। मनोरमा बहुत उदास रहती थी। इस अवसर में डिप्टी साहब ने मनोरमा के लिये एक सम्बन्ध ढूंढ निकाला। महकमा-पुलिस में एक होनहार युवक डिप्टी साहब को इसके लिये मिल गया।

इन्सपेक्टर नन्दलाल ज़िला जालन्धर पंजाब का रहने वाला था। लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज से बी० ए० पास कर पुलिस में भरती हुआ था और दो-चार राजनैतिक जुलूसों पर बेदर्दी से लाठी चलवाने के उपलक्ष में इन्सपेक्टर बना दिया गया था। उसकी बदली देहली में हुई तो डिप्टी रघुवरदयाल की दृष्टि उस पर गई। एक दिन कन्ट्रोल से अधिक गेहूं रखने वाले देहली के एक साहूकार को पकड़वाकर नन्दलाल

अफसरों की दृष्टि में प्रतिष्ठित हो गया था। उस साहूकार ने मुकदमे से छूटने के लिये पांच हज़ार रुपये रिश्वत दी थी और नन्दलाल ने वह घूस का धन अफसरों में बांट दिया था। इससे उसकी चतुराई की चर्चा दफ्तर में चल पड़ी थी। डिप्टी साहब से उसकी मुलाकात हुई तो उन्हें पता चला कि नन्दलाल की पहली बीवी का देहान्त हो गया है। इससे उन्हें मनोरमा की याद आगई। डिप्टी साहब ने बात की और नन्दलाल ने स्वीकार कर ली।

मनोरमा को जब बताया गया तो उसने नाक चढ़ाकर कहा, "मुझे विवाह नहीं करना।"

डिप्टी साहब के मन में नरेन्द्र को शहर से भगा देने या उसे किसी मामले में फंसा कैद करा देने की बात और आवश्यक हो गई।

नरेन्द्र अब अपने विचारों का प्रचार करने के लिये सभा-सोसाय-टियों में जाने लगा था। कांग्रेस का प्लेटफार्म तो उसके लिये था ही नहीं। कम्यूनिस्ट पार्टी जर्मनी और रूस में युद्ध छिड़जाने से अंग्रेज़ों की मित्र बन गयी थी, और सरकार की ओर से एक कानून के अनुकूल संस्था मान ली गयी थी। कम्यूनिस्ट लोग कांग्रेस-नीति का विरोध करते थे इससे नरेन्द्र को इनके प्लेटफार्म पर कांग्रेस के विरुद्ध कहने की स्वीकृति मिल जाती थी, परन्तु नरेन्द्र का कम्यूनिस्टों से मेल-मिलाप अधिक काल तक नहीं चल सका। कम्यूनिस्ट यह चाहते थे कि रूस की विजय हो जाय चाहे भारतवर्ष के हित की बलि ही चढ़ानी पड़े। नरेन्द्र के मस्तिष्क में यह बात नहीं थी। वह युद्ध के अवसर को भारत में स्वराज्य स्थापित करने के लिये प्रयोग करना चाहता था। कम्यूनिस्ट पार्टी समझती थी कि रूस में प्रचलित विचार-धारा की जीत हो जानी चाहिये। नरेन्द्र कहता था कि इस समय भारतवर्ष को अंग्रेज़ों से स्वतंत्र होना चाहिये। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतवर्ष स्वयं निर्णय करेगा कि कैसी राज्य-पद्धति उसे चाहिये। इन्हीं बातों पर एक दिन वाद-विवाद हो गया। पहाड़गंज में एक सज्जन के मकान पर तीस-पैंतीस के लगभग कम्यूनिस्ट एकत्रित थे और नरेन्द्र

उस दिन का वक्ता था। नरेन्द्र ने अपने भाषण में कहा था, "भारत वर्ष में स्वराज्य-स्थापनार्थ जो नीति कांग्रेस अपना रही है वह हमें ध्येय तक ले जाने में सबल नहीं है। हमें इसके लिये एक संगठित दल बनाना चाहिये।" इस संगठन का रूप दिखाते हुए उसने बताया कि छोटे-छोटे दल होने चाहियें। इन दलों में बीस से अधिक सदस्य नहीं चाहियें। इनका एक 'दल-नेता' हो और बीस दलों के नेता परस्पर मिलकर एक गुट्ट बनायें। एक नगर के घट-नेता नगर-समिति बनायें। नगरों से जिलों की समितियां और उनसे प्रान्त का संगठन और देश की पार्टी तैयार की जाये। सदस्यों का परस्पर सम्पर्क दल के भीतर ही रहे। एक दल के सदस्य दूसरे दल के सदस्यों तथा दल के नेता को न जान सकें। इसी प्रकार घटों के सदस्य नगर-समिति के और समिति के सदस्य जिलों के, इसी प्रकार जिलों के सदस्य प्रान्तीय और देश की पार्टी के सदस्यों से परिचित न हों। प्रत्येक नेता यह कसम खाये कि वह एक समिति की बात दूसरी समिति अथवा घट व दल में नहीं करेगा। इस प्रकार एक पार्टी का संगठन किया जाये। यह संगठन हो जाने पर एक दिन विप्लव का बिगुल बजा दिया जाये। हमें तार और डाक का अपना प्रबन्ध करना चाहिये ताकि विप्लव के पूर्व और बीच में हमारे संगठन को कोई भी तोड़ न सके। नरेन्द्र की योजना कम्यूनिस्टों को भी पसन्द थी, परन्तु वे चाहते थे कि युद्ध के समय में कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिये जिससे जर्मनी अथवा जापान की जीत का अवसर अधिक हो जाये। इससे एक उपस्थित सज्जन ने पूछा, "आप समाजवादी हैं?"

"हां, मैं समाजवाद के सिद्धान्त को ठीक समझता हूं।"

"आप जानते हैं कि रूस में इस सिद्धान्त के आधार पर राज्य चल रहा है।"

"मुझे वहां की बात भली भांति विदित नहीं है। जो कुछ पुस्तकों में पढ़ा है वह मेरे विचारों से ठीक मेल नहीं खाता। इस पर भी मैं उस के विरुद्ध कुछ नहीं कह सकता।"

"आपको अपने कारखानों में यह भी तो बताना चाहिये कि भारत में समाजवाद से ही सुख और शान्ति स्थापित होगी।"

"मैं इसको मानता हूं, परन्तु इस समय मैं हिन्दुस्तान के धनी लोगों से झगड़ा खड़ाकर अपनी शक्ति को बिखेर देना नहीं चाहता। मेरा मुख्य ध्येय इस समय हिन्दुस्तान को अंग्रेज़ों के पंजे से मुक्त करना है।"

"वाह! इन गरीबों का रक्त-शोषण करनेवालों से कैसे सहयोग हो सकता है?"

"वैसे ही जैसे अब रूसियों ने अंग्रेज़ों से सहयोग कर रखा है।"

"तो आप क्या चाहते हैं?"

"मैं चाहता हूं कि भारत में अभी श्रेणी-संघर्ष आरम्भ न किया जाय। पहले सब को मिलकर स्वराज्य स्थापित कर लेना चाहिये, पश्चात् हम स्वतंत्र रूप से विचार करेंगे कि कौन प्रणाली हमारे लिये हितकर होगी।"

"इस प्रकार हम रूस की सहानुभूति खो बैठेंगे।"

"मुझे रूस की सहानुभूति से मतलब नहीं। मुझे तो हिन्दुस्तान को अंग्रेज़ों से आज़ाद करना है।"

वादविवाद बढ़ गया और कठिनाई से नरेन्द्र वहां से जान छुड़ा कर आया।

नरेन्द्र के इन जलसों में सम्मिलित होने के समाचार पुलिस में पहुंचते रहते थे। पुलिस को सरकार से सूचना थी कि कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध कोई कार्यवाही न हो। इससे नरेन्द्र के विरुद्ध भी कोई कार्य-वाही नहीं हो सकी, परन्तु जब डिप्टी साहब ने देखा कि मनोरमा नन्दलाल से विवाह करने पर राज़ी नहीं होती तो उसने नन्दलाल को कहा, "यह नरेन्द्र कम्यूनिस्ट नहीं है। यह कांग्रेस 'फारवर्ड ब्लाक' का आदमी है। इसे छोड़ना नहीं चाहिये।"

नन्दलाल इस संकेत को समझता था। उसने यह समझ लिया कि डिप्टी साहब किसी कारण से नरेन्द्र को जेल का महमान बनाने का

विचार रखते हैं। इस कारण उसने नरेन्द्र का रिकार्ड इकट्ठा करवाना आरम्भ कर दिया।

दूसरी ओर डिप्टी साहब ने मनोरमा के कान भरने आरम्भ कर दिये। डिप्टी साहब मनोरमा के सम्मुख अपनी स्त्री से नरेन्द्र के विषय में झूठी-सच्ची बातें बताया करते थे। एक दिन उन्होंने मुख लम्बा कर कहा, "ईश्वर का धन्यवाद है कि नरेन्द्र से सम्बन्ध नहीं हो सका। आज दफ्तर में रिपोर्ट आई है कि नरेन्द्र कम्यूनिस्ट पार्टी में सम्मिलित है। कम्यूनिस्टों के आचार-विचार सभ्य समाज के से नहीं हैं। उनमें विवाह को कोई महत्ता नहीं दी जाती। कम्यूनिस्ट पार्टी में युवक-युवतियां दोनों सदस्य हैं और परस्पर बिना किसी प्रकार के विवाह-संस्कार के भोग-विलास करते हैं। उनमें एक रात भर सम्बन्ध रहने को राजनैतिक विवाह मानते हैं। कहीं मनोरमा का नरेन्द्र से विवाह हो जाता तो ईश्वर जाने बेचारी की क्या दुर्गति होती। इसके अतिरिक्त नरेन्द्र का सम्बन्ध एक बृजबिहारी की बहिन से है इसका पता चला है।" इसके पश्चात् डिप्टी साहब सिर हिलाते हुए अपने कमरे में चले गये।

मनोरमा के मन पर इन बातों का धीरे धीरे प्रभाव होता जाता था और उसका मन नरेन्द्र से उचाट होने लगा था।

[१२]

लाला बनारसीदास देहली में एक बड़े ठेकेदार थे। बारहखंभा रोड पर एक विशाल दो मंजली कोठी में रहते थे। इतनी बड़ी कोठी होने पर भी उसमें रहने वाले केवल तीन व्यक्ति थे। लाला साहब स्वयं, उनका पुत्र इन्द्रजीत और उनकी विधवा बहिन लीलावती। लाला जी की अपनी स्त्री का देहान्त हो चुका था। ये गुजरांवाला, पंजाब के रहने वाले थे और सन १६२० से, जब नई देहली अभी बननी आरम्भ हुई थी, यहां आकर बसे थे। अतुल धन के मालिक होते हुए भी लड़के को अति कठोर जीवन व्यतीत करने पर बाध्य कर रहे थे।

लड़के ने सन पैंतीस में मैट्रिक किया था और हिन्दू कॉलेज में

दाखिल होते समय उसने पिता से कहा था, "पिता जी, कॉलिज बहुत दूर है। यदि एक छोटी सी मोटर ले दें तो पढ़ाई में बहुत सुभीता हो जायगा।"

पिता ने घूरकर इन्द्रजीत के मुख पर देखते हुए कहा, "मोटर के लिए दाम कहां से आवेगा?"

"दाम?" इन्द्रजीत ने विस्मय में पूछा। "दाम हमारे पास नहीं है क्या? मैं तो समझता हूं कि आपका बैंक में बीस लाख जमा है।"

पिता ने उसी भाव में पूछा, "यह तुमसे किसने कहा है? बैंक में रुपया और ये कोठियां मेरी नहीं हैं। शायद तुम्हारी बूआ ने तुम्हें बताया है। वह नहीं जानती कि इस धन-दौलत का मालिक मैं नहीं हूं। मैं तो मालिक के कारोबार की देख-भाल के लिए केवल मुन्शी मात्र हूं, और तुम एक मुन्शी के लड़के हो।"

इन्द्रजीत ने पिता को कंजूस समझ लिया। उसने अभी तक किसी मालिक को वहां देखा नहीं था। उसने उठते हुए कहा, "आप नहीं ले देना चाहते तो आपकी इच्छा, परन्तु मुझे एक मुन्शी का लड़का तो न कहिये।"

"ओह!" बनारसीदास मुस्कराकर बोला, "मुन्शी का लड़का कहलाये जाने से दुख हुआ है? परन्तु जानते हो, इन्द्र, जो मालिक है वह अपने को मज़दूर कहता है तो उसकी सन्तान को अपने को एक मजदूर की सन्तान कहलाने में लज्जा नहीं माननी चाहिये।"

इन्द्रजीत के लिये यह पहेली थी। वह कुछ नहीं समझा और कमरे से बाहर चला गया। इन्द्रजीत ने सन १६४१ में एम० ए० पास कर लिया। वह अपनी श्रेणी में प्रथम रहा था। वह अपने परीक्षा पास कर लेने का समाचार सुनाने के लिये प्रसन्न-वदन पिता के पास पहुंचा और बोला, "पिता जी; मैं पास होगया हूं।"

"फिर?"

इस फिर ने इन्द्रजीत को चुप करा दिया। ला० बनारसीदास प्रश्न-

भरी दृष्टि से इन्द्रजीत के मुख की ओर देखते रहे। इन्द्रजीत इस दृष्टि का अर्थ नहीं समझा और पूछने लगा, "आपको इससे प्रसन्नता नहीं हुई, पिताजी? मैं श्रेणी में अव्वल रहा हूं।"

"सो तो ठीक है," पिता ने उत्तर दिया, "परन्तु यह तो आरम्भ है, अन्त नहीं। बताओ, तुम क्या करना चाहते हो?"

"मैं नहीं जानता।"

"इसी से तो कहता हूं कि एम० ए० पास करने का कुछ भी अर्थ नहीं। इतनी शिक्षा ने तो अभी तुम्हें इस योग्य भी नहीं बनाया कि तुम अपने जीवन-मार्ग को कुछ दूर तक भी देख सको। अभी तुम्हें और शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये।"

"कहां? क्या आप मुझे विदेश भेजेंगे?"

"विदेश भेजने के लिये मेरे पास रुपया नहीं है।"

इन्द्रजीत 'मेरे पास रुपया नहीं' सुनते सुनते थक गया था। उसे भली भांति विदित था कि उसके पिता की सम्पत्ति, चल-अचल मिलाकर, एक करोड़ रुपये से कम नहीं। आज उसने साहस कर कह ही दिया, "पिता जी, अब तो मैं विद्यार्थी नहीं हूं। आयु में भी चौबीस वर्ष का हो चुका हूं और बेसमझ बालक नहीं कहा जा सकता। क्या अब भी मैं नहीं जान सकता कि मेरे पिता कितने धनी हैं और मुझे अपने कारोबार को कितनी पूंजी मिल सकती है?"

लाला बनारसीदास हंस पड़े और बोले, "इन्द्र, आज तुमने कुछ समझदारी की बात की है। तुम्हें अपने भविष्य की योजना बनाने की कुछ चिन्ता हुई है, इस कारण तुम्हें बताता हूं। पूर्व इसके कि तुम यह समझ सको कि यह सब धन किसका है और इसमें मेरा कितना भाग है, मैं तुम्हें अपने व्यापार का इतिहास बताना चाहता हूं। लो सुनो," लाला बनारसीदास ने आंख का चश्मा उतार रूमाल से पोंछते हुए कहना जारी रखा, "सन १९१५ में पिता जी का देहान्त हो गया। सन १९१६ में तुम्हारी बूआ विधवा हो गयी और १९१७ में मेरा

विवाह हुआ। १६१८ में तुम्हारा जन्म हुआ। उस समय मैं गुजरांवाला में बहुत छोटी सी कपड़े की दूकान करता था। कारोबार इतना कम था कि बहुत कठिनाई से निर्वाह होता था।

"सन १६१६ में महात्मा गान्धी के पकड़े जाने पर गुजरांवाला में हड़ताल हो गई। उन दिनों तुम्हारी माता बीमार हो गई। यद्यपि तमाम बाज़ार बन्द थे और जलसे तथा जुलूस नित्य होते थे परन्तु मैं तुम्हारी माता की सेवा-सुश्रूषा में रहने के कारण घर से बाहर नहीं जा सकता था और नहीं जानता था कि वहां क्या हो रहा है। मार्शल-लॉ हुआ तो हुक्म हो गया कि दूकानें एक घंटे में खुल जायें। मुझे इसका पता नहीं चला। मैं तुम्हारी माता के पास, जिसकी अवस्था दिन प्रति दिन बिगड़ती जाती थी, बैठा रहता था।

"नगर की दूकानें खुल गयीं, पर मेरी दूकान नहीं खुली। इस पर मेरे वारंट निकल गये और रात को जब नगर में कर्फ्यू आर्डर लगा हुआ था तो ताला तोड़कर मेरी दूकान खोल दी गई। रात रात में ही सब माल लुट गया और दूकान खाली हो गयी। अगले दिन मुझे पकड़कर हवालात में डाल दिया गया। तीन दिन के पश्चात् मुझे मार्शल-लॉ अफ़सर के सम्मुख पेश किया गया। अफ़सर ने पूछा, "तुमने हमारे हुक्म के बाद दूकान क्यों नहीं खोली?'

"मैंने उत्तर दिया, 'मेरी औरत बीमार है।'

'साला, झूठ बोलता है।'

'झूठ नहीं बोल रहा, साहब।'

'छः महीने की कैद।'

"मुकदमा हो गया और मैं जेल में ठूंस दिया गया। तुम्हारी माता को जब मेरे कैद होने का समाचार मिला तो परलोक-गमन कर गयी। तुम अपनी बूआ के पास रहे। मेरी अनुपस्थिति में उसने लोगों के बर्तन साफ़ कर तुम्हारा पालन किया। जब मैं जेल से बाहर आया तो गुजरांवाला में मेरा रहना कठिन हो गया। दूकान का माल, जो लुट

गया था, अधिकांश आढ़तियों से उधार लिया हुआ था और मेरे पास एक पैसा भी अपना नहीं था। एक मित्र से दस रुपये उधार ले मैं दिल्ली चला आया।

"उस समय नई दिल्ली बननी आरम्भ हो चुकी थी। पंजाब से ठेकेदारों को बुला बुलाकर उन्हें काम दिया जा रहा था। मैंने एक ठेकेदार की मुन्शीगिरी कर ली। बीस रुपया महीना मिलता था। एक मास में ही मुझे पता चल गया था कि इतने में निर्वाह नहीं हो सकता। इतने में तो कठिनाई से रोटी का काम चलता था और गुजरांवाला में तुम्हारी बूआ बर्तन मल-मलकर तुम्हें पाल रही थी। मैंने अपने मालिक सरदार बीरासिंह को कहा, 'सरदार साहब, बीस रुपये में मेरा गुज़र नहीं होता।' उनका उत्तर था, 'तो मैं क्या करूं? मुझे तो मुन्शी पन्द्रह रुपये में मिलता है।'

"यह मैं जानता था, परन्तु मुन्शी लोग मज़दूरों की तन्खाह में से पैसे ऐंठ कर आमदनी ऊपर से बना लेते थे। मुझे यह पसन्द नहीं था। फिर ठेकेदार उन मुन्शियों को वेतन अधिक देते थे जो बहाने बहाने पर मजदूरों की ग़ैरहाज़री लगा देते थे या हाज़री के झूठे रजिस्टर बना ठेकेदारों को लाभ पहुंचाते थे।

"मैंने नौकरी छोड़ दी और मज़दूरों को संगठित कर उनको ठेकेदारों के फरेब से बचाने का यत्न करना चाहा। इसमें भी मैं असफल रहा। मुझे स्वयं तो दो पैसे रोज के चने चबाकर रह जाना पड़ा। मुझे यह बात भली भांति पता चल गई कि ईमानदारी से रहने पर भूखों मर जाऊंगा। ईमानदारी से पन्द्रह रुपये महीना मिलते थे और बेईमानी करने से हज़ारों के मिलने की आशा थी। मैंने जब यह देखा कि बेईमानी ही करनी है तो यह सोचकर कि किसी दूसरे के लिए क्यों करूं मैंने एक साझीदार ढूंढ लिया जो पांच सौ रुपये तक काम में लगा सकता था। अब मैंने एक ओवरसियर और एस० डी० ओ० से मिलकर मट्टी खोदकर भूमि समतल करने का काम ठेके पर ले लिया। बिल का

दस प्रति शत ओवरसियर तथा एस० डी० ओ० को देना होता था। पैमाइश के समय दो रुपये बेलदार को देने से फीते में तीन-चार इंच का अंतर हो जाता था। इन तीन-चार इंचों के अधिक माप से मुझे पन्द्रह-बीस रुपये रोज़ का अनायास लाभ हो जाता था। दो ही मास में मैं साझीदार को छोड़ अपना स्वतन्त्र काम करने लगा। छः मास में मैंने दो मोटर-ट्रक खरीद लिये। इस समय मैंने तुम्हें और तुम्हारी बूआ को यहां बुला लिया। अब कुछ बड़े बड़े ठेके लेने लगा था। सन १९२२ में मैं प्रथम दर्जे का ठेकेदार मान लिया गया। सन १९२५ में मैं दस लाख का मालिक था और अब सन १९४२ में मैं दस करोड़ की सम्पत्ति रखता हूं। परन्तु, इन्द्रजीत, तुम समझ गये होंगे कि यह सब कुछ कैसे मेरे पास आया है। यह मेरा नहीं है, मैं तो वह मुन्शी हूं जो नेकनीयती से काम करता तो अब साठ-सत्तर रुपये से अधिक कभी भी पैदा न कर सकता। वास्तव में यह रुपया मज़दूरों का है। उनकी मेहनत से पैदा हुआ है। मुझे तो उतना ही लेना चाहिए जितना अपने निर्वाह के लिये चाहिये। शेष मज़दूरों को वापिस हो जाना चाहिये।"

इन्द्रजीत ने कुछ आवेश में कहा, "यदि वापिस करना था तो आप ने लिया ही क्यों?"

"मज़दूरों से तो यह छिन ही रहा था। कुछ सरकार छीन रही थी, शेष ठेकेदार। इस लूट-खसोट को रोकने में मैं असफल रहा तो मैंने यह उपाय किया है। मैं अब सोच रहा हूं कि यह उनको कैसे वापिस कर दूं?"

"तो आप एक सदाव्रत लगा दें।"

"छीः! इसी से तो कहता हूं कि तुम्हारी शिक्षा अभी अधूरी है। तुम्हें अभी बहुत कुछ सीखना है। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि सदाव्रतों में पेशेवर मांगने वाले ही खाने आते हैं। जिनकी कमाई का भाग यहां एकत्रित हुआ है, वे मर जायेंगे पर सदाव्रत में खाने नहीं आवेंगे।"

"तो फिर आप क्या करियेगा ?"

"मैं एक योजना बना रहा हूं। वह तुम्हें समय पर मालूम हो जायेगी। रही तुम्हारे काम की बात। मैं समझता हूं कि मैंने अपना एक दस हज़ार का बीमा कराया हुआ है, जो कुछ ही महीनों में मिलने वाला है। वह तुमको दे दूंगा। उसमें तुम कोई काम करने का विचार करलो।"

[१३]

ला० बनारसीदास का नियम था कि वे वर्ष में दो या तीन दावतें देहली के अफसरों, रईसों, और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को दिया करते थे। इस बार दावत का मुख्य मेहमान कमाण्डर-इन-चीफ़ था। दावत में देहली के प्रायः सब प्रसिद्ध आदमी उपस्थित थे। ला० हरवंशलाल भी इनमें थे। हरवंशलाल से बनारसीदास का परिचय अभी तक साधारण सा था। कुछ दिन पूर्व डिप्टी कमिश्नर के दफ़तर में किसी मामले में दोनों उपस्थित थे। हरवंशलाल ने एक-दो खरी खरी बातें डिप्टी कमिश्नर को सुनाई तो बनारसीदास का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो गया और पश्चात् परिचय घनिष्ट हो गया। जब दावत का समय आया तो लाला हरवंशलाल का नाम भी मेहमानों में लिख दिया गया।

दावत के दिन कोठी की सजावट चकाचौंध करने वाली थी। कोठी के बाहर विशाल लॉन में एक हज़ार मेहमानों के बैठकर चाय-पान के लिये सामान बनाया गया था। बर्तन चांदी के थे। प्रत्येक मेज़ पर फूलदान और इतरदान रखे थे। झंडी, फानूस, तोरन-मलायें ऐसे ढंग से लगायी गयी थीं कि देखने वाले देखते ही रह जाते थे। फिर बिजली की रोशनी का विशेष सामान था। बड़े बड़े रईस अपने लड़कों की शादी पर भी इतना नहीं करते थे, जो बनारसीदास वर्ष में दो-तीन बार निष्प्रयोजन ही कर देता था।

अढ़ाई सौ मेज़ें लगी थीं। प्रत्येक मेज़ पर दूध-समान सफ़ेद चादर, उस पर चांदी का टी सैट, चांदी का फूलदान और चांदी का इतरदान

था। दो-दो मेज़ों पर तीन-तीन नौकर नियत थे और इनके अतिरिक्त दूसरे नौकर थे जो अन्य प्रबन्धों पर लगे थे।

समय पर प्रायः सब महमान उपस्थित हो गये थे। कोठी के फाटक पर बनारसीदास और उसके समीप इन्द्रजीत तथा अन्य कर्मचारी खड़े थे। प्रत्येक मेहमान का स्वागत बनारसीदास स्वयं करता था और फिर अपने किसी कर्मचारी अथवा इन्द्रजीत को उस महमान को आदर से बैठाने को कह देता था। लोग एक पृथक स्थान पर बैठे तथा खड़े बातें करते हुए, मुख्य मेहमान, कमाण्डर-इन-चीफ़ की प्रतीक्षा कर रहे थे।

हरवंशलाल कोठी की सजावट देख चकाचौंध रह गया। वह मन में सोचता था कि इस दावत पर कितना रुपया व्यय हो रहा है। कोठी के फाटक पर हरवंशलाल का स्वागत कर बनारसीदास ने अपने लड़के इन्द्रजीत के साथ भीतर भेज दिया। इन्द्रजीत ने हरवंश-लाल से हाथ मिलाया और उसको लॉन में ले गया। मार्ग में हरवंश लाल ने पूछा, "आप लाला जी के यहां क्या काम करते हैं?"

"खाना-पीना, कपड़े पहनना और सो रहना।"

"आप उनके सम्बन्धी हैं?"

"वे मेरे पिता हैं"

"तो आप कहीं पढ़ते हैं?"

"मैंने एम० ए० पास कर लिया है।"

"अब क्या करने का विचार है?"

"अभी निश्चय नहीं कर सका।"

"क्या नाम है आपका?"

"इन्द्रजीत।"

इस समय इन्द्रजीत का कोई परिचित वहां आगया। वह उससे बातें करने लगा। ला० हरवंशलाल किसी और से बातें करने लगे। वे बोले, "ओह! आप हैं सआदत साहब। कहिये, वीणादेवी नहीं आईं क्या?"

"नहीं। मुरादाबाद एक सभा की सभानेत्री बनकर गयी हैं। कल

तक लौट आयेंगी।"

"ला० बनारसीदास के जलसों में आने का तो मुझे पहला ही अवसर है। बहुत रुपया खर्च करते हैं।"

"हां, दिल के शेर हैं। कमाते हैं और खर्च भी करते हैं। चन्दे भी दिल खोलकर देते हैं। एक-आध लाख तो बातों बातों में दे डालते हैं।"

"परमात्मा ने दिया है तो देते भी हैं।"

"कांग्रेस वाले तो इनसे मांगते ही रहते हैं। देहली की कोई ही संस्था होगी जहां इनका रुपया न जाता हो।"

इस समय कमाण्डर-इन-चीफ़ आ पहुँचे और सब लोग शामियाने में जा पहुँचे। एक-एक मेज़ पर चार-चार मेहमान थे। सआदतहुसैन, हरवंशलाल, इन्द्रजीत और इन्द्रजीत के एक मित्र एक मेज़ पर बैठ गये। उनके बैठते ही एक नौकर ने मेज़ पर पड़ी जाली उठा दी और दूसरे ने चायदानी लाकर रख दी। और सब सामान वहां पहले ही रखा था। लोगों के बैठते ही कोठी के भीतर से किसी गाने वाले की धीमी धीमी आवाज़ 'एम्पलीफ़ायर्स' में से आने लगी थी।

इन्द्रजीत को सआदतहुसैन पहले से जानता था। उसे कहने लगा, "भाई इन्द्रजीत, यह अफ़सरों की खुशामद तो होती है। हमें भी कभी कभी याद कर लिया करो न। देखो कांग्रेस-सेवक-दल के लिये रुपये की ज़रूरत है। अपने पिता जी से कह छोड़ना हम आयेंगे।"

"अभी उस दिन पं० महावीरप्रसाद इसी मतलब के लिए एक हज़ार ले गये हैं।"

"ओह! परन्तु मैं होता तो दस हज़ार से कम में न मानता।"

"मुझे भी अफ़सोस है। लाला जी ने एक हज़ार दे तो दिया था पर ऐसी खरी खरी सुनाईं थीं कि मेरे विचार में पंडित जी फिर कोठी में कदम नहीं रखेंगे।"

"क्या कहा था?"

"कहते थे, 'कांग्रेस-सेवक-दल कहीं दिखाई तो देता नहीं। रुपया मांगने प्रति वर्ष आजाते हो। भला बताओ कि सेवक-दल क्या क्या काम करता है?'

"पंडित जी ने कहा, 'कांग्रेस के जलसों में प्रबन्ध करता है।'

"बस इस बात पर तो लाला जी बरस पड़े। बोले, 'पिछले मास पं० जवाहरलाल जी का गान्धी ग्राउण्ड में व्याख्यान था। बीस हजार से अधिक लोग नहीं थे। इस पर भी इतनी गड़बड़ मची थी कि सैकड़ों के तो जूते गुम हो गये। दो औरतें भगा ली गयीं। एक बच्चा तो कुचलते-कुचलते बचा। पं० जवाहरलाल जी कुप्रबन्ध देख स्वयं इतने क्रोधित थे कि कई बार उबल उठे थे। खाक है आपका सेवक-दल। मैं समझता हूं आप लोगों को संगठन करने का ढंग ही नहीं आता'।"

सआदतहुसैन हंस पड़ा और कहने लगा, "तो लाला जी को सेवक-दल का नेता बना देना चाहिये।"

इस पर हरवंशलाल ने कहा, "तो फिर रुपया किनसे लीजियेगा?"

इन्द्रजीत ने कहा, "पिता जी समझते हैं कि जब तक आप एक सुसंगठित स्वयं-सेवक-दल नहीं बना सकते आपके राजनैतिक कार्य सफल नहीं हो सकते।"

हरवंशलाल को इन्द्रजीत की बातचीत का ढंग पसन्द आ रहा था। उसने इन्द्रजीत की बात का समर्थन ही किया। इससे सआदतहुसैन आवेश में आ कहने लगा, "हमारे यहां तो प्रत्येक सदस्य ही स्वयं-सेवक है। हम लाखों की संख्या में हैं।..."

इस समय कमाण्डर-इन-चीफ माईक्रोफोन के सम्मुख खड़े हो अपना वक्तव्य देने लगे। लोग दत्तचित्त हो सुनने लगे। इस शान्ति में सआदतहुसैन को भी अपना आवेश अपने भीतर ही दबाना पड़ा। कमाण्डर-इन-चीफ ने कहा, "मैं लाला बनारसीदास को इतनी शानदार दावत के लिये धन्यवाद देता हूं। उम्मीद है आप सब लोग भी मेरे साथ इसमें सम्मिलित होंगे।"

लोगों ने तालियां पीट दीं।

"मैं एक और प्रसन्नतासूचक समाचार आपको सुनाता हूं। लाला बनारसीदास ने एक लाख रुपया वाइसराय के युद्ध-फंड में दिया है।"

सारा शामियाना और बाहर का मैदान तालियों से गूंज उठा। कमाण्डर-इन-चीफ़ ने कहना जारी रखा, "आपने पांच लाख के 'डिफेन्स बौंड' भी खरीदे हैं।" फिर तालियां बजीं।

"मैं लाला जी की देशभक्ति और सरकार के प्रति वफ़ादारी के लिए हृदय से उनकी सराहना करता हूं और उम्मीद करता हूं कि देहली के रईस इस उदाहरण का अनुकरण कर अपने देश की ऐसे नाज़ुक मौके पर सहायता करेंगे।"

कई मिनट तक तालियां बजती रहीं। पश्चात् 'गॉड सेव दी किंग' का रेकार्ड लाउड स्पीकरों में बजा और दावत समाप्त हुई।

जाने से पूर्व हरवंशलाल धन्यवाद देने के लिये बनारसीदास से मिला। वहां फिर इन्द्रजीत से भेंट हुई।

[१४]

हरवंशलाल ने जबसे इन्द्रजीत को देखा था, उसके मन में एक बात चक्कर काट रही थी। दावत से घर आया तो कमला की मां को बुलाकर पूछने लगा, "कमला की क्या आयु है?"

"सत्रह वर्ष।"

"अब तो विवाह के योग्य हो गई है?"

"यह बात मुझसे पूछने की है क्या?"

"अरी सुनो। मैं आज एक लड़का देखकर आया हूं। लाला बनारसीदास देहली के एक बहुत बड़े रईस हैं। उनके लड़के ने अभी एम० ए० पास किया है। हमारे नरेन्द्र जितना ही प्रतीत होता है।"

"कुछ बातचीत भी हुई है?"

"बातें तो बहुत हुई हैं पर विवाह के विषय में अभी कुछ नहीं कहा।"

"तो फिर और क्या कहते रहे हो ?"

"अरी पगली ! एक दिन उन्हें बुलाकर आराम से बातचीत होगी।"

कुछ दिन पश्चात् हरवंशलाल बनारसीदास से मिलने गया। भेंट हुई और कुछ काल तक इधर उधर की बातों के पश्चात् हरवंशलाल ने कहना आरम्भ किया, "आप बहुत बड़े आदमी हैं और आपसे प्रतिस्पर्धा करने की मुझ में हिम्मत नहीं है। इस पर भी यदि आप बुरा न मानें तो मैं आज अपने आने का प्रयोजन कहूं।"

"हां, हां," बनारसीदास ने गम्भीर हो कहा, "आप निस्संकोच कहिये कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

"राम ! राम ! आप यह सेवा की बात क्या कहते हैं। बात यह है कि सेवक की एक लड़की है। वह विवाह के योग्य हो गयी है और इन्द्रजीत सर्वथा योग्यवर प्रतीत होता है। यदि आपको स्वीकार हो तो आगे बात करूं।"

"स्वीकृति तो इन्द्रजीत की होगी। मैं तो केवल यह देखने का अधिकार रखता हूं कि लड़की वालों का परिवार कैसा है। आपके विषय में जो कुछ मैं अभी तक जानता हूं वह बहुत कम है, इस पर भी असन्तोषजनक नहीं है। और अधिक जानकारी धीरे धीरे बढ़ सकती है। हां, पूर्व इसके कि आप इस सम्बन्ध की धारणा को मन में जमने दें एक बात समझ लें। यह जो कुछ बाहरी आडम्बर आप देख रहे हैं मेरा वास्तविक रूप नहीं। यदि आप मुझे, मेरी आर्थिक स्थिति और मेरे भविष्य के जीवन को समझना चाहते हैं तो आइये मैं आपको दिखाता हूं।"

इतना कह बनारसीदास अपने स्थान से उठा और हरवंशलाल को साथ आने का संकेत करने लगा। विवश हरवंशलाल, बिना कुछ समझे, उठकर साथ हो लिया। बनारसीदास उसे साथ लेकर अपने कमरे में चला गया। कमरे में कुछ भी सजावट का सामान नहीं था। कोई पंखा भी नहीं लगा था। एक ओर एक तख्तपोश था जिस पर चटाई बिछी थी। बनारसीदास ने कहा, "यह मेरे सोने का स्थान है। आगे

आइये ।" वह उसे एक दूसरे कमरे में ले गया । वहां फर्श पर एक चटाई बिछी थी । उस पर एक ओर गीता की एक पुस्तक पड़ी थी । बनारसीदास ने बताया, "यह मेरा स्वाध्याय का कमरा है । यहां केवल एक ही पुस्तक है और वह है गीता । रहा मेरा अतुल धन । वह मैंने स्वयं कमाया है और मैं अपने लड़के को इसमें से एक बहुत छोटा भाग, जो किसी प्रकार भी दस हज़ार रुपये से अधिक नहीं होगा, दूंगा । शेष सब धर्मार्थ जायेगा । मैंने अपने लिए अलमोड़ा में एक छोटी सी कुटिया बनवा ली है । वहां शेष जीवन व्यतीत करने चला जाऊंगा । लड़के को उस दस हज़ार रुपये से अपना जीवन आरम्भ करना होगा । मैं तो अपनी जेब में केवल पांच रुपये लेकर दिल्ली आया था ।"

हरवंशलाल भौंचक्का मुख देखता रह गया, परन्तु वह इतनी जल्दी परास्त होने वाला आदमी नहीं था । उसने भी एक सौ रुपये की पूंजी से अपना कारोबार आरम्भ किया था और अब उसका दस-बीस लाख का कारोबार हो गया था । इससे उसने कहा, "बनारसीदास जी, मुझे क्षमा करें । मैंने तो इन्द्रजीत को योग्य वर कहा है । उसके पिता की धन-सम्पत्ति को अच्छा-बुरा नहीं कहा । मैं तो मनुष्य से मनुष्य का सम्बन्ध चाहता हूं । आप अपने लड़के को क्या और कितना दीजियेगा यह मेरे जानने की बात नहीं । मैं तो समझता हूं कि इन्द्रजीत योग्य लड़का है । उसको दामाद बना मैं सुख और सन्तोष की आशा करता हूं ।"

"तब ठीक है," बनारसीदास ने पुनः दफ्तर की ओर लौटते हुए कहा, "दोनों परिवारों को मिलने-जुलने का अवसर मिलना चाहिये । शेष ईश्वर के आधीन है ।"

हरवंशलाल ने बनारसीदास के परिवार को एक दिन सायं समय अपने यहां भोजन करने का निमंत्रण दे दिया । बनारसीदास और उन के परिवार के लोग आये तो हरवंशलाल ने अपने घर के लोगों का परिचय कराया । वह कहने लगा, "ये हैं मेरी धर्मपत्नी, कमला की मां । हमारा विवाह सन १९२३ में हुआ था । इनकी प्रशंसा यदि इनके

मुख पर करूं तो मुझसे झगड़ा करने लगती हैं। यह है मेरी लड़की, कमला। जन्म सन १९२५ में हुआ था। मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की है। घर का सब काम स्वयं भी कर सकती है। सीने-पिरोने और संगीत में इसे विशेष रुचि है। यह है विजय। कमला से एक वर्ष बड़ा है। कॉलेज के तीसरे वर्ष में पढ़ता है। विज्ञान में विशेष रुचि रखता है। यह हॉकी बहुत अच्छी खेलता है और इस खेल में हिन्दुस्तान के एक नम्बर के खिलाड़ियों में माना जाता है। अब लीजिये, ये विनय महाशय हैं। ये हमारे घर सन १९२९ में पधारे थे। इसको केवल एक शौक है और वह है चित्र बनाने का। यह व्यङ्गात्मक चित्र बनाने में अपने को सिद्धहस्त करना चाहता हैं। मेरी शुभ कामना इसके साथ है।"

अंत में हरवंशलाल ने नरेन्द्र का परिचय कराया, "यह मेरा भतीजा है। इतिहास में एम० ए० है। इसके पिता का देहान्त मार्शल-लॉ की घटनाओं में हुआ था। मां बेचारी इसे पढ़ाने में मेहनत करती मर गयी। अब यह हमारे यहां रहता है।"

भोजनोपरान्त सब लोग कोठी के ड्रायंग-रूम में आये और छोटी छोटी मंडलियां में बैठ बातें करने लगे। कमला की मां और इन्द्रजीत की बूआ एक सोफ़े पर बैठ गयीं और कमला के विषय में बातें करने लगीं। एक दूसरे सोफ़े पर इन्द्रजीत, कमला और विजय बातें करने बैठ गये। विजय हॉकी के विख्यात खेलों में अपने कारनामों का वर्णन करने लगा। इन्द्रजीत अपने कॉलेज-जीवन की मनोरंजक घटनाएँ सुना रहा था। कमला चुपचाप बैठी दोनों की बातें सुन रही थी। ड्रायंग-रूम के दूसरे कोने में विनय पैंसिल से एक काग़ज के टुकड़े पर इन्द्रजीत की तस्वीर बनाने बैठ गया। नरेन्द्र को विनय का काम बहुत पसन्द आया। वह उसके पास बैठ उसे ड्रायंग करते देखने लगा। हरवंशलाल बनारसीदास को लेकर बाहर बरामदे में जा पहुंचा। वहां दोनों आराम-कुर्सी पर बैठ सिगार सुलगा कश लगाने लगे।

नरेन्द्र के पिता के मार्शल-लॉ की घटनाओं में मारे जाने के

समाचार ने बनारसीदास के मन में इस विषय में अधिक जानने के लिये उत्सुकता उत्पन्न कर दी। वह स्वयं भी उन घटनाओं से घायल था। स्वाभाविक रूप में नरेन्द्र के लिए उसके मन में सहानुभूति उत्पन्न हो गयी और वह हरवंशलाल से नरेन्द्र के विषय में अधिक परिचय प्राप्त करने लगा। धीरे धीरे उसने उसकी पूर्ण कथा जान ली। उसका बचपन, उसकी मां के विचार, उसकी पढ़ने-लिखने में योग्यता और खेल-कूद में शौक, उसके अपने विचार, उसके विवाह के विषय में डिप्टी रघुवरदयाल का प्रस्ताव और लड़के का इनकार कर देना, इस पर डिप्टी साहब का उससे रूठ जाना। इन सब बातों को बनारसीदास ने ध्यानपूर्वक सुना। उसके अपने मन के उद्गार भी उसी मार्ग पर जाते थे जिस पर नरेन्द्र के जा रहे थे। इस पर भी अपने मन की बात न बताते हुए उसने पूछा, "आप लड़के के लिये क्या कर रहे हैं?"

"मैं उसके खाने, पहरने और रहने का प्रबन्ध ही कर सकता हूं, सो मैं कर रहा हूं। मैं चाहता था कि वह डिप्टी साहब की लड़की से विवाह स्वीकार कर लेता। उन्होंने विश्वास दिलाया था कि किसी अच्छे स्थान पर नौकर करवा देंगे।"

हरवंशलाल की इच्छा सुन बनारसीदास को विस्मय हुआ, परन्तु उसने अपने विचार प्रकट नहीं किये और वार्तालाप का विषय बदल दिया। उसने कहा, "जहां तक इन्द्रजीत के विवाह का सम्बन्ध है, मैं वही करूंगा जो वह चाहेगा। रहा उसके काम-धन्धे का प्रश्न, सो मैं अपनी धारणा आपको बता चुका हूं।"

"आपने कहा था न, कि आप लड़के को दस हज़ार रुपये पूंजी के लिये दे देंगे। मैं तो कुछ कहना नहीं चाहता। जैसा आप उचित समझें करें। परन्तु आपको यह तो विचार करना ही होगा कि दस हज़ार में कोई काम-धन्धा चल भी सकेगा?"

"जो कुछ भी हो उसे इसी में प्रबन्ध करना होगा।"

"पर आप चन्दों में तो लाखों दे देते हैं।"

"वह तो व्यापार है। एक लाख दिया तो सरकारी ठेकों से दस लाख कमाया भी है।"

हरवंशलाल यह सोचता था कि लाला जी का एक ही तो लड़का है। वे इतने निष्ठुर नहीं हो जायेंगे कि आवश्यकता पड़ने पर हाथ खींच लेंगे। इससे उसने फिर कहा, "मैंने विवाह का प्रस्ताव आपका धन देखकर नहीं किया। मैंने तो इन्द्रजीत को पसन्द किया है।"

दूर टाउन-हॉल के घड़ियाल में रात के ग्यारह बजने का शब्द हुआ। बनारसीदास ने उठते हुए कहा, "अब सोने का समय हो गया है। हमें जाने की आज्ञा दीजिये।"

दोनों ड्रायंग-रूम में चले आये। इस समय कमला और इन्द्रजीत दोनों घुलघुलकर बातें कर रहे थे। दूसरी ओर नरेन्द्र और विजय विनय द्वारा बनाये गए इन्द्रजीत के चित्र पर हंसहंसकर दुहरे हो रहे थे।

हरवंशलाल और बनारसीदास भी तसवीर देखने पहुंच गये। बनारसीदास तसवीर देख खिलखिलाकर हंस पड़ा।

इन्द्रजीत का चित्र बहुत अच्छा बना था। इन्द्रजीत पहचाना जा सकता था। तसवीर में वह स्टूल पर खड़ा हो पेड़ से नारंगी तोड़ रहा दिखाया गया था। स्टूल पांव तले से निकल गया था और वह भूमि पर गिरने वाला था। इस गिरने के समय, उसके मुख, मस्तक और आंखों की रेखायें देखने-योग्य थीं। उसके हाथ और पांव हवा में लटक रहे थे और बहुत ही अद्‌भुत दिखाई देते थे। चित्र के नीचे लिखा था (Borrowed Greatness) उधार लिया हुआ बड़प्पन।

बनारसीदास कभी तसवीर पर देखता था, कभी इन्द्रजीत पर। इन्द्रजीत अभी भी खड़ा कमला से बातें कर रहा था।

बनारसीदास ने पुत्र को आवाज़ दी. "साहब बहादुर आइये और अपनी हालत देखिये।"

इन्द्रजीत चौंक उठा। सबको अपने पर हंसते हुए देख, आकर पिता के हाथ में तस्वीर देखने लगा। तस्वीर का भाव देख समझ गया और

बोला, "बेहूदा ।"

पिता ने पुत्र की ओर घूरकर देखा । वह चुप कर गया । बनारसी दास ने विनय की ओर देखकर पूछा, "इस तस्वीर का क्या दाम लोगे ?"

विनय का उत्तर था, "मैंने अभी दूकान नहीं खोली ।"

"बिना दूकान के भी तो माल बिक सकता है ।"

"यह बिकाऊ नहीं है । यह आज के आनन्दमय दिवस की स्मृति मेरे एलबम में रहेगी ।"

इस पर फिर सब हंस पड़े । बनारसीदास हंसने में सब से आगे था ।

जाते समय बनारसीदास ने सब को हाथ जोड़ नमस्ते कही । सब के पश्चात् वह नरेन्द्र से हाथ मिलाने के लिये आगे बढ़ा । कारण यह था कि नरेन्द्र सब से पीछे खड़ा था । हाथ मिलाते समय बनारसीदास ने नरेन्द्र को धीरे से कहा, "मुझे कल दोपहर के समय आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी । खाना मेरे यहां खाइयेगा ।"

"अच्छी बात," नरेन्द्र का उत्तर था ।

"ठीक एक बजे ।"

जब पिता-पुत्र मोटर में सवार हो अपने घर जा रहे थे तो बनारसी दास ने पूछा, "इन्द्र, ये लोग कैसे जचे हैं ?"

"और तो सब ठीक है, केवल यह छोटा लड़का विनय बहुत बदमाश मालूम होता है ।"

"क्यों ? उस चित्र के कारण कहते हो ? वह तो तुम्हारा वास्तविक चरित्र-चित्रण था । मैं तो उस लड़के की प्रतिभा और कला-कौशल पर मोहित हो गया हूं ।"

"आप इसे मेरा अपमान नहीं समझते ?"

"इसमें अपमान क्या है । काले को काला कहना अपमान करना नहीं कहाता और फिर कलाकार दो प्रकार के होते हैं । एक वे जो कुरूप को रंग-रोगन लगाकर सुन्दर बना देते हैं । दूसरे वे जो बाहरी रंग-रूप

को उखेड़, भीतर का अस्तित्व उघाड़ प्रत्यक्ष कर देते हैं। विनय की प्रतिभा इसी बात में है कि उसने तुम्हारी असलीयत निकालकर बाहर रख दी है।"

"पर यह तो असत्य है कि मैं निराश्रय हो घबरा उठा हूं, या घबरा उठूंगा।"

"सत्य कहते हो इन्द्र? अच्छी बात। तुम्हारी परीक्षा की जायेगी कि तुम बिना मेरे आश्रय के क्या कर सकते हो।"

"सफल होने का यत्न करूंगा।"

[१५]

अगले दिन ठीक एक बजे नरेन्द्र बनारसीदास की कोठी में पहुंच गया। बनारसीदास कोठी के दरवाजे में खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। नरेन्द्र को देखते ही उसने जेब से घड़ी निकाल समय देख कहा, "खूब, मैं यही आशा करता था।"

बनारसीदास नरेन्द्र का हाथ पकड़कर खाना खाने के कमरे में ले गया। वहां खाना परसा जा रहा था। दो आदमियों के लिये खाना लगाया गया था। नरेन्द्र ने पूछा, "इन्द्रजीत जी नहीं आयेंगे क्या?"

"नहीं, मैं आपसे एकान्त में बातचीत करना चाहता हूं।"

दोनों खाने पर बैठ गये। बैरा कमरे में दीवार के समीप खड़ा था। आवश्यकता पर सामने से तश्तरियां बदल रहा था। बैरे की उपस्थिति में कोई विशेष बात नहीं हुई। साधारण ऋतु-सम्बन्धी बातें ही चलती रहीं। खाने के पश्चात् बनारसीदास नरेन्द्र को अपने सोने के कमरे में ले गया। वहां स्वयं तख्तपोश पर बैठ और नरेन्द्र को एक कुर्सी पर बैठा कहने लगा, "मैंने तुम्हारे पिता की मृत्यु का इतिहास तुम्हारे चाचा से सुना है। तुम्हारी माता के साथ जो दुर्व्यवहार अंग्रेज़ सिपाहियों ने किया था, वह भी मुझे पता चल गया है और फिर उस देवी का आदेश भी पता चला है। ऐसी दुर्घटनायें उस समय पंजाब में बहुत हुई थीं। उस समय के पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओडवायर

कट्टर 'टोरी' थे और उन्हें हिन्दुस्तानियों को अपमानित देख मज़ा आता था। मैं स्वयं भी एक ऐसी घटना का शिकार हूं।"

इस पर बनारसीदास ने अपनी दूकान के लुट जाने, अपने कैद किये जाने और स्त्री की मृत्यु का वृत्तान्त सुनाया। पश्चात् अपने देहली में आकर कंगाल से करोड़पति बनने का इतिहास बताते हुए कहा, "जब मैं दिल्ली में आया था तो मेरे मन में भी सर्वथा वही भाव थे जो मैंने आप की माता के सुने हैं। मेरा रक्त प्रतिकार की भावना से उबल रहा था, परन्तु मैं जानता था कि वह आदमी जिसके पास रोटी खाने तक की सुविधा नहीं, जो अकेला, निस्सहाय और बहुत कम शिक्षित है कैसे अपने साथ किये गये अन्याय का बदला ले सकता है। मैंने अपने में शक्ति उत्पन्न करने का यत्न किया। इसके उपलब्ध करने में जीवन भर लगा देना पड़ा है। यद्यपि यह शक्ति काम के विचार से बहुत साधारण है, इस पर भी यह मेरे जीवन का निचोड़ है और मैं इसे अपने मन की बात को पूरा करने में लगा देना चाहता हूं। जब मैंने सुना कि आपकी माता ने भी अपने जीवन भर की पूर्ण उपज को अपमान का बदला लेने में लगा देने का निश्चय किया हुआ था तो मेरा मन बल्लियां उछलने लगा। मैं अपने ही विचार और अपनी ही सी दृढ़ निष्ठा एक दूसरे व्यक्ति में देख अति प्रसन्न हुआ था। उस देवी ने दिन-रात मेहनत कर तुम्हें बनाया है और मैंने खून-पसीना एक कर यह सम्पत्ति एकत्रित की है। दोनों के सम्मुख लक्ष्य एक ही है। तो क्या ये दोनों एक ही स्थान पर एकत्रित नहीं हो सकते? परन्तु आप किस प्रकार अपनी माता के अपमान का बदला लेना चाहते हैं?"

नरेन्द्र बनारसीदास की बातें सुन एक क्षण के लिये अचम्भे में मुख देखता रह गया। वह इस अवसर को ईश्वरप्रदत्त ही मानने लगा। अभी आध घंटा पहले वह अपनी पुस्तक के छपवाने तक के लिये परेशान था। अब ये सज्जन उसे करोड़ों रुपये की सम्पत्ति अपनी योजना चलाने के लिये देने को कह रहे हैं। नरेन्द्र का हृदय इस

अनायास ही प्राप्त हुई सहायता से धकधक करने लगा। उसने अपने मन के आनन्द को यथाशक्ति छिपाते हुए अपनी योजना बतानी आरम्भ कर दी। उसने कहा, "मैं आपको अपने मन की धारणा सिद्धान्त-रूप में बता देना चाहता हूं, ताकि आपको भ्रम न रह जाय।"

"मुझे आपके धन से बहुत सहायता मिल सकती है, परन्तु यह सहायता आप सारी बात को जानकर ही दें तो ठीक रहेगा। मैं अपनी मां का अपमान सम्पूर्ण हिन्दुस्तानी स्त्री-जाति का अपमान समझता हूं। उस ठोकर मारने वाले गोरे को मेरी मां अथवा मेरे परिवार से कोई निजी द्वेष नहीं था। वह गोरा सिपाही पूर्ण अंग्रेज़ जाति का प्रतिनिधि था और मेरी मां हिन्दुस्तानी स्त्री-जाति की। इस अपमान का बदला किसी एक-आध गोरे अथवा डायर या ओडवायर को भी मार देने से चुक नहीं सकता। पूर्ण जाति को मारा नहीं जा सकता और वास्तव में एक जाति अपनी सभ्यता की प्रतीकमात्र होती है। इस कारण किसी जाति को मार डालने के अर्थ हैं उसकी सभ्यता का नाश कर देना। अंग्रेजों ने जो इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित किया है वह उस सभ्यता के बल पर ही तो किया है जो उस जाति में प्रचलित है। इस सभ्यता के कारण ही जलियां वाले बाग का हत्याकांड अथवा अन्य अत्याचार की घटनायें घटित हुई हैं। मेरी यह निश्चित धारणा है कि अंग्रेज़ी सभ्यता को संसार से मिटा देना ही हिन्दुस्तान पर किये गये अत्याचारों का बदला होगा। इस सभ्यता के नाश में हिन्दुस्तान को स्वराज्य दिलवाना एक अंग है। हिन्दुस्तान में यूरोपीय सभ्यता का प्रभुत्व तब तक रहेगा जब तक अंग्रेज़ी राज्य यहां है। इस कारण मैं इस राज्य को बदल देना पहला कार्य समझता हूं।

"दूसरी बात जो मैं आपके मन पर अंकित करना चाहता हूं वह महात्मा गान्धी की नीति का थोथापन है। इस समय भारतवर्ष में महात्मा जी की नीति की समालोचना करने वाले की कोई सुनने को तैयार नहीं। यह इस कारण नहीं कि महात्मा जी की नीति पर लोगों का

विश्वास हो गया है। पं० जवाहरलाल जैसे लोग भी इस पर विश्वास नहीं रखते, परन्तु उनमें एक चलती दूकान के मुकाबिले में दूसरी दूकान खोलने का साहस नहीं है। जन-साधारण, विशेष रूप में हिन्दू लोग, जप-पूजा, नाम-ध्यान पर अधिक श्रद्धा और भक्ति रखते हैं और अपनी बुद्धि और बल को प्रयोग में नहीं लाते। यह भारतवर्ष में सदियों से संत-साधुओं से दी गई शिक्षा के कारण है। सब संत लोग यह कहते रहे हैं कि भगवान ही निर्बलों का सहारा है :—

निर्बल के प्राण पुकार रहे,
जगदीश हरे, जगदीश हरे।

"सदियों की इस शिक्षा का प्रभाव है कि इस समय जवाहरलाल जैसा साहसी नेता भी महात्मा जी से मत-भेद रखता हुआ अपने को अशक्त पाता है। मैं एक छोटा सा प्राणी हूं, परन्तु यह मानता हूं कि महात्मा जी की नीति हिन्दुस्तान को न तो स्वतन्त्र कराने में सबल है और न ही पाश्चात्य सभ्यता को, जो सब पापों का मूल है, मिटा सकने की शक्ति रखती है। इसके स्थान पर दूसरी नीति का अवलम्बन करना होगा।

"तीसरी बात, कोई कार्य बिना विचार कर योजना बनाये नहीं चल सकता। दिन-रात जलसों में व्याख्यान देने वाले, प्रति पांच-छः वर्ष के पश्चात् जेल में जाकर प्रगतिशील संसार से पृथक हो जाने वाले और आन्दोलनों के झमेलों में फंसे हुए लोग कोई रचनात्मक कार्य नहीं कर सकते। भारतवर्ष हथियार छिन जाने से अपाहिज़ हो गया है। इसकी सब से बड़ी समस्या इसको सशस्त्र करना है। इस समस्या को कठिन मान और इसको करने के लिये अवसर न होने से नेताओं का यह मान लेना कि बिना ऐसा किए हम स्वतन्त्र हो जायेंगे इतनी बड़ी भूल है जितना कि यह कह देना कि हिमालय को हम हवा से उड़ा देंगे। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि नीति निश्चय करने वाले वे लोग नहीं हो सकते जिनको कार्य-क्षेत्र से पृथक हो कभी बैठकर विचार

करने का अवसर ही नहीं मिलता। ब्राह्मणों का क्षत्रियों से पृथक होना आवश्यक है। शिक्षकों का कार्यकर्ताओं से पृथक होना ही देश के लिये लाभ की बात है। महात्मा जी की सन १९१२ में या इससे भी पूर्व की सोची हुई अहिंसात्मक योजना आज सन १९४२ में भी चल रही है और उसमें विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। प्रत्येक बार और प्रत्येक स्थान पर जहां भी इसका प्रयोग हुआ है यह विफल रही है। इस पर भी यह उसी रूप में चल रही है। कारण स्पष्ट है कि महात्मा जी के पास संसार की नित्य बदलती परिस्थिति के अध्ययन के लिये और फिर उसका मुकाबिला करने के उपायों पर विचार करने के लिये अवसर ही कहां है। अर्थात मैं महात्मा जी की मुख्य नीति, अहिंसात्मक उपायों से ही स्वराज्य प्राप्त करने में, विश्वास नहीं रखता।

"मैं यह मानता हूं कि पाश्चात्य सभ्यता अन्याय और अत्याचार पूर्ण है। अंग्रेज़ों की सभ्यता भी इसी सभ्यता का एक अंग है। मैं इस सभ्यता का नाश कर देना चाहता हूं। इसके लिये ब्रिटिश साम्राज्य का नाश करना आवश्यक है। जहां जहां यह साम्राज्य गया है अत्याचार और अन्याय साथ साथ गये हैं। मैं चाहता हूं कि संसार के लोग यह समझने लगें कि अंग्रेज जाति की सभ्यता मिथ्या विचारों पर आश्रित है। उनका प्रभुत्व अन्याय और अत्याचार से बना है। इस अभिमान से भरी जाति को आसमान से खींचकर भूमि पर लाकर पटक देने से ही मेरी मां के अपमान का बदला चुक सकता है।"

बनारसीदास ने कहा, "परन्तु यह कितनी कठिन बात है।"

"कठिनाई से धीर और वीर लोग नहीं डरते।"

"हिन्दुस्तान से अंग्रेजी राज्य और फिर पाश्चात्य सभ्यता अब जा नहीं सकती। अब तो हिन्दुस्तानी स्वयं इसे पसन्द करने लग गये हैं। जब हम स्वयं अंग्रेजी सभ्यता को उच्चकोटि की मानते हैं, अंग्रेजी साहित्य को संसार में प्रथम श्रेणी का समझते हैं और उनके रहन-सहन के तरीके को अपने में धारण कर रहे हैं तब अंग्रेजी राज्य बाहरी रूप में

चला भी जाय पर वास्तविक रूप में तो रहेगा। इससे अन्याय और अत्याचार तो विराजमान रहेंगे ही।"

"मैं यह समझता हूं कि अंग्रेजी राज्य, सभ्यता, साहित्य, कला और राजनैतिक तरीकों को केवल उन हिन्दुस्तानियों ने ग्रहण किया है जो दुर्बल, अल्प शिक्षित, निकम्मे और साहसहीन हैं। ऐसे लोगों की तो स्वराज्य-प्राप्ति के लिये आवश्यकता ही नहीं। जो सहायता करने की शक्ति नहीं रखते वे विरोध करने की भी क्षमता नहीं रखते। वे स्वयं कुछ नहीं हैं। उनमें यदि कोई कुछ भी शक्ति का भास होता है तो वह ब्रिटिश शक्ति का प्रतिबिम्बमात्र है। ब्रिटिश शक्ति के क्षीण होते ही, ऐसे हवा के झोकों में बह जाने वाले लोग, शक्ति और प्रभावहीन रह जायेंगे।

"मान लिया कि आपका कहना ठीक है, पर इस समय काम कैसे चल सकता है? एक ओर हिमालय पर्वत की भांति अविचल ब्रिटिश सत्ता यहां पर है। दूसरी ओर आपके उपायों पर विश्वास न रखने वाले देश में भरे पड़े हैं। तीसरी बात एक यह है कि मुसलमान यहां हिन्दुओं को, जिस किस भांति भी, नीचा दिखाकर प्रसन्न होते हैं। आपने देखा नहीं कि जब प्रान्तीय सूबों के कांग्रेसी मंत्री-मंडलों ने स्तीफ़े दिये थे तो मुस्लिम लीग ने इसे मुसलमानों की जीत मानी थी। यह बात तो किसी से छिपी नहीं कि वे स्तीफ़े न तो मुसलमानों के प्रयत्न से दिये गये थे और न ही हिन्दुओं के किसी विशेष अधिकार की रक्षा में थे। मुसलमानों को इससे क्या लाभ हुआ था, प्रकट नहीं है। इस पर भी उनका प्रसन्न होना केवल यह प्रकट करता है कि वे हिन्दुस्तान में स्वराज्य नहीं चाहते। उन्हें अंग्रेजों के यहां रहने में लाभ है।"

"ये सब बातें मैं समझता हूं। इस पर भी यदि ठीक ढंग पर काम किया जाय तो ब्रिटिश साम्राज्य को यहां से उखाड़कर बाहर किया जा सकता है। मैंने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी है। मैं चाहता हूं कि उसे छपवाकर अपने सिद्धान्त का प्रचार करूं। पश्चात् यहां देश में

क्रान्तिकारियों का संगठन किया जाय। इसको भारतवर्ष जैसी परिस्थिति में कैसे चलाया जा सकता है, उसमें लिखा है। यह पुस्तक मेरी योजना की पहली कड़ी है।"

"क्या मैं इसकी पांडुलिपि पढ़ सकता हूं?"

"अवश्य मैं इसे आपको कल दे जाऊंगा।"

"अच्छी बात है। मैं समझता हूं कि आपकी बुद्धि और मेरे धन की शक्ति तब ही एकत्रित हो सकती है जब मैं आपकी पुस्तक पढ़ आपके आशय को भली भांति समझ लूं।"

इसके पश्चात् इधर उधर की बातें होती रहीं।

अगले दिन नरेन्द्र ने अपनी पुस्तक की पांडुलिपि बनारसीदास को दे दी। वास्तव में उसके लिखने में बहुत परिश्रम और विचार-विनिमय किया गया था। पुस्तक को पढ़ बनारसीदास को यह अनुभव हुआ कि नरेन्द्र की बातें युक्तियुक्त तो हैं। वह केवल एक बात नहीं समझ सका था कि यदि नरेन्द्र के विचार युक्तियुक्त हैं तो महात्मा गान्धी जैसे मान्य गण क्या इसे नहीं जानते? और यदि जानते हैं तो इसे अपनाते क्यों नहीं? नरेन्द्र ने अपनी पुस्तक में अपनी प्रत्येक धारणा के लिये प्रमाण, युक्तियां और उदाहरण दिये थे। बनारसीदास के मन में एक बात ने गहरा प्रभाव डाला। वह यह कि महात्मा जी की नीति लोगों में जागृति उत्पन्न करने में, सम्भव है, सफल हुई हो, परन्तु उनको संगठित करने में तो किसी प्रकार भी सफल नहीं हुई। समय पर सरकार भले ही झुक भी गयी हो परन्तु पीछे तो वैसी की वैसी ही रही है। इस झुक जाने में सरकार की नीति काम करती है न कि महात्मा जी का आन्दोलन।

बहुत सोच-विचार के पश्चात् बनारसीदास ने नरेन्द्र की पुस्तक छपवाने का निश्चय कर लिया। इससे वह चाहता था कि दूसरे लोगों की राय का पता चल जाये। साथ ही उसकी इच्छा थी कि नरेन्द्र की ख्याति बढ़े।

[१६]

पुस्तक छपी और बांटी गई। इसने पढ़े-लिखे लोगों में हलचल मचा दी। यों तो यह पुस्तक क्रान्ति उत्पन्न करने के विचार की प्रबल पोषक थी, परन्तु किसी जाति-विशेष को लक्ष्य रखकर नहीं लिखी गई थी। सरकार का ध्यान इस पुस्तक की ओर न जाता यदि डिप्टी रघुवरदयाल की लड़की मनोरमा नन्दलाल से विवाह करने के लिए राज़ी हो जाती। डिप्टी साहब का विचार था कि नरेन्द्र का कांटा जब तक निकल नहीं जाता तब तक मनोरमा को विवाह के लिये राज़ी नहीं किया जा सकता। अतः उन्होंने जब सुना कि नरेन्द्र ने कोई पुस्तक लिखी है तो इस बहाने उसको फंसाने के उपाय करने लगे। डिप्टी साहब ने अफसरों से कहकर पुस्तक को जब्त करवा दिया और नरेन्द्र की गिरफ़्तारी के वारण्ट निकलवा दिये।

मनोरमा के मन में भारी विचार-संघर्ष चल रहा था। नरेन्द्र के सम्पर्क में आने से पूर्व उसका राष्ट्रीयता की ओर ध्यान नहीं था। संसार उसके लिये खेल-तमाशे का स्थान था। बढ़िया खाना, बढ़िया पहनना और सखियों से हंसी-मज़ाक के अतिरिक्त, करने को उसके लिये और कुछ नहीं था। बी० ए० में इतिहास उसने इस कारण पढ़ा था कि इससे परीक्षा पास करनी सुगम थी। जब उसके पिता ने नरेन्द्र को उसका होने वाला पति बताया तो वह उसकी बातों में रुचि दिखाने लगी। वह ध्यानपूर्वक उसकी बातें सुनती और मनन करती। नरेन्द्र ने जब १६१६ के मार्शल-लॉ की घटनाओं का सविस्तार वर्णन किया तो उसके आंसू उमड़ आये और वह देश की राजनैतिक अवस्था पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने लगी। अभी राष्ट्रीयता की पुट उसके मस्तिष्क पर पक्की नहीं चढ़ी थी कि नरेन्द्र से विवाह की बात टूट गई। नरेन्द्र से उसका मेल-मिलाप बन्द हो गया। इससे वह अपने में कुछ कुछ बेचैनी अनुभव करने लगी। इसी समय डिप्टी साहब अपनी कूटनीति से नरेन्द्र के आचार-व्यवहार की निन्दा करने लगे। अब इन्सपैक्टर

नन्दलाल से उसके विवाह की चर्चा आरम्भ हुई। आरम्भ में तो मनोरमा ने इनकार किया, परन्तु धीरे धीरे नरेन्द्र की ओर से कोई प्रोत्साहन न पा और अपने पिता के मुख से उसकी निन्दा सुन, वह नरम पड़ गयी। इसी समय देहली के एक प्रसिद्ध ठेकेदार बनारसीदास के लड़के इन्द्रजीत से कमला की सगाई का समाचार छपा। इससे उसके विचार नरेन्द्र के विषय में सर्वथा ढीले पड़ गये।

एक दिन कमला उससे मिलने आई तो मनोरमा ने उसकी सगाई का समाचार हिन्दुस्तान टाइम्ज़ में छपा हुआ दिखाया। कमला का मुख लज्जा से लाल हो गया और वह आंखें नीचे किये चुप बैठी रही। मनोरमा ने कहा, "कमला बहन, तुम आगे निकल गई हो न ?"

"नहीं, तुम पीछे रह गई हो, बहन," कमला ने धीरे से कहा, "तुम्हारे पिता जी ने भी तो तुम्हारे विवाह की बात की है। जब तुम मानती ही नहीं तो फिर क्या हो ?"

"कोई मानने-योग्य बात भी तो हो। भला बताओ तो तुमने जीजा जी को देखा है ?"

कमला ने एक बार मनोरमा के मुख की ओर देखा और आंखें नीचे कर सिर हिला दिया। मनोरमा ने मुस्कराते हुए पूछा, "भला बताओ तो कैसे हैं ?"

"पिता जी कहते हैं बहुत अच्छे हैं।"

"और तुम क्या कहती हो ?"

"पिता जी मुझसे अधिक समझ-बूझ रखते हैं।"

इस उत्तर ने मनोरमा को चुपचाप डिप्टी साहब की राय के सम्मुख सिर झुकाने के लिये तैयार कर दिया।

मनोरमा और कमला दोनों का विवाह हो गया। कुछ दिनों का ही अन्तर पड़ा था। कमला के विवाह के कुछ दिन पूर्व की बात है कि नरेन्द्र के, विप्लव पैदा करने वाली पुस्तक लिखने के अपराध में, वारंट निकल गये।

नरेन्द्र को इस बात का पता चल गया था। इस कारण वह फ़रार हो गया। इस समाचार को नमक-मिर्च लगाकर मनोरमा को सुनाया गया। मनोरमा की मां ने सुना तो ईश्वर का धन्यवाद दिया कि उनकी लड़की गढ़े में गिरती गिरती बची। ऐसी स्थिति में मनोरमा का क्या होता वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी। मनोरमा को कुछ थोड़ा सा दुःख हुआ था, परन्तु निकट भविष्य में होने वाले विवाह के कामों में व्यस्त होने के कारण वह इस ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकी।

इन्द्रजीत और कमला परस्पर बहुत प्रसन्न थे, परन्तु मनोरमा का विवाह ऐसे पति के साथ हुआ था जिसकी पहली स्त्री मर चुकी थी। नन्दलाल मनोरमा की बहुत ख़ातिर और मान करता था। उसके मन में भय समाया हुआ था कि कहीं यह भी उसकी पहली स्त्री की भांति संसार न छोड़ दे। कहीं मनोरमा को छींक भी आजाती तो डाक्टर बुला लिया जाता था। नन्दलाल मनोरमा को प्रसन्न रखने के लिये प्रत्येक यत्न करता रहता था। मनोरमा को नन्दलाल से किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं थी। वह शारीरिक सुख में, मन के उन उद्‌गारों को जो नरेन्द्र से सम्पर्क के समय में उठा करते थे, भूलती जाती थी।

बनारसीदास इन्सपेक्टर नन्दलाल से बहुत अधिक धनवान था, इस पर भी भूषण-वस्त्र मनोरमा के पास अधिक थे। कमला को भूषणों का एक सैट मां के घर से मिला था और एक बनारसीदास ने बनवा दिया था। इसके विपरीत मनोरमा जब भी कमला से मिलने आती थी नई पोशाक और नये भूषण पहनकर आती थी। इससे कमला को कभी कुछ लज्जा अनुभव होती थी। इसके अतिरिक्त उसे कोई कष्ट नहीं था।

कमला जानती थी कि एक समय नरेन्द्र से मनोरमा के विवाह की चर्चा थी। इस कारण वह नरेन्द्र के विषय में कोई बात मनोरमा के सम्मुख नहीं कहती थी। मनोरमा के मन में नरेन्द्र के विषय में कभी कभी विचार उठते रहते थे। एक तो देश की परिस्थिति जल्दी जल्दी बदल रही थी और दूसरे डिप्टी साहब अपने दामाद को नरेन्द्र के सरकार

के प्रति बाग़ी होने का परिचय देते रहते थे। मनोरमा ऐसे अवसरों पर सोचती थी कि वह कहां होगा, क्या करता होगा। जब नरेन्द्र की पुस्तक 'सफल क्रान्तियां' छपी थी तो एक प्रति मनोरमा के पास भी आई थी। उस समय मनोरमा के मन में नरेन्द्र के प्रति विष भर दिया गया था, इस लिए उसने पुस्तक का पार्सल तक नहीं खोला था। वह ज्यों का त्यों उसकी मेज़ के दराज़ में रखा था। विवाह के कुछ दिन पूर्व उसे पता चला था कि पुस्तक के लिये उसके वारण्ट निकले हुए हैं। इस समाचार से उसके मन में यह जानने की इच्छा हुई थी कि वह क्या बात है जिसके लिये सरकार को उसके वारण्ट निकालने पड़े हैं। परन्तु विवाह समीप होने से घर में काम-काज अधिक था और बहुत से सम्बन्धी भी आये हुए थे, इस कारण पुस्तक पढ़ने का अवसर नहीं था। अब विवाह हुए दो मास हो चुके थे। जीवन फिर शान्त हो गया। वह उत्सुकता, उत्कंठा, नये जीवन के अनुमानों और अरमानों से उत्पन्न गुदगुदी मिट सी गयी थी। एकसार धारा-प्रवाह-सा बहता हुआ जीवन चल पड़ा था।

आज समाचार-पत्र में छपा था कि देहली में चालीस के लगभग नरेन्द्र नाम के व्यक्ति पकड़े गये और पता लगने पर कि उनमें एक भी 'सफल क्रान्तियां' पुस्तक का लेखक नहीं, सब छोड़ दिये गये। इस समाचार ने मनोरमा के मन में नरेन्द्र की पुस्तक पढ़ने की अभिलाषा फिर जाग्रत कर दी। इन्सपैक्टर साहब के काम पर जाते ही वह अपने पिता के घर में गयी और अपनी मेज़ के दराज़ से पुस्तक का पार्सल उठा लाई।

पुस्तक अति रोचक थी। विशेष रूप में रूस की सन १९१७ की क्रान्ति का वर्णन बहुत रोचक था। पुस्तक चार भागों में बंटी हुई थी। एक भाग में लेखक ने, संसार के इतिहास में जितनी भी क्रान्तियों का उल्लेख आया है, गिनाई थीं और उनके होने से पूर्व उन देशों की अवस्था और लोगों की मानसिक प्रवृत्ति का वर्णन किया था। इस भाग में उसने यह भी लिखा था कि क्रान्ति होने के पूर्व कौन कौन सी

परिस्थितियां उत्पन्न होनी आवश्यक हैं। पुस्तक के दूसरे भाग में उन योजनाओं पर प्रकाश डाला गया था जो भिन्न भिन्न क्रान्ति चलाने वालों ने चलाई थीं। प्रायः लोग कहते हैं कि किसी क्रान्ति के सफल अथवा असफल होने में ईश्वर का अथवा संयोग का हाथ होता है। नरेन्द्र यह नहीं मानता था। वह प्रत्येक सफलता में चतुराई और प्रत्येक असफलता में भूल देखता था। यह बात उसने घटनाओं के तारतम्य से सिद्ध की थी। तीसरे भाग में उसने क्रान्ति के पश्चात् सुव्यवस्था स्थापित करने के यत्नों का उल्लेख किया था। लेखक सफल क्रान्ति उसे ही मानता था जिसके परिणामस्वरूप देश अथवा जाति अपने लक्ष्य के समीप पहुंच गयी हो। चौथे भाग में उसने भारतवर्ष में राज्य पलट देने के दो-चार प्रयत्नों का उल्लेख किया था और उन सिद्धान्तों के आधार पर, जो उसने पुस्तक के पहले तीन भागों में सिद्ध किये थे, भारतवर्ष की क्रान्तियों की असफलता पर आलोचना की थी। यह सब इतनी रोचक और सरल भाषा में लिखा गया था कि मनोरमा पढ़ने बैठी तो सायङ्काल तक पढ़ती ही गयी।

नन्दलाल घर आया तो मनोरमा को एक पुस्तक पढ़ते देख चुपचाप कपड़े उतार चाय पीने के लिये तैयार हो गया। वह मनोरमा के पढ़ने में विघ्न डालना नहीं चाहता था। मनोरमा पुस्तक पढ़ने में इतनी लीन थी कि उसको पति के आने और आकर कपड़े बदलने का पता नहीं चला। नौकर चाय का सामान सम्मुख रख गया। अभी भी मनोरमा पढ़ रही थी। अंत में नन्दलाल को कहना पड़ा, "रानी, चाय का समय हो गया है।"

मनोरमा का ध्यान भंग हुआ। उसने जब पति को देखा कि वह कपड़े आदि बदलकर तैयार बैठा है तो घबराकर पुस्तक एक ओर रखकर बोली, "ओह! मुझे तो पता ही नहीं चला। आप कब आये हैं?"

इतना कह उसने चाय बनानी आरम्भ कर दी। नन्दलाल ने पूछा, "यह कौन पुस्तक है? बहुत रुचिकर प्रतीत होती है?"

"जी, नरेन्द्र बाबू की लिखी 'सफल क्रान्तियां' है। बहुत ही रोचक और शिक्षाप्रद है।"

"यह यहां कैसे आई? यह तो ज़ब्तशुदा है।"

"जी हां, नरेन्द्र बाबू कमला के बड़े भाई हैं न। उन्होंने मुझे भेजी थी।"

"कब?"

"जब छपी ही थी।"

"यह तुम्हें अपने पास नहीं रखनी चाहिये। हम सरकार के विरोधियों की पुस्तकें रख नहीं सकते।"

"यहां कोई देखेगा थोड़े ही। आप किसी से न कहियेगा।"

"पर यदि किसी ने देख ली तो मेरी नौकरी छूट जायगी।"

मनोरमा ने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु उसके मन में थोड़ी सी ठेस लगी। वह सोचती थी कि डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल की लड़की और एक इन्सपैक्टर-पुलिस की स्त्री होने पर भी वह इतनी स्वतन्त्र नहीं कि एक मित्र की पुस्तक पढ़ सके।

जब चाय समाप्त हो गयी तो नन्दलाल ने एक बार पुनः कहा, "इस पुस्तक को कहीं घर से बाहर भेज दो। यहां इसका रहना ठीक नहीं है। मनोरमा ने अब भी उत्तर नहीं दिया। नन्दलाल तो मित्रों सहित सिनेमा देखने चला गया और मनोरमा सोचने लगी कि पुस्तक को क्या करे। उसका मन इसे फेंक देने को नहीं चाहता था और उसने इसे अभी पढ़ना था। अंत में उसने यह निश्चय किया कि वह पुस्तक पढ़ेगी ज़रूर। यदि प्रत्यक्ष में नहीं पढ़ पायेगी तो चोरी-छिपे ही पढ़ेगी।

मनोरमा ने सोचा कि वे सिनेमा देखने गये हैं रात के दस बजे तक लौटेंगे। तक तक वह पढ़ सकती है। उसने घड़ी को पौने दस बजे का 'अलार्म' लगा दिया और उसे समीप रख पुस्तक पढ़नी आरम्भ कर दी।

[१७]

पुस्तक ने मनोरमा के मन को पुनः नरेन्द्र की ओर आकर्षित कर

दिया। जो विष उसके पिता ने उसके मन में भर दिया था वह कम होने लगा। ऐसा योग्य विद्वान क्या सत्य ही चरित्र-भ्रष्ट हो सकता है ? वह उसकी गणना वालटेयर और रूसो तथा लैनिन और ट्राटस्की के साथ करने लगी थी।

उसे विदित था कि नरेन्द्र यदि डिप्टी साहब का कहना मान लेता तो लाखों रुपये पैदा कर सकता था, परन्तु जानबूझकर उसने फ़कीरों का जीवन स्वीकार किया है। अब तो भारत सरकार का खुफ़िया-पुलिस का महकमा उसको पकड़ने के लिये सिर-तोड़ यत्न कर रहा था। कहां वह राजा बन सकता था, कहां अब सिर छिपाने को स्थान ढूंढना होगा। मनोरमा की सहानुभूति उसके प्रति बढ़ने लगी थी।

एक दिन, दोपहर के दो बजे, कमला उससे मिलने आई। मनोरमा नरेन्द्र के विषय में सोच रही थी। कमला ने उसे चिन्तित देख पूछा, "मनोरमा बहन, आज उदास हो ?"

मनोरमा का स्वप्न भंग हुआ। उसने सचेत हो कहा, "ओह कमला, आई हो। आओ बैठो।"

"क्या बात है आज मुख मलिन हो रहा है ?"

"कुछ विशेष बात नहीं है," मनोरमा ने मुख पर मुस्कराहट लाते हुए कहा, "इस समय अवकाश है तुम्हें ? मेरा विचार चित्र देखने जाने का है।"

"कहां चलोगी ?"

"ओडियन के दो पास आये हुए हैं। चलो चलें।"

"जीजा जी नहीं जा रहे क्या ?"

"नहीं, उन्हें कुछ काम हो गया है। वे तो कहते थे कि अकेली चली जाओ, परन्तु मेरी इच्छा नहीं हुई। अब तुम आगई हो तो चलो देख आयें।"

"मैं टेलीफ़ोन पर उनसे पूछ लूं ?"

कमला मोटर में आई थी। उसी में सवार हो दोनों ओडियन जा

पहुंचीं। वहां पहुंच कमला ने ड्राइवर को मोटर छः बजे लाने के लिये कह दिया। दोनों मोटर से उतर ओडियन के बरामदे में जा खड़ी हुईं। मनोरमा अपनी 'पर्स' से पास निकाल रही थी और कमला बाहर की ओर देख रही थी। एकाएक कमला चौंक उठी और मनोरमा को वहीं छोड़ बरामदे से निकल सड़क के किनारे एक तांगे के पास आ खड़ी हुई। उस में से नरेन्द्र उतर रहा था। जब नरेन्द्र तांगे वाले को भाड़ा दे चुका तो उसने पुकारा, "भैया।"

नरेन्द्र ने घूमकर देखा। कमला को देख पूछने लगा, "यहां क्या कर रही हो?"

कमला ने उत्तर देने के स्थान पर पूछ लिया, "भैया, कहां रहते हो अब?"

"मैं कलकत्ते गया था।"

"क्यों?"

"पगली! तुम्हारी यह क्यों नहीं गयी। सुना है तुम्हारा विवाह हो गया है?"

कमला ने लज्जा से भूमि की ओर देखते हुए कहा, "किस से सुना है?"

"इलस्ट्रेटेड वीकली में छपा देखा था?"

"फिर आशीर्वाद नहीं भेजा।"

"ओह! कमला, क्षमा करना। यथार्थ बात यह थी कि उसी पत्र में किसी और के विवाह का समाचार भी छपा था। उसे पढ़ मुझे दुख हुआ था। इसी से अपना कर्तव्य भूल गया। बहन, सदा सौभाग्यवती रहो। अब किधर जाना है तुम्हें?"

"हम चित्र देखने आई हैं।"

"हम? और कौन है साथ?"

"वह देखो!" कमला ने मनोरमा की ओर जो अभी भी बरामदे में खड़ी थी संकेत किया।

"अच्छा मनोरमा है। उसे मेरी बधाई देना। लो अब मैं जाता हूं।

चाचा जी तथा चाची जी को नमस्ते कहना।"

"घर नहीं चलियेगा ?"

"इस समय अवकाश नहीं है। फिर कभी आऊंगा।"

इतना कहते कहते नरेन्द्र वहां से चल पड़ा। उसने मनोरमा को इधर आते देख लिया था। मनोरमा जब तक कमला के पास पहुंची नरेन्द्र आवाज़ की पहुंच से दूर हो चुका था। मनोरमा ने पूछा, "तुम्हारे बड़े भैया थे क्या ?"

"हां, तुम्हें बधाई देते थे।"

"अपने मुख से देते लज्जा लगती थी क्या ?"

"कहते थे, जल्दी का काम है। फिर कभी मिलूंगा।"

मनोरमा चुप रही। दोनों हॉल के भीतर एक 'बॉक्स' में बैठ गयीं। मनोरमा ने बात फिर आरम्भ करते हुए कहा, "फिर घर आगये हैं ?"

कमला कुछ सोच रही थी। मनोरमा का प्रश्न उसने समझा नहीं। पूछने लगी, "क्या कहा ?"

"वे घर पर ठहरे हैं ?"

"नहीं। माता जी और पिता जी को नमस्ते कहला भेजी है।"

"ठीक है। हो सके तो उनको कहला देना कि पुलिस उनकी खोज में है।"

"यह उन्हें मालूम है। इस पर भी वे कहते थे कि उन्हें डर नहीं लगता।"

कुछ देर तक दोनों चुप रहीं। अभी चित्र आरम्भ नहीं हुआ था। मनोरमा ने फिर पूछा, "बातें तो बहुत देर तक करती रही हो। कुछ और कहते थे ?"

"कहते थे हम दोनों के विवाह का समाचार 'इलस्ट्रेटेड वीक्ली' में पढ़ा था"

"तो बधाई ही लिख भेजते," मनोरमा ने कहा। वह मन में सोच रही थी कि पक्का गंवार है।

कमला ने सामने देखते हुए कहा, "मैंने पूछा था। इस पर कहने लगे कि दूसरे विवाह के समाचार से मन में दुख हुआ था। इससे अपना कर्तव्य भूल गया था। क्षमा मांगते थे।"

"दुख हुआ था? मेरे विवाह के समाचार से? पूछना था क्यों? उनका मुझसे क्या मतलब था? तुमने कहा नहीं कि मैं बहुत प्रसन्न हूं?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"इससे शायद उन्हें और दुख होता।"

मनोरमा चुप हो विचार-मग्न हो गयी। तस्वीर आरम्भ हो गयी। दोनों चुपचाप देखती रहीं। विश्राम के समय मनोरमा ने कहा, "तस्वीर बहुत पसन्द है, कमला?"

"अभी मुख्य चित्र तो आरम्भ ही नहीं हुआ।"

"मेरा चित्त लग नहीं रहा। मैं जाना चाहती हूं।"

"जैसा मन चाहे। चलो चलें।"

कमला यद्यपि आयु में मनोरमा से कम थी तथापि उसके भावों को समझ रही थी। मनोरमा को समीप आते देख नरेन्द्र के भाग खड़े होने से भी उसे अचम्भा हुआ था।

[१८]

'भारत छोड़ो' के विषय पर संसार भर में चर्चा थी। अमेरिका इंगलैंड का युद्ध में सब से बड़ा सहायक था इसलिये अमेरिका के प्रधान ने इस आन्दोलन के तत्व को जानने के लिये कई उपाय किये। जापान के विरुद्ध युद्ध की तैयारी में लाखों की संख्या में अमेरिकन सिपाही हिन्दुस्तान को आरहे थे। इस कारण भी अमेरिका के प्रधान को हिन्दुस्तान में शान्ति बनाये रखने की भारी आवश्यकता थी। महात्मा गांधी का कहना था कि जब तक हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी राज्य है तब तक जापान के आक्रमण को भली भांति रोकना कठिन है। हिन्दुस्तान की जनता जब यह अनुभव करेगी कि हिन्दुस्तान उसका है तब वह हिन्दुस्तान की

रक्षा के लिये सब कुछ स्वाहा करने को तत्पर हो जायेगी। कुछ अमेरिकन लोगों का कहना था कि विदेशी फ़ौज़ों का हटा लेना जापान को चुपचाप हिन्दुस्तान पर अधिकार जमा लेने का निमंत्रण देना होगा। महात्मा जी का उत्तर यह था कि इंगलैंड और अमेरिका की फ़ौज़ों को यहां रहकर युद्ध-सम्बन्धी तैयारी करने में रोक नहीं डाली जायेगी। इस पर भी इंगलैंड के प्रधान मन्त्री मिस्टर चर्चिल को 'भारत छोड़ो' की बात पसन्द नहीं थी और उसने अमेरिका के प्रधान को सन्तुष्ट करा दिया था कि महात्मा गान्धी के आन्दोलन से हिन्दुस्तान की शान्ति भंग नहीं होगी।

कांग्रेस के आन्दोलन को निर्मूल करने के लिये भारत सरकार ने तीन शक्तियों को कांग्रेस के विरोध में खड़ा कर दिया। प्रथम मुसलमान को। मुस्लिम लीग और इसके नेता जिन्हा साहब युद्ध के पूर्व बहुत ही साधारण संस्था तथा व्यक्ति माने जाते थे। इनको हिन्दुस्तान में मान और प्रतिष्ठा देकर इन्हें कांग्रेस का विरोधी बना दिया। कांग्रेस को बार बार कहा गया कि मुस्लिम लीग से समझौता कर लो तो पीछे उनकी बात सुनी जाएगी। दूसरी ओर मुस्लिम लीग को आश्वासन दिया गया कि जब तक वे मान नहीं जाते भारत को स्वराज्य नहीं मिलेगा। दूसरे सरकारी नौकर और धनी-मानी लोग भी कांग्रेस के विरोध में खड़े कर दिये गए। आर्थिक नीति को ऐसे चलाया गया कि धनी लोगों को सरकार का काम करना और युद्ध के लिये सामान बनाना अधिक रोचक प्रतीत होने लगा। तीसरी शक्ति जो सरकार ने कांग्रेस के विरुद्ध खड़ी की वह कम्यूनिस्ट पार्टी थी। रूस पर जर्मन आक्रमण ने कम्यूनिस्टों को अंग्रेज़ों का मित्र बना दिया। इस मित्रता से लाभ सरकार ने उठाया। हजारों रुपये महीना इन लोगों के हाथ में इस कारण दिया गया कि वे कांग्रेस के आन्दोलन का प्रभाव मज़दूरों पर न होने दें।

इस सब से कांग्रेस के नेता विचलित नहीं हुए और कांग्रेस की कार्यकारिणी ने महात्मा जी का 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास कर दिया। इस

विषय पर बनारसीदास और नरेन्द्र में भी विचार-विनिमय हुआ। बनारसीदास कांग्रेस के इस आन्दोलन में अपने धन से सहायता देना चाहता था। वीणा बनारसीदास से इस विषय में बातचीत कर चुकी थी। वीणा का कहना था कि कांग्रेस ब्रिटिश सरकार पर अंतिम प्रहार करने जा रही है और स्वराज्य मिल जाना निश्चित है। आन्दोलन में रुपये की आवश्यकता पड़ेगी। बनारसीदास ने कहा था कि विचार करूंगा। नरेन्द्र ने जब सब बात सुनी तो कह दिया, "रुपया देने से मैं आपको रोकता नहीं हूं। मुझे आपको इसमें सहायता करते देख खुशी होगी, परन्तु मुझे इस आन्दोलन के सफल होने में आशा नहीं है। अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर विवश करने के लिये न तो कोई योजना है और न ही किसी प्रकार की तैयारी। मैं, स्वयं यत्न न करने वालों के लिये, भगवान की सहायता में विश्वास नहीं रखता।"

"यदि तुम्हें इस आन्दोलन के सफल होने में विश्वास नहीं तो मुझे इसके लिये धन देने को क्यों कहते हो?"

"भूल है नेताओं की। वे लोग बिना किसी प्रकार की योजना बनाये, अपने भक्तों की जान जोखिम के काम में लगा रहे हैं। कार्यकर्ताओं की न तो भूल है, न दोष। उनके साहस, त्याग और दृढ़ संकल्प की प्रशंसा मैं जितनी करूं कम है और उनके साहस और उत्साह की सराहना में जो कुछ भी व्यय किया जाय व्यर्थ नहीं है।"

बनारसीदास ने कहा, "तुम महात्मा गान्धी की नीति की सदा आलोचना करते रहते हो। उनसे जाकर एक बार मिल क्यों नहीं लेते? देखो नरेन्द्र, मैंने यह धन देश को स्वतन्त्र कराने में व्यय करना है। यदि तुमसे मेरी भेंट न होती तो शायद यह सब कुछ मैं महात्मा गान्धी के चरणों में रख देता। दस हजार रुपया मैं इन्द्रजीत को कारोबार चलाने के लिये देने वाला हूं। अपनी बहन लीलावती के लिये एक सौ रुपया मासिक का प्रबन्ध कर दिया है। अपने लिये मैंने अलमोड़ा में एक कुटिया बनवा ली है। शेष मैं देश के नाम पर दे देना चाहता

हूं। तुम्हारी बातों से मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हो गया है कि कांग्रेस की नीति देश में जागृति उत्पन्न करने पर भी ध्येय तक ले जाने के लिए सबल नहीं है। जब मैं तुम्हारी युक्तियों को ठीक समझ लेता हूं तो तुम्हारी राय के विरुद्ध चलने को जी नहीं चाहता। मेरी राय है कि तुम सेवाग्राम आश्रम चले जाओ और गांधी जी से मिलकर बातचीत कर लो।"

नरेन्द्र ने बताया, "मैंने पुस्तक की एक प्रति महात्मा जी की सेवा में भेजी थी। उसके साथ एक पत्र भी लिखा था। पत्र का उत्तर महात्मा जी के मंत्री ने भेजा है। उसमें लिखा है कि पुस्तक का लेखक भारतवर्ष की परिस्थिति से अनभिज्ञ प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त महात्मा जी के विचार में वह स्वाधीनता वास्तविक स्वाधीनता नहीं होगी जो हिंसा-मार्ग पर चलकर प्राप्त की जायेगी। यदि एक जाति अथवा एक छोटी सी श्रेणी के राज्य को स्थापित करना होता तब तो बल-प्रयोग अर्थात् हिंसात्मक उपायों की आवश्यकता हो सकती थी। महात्मा जी ऐसा नहीं चाहते। वे तो प्रत्येक नर-नारी के लिए स्वतन्त्रता चाहते हैं जिसकी प्राप्ति केवल अहिंसात्मक उपायों से ही सम्भव है।"

बनारसीदास का कहना था, "इस पर भी मैं समझता हूं कि महात्मा जी से तुम्हारा मिलना और विचार-विनिमय करना लाभकारी ही होगा।"

अतएव नरेन्द्र महात्मा जी से मिलने के लिये वर्धा गया। वहां महात्मा जी से भेंट नहीं हो सकी। वे कलकत्ते रवाना हो गये थे। नरेन्द्र वहां से इलाहाबाद और फिर कलकत्ता पहुँच गया। वहां पर भी उसे कई दिन तक ठहरना पड़ा। अंत में महात्मा जी से भेंट हुई। नरेन्द्र उसी समय कलकत्ते से लौटा था जब कमला से उसकी ओडियन के सम्मुख भेंट हुइ थी। वह स्टेशन से सीधा तांगे में आ रहा था।

उसी रात नरेन्द्र बनारसीदास से मिलने गया। रात के बारह बजे कोठी के पिछवाड़े की दीवार फांदकर एक बग़ल के दरवाजे को अपने

पास से ताली लगाकर कोठी में घुस गया। वह सीधा बनारसीदास के सोने के कमरे में पहुंच गया। दरवाज़े में ताली लगने का शब्द सुन बनारसीदास उठकर तख्तपोश पर बैठ गया और हाथ में टॉर्च लेकर अन्दर आने वाले को उसके प्रकाश में देखने के लिये तैयार हो गया। ज्यों ही नरेन्द्र ने दरवाज़ा खोला, बनारसीदास ने टॉर्च से प्रकाश उसके मुख पर डाला और उसे पहचान टॉर्च बुझा, नरेन्द्र को दरवाज़ा बन्द करने को कह दिया। दरवाज़ा बन्द होने पर बनारसीदास ने कमरे में प्रकाश कर दिया और नरेन्द्र को बैठने को कहा। नरेन्द्र तख्तपोश के एक किनारे पर बैठ गया। बनारसीदास ने पूछा, "सुनाओ, भेंट हुई?"

"जी, परन्तु लाभ कुछ नहीं हुआ। वर्धा से मुझे इलाहाबाद और इलाहाबाद से कलकत्ता जाना पड़ा। कई दिन की प्रतीक्षा के पश्चात् अवसर मिला। मैंने अपना परिचय दे पूछा, 'आपको पुस्तक मिली होगी?'

'मैंने उस पर अपनी सम्मति भेज दी थी। आपको मिली है या नहीं?'

'जी। परन्तु उससे संतोष न होने से आपको कष्ट देने चला आया हूं। मैं यह तो मानता हूं कि अहिंसा-मार्ग सर्वोत्तम है और अहिंसात्मक ढंग से होने वाली क्रान्ति बहुत ही शुभ होगी। परन्तु क्या यह सम्भव है? मनुष्य में लोभ-मोह की उपस्थिति में ये उपाय कैसे सफल हो सकते हैं?'

'यह तो मैं आप लोगों से पूछता हूं। हिन्दुस्तान में हिंसा-मार्ग से सफलता प्राप्त करने की शक्ति भी है क्या? इसके अतिरिक्त मैं तो वह स्वराज्य स्वराज्य ही नहीं समझता जो बल-प्रयोग से प्राप्त हो। स्वेच्छा से जब सब मिलकर राज्य करेंगे वह स्वराज्य होगा। हिंसा-मार्ग से जो सफलता मिली दिखाई देती है, वह वास्तविक सफलता नहीं है। १६१८ की विजय यदि विजय होती तो आज पुनः युद्ध न छिड़ जाता। दूसरों के हृदयों को जीतने से विजय होती है।'

"मैंने फिर निवेदन किया, 'जहां तक विजय का सम्बन्ध है, वह तो

१६१८ में हो गयी थी, परन्तु वार्सेलूज़ की संधि युद्ध में हिंसा-अहिंसा का परिणाम नहीं थी। वह तो अंग्रेज़ और फ्रान्सिसियों की लोभी प्रकृति का परिणाम माननी चाहिये। लोभ और क्रोध के वश की गयी यह संधि ही वर्तमान युद्ध का बीज कही जा सकती है। पिछले युद्ध के विजेताओं में धोखा, फ़रेब, कूटनीति, लोभ, मोह, क्रोध इत्यादि दुर्गुण अभी भी विद्यमान थे।'

'इसका अर्थ क्या यह नहीं कि इन दुर्गुणों को दूर करने से ही युद्ध की संभावना मिट सकती है? इन दुर्गुणों को मिटाने के लिये ही तो मन की पवित्रता और अहिंसा-मार्ग की आवश्यकता है।'

"मेरा कहना था, 'इन दुर्गुणों को दूर करने के लिये, मनुष्य सभ्यता-युग के प्रभात काल से यत्न कर रहा है। संसार भर के साधु-संत और महात्मा इसको मिटाने के लिये प्रचार कर रहे हैं, परन्तु मनुष्य अभी भी वहीं खड़ा है जहां रामायण और महाभारत के काल में था। संसार में सुख और शांति स्थापित करने के लिये इतने काल तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। भगवान राम और कृष्ण ने इसका अनुभव किया था। जब दुष्ट लोग समझाने से नहीं समझते तब बल से उनको सीधे मार्ग पर लाने की आवश्यकता होती है। आप तीन बार अहिंसात्मक आन्दोलन चलाकर ब्रिटिश जाति को अपना कर्तव्य पालन करने के लिये सचेत कर चुके हैं। वह जाति सचेत नहीं हुई। अभिमानवश वह अपना अन्याययुक्त राज्य अभी भी यहां रखे हुए है। ऐसी अवस्था में क्या हम तब तक प्रतीक्षा करें जब तक अंग्रेज़ अपने काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि दुर्गणों को छोड़कर साधु नहीं बन जाते।'

"इस पर महात्मा जी ने कहा, 'मेरा मन तो स्पष्ट है। यह मैं सर्व-साधारण के सम्मुख रख चुका हूं। यदि यह आपको स्वीकार नहीं तो आप अपने मार्ग पर जाने के लिये स्वतंत्र हैं। मैं इस मार्ग में सहायक नहीं हो सकता।'

"मैंने अन्तिम प्रयत्न करते हुए कहा, 'आपको भगवान ने प्रभाव और

प्रभुत्व दिया है। अपने पूर्व जन्म के कर्मों से अथवा परमात्मा की अपार कृपा से आप में वह शक्ति आगयी है जिससे आप क्रान्ति उत्पन्न कर सकते हैं। मैं समझता हूं कि यह शक्ति रखते हुए भी यदि आप उचित मार्ग ग्रहण नहीं करते तो सफलता प्रायः असम्भव है। आप इस ईश्वर-प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करें— अच्छे ध्येय के लिये और उचित ढंग से।'

"महात्मा जी ने मुस्कराते हुए, मुझे विदा करने के लिये हाथ जोड़ दिये।"

[१६]

नरेन्द्र ने जब महात्मा जी से अपनी भेंट का वृत्तान्त बताया तो बनारसीदास बहुत ही द्विविधा में पड़ गया। नरेन्द्र ने उसकी अवस्था को देख कहा, "मैं आपकी परेशानी को समझता हूं। वास्तव में भारत वर्ष के अधिकांश विद्वान महात्मा जी की इस अहिंसात्मक नीति को सर्वथा और सर्वत्र ठीक नहीं मानते। इस पर भी जब वे महात्मा जी के कार्यों और विचारों का समर्थन करते हैं तो वे अपने को प्रकाश में लाकर ख्याति प्राप्त करने के लोभ से करते हैं। आपकी समस्या तो यह है न कि आपको ख्याति-प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं है। इससे बिना महात्मा जी के सिद्धान्तों के क्रियात्मक रूप को समझे आप उनको चलाने के लिये रुपया नहीं देना चाहते। बम्बई और कलकत्ता के बीसियों लख-पति महात्मा जी को धन देते हैं, परन्तु साथ ही सत्य और अहिंसा की हंसी करते हैं। विदेशी कपड़े का व्यापार करने वाले और कपड़े की मिलों के मालिक स्वयं खद्दर पहनकर महात्मा जी के भक्त होने का श्रेय प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार रूई और सोना-चान्दी वगैरह में सट्टा कर रुपया कमाने वाले अपने को देश-भक्त और गरीबों का हित-चिन्तक बन घूमने की अभिलाषा रखते हैं। वे और इसी प्रकार के अन्य लोग उधार लिये बड़प्पन से बड़े कहाने की इच्छा रखने वाले अपने विचार और कार्य से महात्मा जी के विरुद्ध होते हुए भी उनका विरोध नहीं करते। आपको ऐसा करने की लालसा नहीं इस कारण आप परेशान हैं कि क्या करें?

"इसके उत्तर में मैं आपको अपने कलकत्ते में हुए एक और अनुभव का वर्णन करता हूं।

"मैं मुग़लसराय स्टेशन से कलकत्ते के लिये हावड़ा मेल में सवार हुआ। गाड़ी जब पटना पहुंची तो एक टिकट चैक करने वाला आया। उसके साथ दो लोग और थे। वे सफ़ेदपोश होते हुए भी पुलिस के कर्मचारी प्रतीत होते थे। डिब्बे में मेरे सामने की सीट पर एक बंगाली बैठा था। वह उन लोगों को देख मेरी ओर बहुत ध्यान से देखने लगा। टिकट चैकर ने पूछा, 'कहां से आ रहे हैं?'

"मैंने बताया, 'इलाहाबाद से। मुग़लसराय पर गाड़ी बदली है।'

"टिकट चैकर ने मेरा टिकट देखा और प्रश्न भरी दृष्टि से साथ के एक सफ़ेदपोश की ओर देखा। उसने उत्तर देने के स्थान आंख से डिब्बे से बाहर चलने का संकेत किया। टिकट चैकर और दोनों सफ़ेद-पोश डिब्बे के बाहर होगये। इसी समय गाड़ी ने सीटी बजाई और चल पड़ी। ज्यों ही गाड़ी हिली कि मैं बिस्तर की चादर, जो अपने बर्थ पर बिछाये हुए था, उठाकर पिछली तरफ़ से गाड़ी से उतर गया। पिछली तरफ़ एक गाड़ी मुग़लसराय जाने वाली खड़ी थी। मैं भागकर उसके एक डिब्बे में सवार हो गया। जब मैं कलकत्ते की गाड़ी से उतरकर मुग़लसराय वाली गाड़ी में सवार हो रहा था, वह बंगाली जो डिब्बे में मेरे सामने की सीट पर लेटा हुआ था उठकर मुझे भागते हुए देख रहा था।

"मैं मुग़लसराय पहुंचकर ट्रंक लाइन से होकर दो दिन देरी से कलकत्ता जा पहुंचा। वहां महात्मा जी से भेंट के लिये कई दिन ठहरना पड़ा। एक दिन चौरंगी से बालीगंज जाने के लिये ट्राम में सवार हुआ तो वही बंगाली जो पटना स्टेशन पर मेरे डिब्बे में सवार था, मेरे पास आ बैठा। मुझे देखते ही अचम्भे में बोल उठा, 'आप?'

"मैं चुपचाप अपनी सीट से उठ, ट्राम के नीचे उतर आया। वह भी मेरे साथ ही उतर पड़ा। मैं पैदल ही एक तरफ़ को चल पड़ा।

वह मेरे पीछे था। जब मैंने देखा कि बिना लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये उससे छुटकारा नहीं पा सकता तो मैं ठहर गया। वह मेरे समीप आकर बोला, 'मिस्टर, भागो नहीं। मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं। मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूं।'

'मैंने पूछा, 'बताइये?'

'उसने कहा, 'मेरे घर पर चलिये। यहां बाज़ार के किनारे खड़े हो बातचीत नहीं हो सकती। मैं जानना चाहता हूं कि क्या आप भी उसी मार्ग के यात्री हैं जिसका मैं हूं?'

'बिना आपका मार्ग जाने कैसे बता सकता हूं?'

"चलिये न, मेरे घर। यहां समीप ही है। मैं एक बात का आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं पुलिस से सम्बन्ध नहीं रखता।'

"मैंने देखा कि उसके साथ जाये बिना और कोई चारा नहीं। यहां बाज़ार में हल्ला करने से मेरा पकड़ा जाना निर्विवाद था। मैंने सोचा कि यदि उसे मुझे फंसाना ही है तो यहां बाज़ार में पकड़वा सकता है। उसे मुझे घर ले जाने की क्या आवश्यकता है। दस कदम पर दो कान्स्टेबल खड़े थे। संकेत-मात्र से पकड़वा सकता था।

"मैं उसके साथ चल पड़ा। हम एक गली में घुस गये। वहां एक मकान में जीना चढ़कर पहली मंजिल पर पहुंचे। वहां हम एक कमरे में चले गये। कमरे में एक बड़ी सी चटाई बिछी थी। शेष वहां कुछ भी नहीं था। मकान भी चुपचाप प्रतीत होता था, जैसे वहां कोई रहता नहीं है। इस पर भी मकान की सफाई भली भांति हुई थी।

"हम दोनों उस बिछी चटाई पर बैठ गये। बंगाली महाशय ने पूछा, 'चाय पीजियेगा?' मैंने इनकार किया, परन्तु उसने आवाज़ दे ही दी, 'मोहन, दो प्याला चाय लाओ।'

"मैंने कहा, 'मुझे बहुत ज़रूरी काम है। आप आज्ञा करिये क्या कहना चाहते हैं?'

"इस पर उसने कहा, 'आप जानना चाहते हैं कि आपके गाड़ी से

उतर जाने पर क्या हुआ ?'

'क्या हुआ ?'

'ज़रा चाय पी लें तो धैर्य से बातचीत होगी। बात यह है कि जो कुछ मैंने उस दिन देखा, उससे मेरे मन में विश्वास हो गया कि आप कोई बड़ी मुर्गी हैं, और मैं आपका परिचय पाने के लिये बेताब हो उठा था। आज आपसे भेंट हुई तो मैंने अवसर को हाथ से जाने नहीं दिया। मैं भी एक आवश्यक कार्य से जा रहा था, परन्तु आपसे भेंट तो और भी आवश्यक और मनोरंजक है। अतएव मैंने आपके साथ ही आजाना आवश्यक समझा। लीजिये, चाय आगयी है।'

"विवश मुझे चाय पीनी पड़ी। उसने चाय की सुरकी लगाते हुए कहा, 'जब आप गाड़ी से नीचे उतर गये तो मैं पूर्ण घटना पर सोचने लगा। मुझे विश्वास हो गया कि टिकट चैकर के साथ खुफ़िया-पुलिस के आदमी थे। इससे यह समझ लेना ग़लत नहीं था कि आप फ़रार हैं। मैंने यह भी अनुमान लगाया कि आप चोरी, डाका या किसी ऐसे ही चरित्र-सम्बन्धी दोष के अपराधी नहीं हैं।

'आसनसोल स्टेशन पर पहुंचते ही वही टिकट चैकर डिब्बे में आया और आपको लापता देख चकित रह गया। मुझसे पूछने लगा, 'वह किस स्टेशन पर उतर गया है ?'

'मैंने बताया, 'मैं तो सो रहा था। कह नहीं सकता।'

'इसी समय वे दो सफ़ेद-पोश भी आगये और आपस में गम्भीरता-पूर्वक बातें करते हुए नीचे उतर आये। हावड़ा स्टेशन पर तो पुलिस वालों की पलटन खड़ी थी, और एक एक को देखकर बाहर जाने देते थे। मुझे विश्वास हो गया कि वे सब आपका स्वागत करने के लिये खड़े थे। आख़िर आपके स्वागत का इतना समारोह क्यों था और आप इस समारोह से शर्मा कर कहां गये थे ?'

"मैं कुछ देर तक मन में मनन करता रहा और उत्तर देने का निश्चय नहीं कर सका। इस पर उस महाशय ने फिर कहा, 'आप डरते

हैं कि मैं आपको फंसा न दूं, कहीं। ठीक है न ? परन्तु यह तो बिना आपका इतिहास जाने भी कर सकता था और फिर इसके लिये घर पर लाने की क्या आवश्यकता थी ? मैं तो केवल यह जानना चाहता हूं कि आप कौन हैं। यदि मेरा अनुमान ठीक है कि आप किसी राजनैतिक कार्य से सम्बन्ध रखते हैं तो मैं और कुछ नहीं पूछूंगा। आपसे सम्बन्ध पैदा करना मेरा और मेरे साथियों का कर्तव्य होगा। आपके मन में विश्वास दिलाना हमारा काम है न कि आपका।'

"इस पर मैंने केवल इतना परिचय दिया, 'मैंने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम 'सफल क्रान्तियां' है। बस यही मेरा अपराध है।'

"इस परिचय से वे बंगाली महाशय फड़क उठे और तुरन्त मोहन को बुलाकर बंगला में कुछ कहने लगे। मैं तो केवल 'सफल क्रान्तियां' शब्द ही समझ सका। मोहन जो पहले चाय दे गया था अब खाली प्याले उठाकर चला गया और एक मिनट के भीतर ही मेरी पुस्तक की एक प्रति उठाकर ले आया।

"समीप बैठे बंगाली महाशय ने मोहन के हाथ से पुस्तक पकड़ते हुए कहा, 'इस पुस्तक के लेखक आप हैं ? मैं इसको तीन बार पढ़ चुका हूं और अब चौथी बार पढ़ रहा हूं। आप इस पुस्तक के लिखने से हमारी पूजा के योग्य हो गये हैं। जैसा मैंने आपसे कहा है न कि आपके मन में विश्वास पैदा करना अब हमारा काम हो गया है, अतः चलिये मैं आपको गली के बाहर तक छोड़ आऊं। जब हमारा परस्पर विश्वास हो जायेगा तो हम इस पुस्तक में लिखी बीसियों समस्याओं पर वार्तालाप कर सकेंगे।'

"इतना कह बंगाली महाशय उठ खड़े हुए। मैं भी उठ पड़ा। वे मुझे गली के बाहर लाकर ट्राम में चढ़ाकर चौरंगी तक छोड़ गये। मैं इस घटना से चिन्ता में पड़ गया। मैं नहीं जानता था कि इसका क्या परिणाम होगा।

"इसके पश्चात् मैं आठ दिन तक कलकत्ते में रहा और उस महा-

शय और उनके साथियों ने इतना मुझे अपने समीप कर लिया है कि मैं अब अपने को उनमें से एक समझता हूं। कई बार मैं उनसे मिला हूं और अपनी योजना पर उनसे वार्तालाप कर चुका हूं। उन्होंने भी अपनी योजना बताई है और कुछ बातों को छोड़कर हम परस्पर सहमत हैं। जब मैंने उनको बताया कि मैं महात्मा जी से मिलने आया हूं तो उन्होंने कहा, 'महात्मा जी का जातीय उत्थान में अपना स्थान है। भारतवासियों में स्वदेश में रुचि उनके आन्दोलन से उत्पन्न हुई है। परन्तु यह देश को स्वाधीनता तक ले जाने में पहला और एक काम है। हमें इससे आगे चलना है। महात्मा जी को अपना कार्य पूर्ण करने के लिये छोड़ देना चाहिये। हमारा उनसे विरोध नहीं है। इस पर भी हम आगे चलने से रुक नहीं सकते। न ही हम आशा करते हैं कि एक अस्सी वर्ष के वृद्ध हमारे साथ साथ चल सकेंगे।'

"इस पर मैंने कहा, 'उनका प्रभाव जनता पर इतना है कि कोई दूसरा कार्यक्रम चल नहीं सकता।'

"वे बंगाली महाशय, जिसे उनके साथी गुरु जी कहकर पुकारते थे, बोले, 'इसमें कारण कार्यकर्ताओं के मन का भ्रम है। क्रान्ति के उपासक यह समझते हैं कि महात्मा जी का कहना उनके विरोध में है। हम इस बात को गलत समझते हैं। जब महात्मा जी कहते हैं कि हिंसात्मक उपायों के लिये भारतवर्ष तैयार नहीं तो वे ठीक ही तो कहते हैं। जब वे कहते हैं कि मैं तो हिंसात्मक उपायों को ठीक नहीं समझता, तब भी वे ठीक ही कहते हैं। आखिर उनसे हम यह आशा नहीं कर सकते कि वे अब ऐसा पाठ पढ़ाने लगेंगे जिसको उन्होंने पढ़ा ही नहीं है। हमें देश को अहिंसा-मार्ग और हिंसा-मार्ग दोनों के लिये तैयार करना चाहिये। जन-साधारण अहिंसा-मार्ग के हामी होंगे। उनके नेता महात्मा गान्धी रहेंगे। हिंसा-मार्ग के लिये तो कुछ लाख लोग ही चाहियें। दोनों ओर से यत्न जारी रहना चाहिये और शत्रु को इन दोनों आन्दोलनों में कुचल डालना चाहिये। अंत में शान्ति स्थापित करने वाले तो अहिंसा-

मार्ग वाले होंगे। सेना को उनके अधीन हो जाना पड़ेगा।'

"इस पार्टी में एक सेठ कुंजबिहारी भी सम्मिलित हैं। इस समय एक अरब रुपये से ऊपर की सम्पत्ति के मालिक हैं। उन्होंने अपनी पूर्ण सम्पति पार्टी के हाथ में दे रखी है। मेरी सेठ साहब से भी भेंट हुई है। इतना धन-सम्पत्ति रखते हुए भी वे कहने लगे, 'मैं समाजवाद में विश्वास रखता हूं। रूस की अर्थ-प्रणाली सर्वोत्तम है, परन्तु हिन्दुस्तान में तो उसके दोषों को भी दूर करना होगा।'

"मैंने पूछा, 'यहां हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम समस्या की उपस्थिति में सर्व-साधारण का राज्य कैसे हो सकता है?"

"इस पर वे बोले, 'सर्व सम्मति से तो कभी भी कोई बात नहीं होती। हिन्दुस्तान जैसे देश में किसी भी विषय पर एक मत होना असम्भव है। हां, बहु-मत हो सकता है और बहु-मत से राज्य-प्रबन्ध होना चाहिये।'

"मैंने अभी आपका परिचय उनसे नहीं दिया और न ही अभी यह बताया है कि उनकी भांति कोई और सज्जन भी हैं जो अपनी पूर्ण सम्पत्ति स्वराज्य-कार्य के लिये देने का विचार रखते हैं। मेरा आपसे यह निवेदन है कि आप अपनी शक्ति उनके साथ मिला सकें तो बहुत अच्छी बात होगी। इसके लिये आप एक बार कलकत्ते चलिये या सेठ साहब को यहां बुलाया जाय तो बात ठीक तरह से हो सकेगी।"

[२०]

ओडियन सिनेमा से कमला और मनोरमा टांगे में सवार हो बार्बर रोड पर जा पहुंची। वहां मनोरमा को छोड़ कमला अपने घर चली गयी।

मनोरमा चादर ओढ़ खाट पर लेट गयी। उसका हृदय धकधक कर रहा था। वह स्वयं चकित थी कि क्यों? क्या उसके मन में नरेन्द्र के लिये अभी भी प्रेम का कुछ अंश शेष है, इस विचार के आते ही वह नहीं, ! नहीं !' ज़ोर से बोल उठी। यदि प्रेम नहीं तो क्या वह उससे डर गयी है। डरने का कोई कारण नहीं था। वह मन से बार बार पूछ

रही थी कि उसे हो क्या गया है? इस प्रश्न का उत्तर उसे सूझ नहीं रहा था।

नन्दलाल घर पर आया तो स्त्री को लेटे देख चिन्तातुर हो उठा। समीप बैठ पूछने लगा, "क्या है रानी? लेट क्यों रही हो?"

"चित्र देखने गयी थी। तबीयत खराब हो गयी है, इसलिये घर लौट आई हूं।"

नन्दलाल ने टेलीफोन से डाक्टर बहादुर को बुला लिया। डाक्टर साहब आये, नाड़ी देखी, स्टेथस्कोप से दिल देखा, पेट देखा, पश्चात् हकीकत पूछी— टट्टी आती है, सिर-दर्द होता है, पेट में दर्द होता है इत्यादि?

"तो फिर क्या है?" डाक्टर साहब ने पूछा।

"मेरा दिल धड़कता है।"

"'आई-सी' दिल कमजोर है। खाने को 'ग्लूकोज़ वाटर,' 'फ्रूट जूस' 'बारले वाटर'।"

इतना कह डाक्टर साहब ने जेब से कागज निकाला और बहुत सुन्दर फाउन्टेन पेन से नुसखा लिख दिया। इसे नन्दलाल के हाथ में देते हुए कहा, "तीन तीन घंटे के बाद दीजिये। पश्चात् कल खबर देना।"

इतना कह डाक्टर साहब जाने के लिये तैयार हो गये। नन्दलाल ने दस रुपये फीस देते हुए पूछा, "डाक्टर साहब, क्या है?"

"कोई चिन्ता की बात नहीं। 'गैस्ट्रिक ट्रबल' है। कल तक ठीक हो जायेगी।"

नन्दलाल ने नौकर भेजकर कैमिस्ट की दूकान से दवाई मंगवा ली और पिलाने के लिये मनोरमा के पास ले आये।

"लाइये, मैं पी लेती हूं," इतना कह वह उठी। दवाई एक कांच के गिलास में डाल गुसलखाने में चली गयी। वहां दवाई नाबदान में उढ़ेल, दो घूंट पानी पी अपने कमरे में चली आई। मनोरमा को डाक्टर

साहब के निदान पर हंसी आरही थी। नन्दलाल ने समझा कि आराम हो रहा है।

नौकर दवाई की दूकान से 'ग्लूकोज़' और फल वाले की दूकान से सेव, अंगूर, मौसमी, मीठे नीबू इत्यादि बहुत फल लाया था।

"मनोरमा, कुछ फल ले लेना," नन्दलाल ने कहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल डिप्टी साहब को मनोरमा के बीमार होने का संदेशा मिला। रात भर उसे नींद नहीं आई थी इससे नन्दलाल की चिन्ता कुछ बढ़ ही रही थी। डिप्टी साहब को सूचना मिली तो सपत्नीक नन्दलाल के घर पहुंच गये। मनोरमा को खाट पर लेटा देख पूछने लगे, "क्या है मनोरमा?"

"ऐसे ही तबीयत खराब हो गयी थी। डाक्टर साहब आये थे। दवाई दे गये हैं। पी रही हूं। आशा है ठीक हो जाऊंगी।"

डिप्टी साहब ने माथे पर हाथ लगाकर देखा और कहा, "बहुत ठंडा है।"

मनोरमा चुप रही। डिप्टी साहब ने नन्दलाल से जो समीप ही खड़ा था कहा, "कोई दिल को ताकत की दवाई देनी चाहिये। यदि दोपहर तक ठीक न हो तो दफ्तर में टेलीफोन करना। मैं डाक्टर सेन को बुला दूंगा। रात भर मुझे दफ्तर में जागते रहना पड़ा है। वह नरेन्द्र का बच्चा फिर दिल्ली में आगया है। कल तीसरे पहर हावड़ा दिल्ली एक्सप्रेस से उतरा तो हमारे आदमियों ने पहिचान लिया। उन्होंने पीछा किया परन्तु ओडियन सिनेमा के समीप दृष्टि से ओझल हो गया। पीछा करने वाले का कहना है कि दो लड़कियों के साथ सिनेमा देखने गया था। परन्तु वे लड़कियां आधे समय के अवकाश के समय बाहर अकेली निकलीं, वह साथ नहीं था। खेल समाप्त होने पर सारा हॉल देखा गया। उसका पता नहीं चला। कोतवाली में पता मिलते ही पुलिस पकड़ने के लिये भागी, परन्तु तब तक वह गायब हो चुका था। दिल्ली भर की पुलिस रात भर उसे ढूंढती रही है। पूर्ण नगर ढूंढ डाला है। स्थान स्थान पर

पहरे लगा दिये हैं। मैं उसके पकड़े जाने की सूचना की हर समय आशा कर रहा हूं। प्रबन्ध तो ऐसा किया है कि अब बच कर जा नहीं सकता।"

मनोरमा बिना किसी प्रकार की उत्सुकता प्रकट किये सब वृत्तान्त सुन रही थी। ज्यों ज्यों बात समाप्त होती जाती थी उसके मुख का रंग फीका पड़ता जाता था। जब डिप्टी साहब ने कहा कि अब वह बचकर जा नहीं सकता तो उसके मुख से 'हाय' का शब्द निकल गया।

नन्दलाल ने घूमकर मनोरमा की ओर देखा। उसके मुख का रंग उड़ा देखकर पूछने लगा, "क्यों, मनोरमा क्या बात है?"

डिप्टी साहब भी समीप आगये और चिन्तातुर हो उसका मुख देखने लगे।

मनोरमा ने मुख खोलकर सांस लेते हुए कहा, "दिल घुट रहा है।"

नन्दलाल भागकर टेलीफ़ोन पर गया और डाक्टर साहब को शीघ्र आने के लिये कहने लगा। मनोरमा के माथे पर पसीने की बूंदे देख उसकी मां उसके हाथ मसलने लगी। नन्दलाल ने आकर बताया, "डाक्टर बहादुर को बुलाया है।"

डिप्टी साहब का डाक्टर बहादुर पर विश्वास नहीं था। इस कारण टेलीफ़ोन पर डाक्टर सेन को बुला लिया। इस समय नन्दलाल अपने कमरे में से यूडी-को-लोन लाकर मनोरमा को सुंघाने लगा। इससे मनोरमा की अवस्था कुछ सुधर गयी। मनोरमा ने कमला से मिलने की इच्छा प्रकट की। उसे टेलीफ़ोन पर सूचना भेज दी गयी।

डाक्टरों ने पहुँच रोगी को देखा। परस्पर राय कर एक 'इन्जैक्शन' कर दिया और एक सांझा नुस्खा लिख, फ़ीस ले विदा हो गये।

कुछ देर में मनोरमा को नींद आगयी और डिप्टी साहब आराम करने अपने घर चले गये। मनोरमा की मां वहां ही रही। अब कमला भी आगयी थी।

मनोरमा कई दिन तक बीमार रही। कमला हर रोज़ उसके पास आती थी और घंटा आध घंटा बैठ बातें कर चली जाती। कमला के

मन में सन्देह था कि मनोरमा की बीमारी का कारण, ओडियन सिनेमा के सामने, नरेन्द्र का कठोर व्यवहार है। इस कारण वह अपना कर्तव्य समझती थी कि मनोरमा के मन से नरेन्द्र के प्रति क्रोध दूर करे।

मनोरमा नित्य हिन्दुस्तान टाइम्स में समाचार देखा करती थी। ज्यों ज्यों दिन व्यतीत होते जाते थे और नरेन्द्र के पकड़े जाने का समाचार नहीं होता था, वह स्वास्थ्य लाभ करती जाती थी। मनोरमा को इससे सन्तोष होता था, परन्तु वह इसका कारण नहीं समझ सकी थी। वह सोचती थी कि नरेन्द्र के पकड़े जाने की सम्भावना से उसका दिल क्यों बैठने लगा था और अब उस सम्भावना के मिट जाने से वह स्वस्थ क्यों हो रही है। यह सब क्यों है, इसके समझने में वह लगी रहती थी।

वह अपने पति से प्रत्येक प्रकार से प्रसन्न और संतुष्ट थी। उसे उससे लेशमात्र भी शिकायत नहीं थी। तो फिर नरेन्द्र के विषय में उसे इतनी चिन्ता क्यों है? क्या उसके अन्तःकरण में उसके लिये प्रेम अब भी उपस्थित है? प्रत्यक्ष में तो इस प्रेम के लिये कोई कारण प्रतीत नहीं होता था। तो भी नरेन्द्र के पकड़े जाने की सम्भावना जानने से उस का 'हार्ट फ़ेल' होने लगा था; और अब ज्यों ज्यों उसके पकड़े जाने की सम्भावना कम होती जा रही थी उसका स्वास्थ्य सुधरता जाता था। इस अवस्था से वह बहुत चकित थी।

एक दिन उसने दिल कड़ा कर कमला से पूछ ही लिया, "कमला, तुम्हारे बड़े भैया तुम्हारे पिता जी से मिलने आये थे या नहीं?"

"आये थे उसी रात, जिस दिन वे हमें ओडियन के सामने मिले थे। रात के एक बजे जब सब सो रहे थे वे वहां पहुंच गये। पिता जी, विजय, विनय और माता जी सब जाग उठे। मुझे तो दूसरे दिन विनय ने आकर बताया था। रात भर बातें होती रहीं— मेरे विवाह के विषय में, तुम्हारे जीजा जी के विषय में। दिन निकलने से पूर्व वे चले गये थे। जाते समय कह गये थे कि शायद अब दिल्ली नहीं आवेंगे।"

मनोरमा यह वृत्तान्त बहुत दिल लगाकर सुन रही थी। कमला ने

कहना जारी रखा, "पिता जी को भैया के चले जाने का बहुत दुख है। परन्तु क्या हो सकता है। दिल्ली के पुलिस वाले शिकारी कुत्तों की भांति उनके पीछे पड़े हैं। उस दिन तुम्हारे पिता जी कह रहे थे कि यदि भैया पिता जी की कोठी में पकड़े गये तो पिता जी को भी पांच वर्ष की कैद का दंड हो सकता है।"

मनोरमा ने पूछा, "दिल्ली से किधर जाने को कह रहे थे?"

"किसी ने पूछा नहीं और उन्होंने बताया नहीं।"

इस समाचार से मनोरमा को शान्ति मिली। आज कई दिन के पश्चात् वह खाट से उठी। नन्दलाल को यह देखकर अति प्रसन्नता हुई। घर भर में आनन्द और प्रकाश सा प्रतीत होने लगा।

दूसरा भाग

दमन-चक्र

कांग्रेस के नेता शायद यह समझते थे कि केवल कहनेमात्र से ब्रिटिश पार्लियामैन्ट भारतवर्ष को स्वतंत्र कर देगी। ऐसा न समझकर यदि यह समझा होता कि भारतवर्ष में एक एक अधिकार प्राप्त करने के लिये नर-रक्त की नदियां बह जाने की सम्भावना है जिस में बहुत ही बहादुरी, धैर्य और चतुराई से काम लेना होगा तो महात्मा जी और उनके अनुयाई भारत से अंग्रेज़ों को निकाल देने के लिये एक भली प्रकार विचार की हुई योजना बनाये बिना 'क्विट इंडिया' का प्रस्ताव पास न करते। बिना किसी प्रकार के साधन और उन साधनों को प्रयोग करने वाले हाथों को तैयार किये, अंग्रेज़ जैसी चतुर, बलवान और स्वार्थ-रत जाति को यह कह देना कि वह भारतवर्ष जैसे देश का राज्य छोड़ यहां से चली जाय केवल बचपन था।

इस पर भी यह हुआ। महात्मा जी का 'क्विट इंडिया' का प्रस्ताव ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने पास कर दिया। इधर यह प्रस्ताव पास हुआ उधर कांग्रेस-नेताओं को पकड़कर जेलों में ठूंस दिया गया। सरकार इस काम के लिये तैयार थी। देश भर में सब ज़िलों में उन लोगों की सूचियां तैयार थीं जिनका कुछ भी प्रभाव देशवासियों पर था।

जहां तक कांग्रेस-आन्दोलन का सम्बन्ध था या महात्मा जी के मन में जिस आन्दोलन के चलाने का प्रश्न था वह कुछ नहीं हो सका। परन्तु 'क्विट इंडिया' के प्रस्ताव और चर्चा ने भिन्न भिन्न लोगों के मन में भिन्न भिन्न प्रकार की योजनायें भर रखी थीं। प्रत्येक आदमी सोचता

था कि महात्मा जी उसके मन की योजना चलायेंगे और वह स्वयं उस योजना में सम्मिलित होने की सोच चुका था।

जब महात्मा जी और ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सदस्यों वगैरह के पकड़े जाने के समाचार देश में फैले तो लोग क्रोध से उतावले हो उठे। इसमें तो सन्देह नहीं था कि अभी तक केवल भारत छोड़ो कहने के अतिरिक्त कांग्रेस ने कोई बात मन, वचन अथवा कर्म से कानून के विरुद्ध नहीं की थी। इससे कानून के विचार से तो कहा जा सकता है कि कांग्रेस के नेताओं का पकड़ा जाना अन्याय था। लोग यही समझते थे। इससे उन्हें क्रोध आजाना स्वाभाविक था। ऐसे क्रोध से उतावले होने वाले लोगों ने जलसे किये, जुलूस निकाले और सरकारी इमारतों और जायदादों को हानि पहुंचाई।

यही अवस्था देहली के लोगों की थी। ६ अगस्त १६४२ को नेताओं के पकड़े जाने के समाचार से लोग क्रोध से उबल उठे। एक बड़ा भारी जुलूस निकल गया और महात्मा गान्धी की जय, भारत छोड़ो इत्यादि नारों से आकाश-पाताल एक हो गया।

दो दिन तक हड़ताल रही। जुलूस निकलते रहे। कोई कोई बिरला पकड़ा भी जाता रहा, परन्तु कोई विशेष बात नहीं हुई। १२ अगस्त को सरकार ने समझा कि लोगों को अपना जोश नारों और जुलूसों इत्यादि में निकाल देने को काफी अवसर दे दिया गया है और अब इनको ब्रिटिश साम्राज्य के 'अहिनी शिकंजे' का भी अनुभव कराना चाहिये।

देहली के किसी स्थानीय नेता को पकड़ा गया था। लोगों की भीड़ कोतवाली के सामने वाले मैदान में खड़ी नारे लगा रही थी। एकाएक कोतवाली की ऊपर की मंज़िल पर बंदूकची पुलिस के लोग खड़े हो गये। लोगों ने जब उनको देखा तो उनका जोश और भी बढ़ गया। नारे और भी ज़ोर से लगाये जाने लगे। बंदूकची पुलिस ने बंदूकें सीधी कीं और फायर कर दिया। फिर एक और 'राउन्ड' चलाया गया। लोग भाग खड़े हुए।

नरेन्द्र इस भीड़ में कोतवाली के सामने की इमारत के नीचे बरामदे की सीढ़ियों पर खड़ा था। उसी स्थान पर कुछ कॉलेज की लड़कियां भी खड़ी थीं। दूसरी बौछार के समय एक गोली एक लड़की को भी लगी। वह हाय कर वहीं लेट गयी।

भीड़ तितर-बितर हो गयी। लोग स्टेशन की ओर और गान्धी ग्राउन्ड की ओर भाग खड़े हुए। नरेन्द्र भी सीढ़ियों से नीचे उतरा और गान्धी-ग्राउण्ड की ओर चल पड़ा। उसका दिल बैठता जाता था। वह सोच रहा था कि यह समय है क्रान्ति के श्रीगणेश करने का। इस समय यदि देहली में दस सहस्र युवक संगठित होते और जीवन की आहुति देने के लिये तैयार होते तो राज्य का तख्ता पलटा जा सकता था।

इसी प्रकार के विचारों में वह गान्धी-ग्राउण्ड से घंटाघर की ओर घूम गया। उसे टाउनहॉल के अगली ओर बहुत हल्ला सुनाई दिया। इच्छा न रहते हुए भी वह उस ओर घूमा। अभी दस पग भी नहीं बढ़ा था कि टाउनहॉल की इमारत से धुआं उठता दिखाई दिया। नरेन्द्र खड़ा हो सोचने लगा कि अवश्य कुछ निश्चित योजना है। एक बार उसका मन जोश से भर आया। उसने टाउनहॉल के सामने की ओर आकर देखने का निश्चय किया। वह देखना चाहता था कि वह कौन आदमी है जो भारतवर्ष में नवीन युग की नींव डाल रहा है अर्थात क्रान्ति का श्रीगणेश कर रहा है। वह भागा और टाउनहॉल के बाहर जा पहुंचा।

हज़ारों की भीड़ थी। सब उतावलों की भांति या तो नारे लगा रहे थे या मलिका के बुत पर पत्थर फेंक रहे थे। घंटाघर और टाउनहॉल को आग लग चुकी थी। वह देखना चाहता था कि किस के नेतृत्व में यह हो रहा है। उसे कोई ऐसा आदमी प्रतीत नहीं हुआ। एकाएक लोग वहां से भागे। नरेन्द्र ने समझा कि ये भागनेवाले अवश्य उस दिन की हलचल के कर्ताधर्ता होंगे। नरेन्द्र भी उनके साथ भाग खड़ा हुआ। भागते हुए उसने एक से पूछा, "किधर जा रहे हो?"

"रेलवे एकाउन्ट्स क्लीयरिंग ऑफिस को।"

"क्यों ?"

"वहां हड़ताल करवाने।"

"रेलवे स्टेशन पर क्यों नहीं ?"

"वहां पुलिस का प्रबन्ध है।"

नरेन्द्र खड़ा हो गया। वह समझ गया कि कोई योजना नहीं है। उसके खड़े हो जाने से कुछ और लोग भी खड़े हो गये। उसने अपने समीप खड़े लोगों को कहा, "चलो, रेल के स्टेशन को आग लगा दें।"

कोई बोला, "वहां पुलिस का प्रबन्ध बहुत पक्का है।"

नरेन्द्र ने उत्तर देने वाले को डांटते हुए कहा, "तुमने देखा है ?"

इस पर कोई और बोला, "चलो जी, कोई खुफ़िया-पुलिस का मालूम होता है।"

लोग उसे वहीं छोड़ भीड़ के पीछे चल पड़े। नरेन्द्र ने एक और यत्न किया। उसने जोर से कहा, "इधर नहीं, रेल के स्टेशन को।"

पीछे से भीड़ का एक जत्था और आया और उसमें से एक ने एक घूंसा नरेन्द्र की गर्दन पर लगाते हुए कहा, "पुलिस का बच्चा।"

नरेन्द्र समझ गया कि यदि उसके खुफ़िया-पुलिस का एजेन्ट होने की बात भीड़ में फैल गयी तो उसे तो वहीं अपनी जान देनी पड़ जायेगी। इस कारण वह एक ओर होकर खड़ा हो गया। ज्यों ही भीड़ ज़रा कम हुई तो वह फ़तहपुरी से टांगे में सवार हो नई देहली पहुंच गया।

[२]

उस दिन देहली के लोगों ने जी भरकर क्रोध निकाला। रेलवे एकाउन्ट्स क्लीयरिंग ऑफिस जलकर राख हो गया। टाऊनहाल आधा जल गया। घंटाघर की सीढ़ियां जल गयीं। इन्कम-टैक्स का दफ़्तर जला दिया गया। दो आग बुझाने के इंजिन बेकार कर दिये गये। नई देहली की कई सड़कों के अधिकांश लैम्प तोड़ डाले गये।

अगले दिन नगर में फ़ौज का पहरा लग गया। लोग दिन और रात

की भाग-दौड़ से थक गये थे। जब इतना कुछ हो चुका तो कांग्रेस के बचे-खुचे कुछ लोगों ने समझा कि बहुत अच्छा अवसर हाथ से निकला जा रहा है इससे लाभ उठाना चाहिये, परन्तु क्या और कैसे वे नहीं जानते थे। इस कारण वे एक रात नई देहली में एक सज्जन के घर इकट्ठे हुए। इस सम्मेलन को जुटाने वाली वीणादेवी थी।

वीणादेवी आॅल इंडिया कांग्रेस कमेटी की मीटिंग पर बम्बई गयी हुई थी। वहां वह अपने पति से एक पृथक मकान पर ठहरी हुई थी। पति तो ६ अगस्त को अन्य नेताओं के साथ पकड़ लिया गया, परन्तु वह वहां नहीं थी। इस कारण पुलिस के हाथ नहीं आई। प्रातः उठ जब वीणादेवी को पता चला कि पकड़-धकड़ हो गयी है और वह पुलिस के हाथ नहीं आई तो उसे नरेन्द्र से अपना कहना कि वह जेल जाना नहीं चाहती याद आगया। उसने तुरन्त निश्चय कर लिया कि छिप कर आंदोलन चलाने का यत्न करेगी। परन्तु क्या करेगी वह नहीं जानती थी। कांग्रेस कमेटी में, सभा की कार्यवाही से पूर्व, बातचीत करते हुए कुछ लोगों ने कहा था कि इस बार युद्ध की तैयारी में बाधा डालने का कार्यक्रम होना चाहिये, परन्तु बहुमत इसके विरुद्ध था। बहुमत का कहना था कि यह सब अहिंसा-मार्ग के प्रतिकूल होगा।

वीणादेवी को आज तक हिंसा-अहिंसा का झगड़ा समझ नहीं आया था। इससे उसने यही समझा कि युद्ध के कामों में बाधा डालने से ही 'क्विट इंडिया' आन्दोलन सफल हो सकता है। इस विचार को ले वीणा बम्बई में ही छिप गयी। जब तक पुलिस को उसके निवास-स्थान का पता लगा तब तक वह उस स्थान को छोड़ देहली को चल पड़ी थी। उसने अपना भेष बदल लिया था। एक साधारण पंजाबी स्त्री की पोशाक सलवार, कुर्ता और दुपट्टा पहन और तीसरे दर्जे का टिकट ले बिना विघ्न-बाधा के देहली आ पहुंची।

सआदतहुसैन के देहली के मकान पर पुलिस ने अधिकार कर लिया था। इस कारण वहां जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था।

नई देहली में दुर्लभसिंह उसके पति का एक मित्र रहता था। वह ठेकेदारी करता था। वह उसके घर जा पहुंची। यहां रहती हुई वह देहली की अवस्था को जान कांग्रेस के बचे-खुचे लोगों को संगठित करने लगी। इसी सम्बन्ध में उसने एक मीटिंग बुलाई। इस मीटिंग में नरेन्द्र भी उपस्थित था। वास्तव में नरेन्द्र उसी मकान में ठहरा हुआ था जहां यह मीटिंग हुई थी। वीणा नरेन्द्र को वहां देख अति प्रसन्न हुई। उसे विदित था कि छिपकर आन्दोलन चलाने के विषय में नरेन्द्र के विचार कैसे हैं। सभा में एक बार नरेन्द्र ने भी अपने विचार प्रकट किये। ये वीणा के पूछने पर थे। नरेन्द्र ने बताया, "क्रान्ति में मुकाबिले की सरकार स्थापित करना पहला काम है। यह मुकाबिले की सरकार जितनी बलशाली होगी उतनी ही सफलता की सम्भावना अधिक होगी। बल अर्थात शक्ति के तीन स्तम्भ हैं— एक जनता की सहानुभूति, दूसरा फ़ौज और फ़ौजी सामान, तीसरा बाहर के किसी अव्वल दर्जे के देश से राजनैतिक सम्बन्ध।

"चूंकि ये चीजें अब तक कांग्रेस ने उत्पन्न नहीं कीं इस कारण यह क्रान्ति सफल नहीं हो सकती। इन तीनों क्षेत्रों में केवल पहले में, अर्थात जनता की सहानुभूति प्राप्त करने में, कुछ कार्य हुआ है। शेष दो बातों में तो अभी श्रीगणेश भी नहीं हुआ।"

"तो क्या इस समय कुछ नहीं करना चाहिये?"

"यह मैंने नहीं कहा। मैंने तो यह कहा है कि महात्मा जी के पहले आन्दोलनों की भांति यह आन्दोलन भी देश को ध्येय तक लेजाने में सफल नहीं होगा। इस परिस्थिति में यदि कुछ हो सकता है तो वह यह है कि युद्ध-कार्य में विघ्न डाला जाय। वह तार के खम्भे उखाड़ने, रेल की पटरी बिगाड़ने, सड़कों में गड्ढे खोद देने अथवा फ़ौजी सामान बनाने वाले कारखानों को बारूद से उड़ा देने से हो सकता है। परन्तु इन सब बातों के होने पर भी, यह बात समझ लेनी चाहिये कि, स्वराज्य के समीप हम एक इंच भर भी नहीं पहुंच सकते। इन बातों से हम

जापान के विजयी होने में सहायक होंगे। उसकी विजय हिन्दुस्तान में होगी या किसी और देश में कहना कठिन है।"

इस पर एक उपस्थित सज्जन ने पूछा, "तो आप क्या करने को कहते हैं?"

"देश में एकदम स्वराज्य स्थापित करने के लिये क्रान्ति की आवश्यकता है। महात्मा जी ने जब भारत छोड़ो की बात कही तो वे भारत में क्रान्ति चाहते थे, परन्तु इस क्रान्ति को सम्पन्न करने के लिये कोई तैयारी नहीं थी। जैसा मैंने आपसे निवेदन किया है कि क्रान्ति में हमें एक मुकाबिले की सरकार स्थापित करने की आवश्यकता है और इसके लिये बल की आवश्यकता है। बल धन, जन और बुद्धि पर निर्भर है। सो मेरी योजना तो यह है कि हमें स्वयं-सेवकों का एक संघ बनाना चाहिये। इसमें कम से कम तीस लाख स्वयं-सेवक भरती हों और फिर उनके लिये हमें उचित अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करने के साधन बनाने चाहियें। यह तो केवल किसी बाहरी राज्य से सम्बन्ध स्थापित करने से ही हो सकेगा।

"आप कहेंगे कि यह अब नहीं हो सकता। इसके लिये समय नहीं है। मैं इसे मानता हूं। वास्तव में जो कुछ आज हुआ है उसकी तैयारी सन १९२० में वार्सेल्ज़ की संधि के समय से आरम्भ करनी चाहिये थी। अब जब पानी नाक तक आगया है तब तैयारी नहीं हो सकती।

"देखिये, मैं आपको बताता हूं। आज से पंद्रह-बीस वर्ष पश्चात्, शायद इससे भी पहले ही, विश्वव्यापी तीसरा युद्ध होने वाला है। इस युद्ध में तो अंग्रेज़, अमेरिका और रूस की विजय होगी, परन्तु उस युद्ध में रूस एक पक्ष होगा और अंग्रेज़ दूसरा पक्ष। अमेरिका और दूसरी जातियां एक या दूसरे पक्ष में होंगी। उस युद्ध में हमें हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करने की बाज़ी लगानी होगी। उस समय के लिये हमें तैयार होना चाहिये। इस युद्ध में जो अवसर था सो तो गया। कहीं ऐसा न हो कि अगले युद्ध के समय आने वाला अवसर भी खो जाय। यह कहना कठिन

है कि हिन्दुस्तान की संगठित शक्ति अंग्रेज़ों के पक्ष में होगी अथवा रूस के। हां, यह कहा जा सकता है कि बिना शक्ति को संगठित किये हम किसी भी पक्ष को न तो सहायता दे सकेंगे और न ही किसी पक्ष से हम सहायता की आशा कर सकेंगे।

"इस तैयारी को करने के लिये हमें नये नेताओं का नेतृत्व स्वीकार करना पड़ेगा। ऐसे नेता जो अपने मस्तिष्क में स्पष्ट योजना रखेंगे कि उन के पास कितनी शक्ति संचित है और उस शक्ति का प्रयोग उन्होंने कहां, किस समय और किस ढंग से करना है। महात्मा गान्धी सरीखे नेता स्वराज्य-प्राप्ति की योजना को नहीं चला सकते। वे दस दिन आगे की बात भी विचार कर निश्चय नहीं कर सकते।

"इस कारण आइये हम एक नई संस्था की नीव डालें। इस संस्था में वे लोग हों जो प्रति दिन एक बार मिलकर अपनी शारीरिक और मानसिक अवस्था को उन्नत करने का यत्न करें, जो वर्ष में कम से कम दो मास कैम्प का जीवन व्यतीत कर सकें। वहां हम युद्ध-विद्या सीखेंगे। इस संस्था में ऐसे लोग हों जो विदेशों में जाकर विदेशी सरकारों से अपना सम्बन्ध जोड़ सकें और वहां से युद्ध-सामग्री के बनाने के उपक्रम सीख सकें। समय आने पर हम इतने शक्तिशाली हों कि हमारा सहयोग प्राप्त करने के लिये रूस और इंगलैंड दोनों इच्छुक हों और हम सत्य-असत्य की जांच कर अपना पक्ष निश्चय करने में स्वतंत्र हो सकें।"

वीणा ने कहा, "मिस्टर नरेन्द्र, यह काम तो इस समय आरम्भ नहीं हो सकता। इस समय तो हमारे साथ सम्मिलित हो जाइये और यदि इस युद्ध के पश्चात् हम जीवित रहे तो फिर आपकी योजना पर विचार कर लेंगे।"

"मैंने तो अभी ही इस प्रकार की एक संस्था की नीव डाल दी है और उसमें काम कर रहा हूं। हम अभी कोई कार्य करना नहीं चाहते। हम एक बृहत कार्य, अर्थात् पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिये एक बृहत प्रयत्न की तैयारी करने में लगे हैं। इस तैयारी में कम से कम दस वर्ष

लगेंगे। यदि हम इस तैयारी करने में सफल हुए तो क्रान्ति की दुंदुभि बजा दी जायगी। मेरी आप सब लोगों से यही प्रार्थना है कि आप उस संस्था में सम्मिलित हो जायें।"

वीणा जो छिपकर काम करने (underground work) के लिये व्याकुल हो रही थी नरेन्द्र के विचारों को शीतल समझती थी। उसने कुछ उत्तेजित होकर कहा, "मैं ऐसा नहीं समझती। राजनीति में बातें कम और कार्य अधिक करना होता है। नरेन्द्र जी की योजना को अभी दस वर्ष लगेंगे; परन्तु मैं तो समझती हूँ कि सुअवसर तो हमारे समीप आगया है और केवल हाथ पसारने की देरी है। आओ, हम एक बार मिल कर ज़ोर लगायें। हमें यह सिद्ध कर देना चाहिये कि भारत के नेताओं को जेल में डालकर भारत में युद्ध-कार्य नहीं चल सकता। यदि हम शासकों के मन में यह अंकित कर सके तो नेता छूट जायेंगे और स्वराज्य मिल जायगा। महात्मा जी ने इस बार कहा था कि अब वे छोटी-मोटी हिंसा के कार्य को देख आन्दोलन बन्द नहीं करेंगे। इससे हमें समझ लेना चाहिये कि उनकी सम्मति हमारे पक्ष में ही है। हमें युद्ध-कार्य में विघ्न डालने का पूर्ण यत्न करना चाहिये।"

वीणा की बात को पसन्द करने वाले अधिक थे। इस कारण नरेन्द्र का एक नई संस्था में सम्मिलित होने का निमन्त्रण विफल गया। इस के पश्चात् तीन आदमियों की एक सम्मति बनाई गई। उसका काम था देहली में 'सैबोटेज' अर्थात युद्ध-कार्यों में विघ्न डालने की योजना बनाना। धन एकत्रित करने के लिये एक पृथक उप-समिति बनाई गई।

नरेन्द्र को यह सब आग लगने पर कुआ खोदने का सा प्रतीत हुआ। सब लोग उठ खड़े हुए। सभा विसर्जन हुई। जब लोग एक-एक दो-दो कर जा रहे थे तो एक व्यक्ति मोटे खद्दर का कुर्ता-टोपी पहने हुए नरेन्द्र के पास आकर बोला, "मुझे आपकी योजना बहुत पसन्द है और इस विषय में मैं आपसे वार्तालाप करना चाहता हूँ।"

"तो आइये, मैं तो अभी तैयार हूं।"

"इस समय बहुत रात हो गयी है। दो बजने वाले हैं।"

"कुछ हर्ज़ा नहीं। यह काम तो रात को करने का ही है।"

"मैंने दूर जाना है। आप बतायें कि मैं आपको कल प्रातःकाल कहां मिल सकता हूं?"

नरेन्द्र ने कुछ सोचकर कहा, "मैं रात को यहीं रहूंगा। वैसे आप मुझे ३२ नम्बर कूचा नटवां में कल दस बजे मिल सकते हैं।"

वह व्यक्ति हाथ जोड़ नमस्ते कर चला गया। सब लोगों के चले जाने पर नरेन्द्र भी जाने को तैयार हो गया। मित्र ने, जिसके घर वह ठहरा हुआ था, नरेन्द्र को जाते देख पूछा "आप कहां जा रहे हैं?"

"मैं समझता हूं कि यह आदमी जो अभी मुझसे बातें कर रहा था खुफिया-पुलिस में है। मेरी भूल भी हो सकती है। इस पर भी मैं सचेत रहना चाहता हूं और आपको भी चेतावनी देता हूं कि शायद कल दिन निकलने से पूर्व आपके घर की तलाशी हो जाय।"

इतना कह नरेन्द्र मकान के नीचे उतर गया और मकानदार ने तुरन्त कुछ काग़ज़ ढूंढ कर निकाले और उनको एक लोहे की बालटी में रख आग लगा दी।

[३]

नन्दलाल को शहर का इनचार्ज-अफ़सर बना दिया गया था। डिप्टी साहब की लड़की से विवाह हो जाने पर उसके पद में उन्नति हो रही थी। नगर का इनचार्ज बन जाने से उसका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया था, विशेष रूप में जब देहली में हलचल मच रही थी। नई देहली में सड़कों के प्रायः सब लैम्प तोड़ डाले गये थे। देहली में भी हालत भयानक होती जाती थी और नन्दलाल इस उपद्रव को रोकने के लिये पूरी ताक़त का प्रयोग करना चाहता था। इस कारण अधिक समय वह थाने में और शहर की गश्त लगाने में व्यय कर रहा था। कई दिन से दो-तीन घंटे रात को सोने के अतिरिक्त वह घर पर नहीं रहता था।

१३ अगस्त की रात को वह एक बजे घर पहुंचा था, और कपड़े उतार-अभी पलंग पर लेटा ही था कि उसे एक विचार आया। वह उठकर बैठ गया। मनोरमा ने हैरान हो पूछा, "क्या है ?"

नन्दलाल ने पूछा, "आजकल कमला नहीं आती क्या ?"

"परसों आई थी," मनोरमा ने अचम्भे में पति का मुख देखते हुए कहा, "मुझे तो उसके घर जाने का अवसर ही नहीं मिलता।"

"फिर कब मिलोगी ?"

"क्यों, क्या बात है ?"

"मेरा विचार है कि कल ही जाओ। बातों बातों में पता करना कि नरेन्द्र उसे मिलने आता है या नहीं और रात कहां ठहरता है।"

मनोरमा नरेन्द्र का नाम सुन सन्न रह गयी। उसने दिल कड़ा कर पूछा, "वह आजकल देहली में है क्या ?"

"सूचना मिली है कि कल भीड़ में खड़ा था। जब तक पुलिस उसे हिरासत में लेने के लिये उसके पास पहुंची, वह भीड़ में गायब हो गया।"

मनोरमा का दिल कुछ ठीक हुआ। उसने पूछा, "आप उसे क्यों पकड़ना चाहते हैं ? उस दिन पिता जी भी कुछ इसी विषय में कह रहे थे।"

"उसने पुस्तक जो लिखी है। उसी के सम्बन्ध में उसके वारण्ट हैं।"

"यह तो आपने उस दिन भी बताया था, परन्तु मैं तो यह जानना चाहती हूं कि आप विशेष चिन्ता क्यों कर रहे हैं ? वह नहीं पकड़ा गया तो न सही।"

"एक तो मैं देहली का थाना-इनचार्ज हूं और दूसरे उसको पकड़ कर मुझे मान-प्रतिष्ठा और तरक्की मिलने की आशा है। मनोरमा, मैं सरकारी नौकर हूं।"

"अच्छी बात है।"

"तो तुम पता करोगी ?" नन्दलाल ने उत्सुकता से पूछा।

"नहीं, मैं सरकारी नौकरी नहीं करती।"

"मेरी तरक्की होने से तुम्हें भी तो लाभ होगा।"

"मुझे उस लाभ की इच्छा नहीं।"

"देखो मनोरमा, यह एक मौके का अपराधी है। अफ़सर इसे पकड़ने के लिये बहुत हैरान हो रहे हैं। यदि मैं पकड़ने में सफल हो गया तो बहुत नेकनामी होगी।"

मनोरमा कुछ देर तक गम्भीरतापूर्वक सोचती रही। अपने पति को अपनी ओर उत्सुकता से देखते हुए देख बोली, "मुझसे यह काम नहीं हो सकेगा।"

नन्दलाल ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "क्यों?"

"मैं नहीं चाहती कि वह पकड़ा जाय।"

"क्यों, यही तो मैं पूछ रहा हूं?"

"पहली बात तो यह कि वह मेरी सहेली का भाई है और फिर मैं हिन्दुस्तानी स्त्री हूं।"

"देखो मनोरमा, एक हिन्दू स्त्री का धर्म है कि अपने पति की सहायता करे। मैं पुलिस-अफ़सर हूं और उसके पकड़ने के लिये नियुक्त हूं।"

मनोरमा के मन में अपने आप पर ग्लानि होने लगी थी। वह समझती थी कि उसे अपनी आत्मा का हनन करने को कहा जा रहा है। वह अपने मन में दृढ़ निश्चय कर रही थी कि एक पुलिस-अफ़सर की बीवी होने पर भी वह खुफ़िया-पुलिस का काम नहीं करेगी। उसने अब अधिक दृढ़ता से कहा, "मैं चाहती हूं कि यह काम आप देहली में किसी अन्य अफ़सर को सौंप दें। मुझे आपका यह काम पसन्द नहीं।"

"आज से पहले तो तुमने कभी किसी काम से नहीं रोका था।"

"आपने भी मुझे कभी अपने काम में सहायता देने को नहीं कहा था।"

"अच्छी बात है। मैं समझता हूं कि तुम अपनी सहेली से बहुत प्रेम करती हो। मुझसे, मेरी तरक्की और खुशी से भी अधिक।"

मनोरमा चुप रही। नन्दलाल को मनोरमा की बातचीत से क्रोध

चढ़ आया था परन्तु वह अपने आप में ही पीगया। वास्तव में उसे कोई बहाना नहीं मिल रहा था कि मनोरमा को डांटे। मनोरमा को अचम्भा हो रहा था कि उसके पति ने क्यों उसे भेदिये का काम करने को कहा है। कैसे उसने समझ लिया कि वह अपनी सखी से दग़ा करेगी।

दोनों अपने अपने विचार में लीन थे कि टेलीफ़ोन की घंटी बजी। नन्दलाल उठकर बाहर ड्राइंग रूम में टेलीफ़ोन के समीप पहुंच गया। टेलीफ़ोन उठा कर पूछने लगा, "कौन बोल रहा है?..... दफ्तर से? हां...क्या कहा?...नरेन्द्र?...कहां कनॉट सरकस नम्बर......अच्छी बात... बहुत अच्छा...।"

टेलीफ़ोन बन्द हो गया। अब नन्दलाल ने टेलीफ़ोन का डायल घुमाया और नई देहली के थाने से मिलाया। "कौन?...करीम?... देखो भई, लिखो...नन्दलाल बोल रहा हूं...प्रातः पांच बजे दो दर्जन कान्स्टेबल ले कनॉट सरकस नम्बर बीस को घेर लो। मैं वहीं मिलूंगा। नरेन्द्र वहां सो रहा है।"

अब उसने देहली शहर के थाने से टेलीफ़ोन मिलाया।

"शेर सिंह?...अच्छा सुनो, कूचा नटवां नम्बर बत्तीस पर दो सफ़ेद-पोश मकान की देख-भाल के लिये भेज दो। कल ठीक दस बजे वहां की तलाशी होगी। दस कान्स्टेबल ठीक दस बजे वहां पहुंच जायें। मैं वहीं मिलूंगा। नरेन्द्र की तलाश में यह है, परन्तु यह बात किसी को पता न चले।"

टेलीफ़ोन बन्द कर नन्दलाल ने घूमकर दीवार पर लगी घड़ी में समय देखा। तीन बज रहे थे। घड़ी के नीचे मनोरमा खड़ी पति को टेलीफ़ोन करते सुन रही थी। नन्दलाल ने देख पूछा, "तुम यहां क्या कर रही हो?"

मनोरमा कुछ झेंप गयी, परन्तु शीघ्र ही सम्भल कर बोली, "मैंने समझा शायद आपको बुलौआ आया है।"

दोनों कमरे में चले आये। नन्दलाल गम्भीर विचार में पड़ा था।

मनोरमा को टेलीफ़ोन आते ही सन्देह हुआ था कि कहीं नरेन्द्र के विषय में कुछ न हो। जब उसने टेलीफ़ोन पर बातचीत में नरेन्द्र का नाम सुना तो उसका सन्देह पक्का हो गया। उसका हृदय धकधक कर रहा था। वह समझ गयी कि नरेन्द्र के निवास-स्थान का पता मिल गया है और उसे पकड़ने का प्रबन्ध हो रहा है। इससे उसकी बेचैनी बढ़ती जाती थी। इसे छिपाने के लिये उसने पति से पूछा, "आप अभी सोइयेगा या नहीं?"

"नहीं, मुझे वर्दी पहनकर काम पर जाना है। तुम सो जाओ।"

मनोरमा का हृदय वेग से चलने लगा था। वह पति का कहना मानने पर विवश हो गयी और लेट गयी। मुख पर चादर ओढ़ ली। नन्दलाल कुछ देर अपने मन में विचार करता रहा। फिर रसोइये को उठाकर एक प्याला चाय बनाने के लिये कह अपनी वर्दी पहनने लगा।

मनोरमा को नींद नहीं आ रही थी इस पर भी वह मुख पर कपड़ा ओढ़ लेटी रही। वह मन में नरेन्द्र के न पकड़े जाने के लिये भगवान से प्रार्थना करने लगी थी। इससे उसके हृदय की धड़कन कम होती जाती थी।

नन्दलाल की मोटर-साइकल के चलने के शब्द से उसे पता लग गया कि वह चला गया है। अब वह उठी और मुख धो, कुल्ला कर नियमपूर्वक आसन लगा भगवान की आराधना करने लगी। टेनीसन का कथन कि (many things are wrought by prayer than this world dreams of) प्रार्थना से आशातीत लाभ होता है उसे स्मरण हो आया था।

साढ़े छः बजे के लगभग मोटर साइकल के आने का शब्द हुआ। मनोरमा ने समझ लिया कि इन्सपेक्टर लौट आया है। वह आसन से उठी और कमरे से बाहर आ पति के मुख से नरेन्द्र के विषय में कोई संकेत सुनने अथवा जानने का यत्न करने लगी।

नन्दलाल का मुख पीला पड़ गया था। मनोरमा ने इसका कारण

रात को न सो सकना समझा था। मनोरमा सदैव की भांति उसको कपड़े उतारने में सहायता देने लगी। कपड़े उतारते हुए मनोरमा ने कहा, "बहुत थक गये प्रतीत होते हैं? आपको कुछ आराम कर लेना चाहिये।"

"नहीं, थकावट नहीं है। वह बदमाश का बच्चा फिर चकमा दे गया है।"

मनोरमा की आंखें चमक उठीं। उसके मुख से एकाएक निकल गया, "गुड गॉड।"

"हां, भगवान की उस पर कृपा है, परन्तु हम पर नहीं।"

"आपको उसके पकड़े जाने से क्या लाभ होगा? आप तो मशीन की भांति किसी दूसरे का काम कर रहे हैं न? हो गया तब भी ठीक है और नहीं हुआ तब भी ठीक ही है।"

"यही तो बात है। मेरी हानि हुई है। मैं इस हलचल में तरक्की पाने की आशा में हूं और यदि मुझे ऐसी ही सफलता मिलती रही जैसी नरेन्द्र के बच्चे ने कर रखी है तो तरक्की तो दूर रही किसी रद्दी जिले में भेज दिया जाऊंगा।"

"आप उसे गाली क्यों देते हैं?"

"और तुम्हें इससे चिढ़ क्यों होती है? तुम्हारे मामा का लड़का है क्या?"

"अब मुझे भी गाली देने लगे। आखिर आज आपको हो क्या गया है?"

जबसे विवाह हुआ था आज पहला दिन था कि पति-पत्नी का परस्पर विवाद हो गया था। मनोरमा समझती थी कि वह बता चुकी है कि नरेन्द्र उसकी सहेली का भाई है, इससे उसका अपमान करना, विशेष कर उसके मुख पर, उचित नहीं था। इसे वह अपने भावों का अनादर समझती थी। दूसरी ओर नन्दलाल यह समझता था कि एक पुलिस-अफसर को गालियां देने का अधिकार है। इस अधिकार में कोई, विशेष रूप से जो उसके अधीन है, आपत्ति नहीं कर सकता। इस पर

भी मनोरमा उसकी दूसरी बीवी थी और वह उसे नाराज़ करना नहीं चाहता था। इस कारण उसने बात समाप्त करने के लिये कह दिया, "अच्छी बात। वह तुम्हारे मामा का लड़का न सही, सहेली का भाई तो है। पर वह सरकार का अपराधी है। उसने अपराध किया है। हम जो चाहें उसको कह सकते हैं।"

मनोरमा ने भी बात को और बढ़ाने के स्थान पर यहीं बन्द कर देना उचित समझा। वह बोली, "आप जो चाहें कहें। मैंने तो केवल शिष्टाचार के नाते कहा था।"

नन्दलाल कपड़े उतार चुका था। पलंग पर लेट, सो गया।

[४]

ज्यों ज्यों नेताओं के पकड़े जाने के समाचार देश में फैले, लोग क्रोध से उतावले हो उठे। आज़मगढ़, बलिया, गोरखपुर, पटना, मुज़फ़्फ़रनगर, चिटगांव, ढाका, पूना, बम्बई, बंगलौर, मद्रास, अराती, चिमूर और सैकड़ों अन्य स्थानों पर लोग बाग़ी हो गये। कई स्थानों पर तो लोगों ने स्थानीय अफ़सरों को पकड़कर अपना राज्य स्थापित करने का यत्न भी किया, परन्तु अधिकतर तो अनियमित बलवे हुए। कहीं कहीं कोई पुलिस-अफ़सर मारा गया, या कहीं रेल का स्टेशन जला दिया गया या रेल की पटरी उखाड़ दी गयी। यह सब कुछ तीन-चार दिन के भीतर हो गया और पीछे धीरे धीरे शान्ति स्थापित हो गयी। बलिया, आज़मगढ़ और चिटगांव में देशभक्तों का राज्य एक सप्ताह से अधिक नहीं रह सका। उन राज्यों के स्थापित करने वाले बहुत ही साधारण स्थिति के लोग थे।

वीणा देवी ने देहली में युद्ध-कार्यों में विघ्न डालने का कार्य आरम्भ कर दिया था। देहली की कपड़ों की मिलों में हड़ताल तो ९ अगस्त को ही हो गयी थी। इसे जारी रखने के लिये मज़दूरों के नेताओं से सम्पर्क बनाया गया। कुछ किराये के लोग इकट्ठे किये गये जो देहली प्रान्त में रेल की पटरियां उखाड़ दिया करें। इसी प्रकार कॉलेजों और स्कूलों में हड़ताल जारी रखने के लिये यत्न किया जाने लगा। कुछ काल तक तो

यह कार्य चलता रहा, परन्तु लोगों को दिखाई देने लगा कि युद्ध-कार्य तो रुकेगा नहीं, हां उनका कार्य पढ़ाई अथवा नौकरी रुक गयी है। इससे कुछ ही काल में स्कूल तथा कॉलिज खुल गये और कारखाने चालू हो गये। एक आध रेलगाड़ी को पटरी से गिरा देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सका। रेल के पटरी से उतरने पर हानि साधारण जनता को अधिक हुई।

क्रान्ति की सब से मुख्य बात, कि उच्च पदाधिकारी हटाकर उनके स्थान पर नये पदाधिकारी नियत किये जावें, नहीं हो सकी। कारण स्पष्ट था कि ऐसा करने के लिये फ़ौज और पुलिस की शक्ति हाथ में होनी चाहिये थी जो यहां नहीं थी। पुलिस और फ़ौज स्वयं सेवकों की भी हो सकती थी अथवा सरकारी पुलिस तथा फ़ौज में भी विद्रोह उत्पन्न किया जा सकता था। राज्य की स्थापना शहरों में है इस कारण राज्य बदलने के लिये शहरों में क्रान्ति करने की आवश्यकता थी न कि बलिया या गोरखपुर जैसे छोटे स्थानों में।

वीणादेवी अधिक काल तक देहली नहीं रह सकी। उसे यहां से भाग जाना पड़ा। वीणादेवी अकेली ही छिपकर काम करने वाली नहीं थी। उसके साथ और भी लोग थे। एक वैद्यनाथन था। वह मद्रास प्रान्त में मदुरा का रहने वाला था। उसने कानपुर में कारखानों को बन्द कराने का यत्न किया। आरम्भ में तो सफलता मिली, परन्तु कुछ दिनों में हड़तालें खुलने लगीं।

कपड़े की मिलों के कर्मचारियों की यूनियन का नेता अवस्थी आरम्भ से ही हड़ताल का विरोधी था। ६ अगस्त को जब हड़ताल आरम्भ हुई तो लोगों में क्रोध और जोश इतना था कि अवस्थी अपना विरोध प्रकट नहीं कर सका। चार दिन की हड़ताल के पश्चात् अवस्थी ने अपना कार्य आरम्भ किया। एक कारखाने के मजदूरों को वह समझा रहा था, "जापान हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने वाला है। यदि हम लोग फ़ौज के लिये सामान बनाकर नहीं देंगे तो जापान के मुकाबिले

में हमारे फ़ौजी ठहर नहीं सकेंगे। परिणाम में जापानियों की जीत होगी और हम उनके गुलाम बन जायेंगे।"

एक मजदूर रामाधीन ने कहा, "पर बाबू जी, हम तो अब भी गुलाम ही हैं। अंग्रेजों से जापानी कुछ अच्छे ही होंगे।"

"न भाई," अवस्थी का कहना था, "जापानी बड़े दुष्ट हैं। वे बहुत निर्दयी और निर्लज्ज हैं। उनके लिये स्त्रियां केवल व्यभिचार करने के लिये बनी हैं। जापानी सभ्यता में सतीत्व की कुछ भी महिमा नहीं।"

"पर बाबू, अंग्रेज़ों ने महात्मा जी को पकड़ लिया है। यह हम कैसे सहन कर सकते हैं?"

"ओ हो! महात्मा जी को हम बुरा नहीं कहते, पर महात्मा जी राज-नीति तो जानते नहीं। सर्वथा महात्मा ही तो हैं। उन्होंने बिना जाने कि संसार में क्या हो रहा है युद्ध-कार्य में विघ्न खड़ा कर दिया है। इस युद्ध से सारी मनुष्य जाति की किस्मत का निर्णय हो रहा है। यदि जर्मनी और जापान की जीत हो गई तो रूस, जो मज़दूरों का एकमात्र सहायक है, नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। फिर सदियों तक मज़दूरों की सुनने वाला कोई न रहेगा।"

"छोड़ो अवस्थी बाबू, इन बातों को। रूस ने भी तो अंग्रेजों से मित्रता कर ली है। दुष्टों का मित्र भला कैसे सज्जन हो सकता है?"

अवस्थी का दाव नहीं चला। उधर वैद्यनाथन कारखाने के कर्मचारियों को हड़ताल पर डटे रहने के लिये कहने लगा। वैद्यनाथन को वीणादेवी ने इस काम पर नियुक्त किया था। कारखानों में हड़ताल हुए एक मास से ऊपर हो चुका था। कर्मचारी भूखों मरने लगे। उनके पास रुपया-पैसा समाप्त हो चुका था। वैद्यनाथन अब मज़दूरों को उत्साहित करने नहीं जा सकता था। कारण यह कि मजदूर उससे खाने-पीने के लिये सहायता चाहते थे। अब अवस्थी का जोर चलने लगा था। वैद्यनाथन ने पांव-तले से मिट्टी खिसकती देख वीणा को लिखा। वीणा स्वयं कानपुर में आ पहुंची। कारखानों के कर्मचारियों के प्रतिनिधियों की सभा बुलाई गयी।

वीणा ने उसमें व्याख्यान देते हुए कहा, "हम हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों का राज्य चाहते हैं। इस समय अंग्रेजों को आप लोगों की जरूरत है। हम कहते हैं कि हमारे नेताओं को छोड़ दो और हिन्दुस्तान को स्वतंत्र कर दो तो हम तुम्हारे युद्ध-कार्य में सहायता करेंगे। इसमें भला कौन पाप है? वे हमारे देश को स्वतंत्र कर दें। हम उनके देश पर आक्रमण करने वाले को भगा देने में उनकी सहायता करेंगे। मजदूर भाइयों, यह समय है जब हम अपनी बात उनसे मनवा सकते हैं। इस समय यदि आप ढीले पड़ गये तो फिर सदियों तक हमारी सुनने वाला कोई नहीं होगा। आप लोगों को कष्ट तो बहुत हो रहा है, परन्तु बिना कष्ट उठाये भी भला कोई काम बन सकता है। इस समय उत्साह और साहस से काम लो।"

इन प्रतिनिधियों में प्रायः लोग भूख से परेशान थे। एक ने उठ कर कहा, "बहन जी, हम सब कुछ करने को तैयार हैं। कहो तो कारखानों को फूंककर स्वाहा कर दें, परन्तु बात तो यह है कि मेरे पास कल के लिये घर में अन्न-अनाज भी नहीं है। बच्चे बिलख बिलखकर रोयेंगे। बताइये, मैं क्या करूं?"

"अपने गांव में चले जाओ," वैद्यनाथन का कहना था।

"परन्तु तीन बच्चे और बीवी के पालने के लिये तो वहां भी कुछ नहीं है। भाई खेती-बाड़ी करता है। उसके अपने खाने-पहरने को भी काफ़ी नहीं होता। प्रति वर्ष लगान तो मैं भेजा करता हूं। अब यदि मैं भी खाने वाला वहां पहुंच गया तो स्वयं तो भूखा मरूंगा ही, साथ ही भाई को भी भूखों मारूंगा।"

इसका उत्तर वीणा के पास नहीं था। इस पर भी उसने कहा, "अच्छी बात है, कल तक मैं आप लोगों के खाने के लिये लंगर लगवा दूंगी।"

कहने को तो वीणादेवी ने कह दिया, परन्तु वह भली भांति समझती थी कि लंगर के लिये खर्चा कहां से आवेगा। अगले दिन उसने नगर

के कई धनी आदमियों से हड़ताल जारी रखने के लिये मज़दूरों के लिये लंगर लगवाने को कहा। सफलता आशानुकूल नहीं हुई। वीणा के लिये कोई चारा नहीं था। वह अगले दिन चुपचाप कानपुर छोड़ चली गयी।

वीणा के असफल प्रयत्न की सूचना मिल-मालिकों की समिति के मंत्री को मिल गयी। उसने तुरन्त अवस्थी को बुला भेजा। अवस्थी को अपने समीप बैठा मंत्री कहने लगा, "अवस्थी जी, अब समय है कि आप अपना कार्य करें। कांग्रेस के लोग हड़ताल जारी रखने के लिये यत्न कर असफल हुए हैं। कारीगरों के पास रुपया चुक गया है। यह समय है जब आप यत्न करें तो आपकी बात भी पूरी हो सकेगी और हमारी भी।"

"आपकी क्या बात है?" अवस्थी ने पूछा, "आप तो सदैव महात्मा गान्धी और कांग्रेस के भक्त रहे हैं।"

"वह सब ठीक है। मैं अपने निजी विचार से तो चाहता था कि देश को कुछ ऐसा करना चाहिये जिससे अंग्रेजों को विवश किया जा सके। परन्तु हमारी मिल-मालिकों की समिति ने सामूहिक रूप में यह निश्चय किया है कि अब कारखाने जारी हो ही जाने चाहियें। हम नहीं चाहते कि हिन्दुस्तान में जापानी फ़ौजें घुस आयें। हमारे करोड़ों रुपये जो मिलों में लगे हैं मिट्टी हो जायेंगे। साथ ही युद्ध के समय रुपया पैदा किया जा सकता है। पीछे यह अवसर बीसियों वर्षों तक नहीं मिलेगा।"

"तो यह बात है? आपके मुनाफ़ा कमाने के दिन हैं? मुझे इसमें आपत्ति नहीं, परन्तु जब आप प्रत्येक बात को रुपये-पैसे के दृष्टि-कोण से देखते हैं तो हमें भी तो उसी ढंग से सोचना चाहिये। बताइये, आप मजदूरों के लिये क्या करना चाहते हैं और फिर हमारे लिये क्या?"

"हमारे लिये से क्या मतलब है आपका? जरा साफ़ कहिये।"

"मतलब साफ़ है। मैं चाहता हूं कि कुछ मेरा भी ख़्याल रखा जाये।"

मंत्री यही तो चाहता था। बोला, "मैं आपको किसी एक कारखाने में 'लेबर ऑर्गेनाइज़र' नियत करवा दूंगा। एक सहस्र वेतन होगा और काम आपकी रुचि के अनुकूल, अर्थात मज़दूरों की भलाई के उपाय सोचना।"

अवस्थी ने नियुक्ति की चिट्ठी मांगी। उसका वचन दे दिया गया।

उसी दिन अवस्थी मजदूरों की बस्ती में जा पहुंचा और लोगों को घर घर मिलकर समझाने लगा कि उनको काम आरम्भ कर देना चाहिये। यह उपाय, लोगों के एकत्रित कर समझाने से, अधिक सफल रहा। एक कारखाने में तो अगले दिन ही कार्य आरम्भ हो गया और कानपुर के सब कारखाने एक सप्ताह में ही काम करने लगे।

[५]

ज्यों ज्यों सरकार हलचल को शान्त कराने में सफल होती गयी, त्यों त्यों सरकार का व्यवहार बदलता गया। धड़ाधड़ आर्डिनैन्स पर आर्डिनैन्स जारी होने लगे। इन आर्डिनैन्स का परिणाम यह हुआ कि उन तमाम लोगों की, जिन्होंने सरकार की इस हलचल में सहायता की थी, पांचों उंगलियां घी में होने लगीं। कारखानेदारों की आमदनी हज़ारों से लाखों और लाखों से करोड़ों हो गयी। व्यापारी और सट्टे बाज तो सोना-चांदी में लोटपोट होने लगे। देहातों के ज़मींदार, जिन्हें मोटा सूती कपड़ा नसीब नहीं होता था, मखमल और अतलस चोर बाज़ार में खरीद ने लगे। कम्यूनिस्ट जिनकी गन्ध से सरकारी अफ़सरों को सिर-दर्द होने लगता था सरकारी खज़ाने से हज़ारों रुपये मासिक सहायता पाने लगे। अभिप्राय यह कि देश में एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया गया जिससे लोगों की रुचि राजनीति और अपनी दासता दूर करने की ओर से हटकर रुपया कमाने की ओर लग गयी।

मुसलमानों ने भी इस अवसर से लाभ उठाया। निजी लाभ के अतिरिक्त मुसलमानों ने सामूहिक रूप से अपने अधिकारों की मांग बढ़ा दी। अब वे पाकिस्तान चाहने लगे थे। पाकिस्तान का अर्थ था एक, सिंध,

बिलोचिस्तान, पंजाब, सूबा सरहद्दी और सरहद की कुछ रियासतें; दूसरा, बंगाल और आसाम; तीसरा, पंजाब को बंगाल से जोड़ने के लिये पूर्ण यू० पी० और बिहार में से होती हुई सौ मील चौड़ी पेटी; मध्य-भारत में हैदराबाद रियासत के लिये समुद्र का किनारा और मालाबार का दक्षिण-पश्चिम किनारा जहां १९२१ में मोपला उपद्रव हुआ था। सरकार ने मुसलमानों की इन मांगों की सराहना की और मुस्लिम-नेता मिस्टर मुहम्मद अली जिन्हा ने कह दिया कि हिन्दुस्तान में स्वराज्य होने से पूर्व इतना देश पाकिस्तान अर्थात् मुससमानों का पृथक देश बना दिया जाय अन्यथा वे स्वराज्य लेने नहीं देंगे।

ये सब शक्तियां सरकार ने राष्ट्रीयता पर कुठाराघात करने के लिये संचित कर लीं और इनको प्रोत्साहन दिया। राष्ट्रीय नेता जेलों में सड़ रहे थे और देश में पैसा कमाने वाले धड़ाधड़ रुपया एकत्रित कर रहे थे। वीणा और उसके साथ काम करने वाले धीरे धीरे पकड़े जा रहे थे और छिपकर युद्ध-कार्य में विघ्न डालने का काम सन तेतालीस के मध्य तक प्रायः समाप्त हो गया। वीणा अपने प्रत्येक प्रयत्न को विफल होता देख निरुत्साह हो बंगाल के एक गांव दिनाजपुर में जाकर रहने लगी।

सरकार ने हलचल के दबाने के लिये जहां नीति से कुछ जनता को अपनी ओर कर लिया वहां शेष के लिये पुलिस को भारी अधिकार दे दिये। पुलिस वालों ने भी खूब अपने हाथ दिखाये और राष्ट्रीय विचारों को कुचलने के बहाने अपने रंग-महल खड़े कर लिये। कान्स्टेबल, जो अठारह रुपये महीना वेतन और तीस रुपया मंहगाई का भत्ता पाते थे, टांगे और मोटरों के मालिक हो गये। नन्दलाल और डिप्टी रघुवरदयाल भी इस समय की लूट से बाहर नहीं रह सके। घर पर नोटों और सोने के भूषणों के अम्बार लगने लगे

[६]

जिस दिन से मनोरमा का अपने पति से नरेन्द्र के सम्बन्ध में झगड़ा हुआ था, उस दिन से ही उसके मस्तिष्क में हलचल मच रही थी।

उसने भी गोरे सिपाहियों का देहली के एक मोहल्ले में घरों में घुसकर लोगों पर गोलियां चलाने का समाचार पढ़ा था। इससे उसका रक्त उबलने लगा था। उसे नरेन्द्र द्वारा सुनाई हुई मार्शल लॉ के दिनों की कहानी याद आगयी थी।

इस समाचार छपने के पश्चात् समाचार-पत्रों पर प्रतिबंध लगा दिया गया कि हलचल के समाचार सरकारी अफसर की स्वीकृति के बिना जो इस मतलब के लिये नियुक्त हुआ है न छापे जावें। इससे प्रायः सब हिन्दुस्तानी समाचार-पत्र या तो हलचल के समाचार छापने ही न थे, या सर्वथा छपने बन्द हो गये। इन समाचार-पत्रों का स्थान चोरी-चोरी छापी और बांटी हुई 'बुलेटिनों' ने ले लिया।

ये बुलेटिन मनोरमा तक भी पहुंचने लगे थे। प्रति दिन सूर्योदय से पूर्व कोई इनको कोठी के बाहर लगे डाक के डिब्बे में डाल जाता था। मनोरमा को जबसे पता चला था वह बहुत सुबह उठ डिब्बे से इनको निकाल लेती थी और फिर टट्टी या गुसलखाने में छिपकर पढ़ा करती थी। इन पत्रकों में समाचार बहुत संक्षेप में, परन्तु बहुत आकर्षक और चमत्कारक होते थे। पढ़ने वाले के मनोद्‌गार भड़के बिना इनसे नहीं रह सकते थे। कभी बलिया में देसी राज्य स्थापित होने का समाचार था, तो कभी चिढ़गांव में राष्ट्रीय सेना के निर्माण का। कभी पंजाब मेल के उलट जाने का समाचार होता था तो कभी किसी रेल के स्टेशन के जलाकर भस्म कर देने का। रेल की पटरी को उखाड़ किसी दरिया में फेंक देने के तो बहुत समाचार होते थे। ये सब समाचार कितने ठीक होते थे और कितने मिथ्या कोई कह नहीं सकता था! खुले और सरकार से रजिस्टर्ड समाचार-पत्रों के अभाव में ये चोर बुलेटिनें चलती थीं और किसी के वश में नहीं था कि सत्य और झूठ को पृथक पृथक कर सके।

कभी कभी देहली के समाचार भी छपते थे। एक दिन समाचार छपा कि चान्दनी-चौक में रात के समय एक मारवाड़ी-परिवार की सब

स्त्रियों को पकड़कर अपमानित किया गया। इस प्रकार के समाचारों से मनोरमा का हृदय फड़कने लगता था। वह यह अनुभव कर रही थी कि इन दमन के कार्यों में उसके पति का भी हाथ है।

एक दिन यह समाचार था, 'लाला हरवंशलाल रईस, नई देहली, के सुपुत्र विजय को पकड़कर चूतड़ों पर बेंत लगाये गये। लड़का मुआमिला हाइकोर्ट में लेजाने की धमकी पर नहीं छूटा, जैसी कि अफ़वाह है, बल्कि उसको छुड़ाने के लिये लाला जी ने दो हज़ार रुपया घूस में दिया है।'

इस समाचार से मनोरमा के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसके पिता देहली के बड़े अफ़सर हैं और विजय के पिता उनके परम मित्र हैं। इस पर भी यदि विजय पर यह अत्याचार हो गया है तो दूसरे लोगों की, जिनकी पुलिस में कुछ भी सुनवाई नहीं, क्या हालत होती होगी। फिर उसके मन में संदेह उठा कि यह बात ग़लत भी हो सकती है। पहले भी इन बुलेटिनों की बातों पर उसे कई बार संदेह हो चुका था, परन्तु आज के समाचार की सत्यता का तो वह पता कर सकती थी।

आज की बुलेटिन पढ़ने से उसे बहुत दुख हुआ था। वह स्नानादि कर, कुछ शान्त मन हो सोचने लगी कि इस प्रकार के समाचार, जिनके भेजने वाले का पता नहीं, जिनके छापने वाले का नाम नहीं और जिन के बांटने वाले अपना मुख नहीं दिखा सकते, कैसे सत्य माने जा सकते हैं। इस विचार से शान्त-मन हो वह पति के सोने के कमरे में गयी तो नन्दलाल शौचादि के लिये गुसलखाने में गया हुआ था। वह नौकर को बुला बिस्तर ठीक करवाने लगी तो उसने देखा कि तकिये के नीचे सौ सौ रुपये के दस नोट रखे हुए हैं। यह कोई विचित्र बात नहीं थी। पहले भी तकिये के नीचे रुपये रखे रहते थे परन्तु इतनी बड़ी रकम का वहां होना यह प्रकट किया करता था कि कहीं से घूस की रकम आई है। मन में यह समझते हुए भी कि यह रुपया पाप का है वह इसे नित्य प्रति की बात समझ चुप रहा करती थी। परन्तु आज एक सहस्र रुपया

एकदम देख उसे बुलेटिन में छपे समाचार की याद आगयी। वहां लिखा था कि वास्तव में ला० हरवंशलाल ने दो हज़ार घूंस देकर लड़के को छुड़ाया था। मनोरमा के मन में तुरन्त यह विचार उठा कि यह रुपया उसी घूस का एक अंश हो सकता है। यद्यपि इसमें कोई प्रमाण नहीं था इस पर भी यह बात उसके मन में बैठ गयी। वह अपने मन से बात हटाती थी, परन्तु वह निकलती नहीं थी।

बिस्तर नौकर से ठीक करवा, नोट उसी प्रकार तकिये के नीचे रखवा, बिस्तर को चादर से ढांप दिया। नौकर सफ़ाई कर चला गया था जब नन्दलाल स्नान कर कपड़े पहनने के लिये कमरे में आया। सदा की भांति मनोरमा उसको कपड़े पहिनाने में सहायता देने लगी। इस समय वह अपने मन की बात छिपाकर रख नहीं सकी और पूछने लगी, "क्या विजय कल पकड़ा गया था?"

"कौन विजय?" नन्दलाल ने चौंककर पूछा।

"कमला का भाई विजय। आप उसे जानते तो हैं न।"

"अच्छा! ला० हरवंशलाल का लड़का जो किसी कॉलेज में पढ़ता है?"

"हां वही। सुना है उसे बेंत लगाये गये हैं।"

"मुझे मालूम नहीं था। बात यह हुई कि कल सेण्ट स्टीफन्स कॉलेज के दरवाज़े पर दो विद्यार्थी पकड़े गये थे।"

"क्यों?"

"वे लड़कों को कॉलेज में जाने से रोकते थे।"

"कैसे? डंडे मारकर अथवा गोली मार देने का भय दिखाकर?"

"नहीं, दरवाज़े पर खड़े होकर लड़कों को कहते थे कि हड़ताल कर दो। कॉलेज के प्रिन्सिपल ने रिपोर्ट की। इससे पुलिस वहां गयी और इन लड़कों को पकड़ लाई।"

"तो फिर इस दोष में इनको बेंत लगाये गये?"

इस समय तक नन्दलाल कपड़े पहन तैयार हो चुका था और बोला,

"मनोरमा, तुम इन बातों में मत दखल दिया करो। ये हमारे दफ़्तर की बातें हैं।"

"आपको मालूम है कि कमला मेरी सहेली है। विजय उसका भाई है। मेरा कोई सहोदर भाई न होने से उसे ही टीका किया करती हूं।"

"सत्य पूछो तो मुझे मालूम नहीं था कि वह लड़का कमला का भाई है। मैंने जब उससे पूछा, "धरना क्यों दे रहे थे?' तो कहने लगा, 'धरना देने का अर्थ मैं नहीं समझता। हम तो लड़कों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करते थे कि हड़ताल कर दें। लड़के हमारी प्रार्थना मान जाते थे।'

"इस पर मैंने कहा, 'यह तुम्हारा काम कानून के विपरीत है।'

"तो वह कहने लगा, 'कानून के ख़िलाफ़ है तो मुकदमा चला दो। मैजिस्ट्रेट जो करेगा देखा जायगा। आप तो मैजिस्ट्रेट नहीं हैं।'

"मुझे क्रोध चढ़ आया। मैंने कहा, 'मैजिस्ट्रेट के बच्चे! देखूं तो तुम्हारा मैजिस्ट्रेट क्या करता है?' मैंने एक सिपाही को आज्ञा दे दी कि उसे एक दर्जन बेंत लगा दे। बेंत लगे तो फिर रोने लगा। मैंने कहा, 'क्यों बच्चा जी, अब रोने लगे हो। देखा, हम मैजिस्ट्रेट के भी बाप हैं।"

"उसने कहा, 'जल्लाद के बच्चे...।' वह कुछ और भी कहना चाहता था, परन्तु मैंने एक चांटा उसके मुख पर दे मारा। उसके हाथ में हथकड़ी थी, नहीं तो वह मुझ पर ज़रूर हाथ उठाता। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि लड़का बड़ा गुस्ताख़ है और फिर मुझे नहीं मालूम था कि वह कमला का भाई है। यह तो मुझे तब मालूम हुआ जब लाला हरवंशलाल उसको छुड़ाने आये। मैंने लाला जी से अफ़सोस प्रकट किया; और वे लड़के को घर ले गये।"

मनोरमा की आंखों में आंसू झलक रहे थे। उसका नाक क्रोध के श्वासों और निःश्वासों से फूल रहा था। उसने कहा, "और आपके अफ़सोस प्रकट करने से लाला जी गद्गद् होकर आपको दो हज़ार रुपया इनाम दे गये। ठीक है न......?"

इसके आगे वह कुछ नहीं कह सकी। उसका गला आंसुओं में रुंध गया।

नन्दलाल ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "किसने कहा है तुम्हें?"

मनोरमा ने बिस्तर की चादर और तकिया उठाकर नोट दिखाते हुए कहा, "ये कह रहे हैं।"

एक क्षण के लिये नन्दलाल स्तब्ध खड़ा रह गया। वह नहीं समझ सका कि घूस की रकम का ठीक पता मनोरमा को कैसे लगा है। फिर कुछ सोचकर बोला, "नहीं मनोरमा, मैंने नहीं मांगा था। यह तो लाला जी अपने आप ही दे गये हैं। बात यह थी कि मैं तो इनकार कर ही रहा था, पर महकमे के दूसरे लोग जो हैं। एक हज़ार तो वहीं कोतवाली में बंट गया था। पांच सौ अभी और बंटना है। मेरे पास तो केवल पांच सौ ही रहेगा। तुम कहती हो तो अपने हिस्से का पांच सौ लाला जी को वापिस भेज देता हूं।"

"लाला जी आप जैसे कंगले नहीं कि इस पांच सौ को लेंगे। यह रुपये की बात नहीं, यह तो सम्बन्ध की बात है।"

मनोरमा अभी भी हिचकियां भर रही थी। नन्दलाल अपने को कंगला कहा सुनकर दंग रह गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह कहीं हवा में निराधार खड़ा है। उसने अपना हंटर ज़ोर से पकड़ लिया मानो इस निराधार आकाश में यह हंटर ही उसका एकमात्र आश्रय है। मनोरमा ने उसे हंटर को ज़ोर से पकड़ते देख लिया था। वह समझी कि वह उसे पीटने वाला है। बोली, "पीटो! पीट डालो!! भाई को पीटकर मन ठंडा नहीं हुआ तो अब बहन को भी पीट दो। करो न बहादुरी।"

नन्दलाल और नहीं सुन सका। चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया।

[७]

नन्दलाल के घर से जाते ही मनोरमा घर से निकल टांगा कर कमला के घर पहुंची। वह वहां नहीं थी। बनारसीदास कोठी के बरामदे में

खड़ा था। मनोरमा को आया देख मुख फेरकर खड़ा हो गया। मनोरमा उनके सामने हो पूछने लगी, "चाचा जी, कमला बहन भीतर है ?"

"नहीं।" इतना कह वे कोठी के भीतर चले गये। मनोरमा समझ गयी कि उसके पति के दोष से वह भी दोषी मानी गयी है। वहां से निकल वह हरवंशलाल की कोठी पर पहुंची। कोठी के बाहर कोई नहीं था। एक माली लॉन के किनारे लगे पेड़ों की कांट-छांट कर रहा था। मनोरमा टांगे से उतर कोठी में चली गयी। बरामदा और ड्राइंग-रूम खाली थे। सब लोग विजय के कमरे में इकट्ठे हो रहे थे। मनोरमा ने समझा कि परिवार इकट्ठा हो कुछ विचार कर रहा है। उसे बनारसीदास का व्यवहार स्मरण हो आया। 'क्या ये लोग भी मुझसे घृणा करेंगे ? अवश्य करनी चाहिये।' वह मन में सोचती थी कि कमीने लोगों से सम्बन्ध जोड़ने पर घृणा का पात्र बन जाने में अचम्भा नहीं होना चाहिये। अब तो वह यह सोच रही थी कि इस परिवार के लोगों से मिले अथवा न। यदि वे कोई परामर्श कर रहे होंगे तो अवश्य उसे देखकर चुप कर जायेंगे। वह वहां जाकर, उनकी बातों में विघ्न डालकर और अधिक घृणा की पात्र बन जायगी। तो वह लौट जाय ? वह वापिस लौटने ही वाली थी कि उसे विजय के कमरे से नरेन्द्र की आवाज़ सुनाई दी। वह वहीं खड़ी हो गयी, फिर खिंचकर कमरे के बाहर जा पहुंची और दीवार के साथ लगकर सुनने लगी।

हरवंशलाल कह रहा था, "मुझे रुपये का शोक नहीं। दो हज़ार रुपया देने से मैं निर्धन नहीं हो गया। मुझे तो शोक है डिप्टी साहब से मित्रता रखने का। जब मैंने उनसे कहा कि उनके दामाद ने लड़के को बेतों से पिटवा दिया है तो बोले, "भाई, तुम मेरे पास आते तो मैं लड़के को बिना पैसे के छुड़वा देता। नन्दलाल अभी बच्चा है। जवानी के जोश में यदि कुछ कर बैठा है तो मैं क्या कर सकता हूं ?"

"बस बात टाल दी," नरेन्द्र ने कहा, "और यह नहीं बताया कि आपके दो हज़ार में से पांच सौ उसे भी मिले हैं।"

"यह तुम्हें किसने बताया है ? मुझे इसका विश्वास नहीं होता ।"

"यह बात बिलकुल ठीक है । मैं जानता हूं और आपको भी पता चल जायेगा । धोखा बहुत देर तक छिपा नहीं रह सकता ।"

हरवंशलाल चुप था । विजय ने इसके उत्तर में कहा, "पिता जी, आप डिप्टी साहब से मेल-जोल बंद कर दें न ।"

हरवंशलाल अभी भी चुप था । विजय की मां ने बात बदल दी और कमला से पूछा, "तुम्हें इसका कैसे पता चला है ?"

"मालूम नहीं लाला जी को किसने बताया है ? हमारे जागते ही उन्होंने सूचना दी । हमें विश्वास नहीं होता था । समाचार पाते ही कपड़े पहन यहां चले आये हैं ।"

इन्द्रजीत ने कहा, "माता जी, अब इन बातों से क्या हो सकता है ? यह एक विजय का प्रश्न तो है नहीं । देश भर का प्रश्न है । विजय हमारे समीप है, इससे हमें पता चल गया है । अनेकों हैं जो नित्य विजय की भांति मारे और पीटे जाते हैं । जब देश स्वतन्त्र हो जाएगा तो न ऐसे कानून रहेंगे, जो पुलिस को इतना अत्याचार करने की स्वतंत्रता देते हैं और न इस प्रकार के पुलिस वाले रहेंगे, जो कुछ रुपये ऐंठने के लिये निरापराधों को कष्ट देने लगते हैं ।"

हरवंशलाल को नरेन्द्र के विषय में चिन्ता लग रही थी । उसने कहा, "अब दिन में तुम कैसे जाओगे ?"

"आप मेरी चिन्ता न करें । मुझे डर नहीं लगता । मैं भाग्य के भरोसे रहता हूं ।"

मनोरमा ये बातें बाहर खड़ी सुन रही थी । उसके मन में रह-रहकर आता था कि कमरे के भीतर चली जाय, पर उसका मन भीतर ही भीतर बैठता जाता था और उसे अपना मुख इन लोगों को दिखाने में लज्जा लगती थी । अभी तक तो साधारण रूप में बातें हो रही थीं, परन्तु उसके भीतर चले जाने से सब के हृदय में छिपा ज्वालामुखी फूट पड़ेगा । और क्या जाने उस ज्वालामुखी की लपटों को सहन करने की

शक्ति उसमें न हो। इस विचार से उसकी टांगें थरथराने लगीं और सिर में चक्कर आने लगा। वह वापिस लौट पड़ी और बाहर ड्रॉइंग-रूम में चली आई। इससे आगे जाने की उसमें शक्ति नहीं रही। वह वहीं एक सोफ़े पर बैठ गयी।

इसी कोठी में उसने अपने जीवन की कुछ अति आनन्दमय घड़ियां व्यतीत की थीं। वे उसको स्मरण हो आईं। कमला, विजय, विनय सब उससे बहन का सा व्यवहार करते थे। विजय की मां भी उससे बहुत स्नेह रखती थी। कमला तो अभी दो दिन हुए मिली थी। उसकी बातों में सदा की भांति बहुत स्नेह भरा हुआ था। क्या अब भी वे उसे अपने पति से भिन्न व्यक्ति मानेंगे और उसके साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे? वह सोच रही थी कि इन लोगों के बाहर आने से पूर्व ही वहां से चली जाय तो अच्छा हो। अभी इनसे मिलना ठीक नहीं। घाव ताज़ा है। जरा सा छिड़ जाने पर बहने लगेगा। परन्तु उसकी टांगें जवाब दे चुकी थीं। वे चलने से इनकार कर रही थीं। यदि नौकर समीप होता तो पानी मंगवा लेती और पीकर चली जाती। ऊंची आवाज़ देकर बुलाने से तो घर के लोगों के ही आजाने का भय था।

इन्हीं विचारों में एक बार उसके मन में उत्साह भर आया और सोचने लगी, 'मैंने इन लोगों का कोई बुरा नहीं किया। मैं अपने पति के कामों की उत्तरदायी नहीं हो सकती। पर इस सच्चाई को जानने के लिये किस के पास अवकाश है। दूसरे लोग तो मेरे विचारों का अनुमान मेरे कामों से ही लगायेंगे। जब तक मैं अपने पति के घर में रहती हूं, उसका दिया अन्न खाती हूं और उससे लाये गये कपड़े पहनती हूं तब तक कोई कैसे कह सकता है कि मैं उससे भिन्न व्यक्तित्व रखती हूं।'

इस समय उसका मन पुनः दुर्बलता अनुभव कर रहा था। वह सोचने लगी, 'मैं विजय वगैरह के लिये क्यों अपने पति और पिता को छोड़ दूं? वे बहुत अच्छे लोग हैं, इस पर भी वे मेरे लिये मेरे पति और पिता से बढ़कर तो नहीं हो सकते। इस पर प्रश्न उठा कि क्या विचार-

समानता अधिक घनिष्ठता नहीं बनाती और जन्म सम्बन्ध केवल एक घटनामात्र नहीं है। क्या नरेन्द्र जिसके अनुकूल मेरे विचार हैं मेरे अधिक समीप नहीं? क्या नन्दलाल से मेरा सम्बन्ध केवल एक इत्तफ़ाक नहीं? क्या वह जिससे मेरे विचार नहीं मिलते मुझसे दूर नहीं है?"

वह इसी प्रकार के विचारों में लीन वहां बैठी थी कि इन्द्रजीत बाहर किसी काम से आया। वह मनोरमा को चुपचाप वहां बैठा देख वापिस विजय के कमरे में चला गया और संकेत कर कमला को बाहर बुला लाया। कमला ने मनोरमा को बैठे देखा तो उसके पास आकर बैठ गयी और गले में बांह डालकर बोली, "तुम आगयी हो मनोरमा?"

मनोरमा कमला के प्रश्न पूछने से चौंक उठी। कुछ देर तक वह कमला के प्रश्न का अभिप्राय समझने के लिये उसके मुख की ओर देखती रही। एकाएक इसका अर्थ समझ उसने विस्मय से पूछा, "तो तुम लोग मेरे आने की आशा कर रहे थे?"

"तो तुम्हें नहीं मालूम......?" कमला कहते कहते रुक गयी।

मनोरमा ने वाक्य पूरा कर दिया, "कि विजय को बेंत लगे हैं।"

"तो तुम्हें मालूम हो गया है?"

"और आप लोग समझते थे कि मैं खबर लेने आऊंगी?"

"हां, विजय तुम्हारा भाई नहीं है क्या?"

"हां," मनोरमा ने लम्बा सांस खींचते हुए कहा, "परन्तु पीटने वाला भी मेरा कोई है।"

"परन्तु तुम इस काम को नापसन्द तो करती हो न?"

"इसे कौन पसन्द करेगा? परन्तु बहन, मैं आई पर भीतर जाकर विजय भैया के सम्मुख आंखें नहीं कर सकती, इसलिये यहीं बैठी रह गयी। मुझे अपने पर घृणा और लज्जा लगने लगी है।"

कमला ने कहा, "जीजा जी को नौकरी छोड़ने को क्यों नहीं कह देती? क्या पुलिस का महकमा ही है जहां काम किया जा सकता है?"

"झगड़ा तो उनसे हुआ है, परन्तु मैं समझती हूं कि वे कहीं और

काम करने के योग्य भी नहीं हैं।" मनोरमा के मन में था कि उसकी अपनी प्रकृति ही ख़राब है, परन्तु वह दूसरों के मुख पर अपने पति की निन्दा नहीं कर सकी।

"छोड़ो इन बातों को," इन्द्रजीत ने कहा, "मनोरमा बहन, तुम्हारी आत्मा शुद्ध है। बस हमें और कुछ नहीं चाहिये। समाचार पाते ही तुम चली आयी हो, क्या यह तुम्हारी आत्मा की शुद्धता प्रकट नहीं करता? चलो न भीतर। विजय को तुम्हें देखकर शान्ति मिलेगी।"

"तो क्या माता जी नाराज़ न होंगी?"

"नाराज़ तुमसे? भला क्यों? चलो तो तुम्हें वहां ले चलूं।" कमला मनोरमा की बांह पकड़कर विजय के कमरे की ओर ले गई। मनोरमा वहां पहुंची तो नरेन्द्र वहां से जा चुका था।

[८]

डिफ़ेन्स ऑफ़ इंडिया एक्ट ऐसा बनाया गया था कि पुलिस वाले मनमानी कर सकते थे। दो मास तक तो किसी को भी पकड़कर हवालात में रख देते थे। पश्चात् पुलिस की रिपोर्ट पर बड़े अफ़सर आज्ञा दे सकते थे कि पकड़ा हुआ आदमी अनिश्चित समय के लिये जेल में बन्द कर दिया जाय। वह बड़ा अफ़सर प्रायः 'सेक्रेटरी टू दि गवर्नर' होता था और वह गवर्नर के नाम पर यह आज्ञा देता था।

परन्तु जो तत्व की बात थी वह यह थी कि सेक्रेटरी या गवर्नर, जो कोई भी हो, उसे पुलिस की रिपोर्ट पर ही विश्वास करना पड़ता था। उसके पास पुलिस के महकमे से स्वतन्त्र कोई साधन सच्चाई जानने का नहीं था।

जब से देश में राष्ट्रीय भावना जागृत हुई है लोग मैजिस्ट्रेटों को हुकूमत करने वाले अफ़सरों से स्वतन्त्र करने की मांग उपस्थित किये हुए हैं। साधारण काल में भी पुलिस मैजिस्ट्रेटों पर भारी दबाव डाल सकती है, परन्तु डिफ़ेन्स ऑफ़ इंडिया एक्ट के अनुसार तो किसी को जेल में ठूंस देने के लिये मैजिस्ट्रेटों की आवश्यकता ही नहीं रही थी।

मैजिस्ट्रेट के सम्मुख मामला जाने से अभियोगी को अपनी सफाई उपस्थित करने का अवसर तो मिल जाता था। वह मानी जाय चाहे न, यह बात दूसरी थी: परन्तु अब तो पुलिस ने जिस किसी को भी चाहा सन्देह में पकड़ लिया। दो मास तक उसके विरुद्ध मुकदमा तैयार किया और वह 'सेक्रेटरी टू दि गवर्नर' को भेज दिया। उसके पास पुलिस के लांच्छनों की जांच करने के साधन नहीं हैं। विवश उसे उन्हें ठीक मानना पड़ता है। बस फिर क्या था यदि पुलिस ने रिपोर्ट ठीक बनाकर लिखी तो बिना अभियोगी को बताये कि उसका क्या दोष है उसे जेल भेज दिया गया।

यह अवस्था जहां पर हो वहां पुलिस को हाथ रंगने का अवसर मिल जाना स्वाभाविक ही है। यह अन्धेरगर्दी देहली में भी देश के अन्य भागों की भांति चल रही थी।

एक रात इन्द्रजीत सिनेमा देखने गया तो घर नहीं लौटा। रात के एक बजे तक प्रतीक्षा करने के बाद कमला ने अपने श्वसुर को जा जगाया। बनारसीदास उठकर पूछने लगा, "क्या है ?"

"वे घर नहीं आये।"

"कहां गया था ?"

"सिनेमा देखने। रात के दस बजे आने को कह गये थे।"

"अभी तक नहीं आया। अब तो (घड़ी में देखकर) एक बज गया है।"

"जी।"

"फिर मैं क्या करूं ? इस वक्त सो जाओ सुबह देखा जायगा।"

"दिल डर रहा है।"

"क्यों ?"

"ऐसा पहले कभी नहीं हुआ।"

"हां, कुछ बात तो हुई है। परन्तु अब क्या कर सकता हूं ? मैं कहां ढूंढने जाऊं ?"

"ज़रा कोतवाली में टेलीफ़ोन कर पूछिये।"

"अच्छी बात," इतना कह बनारसीदास गोल कमरे में आ टेलीफ़ोन कोतवाली से मिला कहने लगा, "शहर कोतवाली ? मैं नई दिल्ली से बोल रहा हूं। मेरा लड़का मैजेस्टिक सिनेमा में पिक्चर देखने गया था। उसे दस बजे तक लौट आना था। नहीं आया।

"मैं इस कारण पूछ रहा हूं कि आपके यहां कोई सूचना हो······ क्या कहा?······रंडी के यहां चला गया होगा ? नहीं, वह ऐसा नहीं है···· आप नहीं जानते ?······अच्छा देखिये। उसका नाम है··· क्या कहा?···तुम किसी के बाबा के नौकर नहीं···नहीं ?···मैंने आपको कब नौकर कहा है ? साहब, आप तो शहर के मालिक हैं। तभी तो आपसे अर्ज़ कर रहा हूं। लड़के का नाम इन्द्रजीत है। आयु तेईस वर्ष। रंग गंदमी। कद पांच फुट छः इंच। छाती चौड़ी। कुर्ता-धोती पहने है। पांव में सैंडल हैं।

"आप सुन रहे हैं न ?···आपने लिख लिया ?···आप बोल नहीं रहे ?···हैलो···हैलो···है···लो···"

बनारसीदास ने टेलीफ़ोन लटकाकर कमला से कहा, "टेलीफ़ोन 'हैंगर' से उतार, नीचे रख आदमी सो गया प्रतीत होता है।" कमला को बहुत निराशा हुई। वह अपने कमरे में आ मन मसोस कर बैठी रही। दो बजे—तीन बजे—चार—पांच और छः बज गये, परन्तु इन्द्रजीत घर नहीं आया। वह कमरे से बाहर आई तो उसने देखा कि उसका स्वसुर कपड़े पहन तैयार खड़ा है। कमला की फूली हुई आंखें देख उसने कहा, "मैं पता करने जा रहा हूं।"

कमला को कुछ धैर्य हुआ और वह चुपचाप भूमि की ओर देखती हुई खड़ी रही।

बनारसीदास कोठी से निकल, मोटर में सवार हो सीधा नई देहली थाने में पहुंचा। वहां पर कुछ पता न चलने पर देहली-कोतवाली में जा पहुंचा। वहां पर एक सब-इन्सपैक्टर उपस्थित था। उसने लाला

जी से पूछा, "क्या काम है ?"

"मेरा लड़का रात से गायब है। उसकी कोई खबर थाने में हो तो पूछने आया हूं।"

सब-इन्सपेक्टर ने एक खाली कागज का टुकड़ा ले रिपोर्ट लिखने के लिये कलम हाथ में ले ली। उसने पूछा, "लड़के का नाम क्या है ?"

"इन्द्रजीत।"

"आपका नाम ?"

"बनारसीदास।"

"आपके बाप का नाम ?"

"ला० मोहनलाल।"

"कहां रहते हैं ?"

"बारहखम्भा रोड पर।"

"पहले कहां के रहने वाले हैं ?"

"गुजरांवाला का।"

सब-इन्सपेक्टर लिख रहा था, "बनारसीदास, वल्द मोहनलाल, साकिन गुजरांवाला, साकिन हाल नई देहली बारहखम्भा रोड, बगावत से भरे बुलेटिन बांटता हुआ पकड़ा गया। पकड़ने के वक्त बुलेटिन ज़मीन पर फेंक दिये। हिरासत में करने वाला कान्स्टेबल बमुश्किल उसे पकड़ कोतवाली लाया। उसे डिफेन्स आफ इंडिया ऐक्ट के रूल २६ के मुताबिक हिरासत में लिया जाता है।"

सब-इन्सपेक्टर ने दो कान्स्टेबलों को बुलाकर कहा, "लाला जी को हवालात में कर दो।"

लाला जी के कान खड़े हो गये। पूछने लगे, "क्यों साहब, मैंने क्या किया है ?"

"जब कोतवाल साहब आवेंगे तो पूछ लेना।"

बनारसीदास चुपचाप कान्स्टेबलों के साथ चल पड़ा। आशा थी कि एक-आध घंटे में ही छूट जायगा।

नन्दलाल जो शहर कोतवाली का इन्चार्ज था बारह बजे वहां पहुंचा। उस समय पकड़े हुए लोगों की भीड़ लग रही थी। कांग्रेस के आन्दोलन को दबाने के लिये पकड़-धकड़ खूब ज़ोरों से हो रही थी। पुलिस ने जब देखा कि कांग्रेसी-अनियमित-पत्रक बंटने बन्द नहीं हो रहे तो इसे रोकने के लिये बिना किसी प्रकार के नियम के लोगों को पकड़ना आरम्भ कर दिया। कोतवाली में पूछगीछकर यदि किसी पर सन्देह होता तो रोक लिया जाता था अन्यथा छोड़ दिया जाता था। इतना करने-मात्र से ही पुलिस के हाथ रंगे जा रहे थे।

नन्दलाल यह भली भांति जानता था कि पकड़े जाने वालों में बहुत लोग निरपराध होते हैं, परन्तु जिस काम से अफ़सर प्रसन्न हों और जेब गरम हो उसको करने में वह हानि नहीं मानता था। अफ़सर चाहते थे कि पुलिस का लोगों के मन में इतना आतंक बैठ जाय कि फिर किसी को कोई बात, उनकी इच्छा के विपरीत, करने का साहस ही न हो सके। इस कारण वे पुलिस की शिकायतों पर अधिक ध्यान नहीं देते थे। वास्तव में विदेशी राज्य के रक्षक पुलिस और फ़ौज ही हैं और अपने रक्षकों से कौन रियायत नहीं करता।

नन्दलाल अपनी कुर्सी पर बैठा तो पकड़े हुए लोग उसके सामने उपस्थित किये जाने लगे। एक से नन्दलाल ने पूछा, "क्या नाम है?"

"अब्दुलग़नी।"

"ओह मुसलमान हो! तुम जा सकते हो।"

सरकार की नीति थी कि मुसलमानों को कम से कम पकड़ा जाय। अगले आदमी से पूछा, "क्या नाम है?"

"रामनिरञ्जन।"

"क्या काम करते हो?"

"एक करियाने की दूकान पर नौकर हूं।"

"क्या तन्खाह पाते हो?"

"चालीस रुपया माहवार।"

"अच्छी बात, उस कमरे में चले जाओ।"

रामनिरंजन बताये हुए कमरे में गया तो वहां एक हेड-कान्स्टेबल को बैठा देखा। वह उसे देखते ही बोला, "बताओ लाला, हवालात में जाना चाहते हो?"

"क्यों जाऊंगा साहब? मैंने कुछ नहीं किया।"

"तो ठीक है, दस रुपये निकालो।"

"हुज़ूर, जेब में तो हैं नहीं।"

"कितने हैं?"

लाला ने अन्दर की जेब में हाथ डालकर, सब रेज़गारी निकाल गिनी। पांच रुपये साढ़े सात आने थे। मेज़ पर ढेर कर रख दिये। हेड-कान्स्टेबल ने आवाज़ दी, "नत्थेखां।"

एक आदमी सफेद-पोश भीतर आया। हेड-कान्स्टेबल ने कहा, "यह उठा लो," और रामनिरंजन की ओर घूरकर देखते हुए कहा, "जाओ लाला, फिर न ऐसा करना।"

"क्या न करना हुज़ूर?"

"यही! नाली में पेशाब न करना।"

"मैं पेशाब नहीं कर रहा था हुज़ूर। मैं नल पर पानी पी रहा था।"

"अबे! मत कहो पानी पी रहा था। कहो पेशाब कर रहा था। समझे! जाओ।"

रामनिरंजन सिर पर पांव रखकर भागा। इस समय एक और युवक कोतवाल साहब का भेजा हुआ आया। हेड-कान्स्टेबल ने पूछा, "क्या नाम है?"

"हरिश्चन्द्र।"

"क्या करते हो?"

"हिन्दू कॉलेज में पढ़ता हूं।"

"बाप को लिखो, आकर ज़मानत देकर छुड़ा ले जाये।"

"क्यों?"

"लिख दो, बाबू साहब। नहीं तो रात भर यहीं हवालात में रहना पड़ेगा।"

लड़के ने एक खाली कागज के टुकड़े पर पिता के नाम दो पंक्तियां लिख दीं और हेड-कान्स्टेबल को पता बता दिया।

इस प्रकार काम चल रहा था। एकाएक सब-इन्सपैक्टर को याद आया कि एक लड़का रात का पकड़ा हुआ है और सुबह से उसका पिता भी हवालात में है। वह अपनी जगह से उठा, कोतवाल के पास पहुंचा और कान में कुछ कहने लगा। नन्दलाल ने अचम्भे में पूछा, "कौन ? बनारसीदास और उसका लड़का ? गज़ब कर दिया है तुमने। जाओ, उन्हें जल्दी छोड़ दो।"

"क्यों ?"

"वे बहुत बड़े आदमी हैं और सरकार को लाखों चन्दा देने वालों में हैं।"

"तो हुज़ूर, हम तो लाखों नहीं मांगते। हमें कुछ दे देने से तो इन का कुछ बिगड़ेगा नहीं।"

"जिस किस तरह भी हो उन्हें छोड़ दो। और देखो, मेरे पास मत लाना।"

सब-इन्सपैक्टर हवालात में जा पहुंचा। वहां बनारसीदास और इन्द्रजीत दोनों फ़र्श पर बैठे थे। सब-इन्सपैक्टर उन्हें देख कहने लगा, "सख़्त अफ़सोस है कि मैं पहले आपसे मिल नहीं सका। आजकल आप लोगों की ही मेहरबानी से काम बहुत हो गया है। बताइये, मैं आपके लिये क्या कर सकता हूं ?"

"मुझे और मेरे लड़के को छोड़ दीजिये।"

"क्यों ?"

"यह तो मुझे पूछना चाहिये कि हमें क्यों पकड़ा है ?"

"देखिये लाला जी, कानून तो यह है कि आपको कुछ न बताया जाय और चुपचाप हवालात में दो महीने तक रखा जाय ताकि आपके

विरुद्ध मुकदमा तैयार हो सके। मगर मैं आपकी खिदमत के लिये हाज़िर हूं।"

बनारसीदास ने कुछ सोचकर कहा, "तो आप इस खिदमत के लिये दाम मांगते हैं?"

"आप स्वयं समझ सकते हैं।"

"कितना चाहते हो?"

"देखिये साहब, मैं अकेला नहीं हूं। मेरे मातहत और मेरे ऊपर सब का पेट है। अगर आप दस हज़ार का इन्तज़ाम कर दें तो सब बात पन्द्रह मिनट में तय हो जाएगी।"

बनारसीदास ने निश्चय करने में एक क्षण ही लगाया। बोला, "इतनी बड़ी रकम तो मैं साथ लेकर नहीं आया। मुझे टेलीफोन करने की स्वीकृति दें तो प्रबन्ध हो सकता है।"

"अच्छी बात, आइये," कह सबइन्सपेक्टर बनारसीदास और इन्द्रजीत को साथ लेकर बाहर टेलीफोन के समीप आगया। लाला जी से टेलीफोन का नम्बर पूछ, टेलीफोन मिला पूछने लगा, "कहां से बोलते हो? ''ला० बनारसीदास की कोठी से?''''''" अब बनारसीदास की ओर देख-कर बोला, "आपका नौकर बोल रहा है। कहिये, जो कहना चाहते हैं।"

बनारसीदास ने टेलीफोन कान से लगाकर पूछा, "कौन बोल रहा है?'''''' मैं बनारसीदास''''''कुछ घबराने की बात नहीं''''''बहू को टेलीफोन पर बुलाओ।"

कुछ काल के पश्चात् बनारसीदास ने टेलीफोन पर कहा, "कौन कमला?''''देखो बेटा, मेरे तकिये के नीचे सेफ की चाबी है। उसको खोलकर सौ सौ रुपये के एक सौ नोट लेकर दूसरी मोटर निकलवा लो और यहां फव्वारे के मैदान में कोतवाली के बाहर आजाओ। जल्दी करो। देरी मत करना''''हां बेटा''''सब ठीक है''''''चिन्ता की कोई बात नहीं।"

सब-इन्सपैक्टर सारी बात को ध्यानपूर्वक सुन रहा था और संतोष

अनुभव कर रहा था। अब बनारसीदास, इन्द्रजीत और सब-इन्सपैक्टर बाहर उस कमरे में आगये जहां हैड-कान्स्टेबल घूस एकत्रित कर रहा था। पन्द्रह मिनट वहां प्रतीक्षा कर तीनों कोतावली के बाहर चले आये। कमला मोटर में आई। लाला जी ने आगे बढ़ कमला के हाथ से नोटों का बंडल लेकर जेब में रख लिया। वहां से वे हैड-कान्स्टेबल के कमरे में चले आये। कमला मोटर में ही बैठी रही।

वहां बनारसीदास ने नोटों का बंडल सब-इन्सपैक्टर के हाथ में दे दिया। सब-इन्सपैक्टर ने नोटों को जेब में रखते हुए कहा, "शुक्रिया! हुज़ूर को बहुत तकलीफ़ हुई है। कभी किसी वक़्त ज़रूरत हो तो ख़िदमत-गार को याद फ़रमाइयेगा।"

बनारसीदास ने कुछ नहीं कहा और चुपचाप इन्द्रजीत को लेकर बाहर चला आया। वह गाड़ी भी जिसमें सुबह बनारसीदास आया था वहीं खड़ी थी। ड्राइवर स्वयं बहुत परेशान था। वह नहीं जानता था कि लाला जी किधर गये हैं।

इस गाड़ी को विदाकर, लाला जी स्वयं और इन्द्रजीत, कमला वाली गाड़ी में सवार हो गये। जब गाड़ी चल पड़ी तो कमला ने पूछा, "पिता जी, रुपया घूस देने के लिये था क्या?"

"हां बेटा, पर चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। ये लोग कुत्ते हैं। इनको टुकड़े डालकर चुप रखना ही उचित है।"

"पर पिता जी, यह कितने अपमान की बात है कि आप जैसे रईस से, जिनकी दी गयी दावतों पर कमान्डर-इन-चीफ़ भी आते हैं, इस प्रकार का व्यवहार किया जाय? भला ग़रीबों का क्या होता होगा?"

"पर हम कर ही क्या सकते हैं? अब तो कानून ही ऐसा बना है। यहां तक कि आप लोगों को हमारा पता तक भी न चलता कि हम कहां हैं। दो मास तक यह बात रहती, पश्चात् एक और धारा है जिससे, बिना हमें बताये कि हमने क्या अपराध किया है, हमें अनिश्चित समय तक बंदी बनाकर रख सकते थे।"

"बहुत अन्याय है, पर मैंने एक बात की है। प्रत्येक नोट के पीछे अपने संक्षिप्त हस्ताक्षर कर दिये हैं। यदि आप चाहें तो सिटी-मैजिस्ट्रेट से कहकर इनकी तलाशी करवा सकते हैं।"

बनारसीदास की आंखें खुल गयीं। उसे अब पता चला कि कमला भी कुछ बुद्धि रखती है। कहने लगे, "शाबाश, मेरी बेटी, मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी चतुर हो। इस पर भी मुझे संशय ही है कि कुछ हो सकेगा। फिर भी यत्न तो करता ही हूं।"

बनारसीदास ने मोटर सिटी-मैजिस्ट्रेट के बंगले की ओर घुमा दी। इस समय सायंकाल के चार बज चुके थे। सिटी-मैजिस्ट्रेट कचहरी से लौटा ही था कि बनारसीदास जा पहुंचा। दोनों का पूर्व परिचय भी था। अतएव मिलने में कठिनाई नहीं हुई। कमला और इन्द्रजीत मोटर में बैठे रहे। आधे घंटे के पश्चात् बनारसीदास कोठी से बाहर आया। निराशा उसके मुख से स्पष्ट दिखाई दे रही थी। जब वह मोटर में बैठ गया और मोटर चल पड़ी तो कमला ने उत्सुकता से पूछा, "क्या हुआ है, पिता जी ?"

"मैजिस्ट्रेट कहता है कि तुम्हारे हस्ताक्षर प्रमाण नहीं माने जा सकते। किसी मैजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर होने चाहियें। बहुत बातें हुई हैं। पर पाताल से आकाश तक सब एक ही सांचे में ढले हुए हैं।"

[६]

बनारसीदास सन १६१६ में भी पकड़ा गया था। तब उसे मार्शल-लॉ के अफसर ने छः मास की सजा दी थी। अब तो मार्शल-लॉ अफसर की आवश्यकता नहीं पड़ी और दस हजार रुपये जुर्माना देना पड़ा। उसको इससे क्या मतलब था कि रुपया सरकारी कोष में गया है या किसी छोटे-मोटे अफसर की जेब में। सन १६१६ में बनारसीदास एक अज्ञात व्यक्ति था। गुजरांवाला जैसे छोटे से नगर में भी उसे बहुत कम लोग ही जानते थे। अब वह देहली क्या उत्तरी भारत में एक विख्यात व्यक्ति था। लाखों रुपये युद्ध के लिये सरकार को दान दे चुका था।

१६१६ में लोग और प्रायः कांग्रेस वाले कहते थे कि हमारी पराधीनता की बेड़ियां सुदृढ़ थीं। अब १६४२ तक कांग्रेस के तीन आन्दोलन चल चुकने पर कांग्रेसियों का यह कहना कि भारत स्वतंत्रता के बहुत समीप पहुंच चुका है कितना मिथ्या और भ्रममूलक प्रतीत हो रहा था। १६१६ में तो मार्शल-लॉ अफ़सर को उसे बुलाकर यह तो बताना पड़ा था कि उसकी दूकान अफ़सर की आज्ञा के विरुद्ध बन्द रही थी। अब तो वह, बिना बताये कि उसने क्या अपराध किया है, दो मास तक और झूठा लांछन लगाकर युद्ध काल तक के लिये कैद रखा जा सकता था। इससे बचने के लिये ही उसने दस हज़ार दंड समझकर दे दिया था।

अभी कुछ दिन पूर्व ही वीणादेवी उससे पांच हज़ार रुपया विद्रोह को छिपकर चलाने के लिये ले गयी थी। उस समय बनारसीदास ने कहा था कि उसे कांग्रेस के कार्यक्रम से सफलता की आशा प्रतीत नहीं होती। वीणा का उत्तर था कि महात्मा जी के आन्दोलनों से वे स्वतंत्रता के पथ पर कोसों आगे बढ़ चुके हैं। आज उसे अनुभव हुआ था कि वीणा के कहने में सार नहीं है। उसे नरेन्द्र के कथन की सत्यता प्रत्यक्ष हो गयी थी। नरेन्द्र का कहना था कि सत्याग्रह-आन्दोलन लोगों में जागृति उत्पन्न करने में तो बहुत सफल हुए हैं, परन्तु स्वाधीनता का मार्ग अधिक और अधिक कंटकाकीर्ण हो गया है और नित्य प्रति हो रहा है। मार्ग की इन कठिनाइयों का उत्तरदायित्व महात्मा जी की नीति है या नहीं, कहना कठिन है। हां, इतना तो कहा जा सकता है कि जहां शासक अपनी प्रत्येक बात में वेग से उन्नति कर रहे हैं वहां महात्मा जी की नीति हमें वहां ही रोके हुए है जहां हम १६१६ में थे।

बनारसीदास ने यद्यपि नरेन्द्र के कलकत्ते वाले मित्रों से सम्पर्क कर लिया था और उनको धन से तथा अन्य प्रकार से सहायता देने का वचन दे दिया था तो भी कांग्रेसी-कार्यकर्ताओं को सहायता दे दिया करता था। आज की अपमानजनक घटना के पश्चात् उसके मन को

इतना धक्का पहुंचा था कि उसका रहा सहा विश्वास भी कांग्रेस के कार्य-क्रम से मिट गया था। वह मन में सोचता था कि कांग्रेस के बाईस वर्ष के आन्दोलन के पश्चात् भी देश उतना ही निःसहाय है जितना पहले था।

उसी दिन घर पहुँचकर बनारसीदास ने इन्द्रजीत से कहा, "देखो बेटा, हम कितने निःसहाय हैं। मैं सरकार की दृष्टि में भारी मान-प्रतिष्ठा रखता हूं और मेरे साथ जो कुछ हुआ है वह तुमने देख लिया है। मैं समझता हूं कि देश को इस प्रकार की नपुंसक अवस्था से निकालना बहुत आवश्यक है। मैंने इसी के लिये अपनी पूर्ण सम्पत्ति लगा देने का निश्चय कर लिया है। तुम्हारे लिये, जैसा मैंने कहा था, दस सहस्र का मेरा बीमा अगले मास आने वाला है। वह तुम्हें मिल जायेगा। तुम अपने योग्य कारोबार का बन्दोबस्त कर लो।"

"पिता जी, मैं तो यह पूछना चाहता हूं कि क्या हम आपके इस कार्य में कुछ सहायता नहीं कर सकते ?" इन्द्रजीत का मन भी विषाद से भरा हुआ था। वह रात भर हवालात के गन्दे कमरे में रहने की याद कर दांत पीस रहा था।

"किस काम में ?" बनारसीदास ने अचम्भे में पूछा।

"जिस काम में आप इतना रुपया लगायेंगे ? रात भर हवालात में रहने ने मेरे मन से अमीरी का स्वाद मिटा दिया है।"

"ओह ! परन्तु उस काम में सहायता लेनी मेरे अधीन नहीं है। मैं स्वयं किसी और के अधीन हूं।"

"वह कौन है ?"

"उसका नाम बताना मेरे अधिकार से बाहर की बात है।"

"तो उससे कैसे मिल सकता हूं ?"

"समय पर मिलाप हो जायगा। परन्तु इन्द्रजीत, यह अति कठिन और दुस्तर मार्ग है। बाईस वर्ष की तपस्या ने ही मुझे इस भट्टी में कूदने के योग्य बनाया है। तुम्हें तो कठोर परीक्षा देनी पड़ेगी।"

कमला समीप बैठी पिता-पुत्र की बातें सुन रही थी। उसने कह दिया, "नरेन्द्र भैया भी पिता जी से यही कहते थे। जब विजय को बेंत लगे तो पिता जी ने कहा था, 'नरेन्द्र, जी चाहता है कि सब कुछ छोड़-छाड़कर तुम्हारी माता की धारणा पूर्ण करने में तुम्हारी भांति मैं भी लग जाऊं। इस पर नरेन्द्र भैया ने कहा था, 'चाचा जी, यह मार्ग बहुत कठिन है। मुझे तो माता जी ने इस मार्ग पर चलने के लिये भारी तपस्या कराई है और आप नरम गद्दों पर बैठने के आदी हैं। आपसे यह बात हो नहीं सकेगी'।"

बनारसीदास यह सुनकर हंस पड़ा, परन्तु इन्द्रजीत ने पूछा, "तो नरेन्द्र जी हैं आपको मार्ग दिखाने वाले ?"

बनारसीदास चुप रहा। इन्द्रजीत ने इसे अपने प्रश्न का उत्तर हां में मान कहा, "तो मैं नरेन्द्र से मिलूंगा और कहूंगा।"

"परन्तु तुम्हारा विवाह हो चुका है। इसे", कमला की ओर देख कर बोले, "कहां फेंक दोगे ?"

"तो मुझ में जान नहीं है क्या, पिता जी ? मैं भी आज से तपस्या करनी आरम्भ कर दूंगी ताकि किसी समय नरेन्द्र भैया यह न कह दें कि मैं बहुत कोमल हूं और मैंने तपस्या नहीं की।"

बनारसीदास और इन्द्रजीत दोनों हंस पड़े। बनारसीदास ने कहा, "परन्तु कैसे करोगी तपस्या ?"

"जैसे आप करते रहे हैं। आज से ही कमरे से पलंग उठवा तख्तपोश पर सोने लगूंगी। भूषण और शृंगार के सामान को उतार, सादे कपड़े और सादा भोजन करने लगूंगी। और···और··· शेष आप बता दीजियेगा।"

बनारसीदास ने गम्भीरतापूर्वक इन्द्रजीत और कमला को उनकी आर्थिक परिस्थिति समझाने के लिये बात आरम्भ की थी, परन्तु कमला की बातों ने सब बात को हंसी में उड़ा दिया। बनारसीदास उठकर अपने कमरे में चला गया। उसके मन में विष भर रहा था।

कमला और इन्द्रजीत के मन को भी भारी धक्का लगा था। पिता जी के चले जाने के पश्चात् इन्द्रजीत ने कहा, "मन चाहता है कि इस अन्याय और अत्याचार की जड़ों में तेल दे दूं, परन्तु जानता नहीं कि कैसे? ये कांग्रेस वाले तो कहते हैं कि चर्खा काता करूं। मेरी समझ में नहीं आता कि यह कैसे होगा?"

"नरेन्द्र भैया भी यही कहते थे। एक बार मनोरमा और उनमें वादविवाद छिड़ गया था। भैया कहने लगे, 'मांगने से कोई कुछ नहीं देता। लेने से लिया जाता है। लेने के लिये शक्ति की आवश्यकता है। शक्ति का अर्थ है धन, जन, और बल का प्राप्त करना।"

"धन तो पिता जी के पास है," इन्द्रजीत ने कहा, "जन और बल ही तो शेष रह गये न।"

"जन के विषय में भैया कहते थे कि लाखों लोगों की, जो मन, वचन, और कर्म से अपने को दे देंगे, आवश्यकता है। बल का अर्थ वे शारीरिक बल और साधन बताते थे। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को वज्र का शरीर बना लेना चाहिये। साथ ही उस शारीरिक शक्ति को कई गुणा अधिक करने के लिये साधन भी होने चाहियें। आज मशीनों के युग में केवल शारीरिक शक्ति से काम नहीं चल सकता। जैसे शब्द को एम्पलीफायर से कई गुणा अधिक किया जा सकता है वैसे ही शारीरिक शक्ति को मशीनों द्वारा कई गुणा बढ़ाया जा सकता है। शारीरिक शक्ति को अधिक से अधिक करने के लिये मशीनों की आवश्यकता है। लोगों के पास ऐसे साधन होने चाहियें।"

इन्द्रजीत इन बातों को सोच रहा था और नरेन्द्र से मिलने के लिए मन में सोच रहा था। उसके मुख से निकल गया, "नरेन्द्र भैया कहां होंगे?"

[१०]

जब से मनोरमा का अपने पति से विजय के विषय पर झगड़ा हुआ था उसने भूषण उतार पेटी में रख दिये थे। एक कांच की चूड़ी हाथ में

और मस्तक पर सिन्दूर की बिन्दी के अतिरिक्त अन्य कोई शृङ्गार नहीं रह गया था। सफ़ेद धोती, सफ़ेद जम्पर, उसकी पोशाक रह गयी थी।

नन्दलाल ने एक-आध बार उससे कहा भी था कि, 'कैकेई कोप-भवन में क्यों है ?' पर मनोरमा ने कभी उत्तर नहीं दिया था। उसे अब अपने पति के घर से दिलचस्पी नहीं रही थी। सब काम जो वह करती थी एक मशीन की भांति होते थे। प्रातः उठना, पति के उठने से पूर्व ही शौचादि से छुट्टी पा कोई पुस्तक इत्यादि पढ़ने लगना, पति के दफ़्तर जाने के समय उसे कपड़े पहिनाना, फिर सादा भोजन रोटी-दाल इत्यादि करना। दोपहर को सो रहना, सायंकाल जब पति आवे तो उसको कपड़े उतारने में सहायता देना, जब पति सो जावे तो सो जाना। उसकी आत्मा ऐसे हो गयी थी मानो उसका दीपक बुझ गया है। बातों में भी केवल हां या न से अधिक नहीं कहती थी। नन्दलाल पूछता, "तबीयत तो ठीक है ?"

"हां।"

"खाना खाया है ?"

"हां।"

"कहीं घूमने गयी थीं ?"

"नहीं।"

"दिन भर क्या करती रही हो ?"

"कुछ नहीं।"

"अब सोना है ?"

"जी हां।"

नन्दलाल मासिक वेतन लाकर मनोरमा के हाथ में दे देता था। इस मास की पहली को भी रुपये लाकर उसने दिये थे। मनोरमा ने पूछा, "क्या करूं ?"

"इस मास कपड़े खरीद लो।"

"ट्रंक लदे पड़े हैं।"

"तो और ट्रंक खरीद लो।"

"क्या ज़रूरत है? आपको कपड़े और चाहियें?"

"मुझे क्या मालूम?"

"कपड़ों की ज़रूरत मालूम नहीं होती।"

"तो भूषण खरीद लो।"

"मैं पहनती तो हूं नहीं। पहले ही कितने रखे हैं।"

"तो इन्हें आग लगा दो," नन्दलाल ने क्रोध में कहा। उसने नोट मनोरमा के मुख पर दे मारे और बाहर चला गया। मनोरमा ने नोट बटोरकर अलमारी के एक कोने में रख दिये।

जब भी वेतन के अथवा फालतू रुपये आते तो नन्दलाल चुपचाप मनोरमा के समीप रख जाता और वह उन्हें उठा अलमारी में रख देती। एक दिन मनोरमा ने कह दिया, "बहुत ज़्यादा इकट्ठे हो गये हैं। बैंक में जमा करा दीजिये।"

"खर्च नहीं किये?"

"ज़रूरत नहीं पड़ी।"

"कितने होंगे?"

"गिने नहीं हैं।"

"गिने नहीं? और यदि नौकर चुरा ले तो?"

मनोरमा चुप रही। नन्दलाल ने कहा, "ज़रा गिन डालो तो।"

मनोरमा ने निकाल पति के सम्मुख रख दिये। नन्दलाल ने गिने। तीन हज़ार चार सौ बीस थे। ये दो मास में एकत्रित हुए थे।

उसने कहा, "ठीक ही मालूम होते हैं। ये बैंक में जमा नहीं हो सकते।"

"क्यों?"

"मेरे वेतन से बहुत ज़्यादा हैं।"

"तो फिर?"

"विचार कर बताऊंगा।"

मनोरमा ने रुपये उठाकर अलमारी में रख दिये। इसी प्रकार

काम चलता जा रहा था। वह भगवान से प्रार्थना करती रहती थी कि इस कीचड़ के तालाब में वह कमल-रूप हो सके।

एक दिन नन्दलाल घर आया तो उसने दो हज़ार के नोट मनोरमा को देकर कहा, "इन्हें रखो। मैं अभी ठहरकर आऊंगा।"

मनोरमा ने कहा, "चाय पी लीजिये।"

"मुझे सिटी-मैजिस्ट्रेट के यहां जाना है। चाय वहीं होगी।"

मनोरमा को विश्वास था कि यह रुपया भी घूस का है। जब कभी भी वह ऐसी रकम को हाथ में ले लिया करती थी तो उसके शरीर में कंपकपी हो जाया करती थी। नन्दलाल रुपये देकर गया और वह कांपते हाथों से रुपयों को अलमारी में रखने के लिये उठ कमरे में चली। अकस्मात नोट उसके कांपते हाथों से नीचे गिरकर फर्श पर फैल गये। वह वहीं बैठ उनको उठा इकट्ठे करने लगी। उसकी दृष्टि एक नोट की पीठ पर एक कोने पर हिन्दी में लिखे 'कमल' शब्द पर पड़ी। वह हस्ताक्षर पहिचान गयी। उसने उसे बहुत ध्यानपूर्वक देखा। उसे सन्देह नहीं रहा। ये हस्ताक्षर उसकी सहेली कमला के थे। कमला अपने नाम का 'क' विशेष ढंग से लिखा करती थी जिसके पहिचानने में भ्रम नहीं हो सकता था। उसने दूसरे नोट भी देखे। उनकी पीठ पर भी हस्ताक्षर विद्यमान थे। कुल नोट दो हज़ार के थे। इसका अभिप्राय यह था कि इतनी बड़ी रकम बनारसीदास के घर से उसके पति के पास आई है। यह कैसे? क्यों? वह यह जानने के लिये व्याकुल हो उठी। उसे विजय को बेंत लगने और हरवंशलाल से घूस लेने की बात स्मरण हो आई। वह उठी और टेलीफ़ोन को बनारसीदास के घर से मिलाने लगी। टेलीफ़ोन मिलने पर पूछने लगी, "कौन बोल रहा है?......मैं हूं मनोरमा...चाचा जी, कमला को बुला दीजिये......कमला?...मैं हूं...मनोरमा...नमस्ते...मैं कई दिन से मिल नहीं सकी...नहीं...नहीं...ऐसी कोई बात नहीं......देखो, चाचा जी सामने बैठे हैं, बात करते लज्जा नहीं लगती?......वे चले गये हैं?......तभी...यह तुम अपनी

बात कह रही हो या मेरी ?......मुस्ती ?...क्या सुस्ती बस इसी बात से होती है ?......नहीं। छिपाती नहीं......मुझे मां बनने से डर लगता है......हां...हां...सब ठीक है......भला यह तो बताओ कि आज-कल दान-पुण्य बहुत होता है क्या ?......मालूम हुआ है कि सौ-सौ रुपये के नोट पर कमल हस्ताक्षर कर खुले हाथ बांट रही हो......"

कुछ काल तक उत्तर नहीं आया। मनोरमा ने कई बार, 'हैलो...हैलो'...कर पुकारा। मनोरमा को अचम्भा हो रहा था कि कमला चुप क्यों हो गयी है। शायद वह बताना नहीं चाहती। एक बार अंतिम प्रयत्न करने के लिये मनोरमा ने कहा, "तो तुम मुझे नहीं बताना चाहती...बन्द कर दूं ?...अच्छा क्षमा करना, बहन..." इस समय फिर आवाज़ आई..."हां तो कहां चली गयी थी ?...क्या कहा बताने को जी नहीं चाहता था ?...ठीक है। अब मैं पराई हो गई हूं न। बहन, क्षमा...हां...हां बात यह है कि इस समय मेरे हाथ में सौ-सौ रुपये के बीस नोट हैं। इनकी पीठ पर मेरा सहेली कमला की अपनी लिखावट में 'कमल' लिखा है।...हां सत्य बात जानना चाहती हूं...क्या करूंगी ?...जो कुछ करूंगी तुम्हें बताकर करूंगी...हां...हैं ?...जीजा जी...तोबा...फिर...आज सुबह...क्या...शाबाश...ब्रिटिश इन्साफ़ की जय हो...अब...अब चाचा जी क्या करना चाहते हैं ?...कुछ नहीं ?...ठीक है। इस राज्य में पुलिस के खिलाफ़ रहकर इन्साफ़ पाने की आशा नहीं। पर बहन...अच्छा फिर मिलूंगी...यही एक-आध दिन में।" मनोरमा ने टेलीफ़ोन बन्द कर दिया। उसके सिर में चक्कर आने लगा था। वह उठी और लड़खड़ाते क़दमों से अपने कमरे में जा रुपयों को अलमारी में बन्द कर, वहीं समीप ही आरामकुर्सी पर बैठ, सिर को हाथों में पकड़, गम्भीर विचार में पड़ गई। वह सोच रही थी, 'बस हो गया। अब तो इस घर में अन्न खाना भी पाप हो गया है।' कपड़े-भूषण तो वह पहले ही त्याग चुकी थी। दो धोतियां, जो मां के घर की थीं, बार बार धोकर पहनती थी। सूखी

रोटी और दाल खाया करती थी। अब वह सोच रही थी कि यह भी छोड़ दे। घर को ही छोड़ दे। परन्तु कैसे? कहां चली जाय और किस प्रकार निर्वाह करे? ये प्रश्न थे जिन पर वह गम्भीरतापूर्वक विचार कर रही थी।

[११]

नन्दलाल घर लौटा तो दस बज चुके थे। मनोरमा अभी तक कुर्सी पर बैठी विचारों के निविड़ कानन में भटक रही थी। नन्दलाल ने नौकरानी से पूछा, "बीबी जी सो गयी हैं?"

"सरकार जागती हैं।"

"खाना खाया है?"

"नहीं! कहती हैं भूख नहीं है।"

वह कमरे में आया तो कमरे का लैम्प बुझा हुआ था। उसने स्विच दबाया और रोशनी में देखा तो मनोरमा को कुर्सी पर बैठी पाया। रोशनी होने से वह उठ खड़ी हुई और अपने पति की ओर देखने लगी। उसके मन में वह ज्वाला नहीं थी जो विजय को बेंत लगने के समाचार से उठी थी। आज मन शान्त था। वह मन में संकल्प कर चुकी थी और अब उससे विचलित होने का विचार नहीं रखती थी। वह उदास मन पति का मुख देखती रही। नन्दलाल ने पूछा, "मनोरमा रानी! क्या है?"

"कुछ नहीं।"

"खाना क्यों नहीं खाया?"

"आपका दिया बहुत खाया है। अब पेट भर गया है।"

"मैं मतलब नहीं समझा।"

"समय आने पर सब बातें स्वयं सुलझ जाती हैं। आपने भोजन किया है या नहीं?

"कर लिया है। सिटी मैजिस्ट्रेट के यहां देर हो गयी थी। खाना वहीं खा लिया है।"

"ठीक है। अब सो जाइये। दिन भर काम करने से थकावट हो

जाती है।''

जब से विजय वाली बात हुई थी, तब से मनोरमा की ज़बान में कड़वापन आगया था, परन्तु आज वह अति नम्रता और शान्ति से बातें कर रही थी। नन्दलाल ने समझा कि मनोरमा आज अधिक प्रेम-मयी है। इस कारण जो कुछ वह सिटी मैजिस्ट्रेट के घर से सुनकर आया था और मनोरमा को बताना चाहता था उसे न बताना ही ठीक समझने लगा। उसे भय था कि उसकी आर्द्रता कहीं लोप न हो जाय। वह चाहता था कि रात भर तो यह कोमलता रह जाय। इसी विचार से नन्दलाल ने मनोरमा का हाथ पकड़ अपने समीप पलंग पर बैठाने के लिये धीरे से खींचा।

इसने मनोरमा को स्वप्न-जगत् से निकाल वास्तविकता में ला बैठाया। उसने झटका दे आपना हाथ छुड़ा लिया और बिजली सी चमकती आंखों से देखने लगी। नन्दलाल को यह चण्डी का रूप देख अचम्भा हुआ। एक क्षण में ही वह क्रोध से लाल हो गई थी, परन्तु दूसरे ही क्षण मनोरमा ने फिर शान्त हो कहा, "आप सो जाइये न।"

"तो तुम नहीं सोओगी?"

"नहीं, मुझे अभी नींद नहीं आई।"

"मैंने तो समझा था कि आज कामदेव की विजय हुई है, पर रम्भा अजेय प्रतीत होती है।"

मनोरमा वैसी ही शान्त रही और पति को वहीं छोड़ बाहर बैठक में जा कुर्सी पर बैठ विचार करने लगी। नन्दलाल को कुछ क्रोध चढ़ आया। वह भी उसके पीछे गोल कमरे में चला आया और खड़े खड़े ही पूछने लगा, "मनोरमा, यह बरफ कभी पिघलेगी या नहीं?"

मनोरमा ने अपने मन की बात कह देने का दृढ़ निश्चय कर लिया। परन्तु वह यह बात सुबह कहना चाहती थी। नन्दलाल ने अपने व्यवहार से उसे सब बात अभी कहने पर विवश कर दिया। इससे उसने उत्तर में कहा, "आप मुझे मेरे हाल पर छोड़ दें तो आपकी अत्यन्त

कृपा मानूंगी। मैं समझती हूं कि मेरा आपके साथ विवाह एक भूल थी।"

"क्यों?"

"इस में कोई ऐसी बात नहीं जो आपको विदित न हो। आप जानते हैं कि मैं राष्ट्रीय विचार रखती हूं और आप राष्ट्र-विरोधी संस्था के नौकर हैं। यदि मैं गहने-कपड़े पहनने, व स्वादिष्ठ भोजन करने की लालसा रखने वाली एक साधारण लड़की होती तो आपसे अति प्रसन्न रहती। आप अपनी स्त्री को यह सब कुछ दे सकते हैं। कठिनाई यह है कि मैं इससे कुछ अधिक चाहती हूं। मेरी आत्मा, दिन-रात, मुझे पुकार पुकारकर कहती है कि देश दासता के बंधनों में बंधा है और उन बंधनों की एक कड़ी आप भी हैं। मैं जो देश को स्वतन्त्र देखने के लिये व्याकुल हूं उसके बंधनों की एक कड़ी को दिन-रात अपनी आंखों के सम्मुख कैसे देख सकती हूं?"

नन्दलाल को ऐसा प्रतीत हुआ कि मनोरमा का मस्तिष्क फिर गया है। उसने उसे डांटकर कहा, "मनोरमा, तुम पागल हो गई हो। तुम्हें वास्तविकता का ज्ञान नहीं रहा। ब्रिटिश साम्राज्य फ़ौलाद की दीवार है। इसका विरोध करना ऐसी दीवार से माथा टकराना है। मैं कहता हूं कि कांग्रेस और उससे सहानुभूति रखने वाले मलियामेट कर दिये जायेंगे। यदि तुमने भी उनका अनुकरण किया तो तुम स्वयं तो मिटोगी ही साथ ही मुझे और अपने पिता को भी ले डूबोगी।"

"मैं अपने मिटने से नहीं डरती। मैं तो उस दिन ही मिट गयी हूं जिस दिन आपसे विवाह हुआ है। हां, आपके और पिता जी के मिट जाने की सम्भावना अवश्य है। इस कारण आपको सुरक्षित करने के लिये मैं आपसे पृथक हो जाना चाहती हूं।"

"क्या कहा?" नन्दलाल ने घूरकर देखते हुए कहा, "तुम मुझसे पृथक हो जाना चाहती हो?"

"हां! मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है। आपके घर का वायु-मण्डल ही मुझे पागल बना रहा है। मैं यहां आपके पास नहीं रहना चाहती।"

नन्दलाल क्रोध से थरथर कांप रहा था। कहने लगा, "मनोरमा, मुझे दिक मत करो। मैं बहुत निर्दयी आदमी हूं। गोली मारकर तुम्हें भी मार डालूंगा और आप भी मर जाऊंगा।"

मनोरमा ने मुस्कराते हुए कहा, "परिणाम वही होगा, जो मैं चाहती हूं। मुझे मार डालियेगा तब भी मैं आपसे पृथक हो जाऊंगी। मैं तो चाहती हूं कि आपके सिर मेरी हत्या का दोष न लगे और मैं स्वयं ही आपको छोड़ दूं। रहा आपका गोली खाकर मर जाना, यह भी निष्फल होगा। विश्वास रखिये कि मरने के पश्चात् तो आप और मैं पुनः कभी भी मिल नहीं सकेंगे। वहां पिता जी तो होंगे नहीं जो आप को पुनः मेरे साथ बांध देंगे। देखिये, मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि मुझे छोड़ दीजिये। चाहे जीते जी, चाहे मारकर। मैं न तो इस संसार में, न अगले जन्म में आपके साथ रह सकती हूं।"

"कहां जाओगी?"

"यदि आपको आपत्ति न हो तो दिल्ली में ही कहीं नौकरी कर लूंगी, और हां, यदि आप समझते हैं कि मेरे यहां रहने से आपके मान में हानि होती है तो किसी दूसरे नगर में चली जाऊंगी।"

"इस तरह रहने से क्या होगा?"

"मेरे मन को शान्ति मिलेगी।"

"मनोरमा!" नन्दलाल ने मिन्नत से कहा, "क्या अब किसी भी तरह हम इकट्ठे नहीं हो सकते?"

"मेरा अधिकार नहीं कि मैं आपको मार्ग दिखाऊं। आप स्वयं समझदार हैं।"

"तुम्हारा मतलब है कि मैं पुलिस की नौकरी छोड़ दूं?"

"इससे क्या होगा? यह तो मन बदलने से ही संभव हो सकता है। महकमा पुलिस में रहकर आप ईमानदारी से काम नहीं कर सकते क्या?"

"यह घूस लेने की बात कहती हो क्या?"

"हां, और इससे भी अधिक। आज सरकार ने दमन-नीति का अवलम्बन किया है। यह नीति ग़लत है। सरकार भारतवर्ष की आत्मा को कुचल देना चाहती है। यह घोर पाप है। जो इस नीति का निर्माण करने वाले हैं और जो इसको चलाने वाले हैं, सब घोर नरक की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। आप इन सब बातों को छोड़ दें।"

"तुम मुझे नरकगामी समझती हो? तुम एक हिन्दू स्त्री होकर अपने पति के लिये ऐसे कुत्सित विचार रखती हो?"

"मैं तो कह चुकी हूं कि मेरा आपसे विवाह भूल थी। मैं आपको अपना पति नहीं समझती। केवल चार वेद-मन्त्र पढ़ देने से विवाह नहीं हो जाता। मेरा स्वभाव, मेरे विचार, मेरे कर्म आपसे न मिलते हैं, न मिलेंगे।"

नन्दलाल अभी तक कुर्सी पर बैठी मनोरमा के सामने खड़ा था। मनोरमा को विद्रोह करती देख बोला, "देखो, मैं तुमसे प्रेम करता हूं और नहीं चाहता कि तुम मुझे छोड़कर भाग जाओ। मैं तुम्हें गोली भी नहीं मार सकता। तुमने मुझे ठीक समय पर सुझा दिया है कि मरने के पश्चात् हमारा मिलना निश्चित नहीं। अब तो समाज और राज-नियम से तुम मेरी स्त्री हो। मैं तुम्हें बलपूर्वक अपने पास रख सकता हूं और तुम्हारा उपभोग कर सकता हूं। ऐसी अवस्था में मैं कहे देता हूं कि तुम्हें मेरे पास रहना होगा। हंसते-हंसते रहो अथवा रो रोकर।"

इतना कह नन्दलाल ने मनोरमा की बांह पकड़कर खींचा और कमरे के भीतर घसीटकर ले गया। दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया।

[१२]

नन्दलाल जब प्रातःकाल उठा तो मनोरमा अभी भी पलंग के एक कोने पर बैठी रो रही थी। वह एक नज़र भर उसे देख मुस्कराते हुए कमरा खोल बाहर आगया। शौचादि से निवृत्त होकर वापिस आया तो मनोरमा वहीं बैठी थी।

"उठो स्नानादि कर लो," नन्दलाल ने कहा।

"कर लेती हूं।"

"भूख अभी भी लगी है या नहीं ?"

"लग आयेगी।"

"देखो शरीफ़ औरतों की भांति रहो। फिर देखोगी कि मैं तुम्हारा कितना मान करता हूं। तुमको घर की बातों के विषय में सोचना और कहना चाहिये। राजनीति तुम नहीं समझ सकती। देखो, मैं तुम्हें एक गुर की बात बताता हूं। संसार के मनुष्य दो श्रेणियों में बंटे हुए हैं। एक श्रेणी के लोग मेहनत करते हैं और दूसरे उस मेहनत का फल उपभोग करते हैं। यह बात अच्छी है या बुरी, मैं नहीं जानता। मैं तो इतना जानता हूं कि आदि-सृष्टि से ऐसा होता चला आया है और प्रलय काल तक ऐसा ही होता रहेगा। अब प्रश्न यह है कि मैं किस श्रेणी में रहूं। मेहनत करने वालों में अथवा उपभोग करने वालों में ? मैंने अपने आपको उपभोग करने वालों की श्रेणी में रखना उचित समझा है। अंग्रेज़ सिपाहियों और राजनीतिज्ञों ने मेहनत की और हिन्दुस्तान को विजय किया, परन्तु हिन्दुस्तान की विभूति का उपभोग करने वाले हैं इंगलैण्ड के 'लॉर्ड्स' और पूंजीपति। हम लोग जो सरकारी नौकरी करते हैं, वास्तव में उस श्रेणी में सम्मलित हो गये हैं, जो इस देश का उपभोग कर रही है। जब यहां स्वराज्य होगा, तब भी हम ही उपभोग करने वाली श्रेणी में होंगे। कारण स्पष्ट है कि हम ही हैं जो राज्य करने के ढंग को जानते हैं। भगवान ने भोक्ता बनाया है, भोग्य नहीं। मैं चाहता हूं कि तुम भी मेरे साथ रहो।"

मनोरमा चुपचाप इस 'मैकिलियन' सिद्धान्त को सुन रही थी। जब मनोरमा ने कुछ उत्तर नहीं दिया तो नन्दलाल ने समझा कि उसकी बुद्धि में बात आगयी है। अतएव उसने कपड़े पहने, भोजन किया और दफ़्तर काम पर चला गया।

उसके चले जाने के पश्चात् मनोरमा उठी। शौचादि से छुट्टी पा, सादे सूती सफेद कपड़े पहन लिये। पश्चात् कलम निकाल एक कागज़

पर लिखने लगी। उसने लिखा—

श्रीमान बाबू नन्दलाल जी,

मैं आपको पति के नाम से सम्बोधन नहीं कर रही। यह इसलिये कि मैं अब आपको अपना पति नहीं समझती। हमारा विवाह ज़रूर हुआ है। कानून आपको मेरा पति मानता है। परन्तु मैं यह पत्र किसी कानूनी कचहरी में नहीं भेज रही हूं। मैं साधारण भाषा में अपने मन की बात आपको लिख रही हूं। हमारा विवाह किसी भी विचार से विवाह नहीं माना जा सकता। एक स्त्री का पशु से विवाह कैसे हो सकता है ? रात जो व्यवहार आपने मेरे साथ किया वह एक पशु के व्यवहार से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं। आपने समझा होगा कि मुझ में कामेच्छा उत्पन्न कर आप मेरे मन में फिर से अपने लिये आदर उत्पन्न कर लेंगे। प्रायः स्त्रियां सम्भोग-सुख में मन के अन्य उद्‌गारों को डुबो देती हैं। परन्तु आपने मुझे उन स्त्रियों में समझकर भूल की है। मनुष्य में पशुपन परम्परा से चला आता है और प्रायः स्त्रियां इसी पशुपन के प्रभाव में आकर अपना मनुष्यत्व खो बैठती है। मैं अपने को दूसरी स्त्रियों से भिन्न पाती हूं। जिस समय आप यह समझ रहे थे कि आपने मुझ पर विजय प्राप्त कर ली है मैं अपने मन में अपने को अजेय होने में सफल समझ रही थी। मुझे आपका व्यवहार विशुद्ध पशुपन प्रतीत हो रहा था। मैं अपने को पशु नहीं मानती। मुझ में ऐसी भावनायें और उद्‌गार हैं, जो एक उच्च कोटि के मनुष्य में होने चाहियें।

आप अपने को मनुष्यों की भोक्ता श्रेणी में समझते हैं। ऐसे ही रूस का ज़ार, जर्मनी का कैसर और अनेकों अन्य मदान्ध कामी-क्रोधी समझते थे। आपको भी उनके जैसे अन्त के लिये तैयार रहना चाहिये। भगवान आपकी रक्षा करे।

पर मैं ब्रिटिश साम्राज्य के भोगने वालों की श्रेणी में रहना नहीं चाहती। मुझे अपनी मेहनत से कमाई रूखी-सूखी पसन्द है। मैं उससे

सन्तुष्ट रहूंगी। देखिये, आपकी कमाई का नव्वे प्रतिशत आपका नहीं होता। दूसरों से छीनी गई, चुराई हुई रक़म के भोग करने से ही आप की मति भ्रष्ट हो रही है। जिससे आपको घृणा होनी चाहिये उसी में आप अपना मान समझते हैं।

मैं आपकी इस कमाई का भोग नहीं कर सकती। मेरे पिता जी के घर भी ऐसी कमाई आती है, इस कारण मैं वहां भी नहीं जाऊंगी। जब मुझे ज्ञान नहीं था तब की बात दूसरी है। अब मैं जान गयी हूं तो वहां जाने को दिल नहीं चाहता।

सब से बुरी बात तो आपकी प्रकृति है। आपके हाथों में डिफ़ैन्स ऑफ़ इंडिया एक्ट आने से आपकी दुष्टता बेहद बढ़ गई है। यदि आप साधु प्रकृति के होते तो 'डिफ़ैन्स ऑफ़ इंडिया एक्ट' होते हुए भी आप लोगों की भलाई कर सकते थे। कम से कम आप लोगों पर अन्याय और अत्याचार करने को विवश नहीं हैं। बताइये, हवालात में किसी को बकवाने के लिये उसके हाथ पर जलता अंगारा रख देना किस कानून की किताब में लिखा है; या किसी से मनमानी कहलवाने के लिये उसकी गुदा में मिर्चें भर देने के लिये कौन सा 'ऑर्डिनैन्स' है। मैं समझती हूं कि आपकी प्रकृति ही दुष्ट है जो किंचित्-मात्र अधिकार पाकर नीचता की ओर ही जाती है।

और फिर जो व्यवहार आपने मेरे साथ रात को किया है, मैं उसे किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं समझती। मैं आपकी ख़रीदी हुई लौंडी नहीं हूं। आपने मेरे मन के उद्गारों का विचार किये बिना मेरा उपभोग कर मनुष्यता का अपमान किया है। यह पशुपन से भी गिरी हुई बात है। मेरा आपके साथ निर्वाह नहीं हो सकता।

मैं जा रही हूं और आपको बताना नहीं चाहती कि कहां? कारण यह है कि आप पुलिस-अफ़सर हैं। आप ग़ैर-कानूनी उपाय से मुझे अपने घर में कैद करने का यत्न करेंगे। आज हिन्दुस्तान में कानून नहीं रहा। यों तो कानून की महिमा इस देश में पहले भी कुछ अधिक नहीं

थी। जहां मुकदमा चलाने वाला ही न्यायाधीश हो वहां न्याय की आशा कैसे हो सकती है? और अब तो 'अन्धेर नगरी गबरगंड राजा' की कहावत चरितार्थ हो रही है। हज़ारों लोग नित्य पकड़े जारहे हैं और बिना बताये कि उनका क्या दोष है बंदी बनाये जाते हैं। पकड़ने वाले, बंदी के अपराध की परीक्षा करने वाले और फिर उसे दंड देने वाले, आपके महकमे के अफ़सर ही हैं न। उनकी काली करतूत का प्रमाण घूस के रूप में हज़ारों रुपये मेरे हस्तगत होते रहते हैं।

अतएव मैं आपको नहीं बता रही हूं कि मैं कहां जा रही हूं। मैं छिपकर और नाम बदलकर रहूंगी। यह धोखा और चोरी तो है, परन्तु आपके साथ धोखा करना किसी भी प्रकार अपराध नहीं माना जायगा।

मैं बालिग़ हूं। जहां चाहूं जा सकती हूं। वास्तव में आपका अधिकार नहीं कि आप मुझे बांधकर अपने घर रख सकें। परन्तु आप न्याय और नियम का पालन तो करना जानते ही नहीं। इस कारण मैं छिपकर रहूंगी। —मनोरमा।

मनोरमा ने चिट्ठी एक लिफ़ाफ़े में बन्दकर नन्दलाल की ड्रेसिंग टेबल पर रख ऊपर उसका 'शेविंग ब्रश' रख दिया। पश्चात् बाहर आ, नौकर को भेज उसने तांगा मंगवा लिया। नौकरानी ने पूछा, "सरकार, खाना लाऊं?"

"आकर खाऊंगी।"

रुपयों और भूषणों की अलमारी की चाबी भी चिट्ठी के पास रख दी। एक बार अपना मुख शीशे में देख घर छोड़ने को तैयार हो गयी। बाहर आते हुए उसने नौकरानी से कहा, "शायद बाबू जी आज शीघ्र ही आजावेंगे। यदि मेरे पीछे आवें तो कह देना कि शीघ्र ही लौट आने को कह गई हैं।"

[१३]

मनोरमा कमला के घर पहुंची। बनारसीदास और इन्द्रजीत दफ़्तर में थे। अतएव उनकी जानकारी के बगैर ही कोठी के भीतर पहुंच गई।

कमला ने मनोरमा को वैसे सादे कपड़े पहने कभी नहीं देखा था। सफेद सलवार, कुर्ता और दुपट्टा था। हाथ में चूड़ी तक नहीं थी। न तो माथे पर सिन्दूर था, न ही नाक में लौंग। कमला एक क्षण तक तो उसे पहचान ही नहीं सकी। जब पहचाना तो माथे पर सिन्दूर न देख भय-भीत हो पूछने लगी, "मनोरमा बहन, क्या हुआ है?"

मनोरमा ने कहा, "कमला, एक रुपया देना। तांगे वाले को देना है।"

कमला अपने कमरे में जा एक रुपया ले आई और नौकर को बुला तांगे वाले को विदा करने को कह दिया। पश्चात् कमला अपनी सहेली को अपने कमरे में ले गयी। वहां बैठने के पश्चात् मनोरमा ने पूछा, "जीजा जी कहां हैं?"

"पिता जी काम छोड़ हरिद्वार आदि चले जाना चाहते हैं। इस लिये वे उनसे काम समझ रहे हैं।"

मनोरमा समझती थी कि यह वैराग्य पिछले दिन पकड़े जाने से उत्पन्न हुआ है। इससे वह लज्जा से आंखे नीची किये मन में ग्लानि अनुभव कर रही थी। अब पूछने की बारी कमला की थी। उसने पूछा, "यह कैसी पोशाक पहने हो आज?"

मनोरमा ने वैसे ही आंखें नीची किये हुए कहा, "मैं तुमसे एक वस्तु मांगने आई हूं। मन में विचार आता है कि लौटा सकूंगी, परन्तु विश्वास से नहीं कह सकती। इसलिये वापिस पाने की आशा से मत देना। बताओ दोगी?"

"मनोरमा बहन, कैसी बातें कर रही हो आज? जो कुछ मेरा है वह सब अपना नहीं समझती तुम? बताओ क्या बात है और क्या चाहती हो?"

कमला ने मनोरमा की आंखों में तरलता देखी तो चौंक उठी। उसने मनोरमा का हाथ पकड़कर पूछा, "क्या बात है बहन, बताती क्यों नहीं?"

मनोरमा ने कहा, "मुझे पांच सौ रुपये अभी तुरंत चाहियें।"

कमला ने, एक भी शब्द कहे बिना, कमरे के कोने में रखी अलमारी खोली और उसमें से दस दस रुपये के पचास नोट निकाल मनोरमा के हाथ पर रख दिये। मनोरमा ने नोट अपने कुर्ते की अन्दर की जेब में रखकर कहा, "कमला, बहुत धन्यवाद। मैं अपना घर छोड़ दिल्ली से बाहर जा रही हूं। अब लौटकर आने का विचार नहीं रखती और घर से एक पाई भी ले जाना नहीं चाहती। इसी से तुमसे मांगने पड़े हैं।"

"घर से जा रही हो? क्यों?"

"अब उस घर में रहने को जी नहीं चाहता। नित्य प्रति की बातें देख मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी कमाई खाकर मैं दिन प्रति दिन नीचे ही नीचे गिरती जाती हूं। जब तुमने कल जीजा जी और चाचा जी के पकड़े जाने का समाचार सुनाया और चाचा जी द्वारा दिये हुए घूस के रुपये मैंने अपने हाथ में देखे तो मेरा रक्त खौल उठा। मैं अधिक सहन नहीं कर सकी। मेरी समझ में यही आया है कि इस नरक-कुण्ड से निकल कहीं भाग जाऊं। कल से वहां का एक दाना तक मेरे पेट में नहीं उतरा।"

कमला अवाक् मनोरमा का मुख देखती रह गयी। मनोरमा उसे चुप देख बोली, "तो बहन, अब मैं जाती हूं। सम्भव हुआ तो लिखूंगी।"

मनोरमा उठ खड़ी हुई। कमला उसे जाती देख घबरा गई। बोली, "ठहरो दीदी, कुछ खा लो।"

उसने मनोरमा को पकड़ मिन्नत से बैठाया। नौकर को आवाज़ दे बुलाया और तुरंत खाना लाने के लिये कहा। मनोरमा को भूख तो लगी थी और इसी कारण कुछ शिथिलता अनुभव कर रही थी। वह खाने बैठ गई। कमला के मन में आया कि मनोरमा के विषय में अपने पति से राय कर ले। उसने मनोरमा से पूछा, "कहां जाओगी?"

"लाहौर जाकर किसी स्कूल-कॉलेज में काम करने का विचार है।"

"वहां किन के पास ठहरोगी ?"

"कुछ निश्चय नहीं किया।"

"यदि कहो तो तुम्हारे जीजा से राय करूं ?"

मनोरमा ने सिर हिलाकर कहा; "जैसी इच्छा।"

कमला ने नौकर भेज दफ़्तर से इन्द्रजीत को बुला भेजा। उसने कहा, "पिता जी से राय करनी उचित है।"

मनोरमा, यद्यपि, लाला जी के सामने कुछ कहने से डरती थी, तो भी इन्द्रजीत और कमला के आश्वासन देने से मान गई। लाला जी आये तो इन्द्रजीत ने पूर्ण वृत्तान्त, जैसा कमला ने उसे सुनाया था, बता कर कहा, "पिता जी, अब ये चाहती हैं कि उनसे चोरी जाकर लाहौर रहें।"

बनारसीदास ने कई मिनट तक विचार कर पूछा, "मनोरमा बेटी, सुलह नहीं हो सकती क्या ?"

"चाचा जी, सुलह तो तब हो जब लड़ाई हो गई हो। लड़ाई नहीं हुई। मैं घर जाकर रह सकती हूं, परन्तु उनकी सूरत देखने से मुझे घृणा होती है। उस घर का एक दाना भी मेरे हलक के नीचे नहीं उतरता। मेरी आत्मा में वहां की प्रत्येक वस्तु के लिये ग्लानि भर रही है।"

"तो फिर कहां जाओगी ? अकेली लाहौर में कहां रहोगी ?"

"सब भगवान के आश्रय है।"

बनारसीदास मनोरमा के दृढ़ निश्चय को देख चुप रह गया। कुछ काल तक सब चुपचाप इस समस्या को सुलझाने के लिये विचार करते रहे। अंत में बनारसीदास ने शान्ति भंग की। वह बोला, "अच्छी बात है, मैं प्रबन्ध करता हूं।"

तीसरा भाग

सुव्यवस्थित आयोजन

नैपालगंज से काठमांडू जाने के मार्ग पर, चारों ओर पहाड़ों से घिरी एक घाटी में, एक छोटा सा गांव है। गांव को शंकरगढ़ कहते हैं। गांव इतना छोटा है कि इसकी समस्त जन-संख्या दो सौ प्राणियों से अधिक कभी नहीं हुई। यहां बच्चे पैदा तो होते हैं और यहां का जल-वायु भी बहुत स्वास्थ्यप्रद है, इस पर भी जन-संख्या बढ़ती नहीं। इस का कारण यह है कि लड़कियां गांव के बाहर विवाह दी जाती हैं और लड़के प्रायः नैपाल-सरकार की सेना में भरती हो जाते हैं।

गांव के वृद्ध, जब कभी भी अवसर पाते हैं, गांव के लड़कों को एकत्रित कर भिन्न भिन्न युद्धों में अपने कारनामे सुनाकर गौरव अनुभव करते हैं। होली, दिवाली और दशहरे के अवसरों पर प्रायः प्राचीन वीर-गाथायें सुनाने की प्रथा है और जाड़ों की लम्बी रातों में जब आसपास बरफ़ से श्वेत होता है, यहां के स्त्री-पुरुष वीर-गाथायें गाया करते हैं। क्षत्रियों का गांव है, अतएव मनोरंजनार्थ वीरों की स्मृति को हराभरा कर, ये लोग अपना समय व्यतीत किया करते हैं।

चावल-बाजरे के अतिरिक्त जंगल में जड़ी-बूटियों की भरमार है। इन जड़ी-बूटियों की बिक्री से गांव के बहुत से लोगों का पेट भरता है। जड़ी-बूटियां उखाड़ लोग एकत्रित करते रहते हैं और फिर नैपालगंज के बाज़ार में बेचा करते हैं। नैपाल-राज्य की ओर से इन जड़ी-बूटियों के बाहर जाने पर चुंगी लगाई गयी थी। यद्यपि यह चुंगी बहुत कम और नाममात्र की थी तो भी कई लोगों के पास इतना देने को भी नहीं

होता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिये लोगों ने एक चोर-मार्ग, शंकरगढ़ से नैपालगंज तक का, ढूंढ रखा था। चोर-मार्ग साधारण मार्ग से छोटा था, परन्तु कुछ कठिन था। इस चोर-मार्ग से गांव के मनचले दस-बीस सेर बोझा उठाकर, बिना चुंगी की चौकी के दर्शन किये, नैपालगंज में जा घुसते थे। वहां अपना माल बेच, बहुत मज़े में गाते-बजाते घर लौट आते थे।

नैपालगंज से शंकरगढ़ राज-मार्ग से चालीस मील पड़ता है और गुप्त मार्ग से केवल पन्द्रह मील। कठिनाई इस मार्ग में यह है कि यह जंगल में से जाता है, पगडंडी कोई नहीं है और अधिक ढालू होने से माल भी अधिक नहीं उठाया जा सकता।

यह मार्ग शंकरगढ़ पर ही मुख्य मार्ग से अलग होता है। इस कारण यदि इस गांववालों को इस मार्ग का रखवाला कहा जाय तो अनुचित न होगा। इन गांववालों के अतिरिक्त दूसरे लोग इस मार्ग को नहीं जानते थे। गांववाले किसी को बताते भी नहीं थे। उन्हें सदा यह भय लगा रहता है कि यदि यह भेद सरकारी कर्मचारियों को पता चल गया तो उस मार्ग पर भी चुंगी बैठ जायगी।

कई पुश्तों से शंकरगढ़ के लोगों को यह मार्ग विदित है। उनकी दृष्टि में इस मार्ग की कीमत कुछ पैसे चुंगी बचाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। उन्हें नहीं मालूम था कि भारतवर्ष की काया पलटने में यह मार्ग विशेष महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

मार्ग अंग्रेज़ी राज्य में आरम्भ होता है और शंकरगढ़ के समीप नैपाल राज्य में जाकर काठमांडू के मार्ग से मिल जाता है। दोनों स्थानों पर, जहां यह आरम्भ होता है और जहां यह समाप्त होता है, मार्ग क्या पगडंडी भी नहीं है। नैपालगंज से इधर ही तीसरे मील के पत्थर के पास से इस मार्ग का राही सड़क से उतर खेतों में हो जाता है। वहां से दूर एक छोटा सा झरना दिखाई देता है। उस झरने तक पहुँचना होता है। सड़क से झरने तक कोई निश्चित मार्ग अथवा पगडंडी नहीं

है। खेतों के किनारे किनारे जाना होता है, जो प्रति वर्ष वर्षाऋतु के पश्चात् बदल जाते हैं।

सड़क से झरना तीन मील दूर है। यह दूरी खेतों की मेड़ों पर से कूदते-फांदते पार करनी होती है। इस कारण इसे मार्ग नहीं कह सकते। झरने पर पहुंच एक चट्टान के पीछे से एक पगडंडी आरम्भ होती है। इस पर चलने वाले को झरने के समीप खड़ा मनुष्य भी नहीं देख सकता।

यहां एक सीधी चट्टान खड़ी है और एक नाला उस चट्टान की चोटी से गिरकर झरने का रूप धारण कर लेता है। झरने के पीछे से जो पगडंडी पहाड़ के ऊपर को जाती है वह बहुत सीधी और ढालू है। केवल पहाड़ों पर चढ़ने का अभ्यास रखने वाले ही चढ़ सकते हैं। पांच मील कठिन चढ़ाई चढ़कर मार्ग उतराई पर आजाता है। यह उतराई अति घने जंगल में से है। जंगल में कोई पगडंडी नहीं है। केवल चट्टानों के आकार से मार्ग ढूंडा जाता है। लोग परम्परा से जानते हैं कि जहां बिच्छू के आकार की चट्टान है वहां से पश्चिम को जाना है और फिर भालू की पीठ के आकार की चट्टान से उत्तर को घूम जाना है। इस प्रकार मार्ग स्मरण रखा जाता है। यदि किसी कारण से एक स्थान पर भी भूल होगयी तो कई दिन भटकने पर भी शंकरगढ़ पहुंचना कठिन है। इस जंगल में रीछ और बाघ दोनों रहते हैं।

शंकरगढ़ में कठिनाई से साठ-सत्तर मकान हैं। इन में कई खाली रहते हैं। इन घरों के पुरुष सेना में भरती हो विदेश चले गये हैं। उन की स्त्रियां या तो उनके साथ हैं या हैं ही नहीं। वे वर्ष में कभी एक-आध मास घर आते हैं तो घर खुल जाते हैं। यदि आदमी कमाकर लाया और विवाह कर लिया तो काम पर जाने के समय तक घर आबाद रहा, बाद में बीवी को साथ लेजाने पर फिर बन्द हो जाता है।

तीन-चार वर्ष से एक ब्राह्मण इस गांव में आकर बस गया है। वह ब्राह्मण गांव के एक वृद्ध के नाम एक गोरखा सिपाही का पत्र

लाया था। वह गोरखा सिपाही इसी गांव का रहने वाला था। नौकरी पर जाते समय वह अपनी वृद्ध माता को छोड़ गया था। वह बेचारी पुत्र की अनुपस्थिति में ही मर गई। सिपाही ने अपनी रेजिमैन्ट के, जो अंग्रेज़ी सरकार ने नैपाल सरकार से मांगी हुई थी, एक रिसालदार की लड़की से विवाह कर लिया। अब उसके लिये गांव में कोई आकर्षण नहीं रहा। उसने गांव के एक वृद्ध को लिख दिया, "यह ब्राह्मण और इस की स्त्री बहुत ही सज्जन व्यक्ति हैं। जब तक ये हमारे गांव में रहें इनको मेरे मकान में रहने देना। ब्राह्मण बहुत चतुर वैद्य है। गांव के लोगों को जड़ी-बूटियों के पहचानने में और उनके गुण बताने में बहुत सहायता देगा।"

ब्राह्मण पूर्णिमा के दिन मन्दिर में कथा करता था, जिसे सुन गांव के लोग गद्‌गद हो जाते थे। ब्राह्मण की स्त्री गांव की स्त्रियों की सेवा-शुश्रूषा तथा चिकित्सा करती थी। अतएव दोनों गांव में आदर और मान से देखे जाते थे। किसी को गांव में कोई भी कष्ट होता तो वह निस्संकोच उनके पास आता और यथा शक्ति उसकी सहायता की जाती।

ब्राह्मण का नाम था शंकर और स्त्री का गौरी। सब जानते थे कि ब्राह्मण किसी प्रिय जन की मृत्यु के शोक के कारण एकान्त में आकर बस गया है। वर्ष में एक-दो बार वह अपनी स्त्री सहित एक-आध मास के लिये लापता हो जाया करता था और फिर लौट आया करता था।

एक बार उसने मकान की मरम्मत करवाई। मरम्मत करने के लिये कारीगर अंग्रेज़ी इलाके से आये थे। कई मास तक मरम्मत होती रही। तब से दो आदमी और आकर वहां रहने लगे थे।

जब सन १९३९ में यूरोप का युद्ध आरम्भ हुआ तो गांव के युवक स्वभाव-वश भरती होने के लिये तैयार हो गये। इसके लिये शंकर पंडित उनकी सराहना करता था। आस-पड़ोस के गांवों के लोग भी शंकर पंडित से राय करने आते थे और वह लोगों को सेना में भरती होने में प्रोत्साहन देता था। कई लोगों को तो उसने इस कार्य के लिये

आर्थिक सहायता भी दी थी।

शंकर पंडित कहता था, "क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर युद्ध-कला सीखना तुम्हारा धर्म है। नैपाल-सरकार तुम्हें युद्ध की वे बातें नहीं सिखा सकती जो तुम विदेशों में जाकर सीख सकोगे। क्या जाने किसी समय तुम्हें अपने देश के लिये लड़ने का अवसर आजाय, तब क्या करोगे?"

कुछ लोग, जो यूरोप के पहले युद्ध में लड़ने गये थे, कहते थे, "हम पिछले युद्ध में लड़ने गये थे। उससे देश व जाति को क्या लाभ हुआ?"

शंकर पंडित का कहना था, "इसमें युद्ध पर जाने वालों का दोष नहीं। दोष है देश में ब्राह्मणों के अभाव का। मैं देश के नेताओं को ब्राह्मण मानता हूं। दुर्भाग्य से ब्राह्मणों को सूझ नहीं पड़ा कि देश के कार्य में क्षत्रियों को कैसे लगाया जाय। शायद उस समय देश को स्वतन्त्र कर लेना सुगम था। इस युद्ध के पश्चात् शायद इतना सुगम नहीं होगा। इससे तो यह सिद्ध होता है कि हमें और भी अधिक योग्य बनने का यत्न करना चाहिये। भगवान की कृपा हुई तो इस बार नेता अधिक अनुभवी होंगे।"

"भरती हो जाओ," यह घोषणा थी शंकर पंडित की, जो धीरे धीरे नैपाल के ग्रामों में फैलने लगी।

इस भरती की मुहिम का नैपाल-सरकार ने स्वागत किया, और शंकर पंडित को नैपाल में भ्रमण करने का अवसर मिल गया।

[२]

नवम्बर का मास था। जाड़ा अधिक पड़ रहा था। एक युवक झरने वाली पगडंडी पर चढ़ रहा था। इस मार्ग पर चलते हुए उसे कई बार पौधों और घास-फूस को पकड़कर रींगना पड़ा था। जब वह चोटी पर पहुंचा तो उसके हाथ घायल हो चुके थे। कपड़े फट गये थे। वह सिर से पांव तक पसीने से भीग गया था। चढ़ाई में तीन घंटे से

ऊपर लगे थे।

पहाड़ की चोटी पर पहुंच वह यात्री आराम करने के लिये बैठ गया। कुछ काल-पर्यन्त आराम कर उसने जेब से कागज़ निकाला और उसे एक सपाट पत्थर पर बिछा देखने लगा। यह एक नक्शा था। उस नक्शे में एक स्थान पर उंगली रखकर बोला, "यहां तक तो ठीक है। अब उत्तर की ओर दो फर्लांग जाना चाहिये। देवदार का जंगल है। हलकी उतराई। वहां हाथी की पीठ के समान एक चट्टान है।"

इतना नक्शे में देख और समझ उसने एक कम्पास जेब से निकाल नक्शे के ऊपर रख दी। उत्तर दिशा की ओर देख पेड़ और झाड़ियों को दूर तक पहचान लिया। पश्चात् नक्शे को लपेट जेब में रख, कम्पास को समय समय पर देखने के लिये हाथ में ही रख उत्तर की ओर चल पड़ा। हाथी की पीठ के आकार की चट्टान के समीप पहुंच कम्पास में पूर्व दिशा देख घूम गया। दो मील इसी दिशा में जाकर उसे जंगल में ही एक बिच्छू के आकार की चट्टान मिली। यहां से वह सीधा उत्तर की ओर चल पड़ा। वहां जंगल और भी घना हो गया था। पगडंडी कहीं नहीं थी। केवल कम्पास के आसरे ही वह उत्तर दिशा को जा रहा था। अब उतराई आरम्भ हो गयी थी, परन्तु ढलान अधिक नहीं थी। इसी प्रकार झाड़ियों में से गुज़रता हुआ गिरे पेड़ों के तनों पर से कूदता-फांदता, घाटी की तलहटी में पहुंच गया। यहां उसे एक नाले का कलकल करने का शब्द सुनाई दिया। वह उसके किनारे जा पहुंचा। वहां नाले के बीचो-बीच एक चट्टान ध्वजा की भांति खड़ी थी। यह स्थान था जहां वह गुप्त-मार्ग शंकरगढ़ की ओर आकर समाप्त होता था।

अब वह युवक नाले के किनारे किनारे नाले के बहाव की ओर चल पड़ा। सूर्यास्त होने में अभी समय था। उसे गांव की झोंपड़ियां और उनकी पत्थर की छतें दिखाई देने लगीं। इस स्थान पर उसने फिर नक्शा निकाला और गांव के मकानों की स्थिति देख शंकर पंडित के मकान का अनुमान लगाया। नक्शे को लपेट जेब में रख, कम्पास को

दूसरी जेब में डाल, नाले में हाथ-मुंह धोने के लिये किनारे पर उतर गया। हाथों पर छिल जाने से अभी भी रक्त के निशान थे। उसने हाथों को धोकर साफ़ कर लिया और जेब से रूमाल निकाल पोंछ डाला। इस प्रकार तैयार हो गांव की ओर चल पड़ा। वहां पहुंचते ही उसने शंकर पंडित के मकान को पहचान लिया। मकान के दरवाज़े पर त्रिशूल का चिन्ह बना था।

दरवाज़े के बाहर एक पहाड़ी स्त्री बैठी, एक अढ़ाई-तीन वर्ष के लड़के को खेला रही थी। लड़का औरत के कंधे पर चढ़कर कह रहा था, 'तल तल रे घोड़े दौड़ लगा।'

लड़का इस युवक को देख चुप कर गया। युवक ने औरत से पूछा, "पंडित जी भीतर हैं?"

औरत ने संकेत से बताया "हैं।"

युवक ने हाथ से दरवाज़ा खटखटाया। एक अति सुन्दर स्त्री ने, जो पहाड़ी प्रतीत नहीं होती थी, दरवाज़ा खोला और युवक को सिर से पांव तक देख पूछा, "संकेत?"

"गजांकुश," नवयुवक का उत्तर था।

"आइये," कह स्त्री ने एक ओर हटकर मार्ग दे दिया।

नवयुवक के भीतर जाने पर स्त्री ने दरवाज़ा बन्द कर दिया। युवक आगे आगे था और स्त्री पीछे। मकान के दरवाज़े के भीतर प्रवेश करते ही सामने एक विशाल आंगन दिखाई दिया। आंगन के सामने की ओर चार बड़े बड़े कमरे थे। कमरों के आगे एक बरामदा था। आंगन के दायें और बायें भी कमरे थे। ये कुछ छोटे छोटे थे। इनके आगे भी बरामदे थे। दरवाज़े की ओर रसोई, गुसलखाना इत्यादि थे। मकान भीतर से अति स्वच्छ, परन्तु बिना सजावट के था। आंगन का फर्श सीमेंट का बना था।

शंकर पंडित सामने बरामदे में एक चौकी पर बैठा कुछ पढ़ रहा था। चौकी के समीप एक चटाई बिछी थी जिस पर शायद वह औरत

दरवाज़ा खोलने के लिये जाने से पहले बैठी थी। शंकर पंडित, एक नवयुवक को औरत के आगे आगे आता देख, उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला, "आओ भाई, आओ।"

पंडित स्वयं चौकी से नीचे हो गया और महमान को चौकी पर बैठने का निमन्त्रण देने लगा। युवक ने इनकार करते हुए पंडित से चौकी पर बैठने का आग्रह किया। इतने में गौरी ने एक और आसन लाकर बिछा दिया। युवक उस पर बैठ गया और पंडित को चौकी पर बैठने के लिये कहने लगा। पंडित चौकी पर बैठा तो गौरी ने अपनी चटाई को खिसकाकर समीप कर लिया। पंडित ने पहला प्रश्न किया, "भोजन?"

"अभी सुबह का भी नहीं खाया।"

पंडित ने आवाज़ दी, "भगवती! भगवती!!"

वही औरत जो बच्चे को लिये दरवाज़े पर बैठी थी लड़के को उंगली पकड़ा चलाते हुए भीतर आगई। पंडित ने कहा, "भोजन शीघ्र बनेगा।"

औरत लड़के को गौरी के पास छोड़ रसोई-घर में चली गई। लड़का नवयुवक की ओर बहुत ध्यान से देख रहा था। पंडित ने नवयुवक से पूछा, "कहां से आना हुआ है?"

"कलकत्ते से।" इतना कह उसने कुर्ते की भीतर की जेब से चिट्ठी निकाल पंडित के हाथ में दे दी। चिट्ठी में केवल दो पंक्तियां लिखी थीं। न तो इस पर भेजने वाले का नाम था, न उसका जिसकी ओर से चिट्ठी आई थी। चिट्ठी को ध्यानपूर्वक देख पंडित ने एक ओर रख दिया और पूछा, "नाम क्या है?"

"नरेन्द्र।"

"कहां के रहने वाले हैं आप?"

"जन्म अमृतसर का है। माता-पिता नहीं हैं। चाचा दिल्ली में ठेकेदार हैं।"

"चिट्ठी में लिखा है, आप 'सफल क्रान्तियां' पुस्तक के लेखक हैं।"

"ठीक लिखा है। आपने पुस्तक पढ़ी है?"

"हां, और बहुत ध्यान से। हमने भी एक योजना बनाई है और आपको उस योजना पर सम्मति देने के लिये यहां भेजा गया है।"

"अच्छा?" नरेन्द्र ने अचम्भे में पूछा।

"हां, हमें आपके आने की सूचना मिल चुकी है और हम कल से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। खैर, आज तो आप थके हुए हैं। भोजन के पश्चात् आराम करियेगा। विस्तार से विचार कल आरम्भ होगा।"

[३]

शंकर पंडित के पास दो आदमी और रहते थे। एक का नाम भानुमित्र और दूसरे का रमेशचन्द्र था। ये दोनों लगभग एक वर्ष से यहां आये हुए थे। अब नरेन्द्र तीसरा व्यक्ति यहां आ पहुंचा था। शंकर, गौरी और ये मिलकर पांच हो गये थे। इनके अतिरिक्त भगवती और उसका पति नौकर के रूप में रहते थे। पंडित के लड़के का नाम अजेय था।

भगवती घर का काम सम्भाले हुए थी। भगवती का पति खड्ग बहादुर बाहर का काम करता था। भानुमित्र और रमेश प्रायः अपना समय अध्ययन में व्यय करते थे। सायंकाल ये पंडित से विचार-विनिमय किया करते थे। कभी कभी इन में से कोई गुप्त मार्ग से अंग्रेज़ी इलाके में भी जाया करते थे।

जब से नरेन्द्र आया था सायंकाल के विचार-विनिमय अधिक गम्भीरता से होने लगे थे। इन विचार-विनिमयों का विषय प्रायः वे समस्यायें होती थीं जो नरेन्द्र की पुस्तक 'सफल क्रान्तियां' में दी गयी थीं। सब से मुख्य विषय यह था कि क्या भारतवर्ष कभी सशस्त्र क्रान्ति के योग्य हो सकेगा। पक्ष और विपक्ष में युक्तियां होती थी। नरेन्द्र कह रहा था, 'यदि विकास करने के लिये स्थान हो तो क्रान्ति की आवश्यकता नहीं रहती। और यदि शान्तिमय क्रान्ति सम्भव हो तो सशस्त्र क्रान्ति

की आवश्यकता नहीं होती। भारतवर्ष में अंग्रेज़ी राज्य का इतिहास पढ़ने से पता चलता है कि दिन प्रति दिन अंग्रेज़ अपना अधिकार, इस देश पर, सुदृढ़ करते जाते हैं। इस अधिकार के सुदृढ़ होने से यहां की जनता को लाभ के स्थान पर हानि हो रही है। ऐसी अवस्था में विकास से उन्नति की आशा नहीं रही।

"यह ठीक है कि अंग्रेज़ अपनी चतुराई से लोगों को ऐसा भास कराते रहते हैं, जिससे पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी यह समझने लगे हैं कि वे उन्नति के पथ पर हैं। कांग्रेस अपने जन्म से लेकर सन् १६१६ तक विकास-मार्ग द्वारा ही अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये प्रयत्नशील थी। जलियांवाले बाग़ और पंजाब में मार्शल-लॉ की घटना ने लोगों के मन पर यह अंकित कर दिया कि इस देश में विकास द्वारा अभीष्ट सिद्धि होनी असम्भव है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में लोगों ने शान्तिमय क्रान्ति के लिये चार प्रयत्न किये। पहला १६२१ में, दूसरा १६३० में, तीसरा १६३२ में और चौथा १६४२ में। चारों के चारों प्रयत्न असफल रहे। इसके अतिरिक्त युद्ध-काल में जो कुछ अत्याचार, अन्याय और अव्यवस्था देश में हो रही है उससे तो यह स्पष्ट है कि शान्तिमय उपाय क्रान्ति के लिये असफल रहे हैं। क्रान्ति तो दूर रही, हम स्वाधीनता के लक्ष्य से अधिकाधिक दूर धकेले जा रहे हैं। सरकार को अपनी विषैली भेद-नीति को चलाने का अवसर अधिक और अधिक मिल रहा है। अब भी सरकार ने इस देश में ऐसी गड़बड़ मचाई है कि सिवाय इसके कि देश में शीघ्र ही घरेलू युद्ध छिड़ जाये और कोई मार्ग ही नहीं सूझता। घरेलू युद्ध अंग्रेज़ी सरकार की उपस्थिति में अंग्रेज़ों की जड़ों को सुदृढ़ करने वाला होगा। सन १६४२ की घटनाओं ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि शान्तिमय क्रान्ति नहीं हो सकेगी। देश को सशस्त्र क्रान्ति की तैयारी करनी चाहिये।"

शंकर पंडित का प्रश्न था, "क्या इच्छा करने से योग्यता आ जाती है?"

"हां।" नरेन्द्र का दृढ़ मत था।

शंकर पंडित ने अपनी संस्था के विषय में बताया, "हम भारत वर्ष में राजनैतिक क्रान्ति कराने का यत्न कर रहे हैं। हम समझते हैं कि क्रान्ति पूर्णतया शान्तिमय कभी नहीं हो सकती। हां, सशस्त्र अथवा बिना शस्त्रों के होगी कहना कठिन है। हमारी संस्था का यह प्रयत्न है कि क्रान्ति निःशस्त्र अर्थात बिना रक्तपात के हो।"

"यह प्रयत्न सराहनीय है, परन्तु एक पक्ष के चाहने अथवा कहने से तो कुछ हो नहीं जाता। महात्मा जी 'भारत छोड़ो' आन्दोलन से यही चाहते थे। वे चाहते थे कि अंग्रेज़ भारत से अपना राज्य उठा लें और एकदम यहां निःशस्त्र क्रान्ति हो जाय। परन्तु हुआ क्या? अंग्रेज़ भारत छोड़ने पर उद्यत नहीं हुए। साथ ही उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र के बल से निःशस्त्र लोगों को, न केवल क्रान्ति करने से रोका प्रत्युत उन्हें कुचल डालने का भी यत्न किया। मैं कहता हूं कि शान्तिमय अथवा निःशस्त्र क्रान्ति तब ही हो सकती है जब दोनों पक्ष शस्त्र-प्रयोग करने से इनकार कर दें। ऐसा नहीं हुआ और न ही हो सकता है। एक पक्ष के निःशस्त्र रहने के अर्थ ये हैं कि उस पक्ष का ही रक्तपात हो। यह वाञ्छनीय नहीं है।"

बातों के सिलसिले में शंकर पंडित ने एक दिन अपनी पार्टी के कार्यक्रम का सविस्तार वर्णन कर दिया। वह कहने लगा "मैं अपनी पार्टी को ऐसी संस्था बनाने का यत्न कर रहा हूं जिस में चारों वर्णों के लोग हों। वर्णों से मेरा अभिप्राय हिन्दुओं में प्रचलित जात-पांत से नहीं है। मेरा अभिप्राय चारों प्रकार के काम करनेवाले लोगों से है। अपने दल में मैं पढ़े-लिखे विद्वान लोगों का एक समूह चाहता हूं। ये लोग विचारकर और अपनी शक्ति का अनुमान लगाकर योजनायें बनायें। यह हमारे दल का ब्राह्मण-विभाग होगा। मैं अपने दल में क्षत्रिय भी चाहता हूं। ये लोग युद्ध-कला में प्रवीण होने चाहियें और जान-जोखम के काम करना इनका स्वभाव बन जाना

चाहिये। मैं व्यापारी और फिर मज़दूर भी चाहता हूं। मैं यह भी चाहता हूं कि दल के चारों वर्ग अपनी अपनी योजनायें बनायें, परन्तु चारों वर्णों की योजनाओं को एक संगठन में लाने के लिये अंतिम स्वीकृति ब्राह्मण लोगों की होनी चाहिये। यदि मैं ऐसा दल बनाने में सफल हो गया तो निस्सन्देह भारतवर्ष में स्वराज्य होगा और दृढ़ आधार पर होगा।"

नरेन्द्र का कहना था, "परन्तु ऐसी संस्था इस शंकरगढ़ में बनकर सफलता की आशा सदियों में भी नहीं कर सकती।"

"शंकरगढ़ में तो संस्था का मस्तिष्क है। इस संस्था की आंखें और कान दिल्ली में हैं। इसके पांव कानपुर, टाटानगर, अहमदाबाद में हैं। इसका पेट कलकत्ता-बम्बई में है। इसके हाथ भी हैं। वे अभी पर्याप्त सुदृढ़ नहीं हुए। इस पर भी वे दुनिया भर के देशों में फैले हुए हैं। इस विभाग के लोग भिन्न भिन्न देशों में काम सीख रहे हैं, अथवा सेना में भरती होकर भिन्न भिन्न देशों में युद्ध में भाग ले रहे हैं।

"संस्था अभी शिशुकाल में है। इसका शैशव निकल जाने दो और फिर देखना कि यह संस्था संसार में सब से बड़े साम्राज्य के लिये यमराज का रूप धारण कर लेगी।"

नरेन्द्र को शंकर पंडित ने अपना पुस्तकालय, जो घर के नीचे तहखाने में था, दिखाया। यह तहखाना शंकर पंडित ने स्वयं इस मकान में पहुंचकर बनवाया था। इस पुस्तकालय में दुनिया भर के मुख्य मुख्य देशों के भूगोल, इतिहास और नक्शे थे। संसार की मुख्य मुख्य भाषाओं के सीखने का प्रबन्ध और संकेतों में संस्था की परिस्थिति और शक्ति का वर्णन भी था।

शंकरगढ़ का आश्रम संस्था का मस्तिष्क और हृदय था। संस्था की सुरक्षा के लिये और इस कार्य को जीवित रखने के लिये इसके मस्तिष्क को सुरक्षित रखना आवश्यक था। इसी कारण यत्न से ऐसे वीरान स्थान को ढूंढा गया था और फिर इसको छिपाकर रखने के

लिये प्रत्येक यत्न किया जाता था। गांव वालों को सिवाय इस बात के कि शंकर पंडित एक धनी विद्वान आदमी है और संसार से दुखी हो यहां आकर बस गया है, और कुछ मालूम नहीं था। पुस्तकालय की बात तो सिवाय शंकर और उसके साथियों के, जो घर में रहते थे, और किसी को भी मालूम नहीं थी। भगवती और खड्गबहादुर संस्था के परीक्षित व्यक्ति थे। वास्तव में वे नैपाल के रहने वाले होते हुए भी बहुत काल तक भारतवर्ष में रह चुके थे। खड्गबहादुर काम तो चपरासी या नौकर का करता था, परन्तु वह एक पढ़ा-लिखा आदमी था। भगवती अपने पति के विचारों से पूर्णरूप से सहमत थी। इस प्रकार शंकर पंडित क्या है और क्यों वहां पड़ा है एक सुरक्षित रहस्य था।

खड्गबहादुर का यह भी काम था कि वह सप्ताह में एक बार यहां की डाक लेकर जाये और अंग्रेज़ी इलाके से डाक लेकर आवे। इस काम के लिये वह सदैव गुप्त-मार्ग से नैपालगंज जाता था और इसी मार्ग से वापिस शंकरगढ़ लौट आता था। नैपालगंज में अखिलकुमार घोष एक जड़ी-बूटी का सौदागर था। शंकरगढ़ केन्द्र की डाक उसकी दूकान पर एकत्रित रहती थी। वहां से ही वह बंटा करती थी। डाक भेजने का प्रबन्ध संस्था का अपना था। प्रत्येक स्थान के लिये संस्था के सदस्य नियुक्त थे। ये लोग जड़ी-बूटी के सौदागर बनकर नैपालगंज आते थे और डाक दे और ले जाते थे।

[४]

नरेन्द्र को जब संस्था के कार्य और कार्य करने के ढंग का ज्ञान हो गया तो वह अपनी विशेष प्रतिभा के कारण संस्था के काम पर अपनी छाप लगाने लगा। वह स्वयं दिन में आठ घंटे तक स्वाध्याय करता था, पश्चात् शंकर पंडित के साथ बैठकर डाक का उत्तर देता था और इस के अतिरिक्त अजेय के साथ खेला करता था।

अजेय भी नरेन्द्र से बहुत हिलमिल गया था। अब वह भगवती के

साथ खेलना पसन्द नहीं करता था। नरेन्द्र के साथ ही वह नदी तक घूमने के लिये जाता था। बात यह थी कि अजेय को बातें बनाने का बड़ा शौक था। भगवती उसकी बातों में रुचि नहीं दिखाती थी, परन्तु नरेन्द्र उसकी बातों को सुनता था।

सायंकाल नरेन्द्र जब उसे साथ लेकर नदी के किनारे घूमने जाता तो वह उसे अपनी अस्पष्ट स्मृति में रही हुई बातें विकृत रूप में और टूटी-फूटी भाषा में बताकर गौरव अनुभव करता था। नरेन्द्र उसे ऐसी बातें करने में प्रोत्साहन देता था जिससे वह भगवती को छोड़ नरेन्द्र के पास आनन्द अनुभव करता था।

अजेय पंडित को बाबा और मां को मां पुकारता था। पहली कथा जो उसने नरेन्द्र को सुनाई वह इस प्रकार थी, "कल मां ने लड्डू बनाये। बहुत स्वाद थे। बाबा ने कहा, 'अजेय खाओगे?' मैंने कहा, 'मां नहीं देती।' बाबा ने मटकी की ओर जिसमें लड्डू थे संकेत कर दिया। मेरा जी लड्डू खाने को करता था। मैंने एक पत्थर मारा। मटकी टूट गयी। लड्डू नीचे गिर पड़े। मैंने दो खाये। फिर भगवती ने उठा लिये।"

तीन वर्ष के बालक को तोतली भाषा में ऐसी कथायें सुनाते देख नरेन्द्र का मन आनन्द से पुलकित हो उठता था। गौरी और शंकर में भारी अन्तर था। गौरी पालतू बकरी की भांति मृदुल थी। प्रत्येक के साथ हिल-मिल जाना उसका स्वभाव था। शंकर पंडित दूसरे के मन पर अपनी प्रभुता का प्रभाव जमा लेता था। उसके आसपास रहने वाले इस प्रकार उससे दबते थे मानो वह कोई उच्च कोटि का व्यक्ति है। गौरी को साथी कहा जा सकता था, परन्तु शंकर को तो प्रभु कहना ही उचित जान पड़ता था। यह प्रभाव पंडित की प्रतिभा, योग्यता और विशाल ज्ञान के कारण था।

नरेन्द्र का स्वभाव था कि सायंकाल चार बजे के लगभग अजेय को साथ लेकर नदी के किनारे चला जाता और वहां उससे अथवा उसी

के समान चंचल, पत्थरों से टकराती हुई और उनके ऊपर से अठखेलियां करती हुई नदी से मन बहलाया करता था।

आज वहां गया तो गौरी वहीं बैठी थी। अजेय को नरेन्द्र के साथ आते देख गौरी ने उसे बुलाया, "अजेय !"

"मां, मैं तुम्हें घर ढूंढता था।"

इस समय अजेय मां के समीप आकर एक पत्थर पर बैठ गया और नरेन्द्र दोनों के पीछे खड़ा रहा। मां ने पूछा, "क्यों ढूंडते थे ?"

"काका कहते थे लड्डू खायेंगे।" काका से उसका अभिप्राय नरेन्द्र से था।

"चल झूठा। काका को तो पता ही नहीं कि लड्डू हैं।"

"मैंने जो बताये थे।"

"तुम्हें किसने बताया था ?"

"बाबा ने।"

"तो फिर ?"

"मैंने भी खाने हैं।"

"तुम्हें तो प्रातःकाल दिये थे।"

"एक और।"

इस पर गौरी और नरेन्द्र दोनों हंस पड़े। नरेन्द्र एक ओर हटकर पत्थर पर बैठ गया। गौरी, जबसे नरेन्द्र आया था, यह अनुभव कर रही थी कि नरेन्द्र उसकी ओर बहुत ध्यान से देखा करता है और जब देखता है तो देखता ही रह जाता है। आज भी वह यही अनुभव कर रही थी। अजेय मां से तोतली भाषा में बातें कर रहा था और नरेन्द्र अवाक मुख गौरी की ओर देख रहा था। गौरी ने एक-आध बार उसकी ओर देखा तो उसे किसी विचार में लीन अपनी ओर देखते हुए पाया। नरेन्द्र की आंखों में तरलता भी थी। इससे वह आज पूछने से रुक नहीं सकी। उसने पूछ ही लिया, "नरेन्द्र भैया, एक बात पूछूं ? नाराज़ तो न होगे ?"

"नहीं, आपसे नाराज़ कोई क्यों होगा ?"

"तो बताओ जब तुम मेरे मुख पर देखते हो तो फिर देखते ही क्यों रह जाते हो ? तुम्हारे मन में क्या बात है ? ऐसा प्रतीत होता है कि तुम कुछ कहना चाहते हो पर कह नहीं सकते।"

"आपका अनुमान सर्वथा सत्य है। मैं जब आपकी आंखों को देखता हूं तो मुझे एक और की आंखें स्मरण हो आती हैं। मुझे भास होने लगता है कि शायद तुम वही हो। मेरी मां की आंखें सदैव ऐसी ही सरस होती थीं। बचपन से मुझे उनके देखने का स्वभाव है। मुझे मां के रूप में यदि कोई चीज़ ठीक ठीक याद है तो वह उसकी आंखें हैं। और यदि मैं भूल नहीं करता तो वही आंखें आप में मुझे दिखाई देती हैं। कम से कम एक बात में तो समानता स्पष्ट है। मां की आंखों में एक अति कठोर दुख छिपा था। इसी से वे चौबीस घंटे तरल रहती थीं। वही मैं आपकी आंखों में देखता हूं।"

गौरी ने एक लम्बी सांस ली और चुपचाप सामने नदी की ओर देखने लगी। यथार्थ में वह अपने आंसू रोकने का यत्न कर रही थी। नरेन्द्र की आंखें तो पहले ही भीग चुकी थीं। जब गौरी से नहीं रहा गया तो उसने धोती के अंचल से आंखें पूंछनी आरम्भ कर दीं। नरेन्द्र ने धीरे से कहा, "तो सत्य है, बहन, तुम्हारे मन में भी कोई घोर दुख छिपा है।"

इसके पश्चात् नरेन्द्र ने अपने पिता के मारे जाने और मां के अपमानित किये जाने की पूर्ण कथा सुनाई। गौरी ने यह कथा सुनी तो और भी रो पड़ी। जब नरेन्द्र सुना चुका तो गौरी ने आंखें नीचे किये हुए कहा, "सत्य ही मेरे हृदय में भी एक वेदना छिपी है और इस वेदना का मेरे जीवन पर इतना गहरा प्रभाव हुआ है कि मैं इसे मरण-पर्यन्त भूल नहीं सकती।" उसने आंसू पोंछते हुए कहना जारी रखा, "एक धनी पिता की दो सन्तानें थीं—एक लड़का और एक लड़की। पिता हिन्दुस्तान में मुसलमानी राज्य स्थापित करने की योजनायें बनाता

था, परन्तु लड़का और लड़की हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी राज्य चाहते थे। पिता को अपने बच्चों के विचार और काम पसन्द नहीं थे। इस पर एक बात और हुई कि लड़की एक हिन्दू ब्राह्मण-कुमार से प्रेम करने लगी। इससे पिता के क्रोध का पारावार नहीं रहा। पिता ने लड़की का विवाह मुसलमान रईस से करना चाहा। लड़की घर से भाग खड़ी हुई। भाई को पिता का व्यवहार पसन्द नहीं आया और वह भी पिता का घर छोड़ बहन के पास जा पहुंचा। हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता प्राप्त कराने में सबल बनाने के लिये, भाई-बहन और वह ब्राह्मण कुमार, जिससे लड़की प्रेम करती थी, सिर-तोड़ यत्न कर रहे थे। पिता को उनके ठहरने का स्थान और काम का पता चल गया। वह लड़की को समझाने के लिये वहां पहुंचा, परन्तु लड़की न तो अपने राजनैतिक विचार बदल सकी और न ही उस ब्राह्मण-कुमार से प्रेम तोड़ सकी। पिता ने एक हत्यारे को लड़की के प्रेमी की हत्या करने के लिये नियुक्त कर दिया। हत्यारे ने भूल से लड़की के प्रेमी के स्थान लड़की के भाई की हत्या कर दी। पिता को अपने काम के अनिच्छित परिणाम से रंज हुआ और लड़की का अपने प्रेमी से विवाह कर लेने का निश्चय और भी दृढ़ हो गया। पिता के बहुत शोकातुर होने पर भी बाप और बेटी में इतना अंतर हो गया कि लड़की ने बिना पिता को बताये उससे विवाह कर लिया। पिता को सदमा इतना गहरा पहुंचा कि शीघ्र ही वह परलोक-गमन कर गया। लड़की की मां जीवित है, परन्तु उसने लड़की को अपने व्यवहार के लिये अभी भी क्षमा नहीं किया। लड़की को इस दुर्घटना में अभी तक अपना दोष नहीं जान पड़ा। यह दुखान्त नाटक कहां समाप्त होगा, कह नहीं सकती।"

गौरी की आत्म-कथा को सुनकर नरेन्द्र अवाक् मुख बैठा रह गया। ज्यों ज्यों वह गौरी और शंकर के समीप होता जाता था, वह उनके आकर्षण में आता-जाता था। क्या कोई इस आकर्षण से बच सकता है, नरेन्द्र यह सोच करता था।

[५]

मनोरमा को बनारसीदास ने कहा था, "मैं तुम्हारा प्रबन्ध करता हूं" और एक व्यापारी की भांति पांच मिनट में ही एक योजना बना मनोरमा से कहने लगा, "तुम्हारा लाहौर में कोई भी परिचित है ?"

"एक कॉलेज की सहपाठिन है जिसका विवाह 'मॉडल टाउन' के एक पंडित केवलकृष्ण से हुआ है। मैं कभी कभी उसे पत्र लिखा करती हूं।"

"तो ठीक है। तुम इन्द्रजीत और कमला के साथ मोटर में यहां से सहारनपुर चली जाओ। वहां पर तुम रात को ही 'फ्रन्टीयर मेल' में सवार हो लाहौर चली जाना। वहां अपनी सहेली के घर जाकर कुछ दिन रहने का प्रबन्ध कर लो। मैं यहां की स्थिति का ध्यान रखूंगा और मेरा एक मित्र छिपकर तुम्हारा ध्यान वहां रखेगा। डरना नहीं। ईश्वर ने चाहा तो तुम सुरक्षा से वहां रह सकोगी और समय पर मैं तुम्हारे वहां से यहां बुलाने या कहीं और भेजने का प्रबन्ध कर दूंगा।"

इसके पश्चात् बनारसीदास ने इन्द्रजीत और कमला से कहा, "दस मिनट के भीतर हरिद्वार जाने के लिये तैयार होजाओ। अपने कपड़ों के अतिरिक्त एक सूट-केस और बिस्तर मनोरमा के लिये भी तैयार करा दो। और देखो, मनोरमा के बिस्तर में जो भी सामान हो उस पर तुम्हारा नाम या यहां का कोई चिन्ह न हो। मनोरमा को साथ ले जाकर सहारनपुर स्टेशन पर फ्रन्टीयर मेल में चढ़ा देना। टिकट सैकण्ड क्लास का ले देना। और हां, मनोरमा, तुम अपनी सहेली का पता यहां लिखा दो। मैं अपने मित्र को लिख दूंगा। हमें चिट्ठी लिखने की आवश्यकता नहीं। कारण यह कि तुम्हारे विषय में मेरा वह मित्र मुझे लिखता रहेगा और मैं भी तुम्हें उसी के द्वारा यहां का समाचार भेजा करूंगा।"

"परन्तु चाचा जी," मनोरमा का कहना था, "इतनी बातों के करने की क्या आवश्यकता है ? आपको बहुत कष्ट होगा।"

"तुम अभी अनुभवहीन हो। मैं जैसा कहता हूं करोगी तो सुखी रहोगी। मत समझो कि कानून तुम्हारी किसी भी भांति सहायता कर

सकेगा। वह किताबों में लिख रखने के लिये बना है। कानून से केवल वही लाभ उठा सकते हैं जो सबल हैं और तुम्हारा पति तुमसे अधिक सबल है।"

दस मिनट में ही इन्द्रजीत, कमला और मनोरमा मोटर पर सवार होकर दिल्ली से चल पड़े। मनोरमा निर्विघ्न लाहौर पहुंच गयी। स्टेशन से बाहर निकल टांगा कर 'मॉडल टाउन' अपनी सहेली रोहिनी के बंगले पर जा पहुंची। दिन के ग्यारह बज चुके थे। रोहिनी का पति प्रातः का खाना खा काम पर जा चुका था। वह अनारकली बाज़ार में पुस्तकों की दूकान करता था। रोहिनी खाना खाकर कुल्ला कर रही थी कि नौकर ने आकर कहा, "बीबी जी, बाहर एक बीबी जी आई हैं।"

रोहिनी भागी हुई बाहर आई और मनोरमा को ट्रंक-बिस्तर टांगे में लाये, खड़े देख विस्मय में खड़ी रह गयी। फिर भागकर आई और मनोरमा से गले मिलने लगी। जब स्नेह–प्रदर्शन हो चुका तो उसने नौकर को आवाज़ दी, "मंगल, मंगल !"

वही नौकर, जिसने मनोरमा के आने की सूचना रोहिनी को दी थी, आगया और रोहिनी के कहने पर मनोरमा का सामान उठाकर भीतर ले गया।

टांगेवाले को भाड़ा दे मनोरमा रोहिनी के साथ कोठी में आई। दोनों जब आराम से बैठ गयीं तो मनोरमा ने बताया, "रोहिनी बहन, मैं घर से लड़कर चली आई हूं। मेरा विचार लाहौर में किसी स्कूल-कॉलेज़ में या स्वयं ही पढ़ाने का काम करने का है। मेरा लाहौर में कोई परिचित नहीं। इस कारण कुछ दिन के लिये तुम्हें कष्ट देने चली आई हूं।"

रोहिनी इस समाचार से भारी दुविधा में पड़ गयी। वह नहीं समझ सकती थी कि मनोरमा को रखने का क्या परिणाम निकलेगा। मनोरमा ने रोहिनी को चुप देख बहुत निराशा प्रकट करते हुए कहा, "अच्छी बात तो मैं किसी और स्थान पर रहने का प्रबन्ध कर लूंगी।" इतना कह

मनोरमा जाने के लिये उठ खड़ी हुई।

रोहिनी ने उसे जाने के लिये तैयार देख कहा, "नहीं, इस प्रकार नहीं। न ही मेरा अभिप्राय यह है कि मैं तुम्हें यहां रखना नहीं चाहती। मैं तो यह सोच रही हूं कि बिना उनसे पूछे मैं तुम्हें कितनी आशा दूं। वास्तव में मैं बिना तुम्हारे जीजा जी से पूछे तुम्हें रहने की स्वीकृति नहीं दे सकती। तो भी मैं समझती हूं कि वे स्वीकृति क्यों नहीं देंगे। मनोरमा बहन, तुम आज तो यहां ही रहो। रात जब वे आवेंगे तो सोच लिया जायगा।"

मनोरमा के पास और कोई प्रबन्ध नहीं था और साथ ही बनारसीदास को वह यहां का पता देकर आई थी। अतएव वह जहां तक हो सके यहीं पर रहना चाहती थी। इसलिये रोहिनी के कहने को ठीक मान फिर बैठ गई।

रात को जब केवलकृष्ण घर आया तो रोहिनी ने मनोरमा का परिचय कराया और कहा कि कुछ दिन के लिये वह उनके यहां रहेगी। उस समय वे लोग खाना खाने के लिये मेज़ पर बैठे थे। मनोरमा केवलकृष्ण के सामने बैठी थी। परिचय करते समय उसने मन भरकर मनोरमा को देखा था और उसके सौन्दर्य को देख उस पर मुग्ध हो गया था। यद्यपि रोहिनी ने स्पष्ट और बलयुक्त शब्दों में बताया था कि मनोरमा का पिता और पति दोनों पुलिस के बड़े अफ़सर हैं और वह घर से भाग कर आई है, इस पर भी केवलकृष्ण ने तुरंत कह दिया, "हां, हां, जब तक इनका मन करे हमारे यहां रहें। इसे अपना ही घर समझें और मैं इनको काम में पूरी सहायता दूंगा।"

खाना खाते खाते मनोरमा के लिये किसी स्कूल—कॉलेज की नौकरी की आशा पर विचार होता रहा। केवलकृष्ण ने बताया, "ऐसी नौकरी मिलनी बहुत कठिन है। हां 'मॉडल टाउन' में लड़कियों की पढ़ाई का कुछ अच्छा प्रबन्ध नहीं। यदि मनोरमा चाहे तो एक 'प्राइवेट स्कूल' खोला जा सकता है। मैं इस स्कूल के चलाने में पूरी सहायता दूंगा।"

केवलकृष्ण ने अपनी कोठी के पीछे दो मोटर-ग्राज़ इस मतलब के लिये मनोरमा को देने की बात बताई। अगले दिन उन्हें देख मनोरमा ने 'मैट्रिक' की लड़कियों की शिक्षा के लिये स्कूल खोलने का निर्णय कर लिया और दो दिन में ही स्कूल के लिये उचित सामान वहां पर एकत्रित हो गया। केवलकृष्ण ने केवल इतना ही नहीं किया, प्रत्युत उसने मॉडल टाउन में लोगों से मिलकर स्कूल में पढ़ने के लिये बीस-इक्कीस लड़कियां भी इकट्ठी कर दीं। एक सप्ताह में ही मनोरमा का स्कूल चल निकला और वह पूर्ण यत्न से इसे सफल बनाने में लग गई।

[६]

नन्दलाल घर लौटा तो सायंकाल हो चुका था। आते ही मनोरमा का समाचार लेने भीतर गया। कमरे को ताला लगा था। नन्दलाल अभी इस ताले का अर्थ सोच ही रहा था कि नौकरानी आई और ताली देते हुए बोली, "सरकार, आपके जाने के पीछे गयी थीं और अभी तक नहीं लौटीं।"

"कहां गयी थीं?"

"यहां से तांगा कमला बहन के घर तक किया था।"

नन्दलाल का माथा ठनका, परन्तु अभी निराशा नहीं हुई। टैलीफ़ोन पर बनारसीदास से बातें करने लगा, "ला० बनारसीदास... मैं हूं नन्दलाल......मनोरमा आपके घर आई थी?......अब कहां है?...... नहीं?...तो वहां से कहां गयी थी?......आप नहीं जानते......कमला घर पर है?...नहीं?...कहां गई है?......क्या कहा?...हरद्वार?... कब गई है?...दो बजे......दो बजे तो कोई गाड़ी नहीं जाती...... ओह! मोटर से गई है......साथ मनोरमा भी गई है?......हैं?... क्या कहा?......मनोरमा नहीं थी।......देखिये, लाला जी......" नन्दलाल अब क्रोध में कह रहा था, "आप ठीक ठीक बताइये। एक औरत के भगा ले जाने की बात है। कहीं ऐसा न हो कि जेल की हवा खानी पड़े।"

नन्दलाल की बात अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि बनारसीदास ने टैलीफ़ोन बन्द कर दिया। इससे नन्दलाल को क्रोध चढ़ आया। उसने समझा कि घर से ज़ेवर, रुपया इत्यादि सब ले गई होगी। इससे उसके मस्तिष्क में थाने में रिपोर्ट लिखवाने का विचार पैदा हुआ। ऐसा करने के लिये उसने गुमशुदा माल की सूची बनाने के लिये कमरा खोला।

ड्रेसिंग टेबल पर चिट्ठी और अलमारी की चाबी देख उसने चाबी ले अलमारी खोली। उसमें रुपये और भूषण ठीक ठीक पा, विस्मय और शान्ति अनुभव करते हुए चिट्ठी उठा पढ़ने लगा। चिट्ठी से बात स्पष्ट हो गई कि वह देहली छोड़ कहीं चली गई है। इस पर उसे विचार आया कि उसे पकड़ना चाहिये। वह सोचने लगा कि कहां गई होगी। इस समय उसे डिप्टी साहब की याद आई। उसने उठकर उनको टैली-फ़ोन किया। डिप्टी साहब ने सब बात सुनकर कहा, "कमला का हरद्वार जाना मनोरमा के ग़ायब होने के साथ सम्बन्ध रखता है। उसका पीछा करना चाहिये। मैं मोटर से हरद्वार जाता हूं। तुम देहली स्टेशन पर देखभाल के लिये आदमी नियुक्त कर दो। जाने से पूर्व मैं बनारसी दास से पुनः मिल लेता हूं।"

डिप्टी रघुवरदयाल बनारसीदास को मिलने गये। बनारसीदास खाना खा रहा था। डिप्टी साहब ने कहला भेजा कि बहुत जल्दी का काम है। इस पर बनारसीदास ने उन्हें भीतर ही बुला लिया।

बनारसीदास एक चौकी पर आसन बिछाकर बैठा हुआ था। डिप्टी साहब के लिये समीप एक कुर्सी लगवा दी गई। डिप्टी साहब ने बैठते ही पूछा, "आपने नन्दलाल से टैलीफ़ोन पर बात बन्द क्यों कर दी थी?"

"मैं उसकी गाली सुनना पसन्द नहीं करता था।"

"आख़िर मामला तो संगीन है ही। मनोरमा बिना पति की इच्छा के घर से चली गई है।"

"मुझे इसका बहुत शोक है। परन्तु मैं एक बात आपसे पूछता हूं।

यदि मैं उसे अपने घर में यहां रख लेता तो आप क्या कर सकते थे ? यही न कि मुझ पर और उस पर नाजायज़ दबाव डालते। कानून तो उसे बलपूर्वक कहीं भी रखने पर आपकी सहायता नहीं कर सकता।"

"परन्तु मनोरमा यहां आई तो थी ?"

"हां। मैं उस समय दफ़्तर में था। लगभग एक घंटा यहां ठहर वह चली गई थी। पश्चात् दो बजे के लगभग इन्द्रजीत और कमला हरद्वार के लिये चले गये।"

"तो बात तो साफ है। मनोरमा कोठी से निकल बाहर सड़क पर कहीं प्रतीक्षा करती रही होगी और ये लोग उसे मोटर में बैठाकर ले गये हैं।"

"यह आपका अनुमान है न। इसका प्रमाण तो कुछ भी नहीं।"

"मैं प्रमाण पैदा करने जा रहा हूं।"

"ठीक है। मेरी सहानुभूति आपके साथ है।"

डिप्टी रघुवरदयाल ने इन्द्रजीत को रंगे हाथ पकड़ने का विचार कर हरद्वार की ओर प्रस्थान कर दिया।

नन्दलाल अपनी स्त्री के भाग जाने से क्रोध में पागल हो रहा था। वह इन्द्रजीत और कमला को ही इस दुर्घटना का कारण समझता था और उन पर अपना क्रोध निकालना चाहता था, परन्तु डिप्टी साहब के उनके पीछे जाने के परिणाम सुनने की प्रतीक्षा कर रहा था। अगले दिन उसे डिप्टी साहब का तार मिला कि मनोरमा इन्द्रजीत के साथ नहीं है और उसी समय से नन्दलाल इन्द्रजीत पर क्रोध निकालने की योजना बना रहा था।

तीसरे दिन इन्द्रजीत और कमला हरद्वार से लौटे। मोटर अभी आकर कोठी में खड़ी ही हुई थी कि नन्दलाल एक 'पुलिस-वैन' लेकर आया और इन्द्रजीत को पकड़कर ले गया। कमला और बनारसीदास मुख देखते रह गये। कमला बहुत देर तक कोठी के बरामदे में ही खड़ी रही और उधर देखती रही जिस ओर पुलिस-वैन गई थी। पश्चात् भीतर

आ अपने कमरे में जा हताश पलंग पर लेट गई। बनारसीदास कमला की निराशा और दुख का अनुमान उसका मुख देखकर लगा रहा था। जब वह अपने कमरे में गई तो बनारसीदास उसके पीछे पीछे वहां पहुँचा। उसके पलंग के समीप खड़ा हो कमला को देखने लगा। चार दिन हुए इन्द्रजीत जब रात को घर नहीं आया था तो कमला की आंखें रो रोकर फूल उठी थीं, परन्तु आज उसकी आंखों में आंसू नहीं थे। वह अपने मन में कुछ अति भयंकर बात सोच रही थी।

बनारसीदास ने इस अवस्था को भययुक्त मान, उसे सांत्वना देने के लिये कहा, "बेटी कमला, घबराओ नहीं। मैं अभी उसे छुड़ा लाता हूं। यदि एक लाख भी घूस में देना पड़े तो कुछ चिन्ता नहीं।"

कमला लाला जी की यह बात सुन चौंककर उठ बैठी और लाला जी को कमरे से बाहर जाते देख बोली, "नहीं लाला जी, अब एक कौड़ी भी खर्च नहीं करियेगा। पहले तो मुझे संदेह ही है कि रिश्वत लेकर भी वह छोड़ेगा। देखा नहीं आपने उस कसाई का मुख बदले की भावना से भर रहा था। और फिर यह ढंग कब तक चल सकेगा?"

बनारसीदास सिर झुकाये खड़ा हो गया। कमला पलंग से उतरकर खड़ी हो गई थी। बनारसीदास ने कहा, "बेटी, तुम रुपये की चिन्ता न करो। ईश्वर की कृपा से बहुत है। इन कुत्तों का पेट भरकर भी मैं धनी बना रहूंगा।"

"परन्तु!" कमला ने दृढ़ता से कहा, "आपने तो कहा था कि आप सब कुछ भारत में स्वराज्य-स्थापनार्थ दे चुके हैं। उसमें से तो इन लोगों को एक पाई भी नहीं देनी चाहिये। एक पाई भी जो इनको दी जायगी वह बीमारी के कारण को दूर न कर उसे बढ़ाने में काम आयेगी।"

बनारसीदास अनिश्चित मन से खड़ा रहा। एक बार उसने कहा, "देखो, बेटी कमला, इनको देने के पीछे भी स्वराज्य-स्थापनार्थ बहुत कुछ बच रहेगा।"

कमला ने जब लाला जी को हठ करते देखा तो उसे इन्द्रजीत को छुड़ाने में एक और दृष्टि-कोण समझ में आया। वह समझी कि इन्द्रजीत बनारसीदास का लड़का भी है। वह अपने पति की आहुति दे सकती है, किसी के पुत्र की नहीं। इससे वह कहने लगी, "ओह! मुझसे भूल हुई है पिता जी। मैं अपने मन के उद्गारों में भूल ही गई थी कि आप अपने पुत्र को छुड़ाने के लिये उत्सुक होंगे।"

"तो तुम अपने पति को छुड़वाना नहीं चाहती?"

"नहीं, घूस देकर नहीं। यह पत्तों को पानी देने के समान है। पहले दस हज़ार देने से क्या हुआ है? वे पुनः पकड़ लिये गये हैं। अब एक लाख भी दें तो भी तो पुनः पकड़े जाने की सम्भावना बनी ही रहेगी।"

बनारसीदास ने सुख का सांस लेते हुए कहा, "ईश्वर का धन्यवाद है कि तुम कुछ समझ रखती हो। मुझे भय था कि कहीं तुम या तुम्हारे पिता यह न कहें कि रुपये के लोभ में मैं तुम्हारे सुख की चिन्ता नहीं करता। मैं बहुत प्रसन्न हूं कि तुम भी वैसा ही सोचती हो जैसा मैं।"

इस बार इन्द्रजीत को छुड़ाने का यत्न नहीं किया गया। जैसा कि बनारसीदास का विचार था, हरवंशलाल बनारसीदास को कंजूस ही समझता था। एक दिन क्रोध में वह बनारसीदास से मिलने आया। उसका विचार था कि वह बनारसीदास को प्रेरणा देने में सफल होगा कि वह हाईकोर्ट में 'हिब्स कौर्पस की पैटीशन' करे। बनारसीदास घर पर नहीं था। हरवंशलाल कमला से मिला और उससे मिलने आने का कारण कहने लगा, "कमला, तुम्हारी मां को इन्द्रजीत के कैद होजाने का इतना दुख है कि उसने रात का खाना बन्द कर दिया है और दिन भर परमात्मा का नाम स्मरण करती रहती है।"

"क्यों? इससे क्या होगा पिता जी?"

"यह तो वही जाने।"

"व्यर्थ है। मां से कह दीजियेगा कि धैर्य और संतोष से सब काम

ठीक हो जाते हैं।"

"यह बात औरतों के लिये ठीक है और तुम्हारी मां भी अपने मन में धैर्य और संतोष उत्पन्न करने के लिये ही यह सब अनुष्ठान कर रही है। परन्तु मैं तो यह पूछने आया हूं कि क्या तुम्हारा ससुर भी धैर्य और सन्तोष का पाठ पढ़ रहा है? पुरुषों को ये बातें शोभा नहीं देतीं। उनको तो हाथ-पांव हिलाने ही चाहियें।"

"परन्तु जब हाथ-पांव हिलाने से भी कुछ परिणाम न निकले तो फिर क्या किया जाय?"

"तो वे यत्न कर रहे हैं?"

"किस बात के लिये?"

"किस बात के लिये?" हरवंशलाल ने अचम्भे में पूछा, "तो क्या तुम नहीं समझती कि मैं क्या कह रहा हूं? इन्द्रजीत को छुड़ाने के लिये।"

"जी। परन्तु इस बार वे रिश्वत देकर अथवा मुकदमा कर के छुड़ाने का यत्न नहीं कर रहे।"

"तो किस प्रकार कर रहे हैं?"

"यह मैं नहीं जानती। वे स्वयं आगये हैं। आप ही पूछ लीजिये।"

बनारसीदास की मोटर के शब्द को पहचानकर कमला ने उनके आने की बात कही थी। बनारसीदास से मिलने के लिये हरवंशलाल कमरे से निकल आया। दोनों बरामदे में ही बेंत की कुर्सियों पर बैठ गये। साधारण शिष्टाचार की बात हो जाने के पश्चात् हरवंशलाल ने पूछा, "इन्द्रजीत के विषय में अब क्या हो रहा है?"

"कुछ नहीं। मैं समझता हूं कि युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् ही वह छूट सकेगा।"

"कमला तो कहती है कि आप उसके छुड़ाने का यत्न कर रहे हैं।"

"हां, परन्तु मुझे विश्वास है कि उससे वह छूट नहीं सकता। इस प्रयत्न का फल तो कुछ और ही होगा।"

"क्या ?"

"मैं समझता हूं कि नन्दलाल जैसे पुलिस-अफ़सरों का दिमाग़ सीधा हो जायेगा।"

"कैसे ?"

"यदि सफलता मिली तो देख लीजियेगा।"

"परन्तु आप हाईकोर्ट में एक प्रार्थना-पत्र क्यों नहीं दे देते ?"

"इससे लाभ ? हाईकोर्ट आजकल इन मामलों में दख़ल नहीं दे सकता।"

हरवंशलाल को बनारसीदास से बहुत निराशा हुई और स्वयं ही एक बैरिस्टर कर प्रार्थना-पत्र दे दिया। परिणाम यह हुआ कि हरवंशलाल के दस हज़ार रुपये खर्च हो गये, परन्तु सफलता कुछ भी न मिली। हाईकोर्ट ने इस मामले में हस्तान्तेप करने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी।

नन्दलाल ने इन्द्रजीत को क़ैद तो करा दिया, परन्तु उसका आशय पूर्ण नहीं हुआ। न तो इन्द्रजीत ने बताया कि मनोरमा कहां है, न ही किसी और साधन से पता मिल सका।

बनारसीदास पुत्र के पकड़े जाने से नन्दलाल का घोर शत्रु हो गया। उसने अपनी और मनोरमा की पूर्ण कथा 'स्वराज्य संस्थापन समिति' के नेता को बताई। नेता ने मनोरमा की रक्षा का भार अपने पर लेने का वचन दिया। बनारसीदास ने इस विषय में जितना भी खर्च हो देने का वचन दिया।

परिणाम-स्वरूप देहली में समिति के प्रतिनिधि को नन्दलाल, डिप्टी साहब और लाहौर मॉडल टाउन में केवलकृष्ण और मनोरमा पर दृष्टि रखने का आदेश मिल गया।

एक दिन नन्दलाल का रसोइया नन्दलाल के पास पहुंचा और बोला, "हुज़ूर, घर से चिट्ठी आई है कि मां बहुत बीमार है। मैं अब तुरन्त घर लौट जाना चाहता हूं।"

"तो हमारा खाना कौन बनायेगा ?"

"आप कोई और नौकर ढूंढ़ लें।" इतना कह नौकर अपना बिस्तर बांधने चला गया।

सौभाग्य से इसके पश्चात् शीघ्र ही एक नौकर रसोई बनाने का कार्य जानने वाला नौकरी की तलाश में वहां पहुंच भी गया। उसने कई लोगों के सर्टिफिकेट भी दिखाये। वेतन पूछने पर बोला, "बेकार हूं। जो कुछ भी खुश हो दीजियेगा मंज़ूर कर लूंगा।"

"तीस रुपया और खाना। मंज़ूर है ?"

"मंज़ूर है।"

नन्दलाल ने देखा कि नौकर बहुत ही चतुर और समझदार है और बहुत ही कम वेतन पर मिल गया है। इसके एक-दो दिन के भीतर ही डिप्टी साहब का घर का काम-काज करने वाला नौकर भी भाग गया और उन्होंने सूखे चालीस पर एक नया नौकर रख लिया। डिप्टी साहब भी बहुत होशियार नौकर को पाकर प्रसन्न थे।

ये दोनों नौकर अपने को अनपढ़ बताते थे, परन्तु डिप्टी साहब की डाक की पड़ताल किया करते थे। वे सब पत्र, जो लाहौर से अथवा अन्य स्थानों से व्यक्तिगत पतों पर आते थे, ग़ायब हो जाते थे। ये पत्र समिति के नेता के पास पहुंच जाते थे। वहां इन्हें पढ़कर पुनः डिप्टी साहब की डाक में छोड़ दिया जाता था। इसके अतिरिक्त ये दोनों नौकर नन्दलाल और डिप्टी साहब के घर के हालचाल लिखकर समिति के नेता के पास पहुँचाते थे।

केवल इतना ही नहीं प्रत्युत मनोरमा की देखभाल के लिये जो आदमी नियुक्त हुआ था वह केवलकृष्ण का तो मित्र ही बन गया था और प्रायः नित्य उनके घर आने-जाने लगा था।

[७]

रोहिनी केवलकृष्ण को मनोरमा के काम में एकदम इतने उत्साह से लगा देख ईर्षा करने लगी थी। यदि केवल इतना ही होता तो कुछ

न था, परन्तु केवलकृष्ण मनोरमा को अपनी मोटर में बैठा नगर में ले जाता था और उसके स्कूल के लिये सामान खरीदने में सहायता भी देता था। एक आध-बार रोहिनी ने मनोरमा के साथ शहर जाने का विचार भी प्रकट किया; परन्तु केवलकृष्ण ने किसी बहाने से उसका साथ जाना टाल दिया।

एक दिन केवलकृष्ण सायंकाल आया तो अपने साथ बहुत सी पुस्तकें लाया। वे पुस्तकें उसने मनोरमा को रात का खाना खाने के बाद उसके कमरे में जाकर दीं और फिर वहां मनोरमा से जब बातें होने लगीं तो कई घंटे व्यतीत हो गये। रोहिनी अपने कमरे में प्रतीक्षा करती करती सो गई। जब उसकी नींद खुली तो एक बज रहा था। उसने देखा कि उसका पति अभी तक मनोरमा के पास से नहीं आया। यह जानकर वह आग-बबूला हो गई। वह क्रोध में उठी और लपककर मनोरमा के कमरे की ओर गई; परन्तु केवलकृष्ण मनोरमा के कमरे से बाहर आ रहा था। रोहिनी क्रोध से उतावली हो रही थी और वहां ही कड़ककर बोली, "मालूम है कितने बज गये हैं?"

केवलकृष्ण ने उत्तर नहीं दिया और अपने कमरे में चला आया और सोने की तैयारी करने लगा। रोहिनी जो उसके पीछे पीछे वहां आई थी पूछने लगी, "इतनी देर तक क्या कर रहे थे आप वहां?"

केवलकृष्ण ने कहा, "बातें।"

"बातें? बहुत मज़ा आता था उससे बातें करने में?"

"हां।"

"तो उसी से विवाह कर लो न।"

"क्या कहा?" केवलकृष्ण ने घूरकर रोहिनी की ओर देखते हुए कहा।

"हां...हां! मैं कहती हूं कि अगर उससे बातें करने में आनन्द आता है तो मुझे छोड़ उसी से विवाह कर लो न।"

"यदि ऐसा हो सकता तो......?"

"अच्छा! यह बात है? तो मैंने अपने आप ही घर लाकर सांप पाला है। एक महीने में ही लुढ़क गये उस ओर।"

"देखो रोहिनी!" केवलकृष्ण ने अपने पलंग पर बैठते हुए कहा, "वह तुमसे अधिक सुन्दर, चतुर और अच्छे विचार रखती है। आज उसने मुझे अपनी कहानी सुनाई है और मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि यदि मैं उसका पति होता तो बेचारी के भाग्य बदल जाते।"

"उसके भाग्य बदल जाते या आपके? आप अति नीच विचार के आदमी हैं। पहली ही परीक्षा में फ़ेल हो गये।"

"हां, यदि मैं उसका पति होता तो निस्सन्देह मैं भी अपने को भाग्यशाली मानता और मैं तुमसे ही पूछता हूं कि क्यों न मानता? किस बात में वह तुमसे बढ़कर नहीं है?"

एक मनोवैज्ञानिक का कहना है कि स्त्री के सौन्दर्य और चरित्र के विषय में उसके मुख पर प्रशंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहना चाहिये, अन्यथा घर की शान्ति और सुख से हाथ धो बैठना होगा। सो यही बात केवलकृष्ण की हुई। रोहिनी ने समझा कि आज तो उसका पति मनोरमा की प्रशंसा करता है, कल उसके पास जाकर रहने लगेगा। उसे मनोरमा के घर रखने पर पश्चात्ताप होने लगा। रात भर वह इस बला से छुट्टी पाने के उपायों पर सोचती रही।

अगले दिन उसने दो पत्र लिखे। दोनों में एक ही बात लिखी। लिखा था, "श्रीमान जी, मनोरमा लगभग एक मास से हमारे यहां ठहरी हुई है। मैंने बहुत विचारोपरान्त यह समझा है कि उसका अपने घर चला जाना ही अच्छा है। सो आपसे निवेदन है कि शीघ्र आकर प्रेमपूर्वक उसे घर ले जायें।"

इनमें से एक पत्र डिप्टी रघुवरदयाल के पते पर और दूसरा नन्दलाल के घर के पते पर भेज दिया।

[८]

चिट्ठियां डालने के चौथे दिन की बात है। मनोरमा स्कूल में पढ़ा रही

थी कि एक खद्दरधारी, गांधी टोपी पहने आया और मोटर-ग्राज के, जिस में स्कूल लग रहा था, बाहर पहुंचकर पूछने लगा, "मनोरमा देवी कौन है ?"

मनोरमा लड़कियों को छोड़ ग्राज के बाहर आगई और उस खद्दर धारी से पूछने लगी, "क्या काम है आपको ?"

वह इधर-उधर देखने लगा। मनोरमा ने कुछ चिन्ता अनुभव कर पूछा, "क्या बात है ?"

"जरा एकान्त में बात करना चाहता हूं।"

"क्यों ? आप कौन हैं ?"

"आप मुझे नहीं जानतीं, परन्तु आप लाला बनारसीदास जी को तो जानती हैं ?"

"हां।"

"तो उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। जरा शीघ्रता कीजिये। समय कम है।"

मनोरमा उस खद्दरधारी के साथ कोठी के फाटक की ओर चल पड़ी। वहां एक मोटर खड़ी थी। खद्दरधारी ने कहा, "मुझे आज्ञा हुई है कि मैं आपसे पूछूं कि आप अपने पति के घर जाना चाहती हैं या नहीं ?"

"क्या बात है ? आप स्पष्ट क्यों नहीं बताते ?"

"समय नहीं। आप अपने मन की बात बतायें तो मैं आगे की बात निवेदन करूंगा।"

"मैं उनके घर जाना नहीं चाहती।"

"तब ठीक है। आप इस गाड़ी में (खड़ी मोटर की ओर संकेत कर) बैठ जायें। देर करने से बच निकलने का समय नहीं रहेगा।"

मनोरमा 'किंकर्तव्य विमूढ़' की भांति खड़ी रह गयी। वह निश्चय नहीं कर सकी थी कि क्या करे। उस खद्दरधारी ने कहा, "बनारसीदास जी ने कहा है कि उन पर भरोसा रखो और जैसा मैं कहता हूं करो। कमला भाभी ने यह अंगूठी पहचान के लिये दी है।"

मनोरमा ने एक बार उस खद्दरधारी के मुख पर और एक बार अंगूठी की ओर देखा और निश्चिन्त हो लपककर मोटर में बैठ गई। खद्दरधारी ने और कुछ न बताते हुए, मोटर में ड्राइवर की जगह पर बैठ, मोटर चला दी।

मोटर भागी हुई फिरोज़पुर रोड पर चली जा रही थी। इस समय मनोरमा ने, जो उस खद्दरधारी के साथ की जगह पर बैठी थी, पूछा, "मैं इस सब का अभिप्राय नहीं समझी।"

"नन्दलाल और डिप्टी साहब आपको लेने आ रहे हैं। सौभाग्य से उन्हें मॉडल टाउन की कोठी का पता नहीं है। वे अनारकली में केवल-कृष्ण की दूकान पर गये हैं।"

"परन्तु उनको मेरा पता मिला किससे?"

"रोहिनी से।"

"क्या?"

"केवलकृष्ण की स्त्री रोहिनी ने तुम्हारे पिता और पति को पत्र लिखे हैं। सौभाग्य से उसने मॉडल टाउन का पता नहीं लिखा। फार्म पर, जिन पर चिट्ठियां लिखी गयी हैं, अनारकली की दूकान का पता छपा है। वे चिट्ठियां पाते ही लाहौर को चल पड़े। हमें भी पता चल गया और मुझे आपको बचाने के लिये भेजा गया है।"

मनोरमा इस सब बात को सुन विस्मय में चुप रह गयी। मोटर 'माल' पर पहुंचकर नहर की ओर घूम गई। मनोरमा ने फिर साहस कर पूछा, "आपको यह सब बात कैसे पता लगी है?"

"हमारे भेदिया डिप्टी साहब और नन्दलाल की कोठी पर चौबीसों घंटे रहते हैं। उनकी डाक पहले हमारे पास ही आती है।"

"ओह!" मनोरमा उस खद्दरधारी युवक को अचम्भे में देखने लगी। वह गौरवर्ण भारी परन्तु चुस्त और गठित शरीर रखता था। विशाल मस्तक, टेढ़ी भौंहें, कुछ गोल नाक और कुछ आगे को बढ़ी हुई ठोड़ी थी। वह मोटर बहुत तेज़ भगा रहा था। यद्यपि कपड़ों और बोल-

चाल के ढंग से पेशेवर ड्राइवर प्रतीत नहीं होता था तो भी मोटर चलाने में पूर्ण रूप से सिद्धहस्त था। वह पचास मील प्रति घंटे की गति से भगा रहा था और किंचिन्मात्र घबराया हुआ प्रतीत नहीं होता था। अब मोटर नहर के किनारे किनारे पटरी पर चल रही थी। मनोरमा ने फिर पूछा, "आपने नन्दलाल तथा डिप्टी साहब को कहां देखा है?"

हम सब एक ही गाड़ी से यहां पहुंचे थे। मुझे आपके घर का पता मालूम था इस कारण मैं टैक्सी कर सीधा आपके पास चला आया और डिप्टी साहब ने अनारकली के लिये टैक्सी ली।"

"तो यह टैक्सी है?" मनोरमा ने अचम्भे में पूछा।

उसने आगे देखते हुए उत्तर दिया, "नहीं, वह तो मैंने छोड़ दी थी। यह गाड़ी बनारसीदास जी के एक मित्र की है जो मॉडल टाउन में रहता है और आप पर देखभाल के लिये नियुक्त था।"

"कौन?"

"नाम बताने की स्वीकृति नहीं है।"

"आपका क्या नाम है?"

"बताने की न तो आवश्यकता है, न स्वीकृति।"

"किस की स्वीकृति?"

"बनारसीदास जी की ही समझ लीजिये।"

"समझ लीजिये!' यह गोलमोल बात करने से क्या मतलब?"

"ऐसे ही।"

मनोरमा फिर गम्भीर विचार में पड़ गयी। पौन घंटे में मोटर अमृतसर के समीप से गुज़र रही थी। मनोरमा ने कहा, "कुछ खाइयेगा नहीं? मुझे तो भूख लगी है।"

"आज महाचण्डिका का व्रत है।"

"तो आप मुझे कहां ले जा रहे हैं?"

"अभी दिल्ली। हम रात के आठ बजे तक दिल्ली पहुंच जायेंगे।"

"पर मुझे तो भूख लगी है।"

"आपके लिये खाना अभी तैयार नहीं है। भगवान ने आपके लिये आज उपवास करना ही लिखा है।"

मनोरमा समझ गई कि समय व्यर्थ गंवाना उचित नहीं समझा जा रहा। गाड़ी चलानेवाला अति चतुर आदमी प्रतीत होता था। कभी कभी तो मोटर सत्तर मील की गति से दौड़ती थी। इस पर भी वह ऐसी शान्ति से गाड़ी हांक रहा था मानो मामूली तांगा हो। मार्ग में बैल-गाड़ियां आती थीं और मोटर बहुत सफाई के साथ सर्र करती हुई निकल जाती थी। अमृतसर के पश्चात् जालन्धर, लुधियाना, राजपुरा, अम्बाला, करनाल और फिर देहली। मोटर ठीक आठ बजने में पांच मिनट पर लाल किले के बाज़ू में जा पहुंची। मनोरमा भूख और थकावट से व्याकुल हो रही थी। उसने ड्राइवर को कहा, "हम आगये हैं।"

ड्राइवर ने कलाई पर बंधी घड़ी देखकर कहा, "अभी पांच मिनट हैं। हम कुछ जल्दी आगये हैं।"

उसने गाड़ी श्मशान-भूमि की ओर घुमा दी। वहां एक मोटर पहले ही खड़ी थी। यह गाड़ी उसके पास जाकर खड़ी हो गई। इसके पहुंचते ही पहले से खड़ी गाड़ी का दरवाज़ा खुला और उसमें से बनारसीदास और कमला निकले। मनोरमा उनको पहचानते ही बाहर आगई। वह कमला से गले मिली। मनोरमा की गाड़ी का ड्राइवर भी बाहर आगया। बनारसीदास ने मनोरमा को आशीर्वाद दे कहा, "परमात्मा का धन्यवाद है कि तुम सही-सलामत यहां पहुंच गई हो। अब तुम बताओ कि क्या चाहती हो?"

"मुझे क्या मालूम? आपने जब इतना कुछ किया है तो आगे भी आप ही प्रबन्ध करिये न।"

"अच्छी बात है। यदि ऐसा है तो हमारी गाड़ी में बैठ जाओ। पीछे की सीट पर बैठना; सो भी सकोगी। इसमें जल-भरी सुराही, खाने को पूरी, तरकारी, फल-मिठाई-आदि सब कुछ रखा है। मार्ग में खा लेना।

सुबह चार बजे कानपुर पहुंच जाओगी। वहां एक और गाड़ी तैयार मिलेगी जो तुम्हें सोन के पुल तक ले जायेगी। वहां से फिर गाड़ी बदलकर तुम कल रात कलकत्ते पहुंच जाओगी। वहां तुम्हारे रहने का प्रबन्ध है। जल्दी करो। ”

मनोरमा कमला वाली गाड़ी पर सवार हो गई। इस गाड़ी को चलाने वाला एक और आदमी था। वेष-भूषा से तो वह भी ड्राइवर मालूम नहीं होता था। मनोरमा के गाड़ी में बैठते ही वह गाड़ी जमना के पुल की ओर चल पड़ी।

[६]

कलकत्ते में गुरु जी के मकान पर सभा हो रही थी। इसमें नौ व्यक्ति उपस्थित थे— शंकर पंडित, नरेन्द्र, नरोत्तमप्रसाद, सेठ कुंजबिहारी, लाला बनारसीदास, शेखरानन्द, नरहरिराव, केप्टन नाहरसिंह और गुरु जी। सर्व-साधारण में तो गुरु जी का नाम कोई नहीं जानता था, परन्तु इस सभा में सब जानते थे कि वे क्रान्तिकारी दल के पुराने कार्य-कर्ता श्री धीरेन्द्र हैं।

धीरेन्द्र के विचारों में यूरोप और रूस के भ्रमण ने भारी अन्तर उत्पन्न कर दिया था। जहां उसका अनुभव और भी विस्तृत हो गया था वहां उसकी कार्य-प्रणाली में भी बड़ा अन्तर आगया था। एक समय था जब वह प्रत्येक विषय पर दूसरों से राय करना अपना कर्तव्य समझता था। किन्तु अब वह अपनी आयोजना ऐसी बनाना चाहता था कि कम से कम लोग इसके रहस्य को जान सकें। उसने अपनी संस्था का नाम ‘भारत स्वराज्य संस्थापन समिति’ रखा था। इसके चार विभाग बनाये गये थे। शंकर पंडित के मतानुसार ये चारों विभाग एक आदमी के आधीन काम करते थे। उसका नाम नेता रखा गया था। अभी यह पद धीरेन्द्र ने स्वयं ग्रहण कर लिया था। नेता का काम था, चारों विभागों में संगठन रखना और सुचारु रूप से सम्पर्क स्थापित करना। प्रत्येक विभाग में दो दो सहायक नेता थे। अपने अपने विभाग का पूर्ण कार्य

सहायक नेताओं के द्वारा ही होता था। वे अपने विभाग की आवश्यकतायें नेता के पास भेजते थे और फिर नेता की आज्ञानुसार कार्य चलता था। भारतवर्ष को दो भागों में बांटा गया था और प्रत्येक भाग में संस्था के सब विभागों का एक एक सहायक नेता काम करता था। एक विभाग के लोग दूसरे विभाग के लोगों को नहीं जानते थे। कई बार तो प्रायः एक ही नगर में अथवा एक ही मुहल्ले में दोनों विभाग काम कर रहे होते थे। इस पर भी विभागों का कार्यक्षेत्र पृथक पृथक होने से उनका एक-दूसरे से सम्पर्क नहीं था। अनुशासन बहुत कड़ा था और प्रत्येक सदस्य को अपने अध्यक्ष का कहना मानना होता था। इस प्रकार सहायक नेता के आधीन प्रान्तीय नेता होते थे। समिति के ब्राह्मण तथा वैश्य विभागों को छोड़कर शेष दोनों विभागों के अपने अपने प्रांतीय नेता थे और उनका अपने केन्द्रीय सहायक नेता से ही सम्बन्ध था। इस प्रकार दो प्रान्तीय नेता परस्पर कोई सम्पर्क न रखते हुए भी एक संगठन के आधीन थे। प्रान्तीय नेताओं के आधीन ज़िला अध्यक्ष और उनके आधीन नगर तथा तहसील अगुआ और फिर इनके आधीन मंडलीक थे। प्रत्येक मंडलीक एक एक मंडली का प्रबन्ध करता था। एक मंडली में बीस से अधिक सदस्य नहीं हो सकते थे। इस प्रकार तीनों विभागों की अपने अपने स्थान पर मंडलियां बन रही थीं।

नेता स्वयं सहायक नेताओं के साथ एक केन्द्रीय समिति बनाये हुए था। शंकर पंडित और नरेन्द्र ब्राह्मण वर्ग के सहायक नेता थे। ये लोग अपने विचार-विनिमयों के लिये अपने साथ भारतवर्ष के कई विद्वानों को रखे हुए थे। इनमें यूनिवर्सिटियों के कई प्रोफैसर और अन्य विद्वान थे। इन लोगों की मंडली का नाम विद्वन्मंडली था। शंकर पंडित तथा नरेन्द्र इस मंडली की सभा कभी बनारस, कभी लखनऊ अथवा कलकत्ते में किया करते थे, और समिति के सम्मुख उपस्थित समस्याओं पर विचार किया करते थे। इन सभाओं के निर्णयों पर पुनः विचार कर केन्द्रीय समिति में उपस्थित करते थे।

क्षत्रिय वर्ग के सहायक नेता कैप्टन नाहरसिंह थे। कैप्टन नाहरसिंह अंग्रेज़ी सरकार की फ़ौज के पैन्शनी थे। सन १९१४—१८ के युद्ध में विक्टोरिया क्रास प्राप्त कर चुके थे। अब वे स्वराज्य संस्थापन समिति का कार्य करते थे। वे फ़ौज में और फ़ौज के बाहर देहातों तथा नगरों में फ़ौजी शिक्षा की मंडलियां बना रहे थे। इस वर्ग के दूसरे सहायक नेता थे नरोत्तमप्रसाद। ये समिति की शाखायें विदेशों में खोल रहे थे। विदेशों में जो हिन्दुस्तानी गये हुए थे उनको संगठित कर उनको युद्ध-विद्या सीखने में सहायता दे रहे थे। चीन, रूस, ईरान, मिश्र, अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका के कुछ देशों में ऐसी ही मंडलियां बनाई जारही थीं जैसी हिंदुस्तान में। ये लोग बारूद बनाने का काम भी सीख रहे थें। वैश्य वर्ग के भी दो सहायक नेता थे। एक सेठ कुंजबिहारीलाल और दूसरे लाला बनारसीदास। इस वर्ग में मंडलियां नहीं बनाई जारही थीं। ब्राह्मण वर्ग की भांति इने-गिने लोग ही इसमें थे। इस वर्ग में केवल वही सम्मिलित हो सकते थे जो अपने कारोबार में लगे हुए थें, परन्तु अपनी पूर्ण सम्पत्ति और आय समिति के हवाले कर चुके थे। स्वयं वे केवल कर्मचारी के रूप में काम करते थे। छोटी छोटी चन्दे की रकमों से काम नहीं चलता था। इस वर्ग में पूर्ण भारतवर्ष के लगभग दस सदस्य थे। इस पर भी समिति के पास अरबों रुपये थे जिनका प्रयोग वह कर सकती थी।

चौथा वर्ग था कर्मचारी वर्ग। इस वर्ग के सहायक नेता थे शेखरानन्द और नरहरिराव। ये दोनों कारखानों के मज़दूरों और अन्य कारीगरों का संगठन कर रहे थे।

यह सब योजना शंकर पंडित की बनाई हुई थी और धीरेन्द्र इसके अनुकूल समिति का संगठन कर रहा था। प्रति तीन मास में एक बार इस केन्द्रीय समिति का, जिसका नाम शंकर पंडित ने नवरत्न-मंडल रख दिया था, एक अधिवेशन होता था। इस अधिवेशन में पिछले तीन मास के कार्य का वृत्तान्त बनाया जाता था। नई कठिनाइयों और समस्यायों पर विचार होता था और फिर अगले महीनों में उस पर कार्य होता था।

आज नवरत्न-मंडल का एक अधिवेशन आरम्भ हुआ था। धीरेन्द्र ने पिछले तीन मास का वृत्तान्त बताते हुए कहा, "जब से यह नवरत्न-मंडल पूर्ण हुआ है तब से काम अति वेग से हो रहा है। ब्राह्मण वर्ग की एक बैठक काशी में प्रोफैसर निखिलेश्वर एम० ए० के मकान पर हुई। ब्राह्मण मंडली का यह विचार है कि बिना विदेशी सहायता के भारतवर्ष में स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता। जिस ढंग से हमारा निशस्त्रीकरण हुआ है उससे वह मंडली इस परिणाम पर पहुंची है कि शस्त्र-अस्त्रों के कारखाने अंग्रेज़ी इलाके में खुल नहीं सकते। इस कारण हमें विदेशों में जाकर अस्त्र-शस्त्रों के बनाने और प्रयोग करने का ढंग सीखना है। मैंने इस काम को नरोत्तम जी के हाथ सौंप दिया है। नरोत्तमप्रसाद ने इस विषय में चिट्ठी-पत्री आरम्भ कर दी है। रूस, चीन, ईरान, टर्की, मिश्र और अमेरिका में जो केन्द्र हमने खोले हुए हैं उनके द्वारा ही हम इस काम को आगे ले जाना चाहते हैं।

"क्षत्रिय वर्ग के सहायक नेता की रिपोर्ट है कि इस समय देश में पांच सहस्र के लगभग मंडलियां बन चुकी हैं। अभी इनकी संख्या एक लाख करनी है। काम वेग से चल रहा है। ये मंडलियां फ़ौज से बाहर भी बनाई जारही हैं। वास्तव में बाहर की मंडलियों की संख्या अधिक है। इन मंडलियों के मंडलीक और अगुआ तथा प्रान्तीय अध्यक्ष सब के सब फ़ौजी शिक्षा प्राप्त किये हुए होते हैं। लोगों को इन पदवियों के योग्य बनाने के लिये शिक्षा के केन्द्र भी खोले जारहे हैं। ऐसे एक केन्द्र में भी बीस से अधिक शिक्षार्थी एकत्रित नहीं होने दिये जाते। शिक्षा के पश्चात् इनकी परीक्षा होती है और अच्छे लड़कों को अगुआ और दूसरे दर्जे में उत्तीर्ण होनेवालों को मंडलीक बनाकर नई मंडलियां खोलने के लिये नये नये स्थानों पर भेजा जा रहा है।

"नरोत्तमप्रसाद जी इसी वर्ग के सहायक नेता हैं और विदेशों में काम कर रहे हैं। ये कहते हैं कि युद्ध के कारण विदेशों से सम्पर्क कठिन और कठिन हो रहा है। यदि कोई मार्ग ऐसा मिल जाय कि जिससे चुंगी

और खुफ़िया-पुलिस की देखभाल के बिना विदेश आया-जाया जा सके तो हमारा कार्य बहुत सीमा तक सफल हो सकता है। शंकर पंडित इस विषय में खोज कर रहे हैं और उनका विचार है कि यह समस्या कठिन होती हुई भी असम्भव नहीं है।

"वैश्य वर्ग के सहायक नेताओं का कहना है कि इन तीन मास में दो सज्जन और इस वर्ग में सम्मिलित किये गये हैं। उनकी सम्पत्ति चालीस करोड़ के लगभग है और वार्षिक आय तीन करोड़ रुपये के लगभग है। इस प्रकार इस वर्ग की तो वार्षिक आय भी हम अभी व्यय नहीं कर रहे। हम चाहते हैं कि क्षत्रिय वर्ग के संगठन के लिये और कर्मचारी वर्ग को प्रोत्साहन देने के लिये और अधिक धन की स्वीकृति दी जाय।

"कर्मचारी वर्ग में भी एक लाख के लगभग लोग आचुके हैं। इस वर्ग में भी काम वेग से हो रहा है। यह वर्ग ही वास्तव में कुछ कार्य कर रहा है।

"हमारा यह निश्चय है कि मंडलियों के सदस्य परस्पर मिलते रहें और एक दूसरे के सुख-दुख के भागी हों। मंडली के किसी भी सदस्य की कठिनाई अथवा कष्ट को दूर करना मंडली के दूसरे सदस्यों का कर्तव्य है। यदि किसी पर ऐसी मुसीबत पड़ जाय कि उसका दूर करना मंडली के अन्य सदस्यों की शक्ति से बाहर हो तो वे अपने मंडलीक से कहें। मंडलीक अगुआ से कहे। अगुआ यदि ऐसा अनुभव करे कि वह कठिनाई उसके अथवा उसके आधीन मंडलीकों के बस की नहीं तो वह प्रान्तीय अध्यक्ष से कहे और प्रान्तीय अध्यक्ष सहायक नेता से कहे। इस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर पूर्ण समिति की शक्ति उस कठिनाई को दूर करने के लिये लगाई जा सकती है।

"सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक सदस्य की वास्तविक कठिनाई में पूरी सहायता करना समिति का कर्तव्य है। जब भी कोई इस संस्था का सदस्य बने तो उसे यह अनुभव होना चाहिये कि वह एक अति बलशाली, धनवान और देश भर में फैले हुए परिवार का सदस्य बन गया है। यह

अनुभव ही इस संस्था की उन्नति का कारण हो रहा है। सब से बड़ी बात यह है कि यदि किसी जोखिम के काम में किसी सदस्य को जाना पड़े तो उसे विश्वास होना चाहिये कि उसके पीछे उसके परिवार की देख-भाल वैसी ही होगी जैसी वह स्वयं कर सकता है।

"हम सदस्यों की वफ़ादारी और उनमें अनुशासन की भी परीक्षा किया करते हैं। कई बार कुछ मंडलियों को आज्ञा हो जाती है कि अपना काम छोड़ घर से बाहर दूसरे नगर में जाकर काम-काज करें। कई बार हम स्वयं बताते हैं कि वे लोग अमुक काम करें। इस प्रकार हमने सहस्रों युवकों को पुलिस में भरती करवाया है। फ़ौज में हमारे कहने से भरती होने वालों की संख्या तो तीस सहस्र से अधिक हो गई है।"

धीरेन्द्र की यह रिपोर्ट थी जिसको सुनने के पश्चात् उपस्थित सज्जनों ने शंका-समाधान आरम्भ कर दिया। एक ने पूछा, "कितना रुपया मासिक व्यय होता है?"

"कोई निश्चित रकम नहीं। हां, पिछले तीन मास में पांच लाख के लगभग व्यय हुआ है। इसमें से अधिकतर विदेश में गये हुए लोगों के परिवारों के पालन-पोषण का खर्च है। विदेशों में प्रायः काम मिल जाता है। कुछ लोगों को वहां किसी प्रकार का व्यवसाय करने को अव-काश नहीं है। उन लोगों को भी खर्चा हम यहां से भेजते हैं।"

"पूर्ण स्वराज्य-प्राप्ति पर कितना धन व्यय होगा?"

"यह अभी बताया नहीं सकता। हां, चालू खर्च शीघ्र ही एक करोड़ वार्षिक हो जाने की सम्भावना है।"

फिर एक और ने पूछा, "शंकर पंडित ने विदेशों को जाने के लिये गुप्त मार्ग पाने की जो सम्भावना बताई है वह क्या है? क्या कोई विशेष बात का पता मिला है?"

"हां," धीरेन्द्र का उत्तर था, "शंकर पंडित को यह एक विश्वस्त सूत्र से विदित हुआ है कि पाटन से, जो नैपाल की प्राचीन काल में राजधानी थी, तिब्बत की राजधानी ल्हासा तक एक ऐसा मार्ग है जो

बारह मास तक खुला रह सकता है। किसी काल में यह मार्ग चालू था, परन्तु भारत से और नैपाल से बौद्धों का राज्य मिट जाने से तिब्बत-राज ने यह मार्ग बन्द करवा दिया था। शंकर पंडित ने इस विषय में साहित्य की खोज करवाई है और उन्हें एक पुस्तक मिल गई है जिसमें इस मार्ग का सविस्तार वर्णन उपस्थित है।"

अब एक ने पूछा, "स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये यदि अस्त्र-शस्त्र प्राप्त नहीं हो सकते तो महात्मा गान्धी की नीति के अनुसार शान्तिमय उपायों का प्रयोग क्यों न किया जाय?"

"शान्तिमय उपायों को हम युक्ति का नाम देते हैं और हम स्वराज्य-प्राप्ति के लिये युक्ति, बल अथवा छल, जिसकी भी आवश्यकता हो, प्रयोग में लाने का विचार रखते हैं। एक बात जो कांग्रेस ने नहीं समझी और जो हम भली भांति विश्वास से मानते हैं वह है बलशाली बनने की। युक्ति अर्थात शान्तिमय उपायों की सफलता की आशा भी तब ही हो सकती है जब सदस्य और संस्था बलशाली हों। निर्बलों की युक्ति प्रभावहीन होती है। बल में शारीरिक बल, धन और साधन तीनों ही मानने चाहियें। केवल जन-संख्या अधिक हो जाने से बल नहीं आता।"

एक ने पूछा, "मुसलमानों के विरोध की उपस्थिति में हिंसात्मक उपायों के सफल होने की क्या आशा हो सकती है?"

"बात तो इससे उलटी है। अहिंसात्मक उपायों की सफलता तब ही हो सकती है जब लोग युक्तियुक्त बात को मानने के लिये तैयार हों। जब भी किसी एक श्रेणी का विचार और व्यवहार अयुक्तिसंगत हो जाय तब केवल हिंसात्मक उपाय ही बात को ठीक कर सकते हैं।"

"आधुनिक विज्ञान की उन्नति की ओर ध्यान देते हुए क्या आप भारतवर्ष में बल-प्रयोग से सफलता की आशा करते हैं?"

"यदि शान्तिमय उपायों से स्वराज्य न मिल सके तो फिर दूसरा मार्ग अर्थात् अशान्तिमय उपायों का प्रयोग करना होगा। यदि हम में योग्यता

नहीं है तो योग्यता प्राप्त करनी ही होगी। मैं कोई भी ऐसी बात नहीं देखता जिसके करने में हिन्दुस्तानी अयोग्य हों अथवा सदैव अयोग्य रहेंगे।"

"आप महान भारत की एकता चाहते हैं। इससे आपका क्या अभिप्राय है?"

"यह बात दूसरे दर्जे पर है। वास्तव में स्वराज्य-प्राप्ति से इस विचार का सीधा सम्बन्ध नहीं है, फिर भी मैं आपको वह बात बताता हूं जो मैं स्वप्नों में देखा करता हूं। भारतवर्ष में एकाकी राज्य (Unitary Government) हो। भारतवर्ष की सीमा खैबर से लेकर चिटगांव तक और काश्मीर से रामेश्वर तक है। नैपाल-भूटान भारतवर्ष की सीमा में होंगे। विशाल भारत (Greater India) से मेरा मतलब है हिन्दूकुश से लेकर सुमात्रा, जावा तथा फ़िलीपाइन तक और मैडागास्कर से लेकर बर्मा तक। परन्तु इस विशाल भारत को मैं एक राज्य सूत्र में नहीं बांधना चाहता। इस पर भी हमारा इन देशों के साथ फ़ौजी समझौता होना परमावश्यक है। जहां तक विदेशियों अर्थात् गोरे लोगों का सम्बन्ध है हम सब मिलकर उनका विरोध करेंगे। ये सब देश मिलकर ही अन्य राष्ट्रों के साथ तिजारती समझौता करेंगे।"

इसके पश्चात् कुछ प्रश्न और पूछे गये और फिर उस दिन का कार्य समाप्त हुआ। नवरत्न-मंडल की बैठक तीन दिन तक रही और इसमें योजना की प्रत्येक बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार-विनिमय हुआ। इस विचार-विनिमय में नरेन्द्र का मुख्य भाग था। नरेन्द्र का कहना था कि हिन्दुस्तान जैसे देश में एक दम सब स्थानों पर विद्रोह खड़ा नहीं किया जा सकता। हमें विद्रोह के समय अपनी पूर्ण शक्ति एक सीमित इलाके में एकत्रित कर लेनी चाहिये। उस क्षेत्र के अतिरिक्त कुछ आवश्यक स्थानों पर भी विद्रोह की तैयारी होनी आवश्यक है। एक समय पर ही इन सब स्थानों पर विद्रोह होना चाहिये और शक्ति के केन्द्रों को अपने हाथ में कर लेना चाहिये। पश्चात् शेष देश को विजय करना होगा।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या के विषय में नरेन्द्र का मत था कि किसी काल में हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य था। उसकी परछाईं मात्र ही अब देश में उपस्थित है। उस समय हिन्दू मुसलमानों के हाथ का छूवा नहीं खाते थे। हिन्दू मुसलमानों से विवाह-सम्बन्ध नहीं करना चाहते थे। साथ ही अन्य मेल-मिलाप के अवसर नहीं थे। परन्तु देश की परिस्थिति वेग से बदल रही है। नगरों में तो हिन्दू-मुसलमानों में भेदभाव प्रायः विलीन हो गया है। गांवों में भी यह वेग से मिट रहा है। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम झगड़े के नाम पर अब राजनीतिक झगड़ा चल रहा है। मुस्लिम लीग राजनीतिक अधिकारों के लिये झगड़ा करती है। मुस्लिम-लीग ने यह कभी नहीं कहा कि उन्हें कुरान पढ़ने की स्वीकृति दी जाय अथवा निमाज़ पढ़ने के समय दफ़तर बन्द कर दिये जायें, या इसी प्रकार की सुविधायें दी जायें। उनकी मांगें तो राजनीतिक अधिकारों के विषय में हैं। वे अपना एक पृथक देश चाहते हैं। वे अपने लिये अधिक वोट (सम्मतियां) मांगते हैं। वे अपने लिये नौकरियां चाहते हैं। इससे मुस्लिम लीग को मज़हबी श्रेणी नहीं कहा जा सकता। इसे राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकारों के पाने के लिये एक संस्था मानना चाहिये। इस कारण इस संस्था को मज़हबी संस्था न मानकर एक राजनीतिक संस्था मानना चाहिये और इसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये। एक राजनीतिक संस्था जो न्याय और युक्तिसंगत व्यवहार तथा विचार नहीं रखती, जो इतनी स्वार्थान्ध है कि केवल अपने ही लाभ की बात सोच सकती है, उसकी मति को ठीक करने के लिये राजनीति साम, दाम, दंड, और भेद के उपाय बताती है। इनका प्रयोग होना चाहिये। परन्तु इन उपायों को प्रयोग में लाने के लिये बल की आवश्यकता है। इस कारण जब तक राष्ट्रीयता के विचार रखने वाले लोग बलशाली नहीं होजाते तब तक राजनीति के उपाय प्रयोग में लाये नहीं जा सकते। एक बात, जो नरेन्द्र ज़ोर के साथ कहता था, वह यह थी कि यदि कोई चिल्लाकर कहे कि मैं बलशाली हूं तो उसका विश्वास नहीं किया जाता। बलशाली

होने की घोषणा नहीं की जाती, प्रत्युत व्यवहार से और कार्य से यह बात दूसरों के मन पर अंकित की जाती है। अपने अधिकारों की सुचारु रूप से रक्षा कर सकने को बलशाली होना कहते हैं।

[१०]

कलकत्ते में नरेन्द्र और शंकर पंडित नरोत्तम के महमान थे। नरोत्तमप्रसाद सेठ एण्ड कम्पनी का जनरल मैनेजर था। इस कम्पनी के अधीन बीसियों कारखाने चल रहे थे और सैकड़ों सरकारी कामों के ठेके थे। बंगाल और आसाम में छावनियों, हवाई अड्डों और फ़ौजी कैम्पों पर कैन्टीनों के ठेके प्रायः सेठ एण्ड कम्पनी के पास थे। इन कैन्टीनों के द्वारा फ़ौजी सिपाहियों से स्वराज्य स्थापन समिति के कार्य-कर्ताओं का सम्पर्क होता था और प्रारम्भिक मंडलियां धड़ाधड़ बन रही थीं।

सेठ एण्ड कम्पनी के मालिक सेठ कुंजबिहारी थे। सेठ एण्ड कम्पनी के कार्यालयों में कोई ऐसा नौकर नहीं था जो स्वराज्य स्थापन समिति से सम्बन्ध न रखता हो। इस प्रकार क्रान्ति का कार्य अति वेग से चल रहा था।

शंकर पंडित को नरोत्तम और उसकी स्त्री तपस्विनी दादा कहकर पुकारते थे। शंकर पंडित के आने पर पहला ही प्रश्न जो तपस्विनी ने किया वह गौरी के सम्बन्ध में था।

"दादा, भाभी को साथ नहीं लाये ?"

"वह विकास-कार्य में लगी हुई है।"

"विकास ? क्रान्ति-कार्य छोड़ दिया है क्या ? कब से ?"

"तीन मास हो गये हैं। खाट पर लेटे लेटे कार्य किया करती है।"

"ओह !" तपस्विनी को विकास-कार्य के अर्थ समझ में आगये, "दादा, आपकी दशा तो दयनीय होगी। एक क्रान्तिकारी की स्त्री जब विकास के सिद्धान्त को अपना ले तो दोनों में निभ सकनी कठिन ही है। एक पश्चिम की ओर मुख करता है, तो दूसरा पूर्व की ओर।"

"देखो, बहिन तपस्विनी, एक बात तुम भूल रही हो। क्रान्तिकारी और विकासवादी का मुख एक ही ओर भी हो सकता है। ये शब्द तो गति में अन्तर बताते हैं, लक्ष्य और साधनों में नहीं। और सब से मुख्य बात तो यह है कि क्रान्तिकारी भी बीच २ में विकासवादी बनते रहते हैं। कोई भी क्रान्ति का कार्य सफल नहीं हो सकता जब तक उसकी तैयारी विकास के नियमों के अनुकूल न हो। किसी देश अथवा जाति में विकास तो सदैव चलता रहता है, पर क्रान्ति की तो कभी कभी ही आवश्यकता पड़ती है। वास्तव में विकास जब द्रुत गति से चलता है तो क्रान्ति कहलाती है।"

डाक्टर घोष ने जब गौरी की अवस्था का वर्णन सुना तो कहा, "तो उसे यहां लाकर छोड़ जाना चाहिये। वहां उसकी कौन देखभाल करेगा ?"

"अजेय के समय भी तो वह वहां ही रही थी।"

"और सुना है कि उसे कष्ट भी बहुत हुआ था।"

"परन्तु वह स्वयं कहती है कि शंकरगढ़ में कलकत्ते से अधिक आराम रहेगा।"

इस पर प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या किसी अन्य स्त्री का गौरी के पास रहना आवश्यक है। इस प्रश्न की महत्ता और भी अधिक हो गयी जब यह निश्चित हुआ कि शंकर पंडित शीघ्र से शीघ्र पाटन से ल्हासा के मार्ग की खोज के लिये जायें। धीरेन्द्र किसी ऐसी स्त्री को वहां भेजने के हक़ में नहीं था जो विश्वस्त और समिति की सदस्या न हो। तपस्विनी, कल्याणी और मलिन्द सब का नाम बारी बारी से आया, परन्तु धीरेन्द्र का निर्णय था, एक पंजाबी स्त्री जो कुछ महीनों से डाक्टर घोष के अस्पताल में 'नर्सिंग और मिड वाइफ़री' का काम सीख रही थी।

जब सभा समाप्त हुई और शंकर पंडित जाने लगा तो उसको धीरेन्द्र ने बता दिया कि जिस डिब्बे में वह सफ़र करेगा उसी में एक नर्स रेवती देवी भी सफ़र करेगी। नैपालगंज तक वह इसी प्रकार उसके साथ जायेगी

और पश्चात् वह उसे शंकरगढ़ ले जाये। वह गौरी के पास रहेगी।

समिति का यह नियम था कि उसके सदस्य एक स्थान से इकट्ठे जाने पर वे प्रायः रेल के भिन्न भिन्न डिब्बों में बैठते थे और यदि एक डिब्बे में बैठें तो परस्पर ऐसा व्यवहार रखते थे जैसे परिचित नहीं हैं। शंकर पंडित के लिये और उसके साथ जाने वाली नर्स के लिये एक ही डिब्बे में जगह रिज़र्व की गयी थी। नरेन्द्र के लिये स्थान एक दूसरे डिब्बे में था और बनारसीदास के लिये, जो उसी गाड़ी से दिल्ली जारहा था, एक तीसरे डिब्बे में।

नरेन्द्र जब स्टेशन पर आया तो वह अपनी जगह पर जाकर बैठ गया। नियमानुकूल उसे पंडित से अपना परिचय प्रकट नहीं करना था। गाड़ी के चलते ही वह बिस्तर लगाकर सो गया।

इलाहाबाद स्टेशन पर जब नरेन्द्र गाड़ी बदलने लगा तो उसकी दृष्टि एक औरत पर पड़ी, जिसे वह पहचानता था। वह अपना संक्षिप्त सा बिस्तर कुली से उठवाये हुए एक प्लैटफार्म से दूसरे पर जा रहा था। उस स्त्री को देखते ही उसने पहचान लिया। एक क्षण के लिये वह रुका, परन्तु तुरन्त ही उसे अपने को छिपाये रखने की आवश्यकता स्मरण हो आई और वह मुख दूसरी ओर कर निकल गया। वह औरत मनोरमा थी। नरेन्द्र को भय था कि कहीं अपने पति के साथ हुई तो आफ़त ही आ-जायेगी। अतएव लम्बे लम्बे पग उठाता हुआ वह छोटी लाइन के प्लेट-फार्म पर चला गया। वहां जाकर उसने पीछे झांककर देखा तो मनोरमा उसे उधर ही आती हुई दिखाई दी। नरेन्द्र इससे बहुत घबराया और तुरंत एक सैकण्ड क्लास के डिब्बे में घुस गया और कुली को बिस्तर वहां लाने के लिये कहने लगा। जब मनोरमा, उस डिब्बे के सामने से गुज़रने लगी तो वह डिब्बे के अन्दर प्लेटफार्म की ओर पीठ कर खड़ा हो गया। मनोरमा डिब्बे के समीप खड़ी हो गयी और कुली से बोली, "बिस्तर इस डिब्बे में रख दो।" नरेन्द्र का हृदय धकधक करने लगा। वह समझा कि आफ़त आई। इसी समय उसने कुली की

आवाज़ सुनी, "सरकार, साहब आगे बुला रहे हैं।"

मनोरमा एक क्षण तक ठहर आगे चली गई। नरेन्द्र ने भगवान का लाख लाख धन्यवाद किया। जब गाड़ी चली तो उसके मन में शान्ति हुई। यद्यपि वह समझता था कि इस समय उसके वारण्ट तैयार नहीं होंगे और वह थोड़ी सी सावधानी से बच सकता है, फिर भी जब तक नैपालगंज आ नहीं गया, वह डिब्बे से बाहर नहीं निकला और प्रत्येक स्टेशन पर प्लेटफार्म से दूसरी ओर मुख कर लेट जाता था। वह पकड़ा जाकर जेल जाने में लाभ नहीं समझता था।

नैपालगंज स्टेशन पर वह प्लेटफार्म की ओर गाड़ी से निकलने की अपेक्षा दूसरी ओर उतर गया। उसके डिब्बे में दूसरी कोई सवारी नहीं थी, नहीं तो उसकी इस कार्रवाई पर संदेह हो जाता। जब तक मुसाफ़िर गाड़ी से उतर प्लेटफार्म पर आये नरेन्द्र अपना बिस्तर बग़ल में दबाये स्टेशन से बाहर हो गया था। निश्चयानुसार उसने पंडित जी की प्रतीक्षा झरने के पीछे करनी थी। इस कारण बिना किसी प्रकार से समय व्यर्थ खोये वह झरने की ओर चल पड़ा। वह सीधे मार्ग से नहीं गया प्रत्युत नियत स्थान से इधर ही सड़क के नीचे खेतों में उतर गया और झरने पर जा पहुंचा।

नरेन्द्र को वहां एक घंटे से अधिक प्रतीक्षा करनी पड़ी। वह झरने की चट्टान के पीछे बैठ प्रतीक्षा कर रहा था। जब उसे नदी के पानी में छप-छप कर चलने का शब्द सुनाई दिया तो उसने समझा कि पंडित जी आगये हैं। नाला लांघ कर ही चट्टान के पीछे जाया जा सकता था। नरेन्द्र कान लगा पानी में चलने का शब्द सुन रहा था। अब उसे किसी स्त्री के बोलने की आवाज़ सुनाई दी। उसने समझा कि ये पंडित जी नहीं, कोई और लोग हैं। औरत ने कहा था, "बहुत भयानक स्थान है।" इसके उत्तर में पुरुष ने केवल 'हूं' कहा था। औरत ने फिर कहा, 'आगे मार्ग तो दिखाई नहीं देता।'

नरेन्द्र ने आवाज़ पहचान ली। यह मनोरमा थी। इस समय

नरेन्द्र भयभीत नहीं हुआ । वह समझता था कि वहां से उसे पकड़कर ले जाने का साहस किसी में नहीं है । अतः सचेत हो वह चट्टान के कोने की ओर देखने लगा, जहां से घूमकर, आने वाले चट्टान के पीछे आ सकते थे । इसमें एक-दो क्षण ही बीते कि शंकर पंडित मनोरमा का हाथ पकड़े चट्टान के पीछे आ पहुँचा । नरेन्द्र इन दोनों को आता देख अवाक् मुख खड़ा रह गया । शंकर पंडित जब पानी से बाहर निकला, तो नरेन्द्र को, जो अभी तक हैरानी में चुप खड़ा था, कहने लगा, "नरेन्द्र, हमारे आश्रम में यह......"इतना कह शंकर पंडित मनोरमा की ओर देखने लगा, परन्तु वह पीछे रह गई थी और पानी में ही खड़ी थी । वह नरेन्द्र को किनारे पर खड़ा देख हैरान हो रही थी । नरेन्द्र भी पंडित की ओर न देख मनोरमा की ओर देख रहा था । शंकर दोनों को विस्मय में एक दूसरे की ओर देखते देख हंस पड़ा । पहले मनोरमा संभली और वह जल्दी जल्दी पानी से बाहर आकर हाथ जोड़ नरेन्द्र को नमस्ते कह पूछने लगी, "आप यहां...?"

नरेन्द्र प्रश्नभरी दृष्टि से शंकर पंडित की ओर देखने लगा । पंडित ने बताया, "गुरु जी ने गौरी के पास रहने के लिए भेजा है, परन्तु आप तो इन्हें पहले ही जानते प्रतीत होते हैं ।"

नरेन्द्र ने कहा, "मनोरमा, इसका अभिप्राय मैं नहीं समझा ।"

मनोरमा ने मुस्कराते हुए कहा, "मनोरमा मर गई है । यह तो रेवती आपके सम्मुख खड़ी है ।"

शंकर पंडित ने कहा, "नरेन्द्र भैया, चलना चाहिये, मंज़िल लम्बी है और स्त्री का साथ है ।"

नरेन्द्र बिना कुछ और पूछे आगे चल पड़ा । उसके पीछे रेवती थी और अंत में शंकर पंडित । नरेन्द्र अभी दस-पन्द्रह पग ही गया था कि रेवती ने कहा, "मैं बन्दर तो हूं नहीं, जो इस दीवार जैसी सीधी चट्टान पर चढ़ सकूं ।" नरेन्द्र ने घूमकर देखा । रेवती लगभग पेट के बल भूमि पर लेटी हुई थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि ऊपर चढ़ने के

प्रत्येक यत्न पर वह नीचे की ओर खिसक रही थी। शंकर चढ़ाई में बहुत ही सिद्धहस्त था, परन्तु वह अभी तक चट्टान के नीचे ही खड़ा देख रहा था और रेवती फिसलकर नीचे की ओर आ रही थी। रेवती ने अपने नीचे खिसकने को रोकने के लिये हाथ पसारा तो वह एकदम लुढ़ककर भूमि पर शंकर पंडित के समीप आ खड़ी हुई। वह लज्जित हो कभी नरेन्द्र और कभी शंकर पंडित का मुख देखने लगी। शंकर पंडित ने हंसते हुए कहा, "रेवतीदेवी, यदि इसी प्रकार चलते गये तो शीघ्र ही स्टेशन पर वापिस पहुंच जावेंगे।"

"तो क्या करूं? मेरे पांव में गोंद तो लगी नहीं जो दीवार के साथ चिपक जायेंगे।"

नरेन्द्र भी नीचे उतर आया। शंकर ने हंसना बंद कर कहा, "ये पहले बीस गज कठिन हैं। आगे फिर इतना ढालान नहीं है।"

"मुझसे यह नहीं चढ़ा जायगा। आप जाइये। मैं कलकत्ते लौट जाती हूं।"

"घबराओ नहीं। तुम मेरी पीठ पर चढ़ जाओ। मैं तुम्हें ले चलता हूं। गौरी को कई बार ऐसे ही लेकर गया हूं।"

रेवती पंडित को इतना कष्ट नहीं देना चाहती थी। बोली, "नहीं, मैं घोड़े की सवारी करने से डरती हूं। मैंने पहले कभी नहीं की।"

नरेन्द्र ने एक और तरकीब निकाली। उसने अपना बिस्तर खोल दिया और उसमें से चादर निकाल एक सिरा अपनी कमर से बांध लिया और दूसरा रेवती को दिखाकर बोला, "तुम इसे पकड़कर मेरे पीछे पीछे चली आओ।"

रेवती को यह सुगम प्रतीत हुआ। उसने कहा, "यत्न करती हूं।"

शंकर पंडित ने इस योजना में सुधार उपस्थित कर दिया। वह बोला, "नहीं, चादर का दूसरा सिरा रेवतीदेवी अपनी कमर से बांध लें। कहीं हाथ से चादर निकल गई तो बस फिर सफाई है।"

यह विधि स्वीकार हुई। बिस्तर में एक और चादर थी। वह भी

निकाल ली गई। इसका एक सिरा रेवतीदेवी ने अपनी कमर से बांध लिया और दूसरा सिरा नरेन्द्र की कमर से बंधी चादर के खुले सिरे से बांध दिया। नरेन्द्र के बिस्तर में शेष एक तकिया और दरी रह गई थीं। वे शंकर पंडित ने लेकर बग़ल में दबा लीं।

शंकर पंडित और रेवती अपना सामान नैपालगंज में मिस्टर घोष की दूकान पर छोड़ आये थे। इस कारण हाथ खाली थे। वास्तव में नरेन्द्र को भी अपना बिस्तर वहीं छोड़ आना चाहिये था, परन्तु मनोरमा को देख वह तो डरकर भाग आया था। इस समय वह बिस्तर काम आया।

नरेन्द्र ने चट्टान पर चढ़ना आरम्भ कर दिया। रेवती ने भी चढ़ने का यत्न किया, वास्तव में वह नरेन्द्र द्वारा चट्टान पर घसीटी जा रही थी। नरेन्द्र 'जैमनास्ट' था और बहुत ताक़तवर था। उसे रेवती का बोझा कुछ अधिक प्रतीत नहीं हुआ और फिर पीछे शंकर पंडित आश्रय देता जाता था।

तीनों, ज्यों त्यों कर, पहाड़ की चोटी पर जा पहुंचे। नरेन्द्र कुछ अधिक थक गया था। शंकर पंडित ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ बादाम और पिश्ता निकाला और तीनों बांटकर खाने लगे।

रेवती थककर चूर हो गई थी। वह भी बैठकर सुस्ताने लगी। कुछ देर आराम कर नरेन्द्र उठकर आगे चलने को तैयार हो गया। शंकर पंडित ने कहा, "अब इस गांठ को तो खोल लो।"

"तो बस ?" रेवती ने पूछा। उसका आशय था कि और आगे चढ़ाई नहीं है क्या। शंकर पंडित ने मुस्कराते हुए कहा, "तो क्या जन्म भर की गांठ है यह ?"

नरेन्द्र हंस पड़ा। रेवती का मुख तांबे की भांति लाल हो गया। वह कांपते हुए हाथों से गांठ खोलते हुए बोली, "न बाबा, यह भी भला कोई बात है ?"

गांठ खुल नहीं रही थी। वह भिन्च गई थी। शंकर पंडित ने कहा,

"क्यों ज़बरदस्ती करती हो ?"

रेवती हताश हो गई और गांठ खोलने का यत्न छोड़ बैठ गई। परन्तु नरेन्द्र ने चादर को अपनी कमर से खोलकर कहा, "लो बाबा, हम तो छूट गये हैं।"

"इससे क्या होता है ?" शंकर पंडित ने कहा, "इन्हें भी तो स्वतंत्र करते जाओ।"

नरेन्द्र ने रेवती की कमर से चादर खोलनी आरम्भ कर दी। रेवती अपने मन में नरेन्द्र से विवाह की चर्चा और फिर नन्दलाल से विवाह की बात स्मरण कर अधीर हो उठी थी। चादर खोलते समय नरेन्द्र ने उसकी सजल आंखों को देख धीरे से कहा, "मनोरमा क्या है ?"

"कुछ नहीं। केवल मन की दुर्बलता थी," रेवती ने उत्तर दिया।

चादर खुल गई और सब लोग आगे चल पड़े।

[११]

नरेन्द्र मनोरमा के वहां आने का वृत्तान्त जानने के लिये व्याकुल हो रहा था। वह स्वप्न में भी यह समझ नहीं सकता था कि वह उनकी समिति की सदस्या है। साथ ही उसे सन्देह हो रहा था कि कहीं उसके पिता ने उसे जासूस बनाकर न भेजा हो। उसे उस दिन की बात याद आ रही थी जब अंतिम बार मनोरमा उससे ला० हरवंशलाल की कोठी में मिली थी। उसने बहुत दावे से कहा था कि वह उससे विवाह का विचार नहीं रखती। शायद उस समय भी वह उस पर जासूसी करती थी और अब तो उसका विवाह एक पुलिस-अफ़सर से हो चुका है। एक-दो बार जब वह कमला से मिला था, तब तक मनोरमा घर से भागी नहीं थी, और कमला ने उससे कभी नहीं कहा था कि मनोरमा अपने विवाह से असन्तुष्ट है। विजय के थाने में पीटे जाने के पश्चात् वह देहली नहीं गया था और उसे वहां की परिस्थिति का ज्ञान नहीं था।

अतएव घर पहुंचते ही नरेन्द्र ने शंकर पंडित को पृथक ले जाकर पूछा, "यह आपको कहां मिल गई है ?"

"इसको गुरु जी ने यहां भेजा है।"

"आप इसका पूर्व इतिहास जानते हैं?"

"मैं नहीं जानता। यह मेरा काम भी नहीं है। गुरु जी ने अवश्य जांच-पड़ताल कर भेजा होगा।"

"यह दिल्ली के डिप्टी इन्स्पैक्टर जनरल पुलिस की लड़की है और एक इन्स्पैक्टर पुलिस की स्त्री है। मुझे संदेह है कि एक समय यह मुझ पर जासूसी करती थी।"

शंकर पंडित गम्भीर विचार में पड़ गया। बहुत काल तक दोनों अपने अपने विचार में लीन रहे। अंत में पंडित ने कहा, "यह बहुत अच्छा हुआ है कि आपने मुझे इसका पूर्व परिचय दे दिया है। मैं गुरु जी को लिखूंगा। यों तो उन पर मुझे पूर्ण भरोसा है। इस पर भी प्रत्येक बात हम उनको बता देना अपना कर्तव्य समझते हैं। जब तक ठीक ठीक निश्चय न हो जाए इसे यहां की बातों से जानकारी नहीं करानी चाहिये। मैं गौरी को भी सचेत कर दूंगा।"

गौरी एक और स्त्री को अपना साथी पा अति प्रसन्न हुई। पहले दिन ये लोग सायंकाल घर पहुंचे थे और बहुत थके हुए थे। खाना खा सो गये। दूसरे दिन गौरी और रेवती जब बातें करने लगीं तो घन्टों ही बातें करती रहीं। रेवती ने अपना पूर्ण परिचय दिया। उसमें उसने अपने विचारों में परिवर्तन और इस परिवर्तन कराने में नरेन्द्र का भाग भी बताया। इसके पश्चात् उसने स्वराज्य संस्थापन समिति में सम्मिलित होने की कथा भी सुनाई। अंत में उसने कलकत्ते से यहां भेजे जाने की बात बताते हुए कहा, "मुझे नहीं मालूम था कि नरेन्द्र जी यहां रहते हैं। जब मैंने झरनों की चट्टान के पीछे उनको खड़े देखा तो मेरे मस्तिष्क में चक्कर आने लगा। मैं समझी कि स्वप्न देख रही हूं, अथवा मेरा मन हिल गया है। परन्तु पंडित जी को अपनी ओर देखते हुए देख मुझे सुध हो आई और मैं आगे बढ़ी।"

"मलिन्द और कल्याणी मिली थीं?"

"डाक्टर साहब की लड़कियां ? हां, दोनों का विवाह हो गया है।"

"कब ?"

"दो मास के लगभग हुआ है। मैं कलकत्ते में ही थी। मलिन्द के पति वकील हैं और कल्याणी के डाक्टर। दोनों बहुत प्रसन्न प्रतीत होती हैं।"

नरेन्द्र रेवती से एकान्त में मिलने में संकोच करता था। वह सदैव ऐसे ढंग से रहता था कि वह कभी भी रेवती से एकान्त में न मिल पाये। पंडित अथवा गौरी दोनों में से कोई न कोई वहां अवश्य होता था। इस प्रकार पिछली बातें करने का अवसर ही नहीं होता था। लगभग एक मास इस प्रकार निकल गया। गौरी नरेन्द्र के इस व्यवहार को देख रही थी। वह इसका कारण भी जानती थी, परन्तु जब गुरु जी के पत्र से रेवती के विषय में सब संशय दूर हो गये तो उसने दोनों को मिलकर मनोमालिन्य दूर करने के लिये अवसर पैदा कर दिया।

[१२]

नरेन्द्र, रेवती के आने से पूर्व, नदी के किनारे घूमने जाया करता था। और अब रेवती और गौरी नदी की ओर जाती थीं, इस कारण नरेन्द्र जंगल की ओर चला जाता था। इस प्रकार वह रेवती को घर से बाहर कभी नहीं मिलता था। घर में वह संस्था के कामों में इतना संलग्न रहता था कि उसे बातचीत करने की फुरसत ही नहीं थी।

एक दिन मध्याह्न पश्चात् नरेन्द्र जंगल में घूमने चला तो रेवती भी जाने को तैयार खड़ी थी। गौरी आज घूमने नहीं जारही थी। नरेन्द्र ने पूछा, "किधर जायेंगी आप ?"

"नदी की ओर चलेंगे।"

"मैं तो जंगल की ओर जा रहा हूं।"

"उधर जाने में कुछ आनन्द नहीं आता।"

"मुझे उधर अधिक आनन्द आता है।"

"अच्छी बात है, मैं उधर ही चलूंगी।"

"तो क्या आप मेरे साथ चल रही हैं ?"

"और क्या। गौरी बहन आज नहीं जा रहीं।"

नरेन्द्र कुछ विचार में पड़ गया। कुछ काल तक सोचकर बोला, "गौरी बहन बीमार हैं तो क्या अच्छा न होगा कि हम भी न जायें और उनके पास बैठें।"

"उन्होंने ही तो कहा है कि आपके साथ चली जाऊं।"

"अब मैंने तो जाने का विचार छोड़ दिया है।"

"क्या मैं साथ जा रही हूं इसलिये ?"

"देखो रेवती देवी, जहां तक संस्था का प्रश्न है मैं आपसे पूर्ण सहयोग करने के लिये सदैव तैयार हूं, परन्तु अपनी निजी बातों में यदि हम सर्वथा पृथक पृथक रहें तो ठीक नहीं है क्या ?"

"क्यों ? यही तो जानना चाहती हूं।"

"मैं अपने भावों का कारण न तो जानता हूं और न ही बता सकता हूं !"

दूसरे शब्दों में आपके कहने का अर्थ है कि आप मुझसे घृणा करते हैं, और इसका कारण या तो जानते नहीं या बताना नहीं चाहते।"

"घृणा ? सो तो मैंने नहीं कहा। मेरे मन में आपके लिये घृणा का भाव तो है नहीं।"

इस समय गौरी कमरे से बाहर सेहन में आगई, जहां वे दोनों बात-चीत कर रहे थे। उसने दोनों की ओर देखकर कहा, "भैया, क्या तकरार हो रही है ?"

इसका उत्तर रेवती ने दिया, "आप मुझसे घृणा करते हैं, इस कारण मुझसे दूर रहना चाहते हैं।"

"मैंने यह नहीं कहा," नरेन्द्र ने कुछ लज्जित हो कहा।

"परन्तु आपके कहने का अर्थ तो यही निकलता है," रेवती का उत्तर था।

"कैसी बच्चों की सी बातें करते हो," गौरी ने कहा, "नरेन्द्र भैया, क्या बात है?"

"बहन, मेरे मन में कुछ बात है जो मैं स्वयं नहीं समझ सकता। रेवतीदेवी मेरे साथ जंगल में घूमने जाना चाहती थीं। मुझे यह कुछ अस्वाभाविक प्रतीत हुआ है, पर क्यों, यह मैं नहीं जानता। यही मैंने कहा है। ये इसका अर्थ लगाती हैं कि मैं इनसे घृणा करता हूं।"

गौरी ने नरेन्द्र की आंखों में देखते हुए कहा, "सो तो मैं भी देख रही हूं। आपके मन में रेवती के विषय में कुछ बात है अवश्य। नरेन्द्र भैया, एक ही घर में रहते हुए यह व्यवहार ठीक नहीं है। मैं समझती हूं कि आप परस्पर मिलकर स्वयं ही इस उलझन को सुलझा सकते हैं। इससे आपको परस्पर मिलने और बातचीत करने से दूर नहीं हटना चाहिये।"

नरेन्द्र ने पूछा, "तो बहन, मैं क्या करूं? आप ही बता दें न।"

"एक दूसरे को समझने का यत्न करो। यह तनातनी ठीक नहीं है। यदि यही बात रही तो आपको या रेवतीदेवी को वापिस बुलाने के लिये गुरु जी को लिखना पड़ेगा।"

"क्या मेरा व्यवहार इतना कठोर है?" नरेन्द्र ने द्रवित हो पूछा।

"नहीं तो और क्या है? मनुष्य अपने समीप रहने वालों से मेल-जोल रखना चाहते हैं। इसी का अभाव मैंने आप में देखा है। यदि आपके मन में इनके लिये कोई ऐसी गांठ पड़ गई है जो खुल नहीं सकती, तो आप दोनों के लिये पृथक पृथक हो जाना ही ठीक है।"

नरेन्द्र इस समय रेवती का गौरी के समीप होना आवश्यक समझता था। गौरी चौथे मास में जारही थी। शंकर पंडित हिमालय पार कर चीन और तिब्बत में जाना चाहता था। वहां से वह शायद एक-दो वर्ष तक न लौट सके। ऐसी परिस्थिति में किसी एक स्त्री का गौरी के समीप रहना ही ठीक था। रेवती को गुरु जी ने इस प्रयोजन के लिये भेजा था। इस में किसी प्रकार का विघ्न डालना उचित न समझ नरेन्द्र

ने मन में तुरन्त निश्चय कर लिया, कि चाहे बाहर से ही हो, रेवती से झगड़े की झलक तक भी गौरी के सम्मुख नहीं आने देगा। उसने कहा, "बहन, मैं समझता हूं कि मेरी भूल है। वास्तव में मेरे मन में इनके विपरीत कोई बात नहीं और कोई कारण नहीं कि इनसे मेलजोल न रखूं। मुझे क्षमा करियेगा। रेवतीदेवी, आइये चलें और एक दूसरे को समझने का यत्न करें।"

"हां," गौरी ने कहा, "और यदि आप हेलमेल से रह नहीं सकते तो दो मिट्टी के ढेलों के समान समीप समीप पड़े रहने से क्या लाभ?"

नरेन्द्र ने गौरी को उत्तर न दे रेवती को कहा, "चलो न। अब भूल के लिये क्षमा कर दो।"

[१३]

रेवती चल पड़ी। नरेन्द्र आज जंगल की ओर जाने के बजाय नदी की ओर ही चल पड़ा। जंगल में तो रेवती से छिपने के लिये ही जाता था। जब दोनों घर से बाहर निकल आये तो रेवती ने बात आरम्भ करते हुए कहा, "आप गौरी बहन से बहुत स्नेह करते हैं न?"

"हां, आपने ठीक समझा है। मैं उनको अपनी बड़ी बहन कहिये, अथवा मां कहिये, के तुल्य समझता हूं। इनकी कही बात मैं टाल नहीं सकता। आप शायद जानती नहीं कि अपने सिद्धान्तों के लिये कितना बड़ा बलिदान दिया है इन्होंने!"

"गौरी बहन की आप-बीती मैं नहीं जानती। हां, मैं और कई लोगों के विषय में जानती हूं और उन्होंने भी देश के लिये भारी त्याग किया है। यदि मैं आपकी माता का ही उदाहरण उपस्थित करूं तो क्या उपयुक्त नहीं होगा। मैं उस मां पर बलिहारी हूं, जिसने अपने हृदय के अंश को, जीवन भर महनत कर, पालन-पोषण कर, देश पर बलिदान होने के लिये तैयार किया है। अपने पति के लिये स्त्रियां बहिन-भाई तथा माता-पिता को छोड़ती तो देखी गई हैं, पर देश के लिये अपने पुत्र को

जलती आग में डालती विरली मां ही देखी गई है।"

"कुछ भी हो, गौरी बहन में मुझे वही आत्मत्याग की झलक दिखाई देती है जो मैं अपनी मां में देखा करता था।"

"और इसी लिये मेरे साथ चलने को तैयार हो गये हैं?"

"मैं समझता हूं कि इसको यदि मैं इस प्रकार कहूं तो अधिक ठीक होगा। मैं भूल कर रहा था। गौरी बहन ने मुझे सुझा दिया है। और चूंकि मेरी श्रद्धा उनमें बहुत है, इस कारण मैं अपनी भूल समझने और सुधारने के लिये तुरंत तैयार हो गया हूं।"

रेवती नरेन्द्र के भूल मान जाने से संतुष्ट थी। इस समय वे नदी के किनारे पर पहुंच गये थे। अति सुन्दर दृश्य था। नदी के पार से ही ऊंचे ऊंचे पहाड़ आकाश को छूने के लिये प्रतिस्पर्धा करते हुए प्रतीत होते थे। पहाड़ों की चोटियों पर अभी भी कहीं कहीं बरफ दिखाई देती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि नीलवर्ण आकाश पर श्वेत बादलों की बिछी चादर इन गगन-भेदी चोटियों से अटककर फट गई है और चिथड़े हो गई है और उन चिथड़ों में से कुछ चोटियों से उलझे रह गये हैं। नीचे नीलवर्ण, बिल्लौर की भांति साफ़ जल पत्थरों से ठोकरें मारता वेग से बहता जाता था।

किनारे पर दो सपाट पत्थरों पर बैठ, ये दोनों प्रकृति के इस सौन्दर्य को आंखों द्वारा पी रहे प्रतीत होते थे। उनके चुपचाप इस दृश्य को देखते रहने से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उनकी तृप्ति नहीं हो रही। रेवती कभी कभी नरेन्द्र के मुख पर भी देख रही थी। नरेन्द्र को पहले तो यह विदित नहीं हुआ, परन्तु जब उसे इस बात का पता चला तो उसे कुछ संकोच अनुभव हुआ। अब उसने भी रेवती की ओर देखा। जब दोनों की आंखें मिलीं तो लज्जा से रेवती की आंखें नीचे झुक गईं और उसकी गालों पर लज्जा की सुर्खी स्पष्ट दिखाई देने लगी। नरेन्द्र ने इसका कारण जानने के लिये पूछा, "क्या है, रेवती? तुम प्रकृति के उस अनुपम सौन्दर्य को देखना छोड़ एक सीधे-सादे मनुष्य के

मुख को देखने लगी हो और वह भी चोरी चोरी।"

रेवती ने नदी के वेग से बहते जल की ओर देखते हुए कहा, "बात यह है कि मुझे आप भी प्रकृति का एक अंश ही प्रतीत होते हैं। वही सौन्दर्य आपके मुख पर भी दिखाई दे रहा था। मैं यह जानने का यत्न कर रही थी कि आपके मुख का सौन्दर्य वास्तविक है अथवा दर्पण में केवल प्रतिबिम्ब-मात्र।"

"तो क्या समझ में आया?" नरेन्द्र ने कौतुहलपूर्वक पूछा।

"अभी भली भांति समझ नहीं पाई थी कि आपने मना कर दिया है।"

"मैंने? नहीं तो। मैंने कब मना किया है?"

"किया तो है। तभी तो मुझे विवश हो नदी की ओर दृष्टि झुकानी पड़ी है?" इतना कह रेवती हंस पड़ी।

"तो बहुत अपराध हुआ है," यह कह नरेन्द्र भी हंसने लगा।

अब फिर कुछ काल तक दोनों अपने अपने विचारों में मग्न हो गये। एकाएक रेवती ने गम्भीर हो कहा, "जब से मैं यहां आई हूँ आपके मुख पर यह शोभा कभी दिखाई नहीं दी थी, जो मैंने आज देखी है। इसी से सन्देह हो गया था कि यह केवल प्रतिबिम्ब-मात्र है।"

नरेन्द्र ने नदी से आंखें फेरकर रेवती की ओर देखते हुए कहा, "आज की शोभा वास्तव में प्रतिबिम्ब-मात्र ही है। परन्तु यह प्रतिबिम्ब इस नदी पर के दृश्य का नहीं है, प्रत्युत मेरे मन की वास्तविक अवस्था का है। मैं आज बहुत प्रसन्न हूं।"

"सत्य? भला क्यों? आपको तो मेरे साथ आने के लिये विवश किया गया है न।"

"इसे विवशता नहीं कहते, रेवती। इसे भ्रमरहित होना कहते हैं। जब गौरी बहन कहती हैं कि मुझे तुम्हारे साथ मेल-जोल बढ़ाना चाहिये, तो इससे मेरे मन पर के शंकाओं के बादल छिन्नभिन्न हो गये हैं। मुझे तुम पर सन्देह था, परन्तु गौरी बहन ने समाधान कर लिया होगा

तभी मुझे यह आदेश दिया है।"

"क्या संदेह था आपको मुझ पर?"

"कि तुम मुझ पर जासूसी करने यहां आई हो।"

रेवती के मुख से निकल गया, "लाल बुझक्कड़।"

नरेन्द्र गम्भीर हो गया था और बोला, "मेरा तुमसे परिचय ऐसे ढंग से आरम्भ हुआ था और फिर एकाएक ऐसे ढंग से बंद हुआ था कि मेरे मन में यह सन्देह तब ही उत्पन्न हो गया था। पश्चात् पुलिस का मेरी पुस्तक को जब्त करना और मेरे वारण्ट निकालना और इन सब बातों में तुम्हारे पिता का पूरे बल से यत्न करना, ये सब बातें मेरे संदेह को पुष्ट करने वाली सिद्ध हुईं। तुम्हारा मेरे साथ बैठकर महीनों देश को स्वतंत्र करने की योजनायें बनाना और फिर एक पुलिस-अफ़सर से विवाह कर आनन्दमय जीवन व्यतीत करना यह सिद्ध करता था कि तुम सब कुछ कर सकती हो। मेरा पता ढूंढ़कर तुम्हारा यहां चले आना तो संदेह को विश्वास में बदलने वाला सिद्ध हुआ। गौरी बहन और पंडित जी को मैंने अपना संदेह बता दिया था और मैं नहीं जानता कि किस प्रकार उन्होंने अपना संदेह-निवारण कर लिया है, जो मेरे साथ तुम्हें भेजने पर राज़ी हो गई हैं।"

रेवतीदेवी इस वर्णन से क्रुद्ध नहीं हुई। कारण यह था कि गौरी उसे सब कुछ बता चुकी थी। गौरी ने कहा था कि जहां तक संस्था का सम्बन्ध है वे रेवती को पूर्णरूप से विश्वस्त समझते हैं, परन्तु जहां तक नरेन्द्र और रेवती की निज की बातें हैं, वे स्वयं निबट लें। इसी कारण उसने आज दोनों को मेलजोल का अवसर दिया था। रेवती ने मुस्कराते हुए कहा, "आपका संदेह मिथ्या था और पंडित जी तथा गौरी बहन ने जांच कर ली है। आप ला० बनारसीदास, कमला के ससुर, को तो जानते हैं न। उन्होंने मुझे इस समिति से परिचित कराया है।"

"बनारसीदास जी ने? परन्तु उन्होंने मुझे तो बताया नहीं। और हां बताने की आवश्यकता भी नहीं थी। उनको मालूम नहीं कि मैं तुम्हें

पहले से जानता हूं ।"

इस पर रेवती ने अपने घर से भागने का वृत्तान्त सुनाया । इस वृत्तान्त को सुनकर नरेन्द्र चकित रह गया । वह रेवती से इतनी आशा नहीं करता था । नवरत्न-मंडल की एक बैठक में धीरेन्द्र ने एक लड़की के पुलिस वालों से भगा लाने की कथा बताई थी । उसमें उसने नाम नहीं बताया था । अब वह सब बात नरेन्द्र के सम्मुख स्पष्ट हो गई । रेवती ने अन्त में कहा, "गौरी बहन का विचार है कि इस जासूसी की बात के अतिरिक्त भी मेरे विषय में आपके मन में कुछ है । मैं उस को जानने के लिये उत्सुक थी और उसके लिये ही गौरी बहन ने मुझे आपके साथ भेजा है । उनका विचार है कि हृदय की बातें घर के सीमित स्थान पर ठीक निश्चय नहीं हो सकतीं । बाहर, ऐसे विशाल, प्राकृत शोभा से भरपूर स्थान पर ही मन छोटी-मोटी संकुचित बातों से ऊपर उठ उदारता की ओर जा सकता है ।"

इतना कह चुकने पर रेवती नरेन्द्र के मन पर प्रभाव जानने के लिये चुप कर गई । नरेन्द्र उस दिन की घटना पर, जब मनोरमा ने कहा था कि वह उससे विवाह करने का विचार नहीं रखती, विचार कर रहा था । वह सोचता था कि उसने स्वयं ही मनोरमा को ऐसा कहने पर विवश किया था । आज सत्य ही वह अपने को बहुत छोटा अनुभव कर रहा था । उसने कहा, "मुझसे भारी भूल हो गई थी ।"

"किस बात में ?"

"तुम्हें यह कहने में कि तुम मुझे विवाह-बन्धन में फंसाने आती हो । आज मैं देखता हूं कि मेरा यह कहना तुम्हारा अपमान करना था और उस अपमान से सटपटाकर ही तुमने मुझे कहा था कि तुम मुझ से विवाह करना नहीं चाहती । वास्तव में तुम्हारा यह अभिप्राय नहीं था, क्या मैं ठीक नहीं कह रहा ?"

"हां, आपका कहना ठीक है; परन्तु यह जो कुछ होना था सो होकर ही रहा । वास्तव में मेरा विवाह भूल थी और मुझे इसकी चेतावनी भी

थी। उस समय तो मैं इसे हंसी समझती थी, परन्तु अब जब उस पर विचार करती हूं तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने अपने आप ही अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारी है। बात यों हुई कि मैं जब कॉलेज में पढ़ती थी, तो पिता जी के घर एक नैपाल राज्य का ज्योतिषी आकर ठहरा था। सब ने अपने अपने विषय में प्रश्न पूछे। पिता जी के मित्रों ने तो ज्योतिषी को ऐसे घेर रखा था जैसे गुड़ को मक्खियां। प्रायः सब ज्योतिषी की प्रशंसा करते थे। मुझे वे सब मूर्ख प्रतीत होते थे। मैं ज्योतिषी से अपने विषय में कोई भी बात पूछने के लिये राज़ी नहीं हुई। इस प्रकार ज्योतिषी लगभग एक मास तक हमारे घर में रहा, परन्तु मैंने उससे कभी कुछ नहीं पूछा। उसके जाने का दिन आगया। ज्योतिषी सामान तांगे में रखवाकर भीतर माता जी को नमस्ते कहने आया। मैं उस समय माता जी के पास खड़ी थी। ज्योतिषी ने माता जी को नमस्ते कही और पश्चात् मुझे नमस्ते कही। मैंने इच्छा न रहते भी शिष्टाचार के नाते नमस्ते कह दी। नमस्ते करते समय मैंने हाथ जोड़ कर उसकी ओर देखा। वह मेरी ओर बहुत ध्यान से देख रहा था। इस प्रकार दो तीन क्षण से अधिक वह नहीं देख सका होगा क्योंकि मेरे उसकी ओर देखते ही उसने अपनी दृष्टि मेरी ओर से फेरकर माता जी की ओर कर ली। मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि उसकी दृष्टि में असन्तोष था। पुनः माता जी को नमस्ते कह, गर्दन झुकाये वह बाहर की ओर घूम पड़ा। अभी वह दरवाज़े तक नहीं पहुंचा था कि घूमकर, वहीं खड़े खड़े माता जी से पूछने लगा, 'माता जी, यह आपकी क्या है?'

"मुझे उसके इस प्रश्न पर क्रोध चढ़ आया और मैं उसे दो-चार सुनाने वाली थी कि माता जी बोल उठीं, 'तो आप नहीं जानते? यह मेरी लड़की है। मनोरमा नाम है। हमारी एक ही सन्तान है और वह यह है।'

'आपने इनके विषय में कभी नहीं पूछा।'

'इसे आपकी विद्या पर विश्वास नहीं है। यह बी० ए० में पढ़ती

है ।'

"ज्योतिषी हंस पड़ा और घूमकर कमरे से बाहर निकल गया। मैंने और माता जी ने समझा कि चला गया है। मैं माता जी को वहीं छोड़ अपने कमरे में चली गयी। पहले तो, ज्योतिषी का मेरी ओर ध्यान से देखना मुझे पसन्द नहीं आया। दूसरे, उसका कहना कि मेरे विषय में उससे पूछा क्यों नहीं गया मुझे उसकी अशिष्टता प्रतीत हुई। और फिर अंत में उसका माता जी के कहने पर, कि मुझे उसकी विद्या पर विश्वास नहीं, हंसना मुझे शुद्ध गंवारपन प्रतीत हुआ।

"मेरे अचम्भे और क्रोध का पारावार नहीं रहा। जब मेरे लिये मेरे कमरे में एक नौकर एक बंद लिफाफ़ा लाया और मेरे पूछने पर कि किस ने दिया है बोला कि 'ज्योतिषी जी ने दिया है,' तो मैं अपने क्रोध को, नौकर सम्मुख होने के कारण, भीतर ही भीतर पी गई। केवल घृणा के भाव में मैं बोली, 'मेज़ पर रख दो।'

"मैं क्रोध से इतनी उतावली हो रही थी कि चिट्ठी पढ़ने से पहले ज्योतिषी को उसकी असभ्यता पर डांटने के लिये कमरे से निकल कोठी के बाहर वहां जा पहुंची, जहां तांगे, मोटरें वग़ैरा आकर खड़ी होती थीं। मेरा विचार था कि चिट्ठी ज्योतिषी ने कोठी के ड्राइंग-रूम में बैठकर लिखी होगी और वहां से जब वह तांगे में बैठने आवेगा तो उसके मुख पर एक चांटा लगाकर मन की तड़प को ठंडा कर सकूंगी। परन्तु वह तांगे में सवार हो कोठी के बाहर निकल चुका था और तांगा वेग से भागा जारहा था। मेरा क्रोध मन में ही रह गया और मैं निराश भीतर अपने कमरे में आ अपने पलंग पर लेट गई। मैं मन में कह रही थी, 'ये संस्कृत पढ़े कितने असभ्य होते हैं। शिष्टाचार तो इनको छू तक नहीं गया। देखो न एक युवा लड़की को पत्र लिख दिया है और फिर नौकर के हाथ भेजा है।'

"इस प्रकार के विचारों में मेरे मन में आया कि उसका पत्र तो पढ़ूं और यदि कुछ भी अनुचित बात लिखी मिले तो पिता जी से कहकर

उसे स्टेशन से पकड़, वापिस बुलवा, जूतों से पिटवा दूं। इस विचार के मन में आते ही मैं पलंग से उठ, मेज़ पर रखी चिट्ठी को उठा, लिफ़ाफ़ा खोल पढ़ने लगी। लिखा थाः—

मन की बात करोगी जो तुम
तब सुख-सुहाग सदा पावोगी।
पर योजना विघ्न घालेगी
विदीर्ण मन को भटकावे गी।
सजग रहो मनोरमा बेटी
आये हैं घिर बादल काले।
अति निर्दई, निर्मोही हैं ये
उज्ज्वल भाग मिटाने वाले।
टुक पग मिथ्या हो जाने से
मिट जायेगी भाग्य की रेखा।
विपदा सब पर छा जायेगी
यह तब मस्तक पर है देखा।

"उस समय ज्योतिष विद्या की सच्चाई पर मुझे संदेह था, ज्योतिषी की अशिष्टता पर मुझे क्रोध था और फिर उसे दो चार खरी न सुना सकने का मुझे क्षोभ था। इस कारण ज्योतिषी के पत्र को फ़र्श पर फेंक पावों से रौंध डाला।

"जब मैं यह कर रही थी तो नौकर ने दरवाज़े के बाहर से आवाज़ दी, 'छोटी बीबी जी, माता जी बुलाती हैं।'

"मैं चिट्ठी को वहीं छोड़ बाहर चली आई। पिता जी तथा माता जी सिनेमा देखने जाने के लिए तैयार खड़े थे। मैं उनके साथ चली गई। जब रात को लौटी तो चिट्ठी वहां नहीं थी। मैंने समझा कि पांव की ठोकर से इधर उधर हो गई होगी।

"इसके लगभग दो वर्ष पीछे की बात है। मेरा विवाह हो चुका था और मैं प्रत्येक प्रकार के सुख से सुखी थी, कि ज्योतिषी का वह पत्र

मेरी एक पुस्तक में पड़ा मिला। यह वहां कैसे पहुंच गया मैं नहीं जानती। केवल यही अनुमान किया जा सकता है कि नौकर ने बुहारने के समय उठाकर मेरी किताबों की आलमारी में रख दिया होगा और फिर वह उस पुस्तक में बन्द हो गया होगा।

विवाह के पश्चात् मैं अपनी कुछ पुस्तकें सुसराल ले गई थी। उन में यह पुस्तक भी थी। जब मुझे ज्योतिषी की भविष्य-वाणी पुस्तक में मिली तो मैं खिलखिलाकर हंस पड़ी। ज्योतिषी की असभ्यता और अज्ञानता पर अब मुझे हंसी आई थी। मैं उसकी भविष्य-वाणी को मिथ्या सिद्ध हुआ समझी थी। कई बार मैंने उसे पढ़ा और उसमें कोई छिपा अर्थ न पा ज्योतिष-विद्या के विषय में मेरे विचार और भी दृढ़ हो गये।

"परन्तु इसके एक मास पश्चात् ही पांसा पलटा। मैं अपने पति से आपके और विजय के विषय में झगड़ पड़ी और फिर कमला के पति और ससुर से दुर्व्यवहार की कथा सुन तो घर से भाग खड़ी हुई। अब मैं सोचती हूं कि ज्योतिषी को मेरे मस्तक पर क्या दिखाई दिया था कि ऐसी सच्ची सच्ची बात बता गया था।"

नरेन्द्र ने गम्भीर हो पूछा, "परन्तु क्या इन्सपैक्टर साहब से विवाह करने में तुमने अपने मन के विपरीत किया था?"

"हां, उस समय मैं ईर्षा और रोष से अंधी हो रही थी।"

"ईर्षा और रोष! किससे?"

"ईर्षा कमला बहन से और रोष आप पर।"

"मुझ पर रोष था! भला क्यों?"

"आपने मुझे अपनी उत्कट इच्छा के विपरीत कहने पर विवश किया था।"

"मैंने विवश किया था?"

"हां, आपने यह कहकर कि मैं आपको विवाह के लिए कहने आती हूं। यदि मैं मान जाती तो मुझे जीवन भर आपसे लज्जित होना

पड़ता। कोई स्त्री अपने मुख से नहीं कह सकती कि वह विवाह के लिये किसी पुरुष के पीछे पीछे भाग रही है।"

रेवती ने जब अपना हृदय इस प्रकार खोलकर रख दिया तो नरेन्द्र की आंखें पश्चाताप से नीचे झुक गयीं। इसके पश्चात् कितनी ही देर तक वे वहां बैठे रहे, परन्तु अब एक को दूसरे से कुछ कहने के स्थान अपने ही मन में मनन करने को बहुत-कुछ था। अन्धेरा होने पर दोनों चुपचाप वापिस मकान को लौट आये।

[१४]

इसके पश्चात् नरेन्द्र का व्यवहार रेवती से अधिक और अधिक घनिष्ठता का होता गया। रेवतीदेवी को भी अपनी योग्यता और विचारों को प्रकट करने का अवसर अधिक और अधिक मिलने लगा।

नरेन्द्र को यह धुन सवार थी कि क्रान्ति की योजना उसके जीवन-काल में सफलता तक पहुंच जाय। इसी के कारण उसने विवाह करने का विचार छोड़ा हुआ था। परन्तु शंकर पंडित को गौरी से सहायता मिलती देख और उन दोनों की भांति अपने से रेवती की विचार-साम्यता का विश्वास होने पर, विवाह के विषय में उसके विचार बदल गये थे। परन्तु वह अपने पथ में रेवती का नन्दलाल से विवाह एक ऊंची भीत की भांति बाधा देख रहा था। मन में कई बार वह इस विषय पर मनन कर चुका था और रेवती की बातों से भी उसे यह विश्वास हो चुका था कि रेवती उससे प्रेम करती है। इस पर भी उसमें रेवती से इस विषय पर बातचीत करने का साहस नहीं होता था।

जबसे नरेन्द्र और रेवती में एक दूसरे के प्रति सफाई हुई थी तब से नरेन्द्र के मन में आनन्द और काम करने में उत्साह बढ़ता जाता था और इसे शंकर पंडित और गौरी दोनों देख और समझ रहे थे। गौरी अब बाहर नहीं जा सकती थी, इससे नरेन्द्र और रेवती घूमने के समय प्रायः अकेले होते थे। गांव के लोग भी उनको नदी के किनारे अकेले बैठ घंटों बातें करते देखते थे और इसका उनके मन पर स्वाभाविक प्रभाव

ही पड़ता था। वे समझते थे कि नरेन्द्र और रेवती पति-पत्नी हैं।

गौरी और शंकर जानते थे कि दोनों में परस्पर प्रेम है और वे आशा करते थे कि एक दिन वे दोनों उनके सम्मुख आयेंगे और पति-पत्नी के रूप में रहने की सूचना दे देंगे। इतना जानते और समझते हुए भी उन्होंने न तो इनको इस निर्णय पर पहुंचने में सहायता दी और न ही बाधा डाली। वे उनके सम्बन्ध को स्वाभाविक रूप में परिपक्व होने देना चाहते थे।

एक दिन सायंकाल नित्य प्रति की भांति नरेन्द्र और रेवती घूमने नदी के किनारे गये हुए थे। अजेय भी उनके साथ था। दोनों किनारे पर बैठे, प्रकृति की शोभा देख, मन ही मन आनन्द अनुभव कर रहे थे। अजेय छोटे छोटे कंकड़ उठा नदी में फेंक रहा था। सहसा रेवती खिल-खिलाकर हंस पड़ी। इससे नरेन्द्र अपने स्वप्न-जगत से जाग अचम्भे में रेवती की ओर देखने लगा। रेवती अजेय की ओर देख हंस रही थी। नरेन्द्र ने भी अजेय की ओर देखा परन्तु कुछ विशेष बात न देख पूछा, "क्या है रेवती?"

इससे रेवती और भी ज़ोर से हंसने लगी। नरेन्द्र ने फिर पूछा, "आखिर कुछ बताओगी भी या नहीं? अकेले अकेले हंसने में भला क्या आनन्द है?"

रेवती ने अपनी हंसी को रोकते हुए कहा, "आपको बताने के विचार पर ही तो हंसी आती है। बात यह है कि गांव की प्रायः सब स्त्रियां मुझे आपकी विवाहिता मानती हैं। आज प्रातः जब मैं अजेय को स्नान करा रही थी तो भगवती गौरी को कह रही थी, 'बीबी जी, बहू के भी बच्चा होने वाला है।'

"गौरी बहन ने कुछ डांटकर कहा, 'चुप, पगली सी।'

"इस पर भगवती ने फिर कहा, 'नहीं बीबी जी, विश्वास जानो कि आपके पांच मास पश्चात् यह प्रसवेगी।'

" 'भगवती, चुप रहो,' बहिन जी ने डांटकर कहा। परन्तु भगवती कब मानने वाली थी। वह मुझे सम्बोधन कर कहने लगी, 'बहू,

सौगन्ध है तुम्हें नरेन्द्र बाबू की। सत्य कहना, मैं ठीक कह रही हूं या नहीं।'

"मुझे उसे नहीं कह देना चाहिये था, परन्तु उस समय मुझे कुछ ऐसी झेंप आई कि मैं कुछ कह नहीं सकी। अजेय को नहला चुकी थी। बदन पोंछ रही थी। इसने जब भगवती को मुझे सौगन्ध देकर पूछते देखा तो न जाने इसके मन में क्या आया कि यह मेरे गले से लिपट गया। मैंने भी इसे ज़ोर से गले लगा मुख चूम लिया। इससे गौरी बहन हंसने लगी। मुझे विश्वास है कि वह भी यह समझने लगी है कि मेरे बच्चा होगा ही। आज जब हम घूमने के लिये आने लगे थे तो वह कहने लगी कि मुझे बहुत कूदना-फांदना नहीं चाहिये।"

नरेन्द्र इस बात को सुन हंसने लगा। इनको हंसते देख अजेय भाग कर इनके पास चला आया और रेवती से गले मिलने लगा। रेवती ने उसका मुख चूमकर कहा, "अजेय, खेल क्यों छोड़ दिया?"

"मैं भी हसूंगा।"

रेवती ने उसकी कुक्षियों में गुदगुदी की तो वह हंसता हुआ फिर खेलने चला गया। नरेन्द्र ने रेवती से पूछा, "बहुत प्यारा लगता है तुम्हें?"

"हां।"

"तो एक ऐसा ही बच्चा अपना हो जाय तो कैसा रहे?" नरेन्द्र आज अपने मन की बात कहने से रुक नहीं सका। रेवती गम्भीर हो गई और नदी के पार आकाश को देखने लगी। नरेन्द्र बहुत ध्यान से उसका मुख देखते हुए अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा। जब कुछ उत्तर नहीं मिला तो पूछने लगा, "क्यों, क्या बात है?"

"यह असम्भव है।"

"असम्भव क्यों है?"

"इस जीवन में यह सुख मेरे भाग्य में नहीं लिखा।"

"उस ज्योतिषी ने बताया था, इसलिये न? परन्तु उसने यह भी

तो बताया है 'मन की बात करोगी जो तुम, तब सुख-सुहाग सदा पावोगी।' देखो रेवती, मैं तुमसे प्रेम करता हूं। तुम मुझसे प्रेम करती हो। क्या हम इस प्रेम को इसके स्वाभाविक अंत तक नहीं ले जा सकते?"

"मुझ में इसके लिये साहस नहीं है।"

"तुम किस से डरती हो?"

"मैं युक्ति से आपको समझा नहीं सकती। हां, मेरे संस्कार मुझे पहले पति के जीते जी दूसरे से सहवास करने से मना करते हैं।"

नरेन्द्र ने पूछा, "सहवास मुख्य बात है या प्रेम?"

"विवाह का सम्बन्ध सहवास से है। प्रेम तो केवल अन्तरात्मा की बात है।"

"क्या सहवास अपने अधिकार की बात नहीं है?"

"कोई भी अधिकार बिना किसी न किसी प्रकार के प्रतिबन्ध के नहीं रहता। जब भी अधिकार प्राप्त किये जाते हैं तो उनको सीमान्तर रखने के नियम भी साथ ही बन जाते हैं। प्रकृति और मनुष्य समाज में ऐसा ही नियम है।"

"परन्तु जो प्रतिबन्ध तुम अपने पर लगा रही हो, क्या वह स्वाभाविक और प्राकृतिक है?"

मनुष्य समाज प्रकृति से ऊपर उठने का यत्न कर रहा है। पशु-पक्षी तो प्रकृति का नियम पालन करते हैं, परन्तु मनुष्य अपने विकास के लिये उन नियमों को पर्याप्त नहीं समझता। उसने कुछ नियम और भी बनाये हैं जिनका पालन करना वह उचित समझता है।"

"हमारी परिस्थिति में तो ये प्रतिबन्ध कठोर अन्याय बन गये हैं।"

"व्यक्तिगत सुविधा को सामूहिक भलाई पर न्योछावर करना ही होता है। समाज की उन्नति से जो लाभ व्यक्ति को पहुंचता है वही लाभ वास्तविक मानना चाहिये। समाज की भलाई की अवज्ञा कर जो व्यक्तिगत भलाई की आयोजना है वह क्षणभंगुर और मिथ्या है।"

"क्या समाज व्यक्तियों से नहीं बनी और व्यक्तियों के सुखी होने से क्या समाज सुखी हुई नहीं मानी जायगी ?"

"जहां एक व्यक्ति का सुख समाज के दूसरे अंगों को दुख पहुंचाने वाला हो अथवा सुख में बाधा डालने वाला हो, वहां व्यक्तिगत सुख कैसे समाज का सुख माना जा सकता है ? समाज के नियम ऐसे होने चाहियें कि जिनसे अधिक से अधिक लोगों को सुख पहुंचे। अल्प संख्यक लोगों को, जिनको उन नियमों से सुख नहीं मिलता, अपना व्यक्तिगत सुख छोड़ना ही होगा।"

नरेन्द्र को आज पता चला था कि रेवती कितनी दृढ़ निष्ठा रखने वाली है। वह यह भी समझता था कि उसकी युक्ति निर्दोष है। इसलिये उसने कहा, "सिद्धान्त रूप में तो मैं तुम्हारी बात मानता हूं; परन्तु रेवती, ये सिद्धान्त हमारे विषय में कहां लागू होते हैं ? हम तो समाज से बाहर बैठे हैं न ?"

"मैं ऐसा नहीं मानती। हिन्दू समाज में विवाह-सम्बन्ध अटूट है। यहां तलाक़ नहीं होता, अर्थात् विवाह जब हो गया तो पति के जीवन में पुनः दूसरा विवाह नहीं हो सकता। मैं यदि आपसे विवाह कर लूं तो समाज के इस नियम को तोड़ती हूं। इस नियम के टूटने से, अर्थात विवाह-सम्बन्ध विच्छेद हो जाने से, समाज में भारी गड़बड़ मच जाने की सम्भावना है। मैं अपने सुख और आराम के लिये यह नहीं करना चाहती।"

"तो तुम यह समझती हो कि हिन्दू समाज का अटूट विवाह का नियम किसी भी परिस्थिति में हटना वाञ्छनीय नहीं है ?"

"क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं है, यह मेरे और आपके निर्णय करने की बात नहीं है। समाज के विद्वान लोग, स्वतंत्र देश के वातावरण में रहते हुए, जैसा निर्णय करेंगे हम लोगों को स्वीकार होना चाहिये। इस विषय में हम कानून अपने में हाथ नहीं ले सकते।"

नरेन्द्र युक्ति से रेवती को समझाना चाहता था, परन्तु सफल नहीं

हुआ । वह स्वयं हार गया था । इससे उसकी आंखों में और मुख पर निराशा की मुद्रा बन गई । रेवती यह नहीं देख रही थी । इस सब वार्तालाप के समय उसकी आंखें नदी के बहते पानी की ओर लग रही थीं ।

नरेन्द्र ने लम्बी सांस खैंचकर कहा, "तो रेवतीदेवी, आशा करने को कोई स्थान नहीं है ?"

"मैं तो समझती हूं," रेवतीदेवी ने कहा, "निराश होने की कोई बात ही नहीं । हमारा प्रेम अमर है । यह कितने आनन्द की बात है ।"

नरेन्द्र निराश-मुद्रा में, नदी पार, बिना किसी विशेष वस्तु को देखते हुए भी, देखता रहा । रेवती समझती थी कि नरेन्द्र निरुत्तर हो गया है । इससे उसके मन में शरारत सूझी । उसकी आंखें चमक उठीं और नरेन्द्र के मुख की ओर देखकर बोली, "मैं एक बात कहूं ?"

"क्या ?"

"आप विवाह कर लें । यदि कहें तो मैं कमला बहन को लिखूं कि आपके लिये कोई लड़की ढूंढी जाए ।"

"छीः, तुम मुझे क्या समझती हो, रेवती ! मैं पशु हूं क्या ?"

रेवती की हंसी निकलने लगी थी । उसने यत्न से रोकते हुए कहा, "यह तो मैं नहीं कह रही । देखिये, आपके प्रेम के उपलक्ष में मैं आपसे प्रेम करती हूं । केवल आपकी वासना की तृप्ति नहीं कर सकती न । उसके लिये आप विवाह कर सकते हैं ।"

"बस, बस रेवती ! तुम नहीं समझ सकती । परन्तु मैं इससे सुगम एक और उपाय जानता हूं । उस उपाय से न तो तुम्हारे समाज का नियम टूटेगा और न ही मुझे विवाह के लिये कमला को लड़की ढूंढने का कष्ट देना पड़ेगा ।"

"तब तो ठीक है । क्या है वह उपाय ? क्या मैं सुन सकती हूं ?"

"नन्दलाल ही बाधा है न ! मैं उसे मार्ग से दूर कर दूंगा ।"

"तो आप हत्या करेंगे ?"

"बिना प्रेम के विवाह करने से तो ठीक ही होगा।"

रेवती की हंसी भीतर ही भीतर ठंडी पड़ गई।

[१५]

'भारत छोड़ो' आन्दोलन को दबाने के लिए सरकार ने बल-प्रयोग तो किया ही था, साथ ही कूट नीति का अवलम्बन भी किया। इस नीति के कई अंग थे। एक था कम्यूनिस्टों को धन से सहायता दे कांग्रेस-विरोधी प्रचार कराना। इसका प्रभाव यह हुआ कि कारखानों में मज़दूर मन लगाकर काम करने लगे। कारखानेदारों का मुनाफ़ा बढ़ गया। फिर इस नीति में वस्तुओं के भाव पर प्रतिबन्ध लगा दिया, परन्तु वस्तुओं के बिकने पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया। परिणाम यह हुआ कि चोर-बाज़ार उत्पन्न हो गया। यहां तक कि बंगाल में अकाल पड़ गया। लाखों भूख से मर गये, परन्तु चोर-बाज़ार में अन्न-अनाज बिकता रहा। इस कूट नीति का एक रूप यह भी हो गया कि काग़ज के नोट धड़ाधड़ छाप कर लोगों की जेबों में भरने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि आवश्यकता की वस्तुओं के दाम बढ़ गये और लोग रुपया कमाने में लीन हो गये।

ये बातें, प्रत्यक्ष में तो, केवल आर्थिक व्यवहार की प्रतीत होती थीं, परन्तु वास्तव में इनका देश की राज-नीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। लोग दिन प्रति दिन चरित्रहीन होते गये। बड़े से बड़े अफ़सर से लेकर चपरासी तक घूस लेने लगे। जीवन-निर्वाह महंगा होने से जन-साधारण जिन्हें घूस देनी पड़ती थी चोर-बाज़ार में माल बेचने लगे। चोर-बाज़ार में बेचने और खरीदने वाले जहां चरित्रहीन हो रहे थे वहां उनके अनियमित जीवन में अधिक और अधिक विषमता आने लगी।

इन सब का परिमाण यह हो रहा था कि, स्वराज्य मिले अथवा न मिले, लोगों में धोखा-धड़ी, विषय-लोलुपता, और स्वार्थपरता, सदा के लिये नहीं तो बीसों वर्षों के लिए आ उपस्थित हुई।

कुछ लोग यह भली भांति समझते थे कि देश के लोगों में चरित्र-हीनता का परिणाम स्थायी दासता होगा। इससे वे, जिस किसी उपाय से

भी हो, शीघ्रातिशीघ्र स्वराज्य स्थापित करना चाहते थे। श्री सुभाषचंद्र बोस इसी विचार के थे, परन्तु देश में महात्मा गांधी उनके विचार को पसन्द नहीं करते थे। इससे जनता भी उनके विचारों की सहायक नहीं हुई। परिणाम-स्वरूप उन्हें देश छोड़ना पड़ा और वे जर्मनी में जा हिन्दूस्तानियों को अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार करने लगे।

दूसरी ओर सिंगापुर और मलाया के युद्धों में जापान से पकड़े गये हिन्दुस्तानी कैदियों को जनरल मोहनसिंह और श्री रासबिहारी बोस ने संगठित करना आरम्भ किया, परन्तु जापानियों को मोहनसिंह पर विश्वास नहीं रहा। इससे उन्होंने उसे पकड़ लिया। इस पर सुभाषचंद्र बोस जर्मनी से एक पन-डुब्बी में सिंगापुर पहुंच गया और उसने मोहन सिंह के कार्य को आगे चलाने का यत्न किया। एक हिन्द राष्ट्रीय-सेना का निर्माण किया गया। जापानियों ने इस सेना को हथियार, हवाई जहाज़ और अन्य लड़ने का सामान देने का वचन दिया। सेना थोड़ा-बहुत सामान, जो यह प्राप्त कर सकी, लेकर भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए आसाम की सीमा की ओर चल पड़ी।

इस समय भारतवर्ष की अवस्था बहुत बिगड़ चुकी थी। प्रायः सब राष्ट्रीयता का विचार रखने वाले नेता जेलखाने में डाल दिये गये थे। फ़ौज़ी चाल के अनुसार भारतवर्ष के बाहर से आक्रमण के साथ साथ ही भारतवर्ष के अन्दर भी विद्रोह खड़ा होना चाहिये था।

भारतवर्ष पर आक्रमण की तैयारी का समाचार सर्वसाधारण को तो बहुत काल तक मिला ही नहीं। केवल वे लोग, जो रात को सैगांव के रेडियो के ब्रॉडकास्ट सुना करते थे, कहते थे कि सुभाष बाबू फ़ौज़ लेकर आसाम की ओर आ रहे हैं। परन्तु देश में ऐसा कोई नेता नहीं था जो यहां विप्लव खड़ा कर सकता। हिन्दुस्तान में जो लोग जेल से बाहर थे वे रुपया कमाने में लीन हो रहे थे।

[१६]

धीरेन्द्र ने जब यह सुना कि वास्तव में भारत को स्वंतत्र करने के लिये

राष्ट्रीय सेना आक्रमण की तैयारी कर रही है, तो उसने तुरंत ही नव-रत्न मंडल की बैठक बुला ली। यह बैठक सेठ कुँजबिहारी के मकान पर इलाहाबाद में हुई। नवरत्न के सब सदस्य उपस्थित थे। धीरेन्द्र का प्रस्ताव था कि बर्मा से आक्रमण करने वाली राष्ट्रीय सेना की सहायता के लिये देश में विप्लव खड़ा कर दिया जाय। शंकर पंडित और नरेन्द्र इसका विरोध करते थे। नरेन्द्र का कहना था, "हमारे पास एक-दो लाख आदमी तो हैं, परन्तु उनके पास साधन नहीं हैं। हमें वही भूल नहीं करनी चाहिये जो महात्मा गांधी ने की है। बिना संतोष-जनक तैयारी के आन्दोलन खड़ा करना मूर्खता है। हमारा डायनामाइट का कारखाना अभी मंगोलिया में बन रहा है। कम से कम हमारी समिति के स्वयं-सेवकों के पास हाथ से फेंकने के बम्ब तो होने चाहियें। इस समय हमारी शक्ति कम है और वह भी दुनिया के कई देशों में बिखरी हुई है। इसके एकत्रित करने में छः मास से कम नहीं लगेंगे। ऐसी स्थिति में तो हम कुछ नहीं कर सकते।"

शंकर पंडित ने भी नरेन्द्र के कहने का समर्थन किया और कहा, "इस समय लोगों को विद्रोह के लिये कहना उन्हें जलती भट्टी में फेंकने के समान होगा। सब से बड़ी बात यह है कि देश भर के लोग युद्ध सम्बन्धी कामों से मालामाल हो रहे हैं। उनको अंग्रेजों के राज्य के रहने से लाभ प्रतीत होने लगा है। करोड़ों रुपये जो लोगों ने कमाये हैं वे या तो बैंकों में हैं या नोटों के रूप में उनके घर में रखे हैं। दोनों स्थानों पर रखा धन केवल अंग्रेज़ी-राज्य में ही धन है अन्यथा कुछ भी नहीं। इस कारण साधारण जनता हमारा पक्ष नहीं लेगी।"

लाला बनारसीदास का कहना था, "यह सुअवसर तो ईश्वर की कृपा से प्राप्त हुआ है। ऐसा भारत के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ। हमें इस सुअवसर से लाभ उठाना चाहिये।"

नरेन्द्र का उत्तर था, "यह हमारा दुर्भाग्य है कि जो नेता विदेश में जाकर इतना भारी प्रबन्ध करने में सफल हुआ है उसे देश के

भीतर रहकर कुछ भी करने नहीं दिया गया। जिन लोगों ने उसका विरोध किया था वे स्वयं तो जेल जाने तक यह कहते रहे थे कि भारत पर देशी फ़ौज के आक्रमण पर भी वे उस आक्रमण के विरोध में कट कटकर मर जायेंगे। मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि देश और विदेश के हिन्दुस्तानी एक सूत्र में बंधे नहीं हैं।"

"तो क्या बोस बाबू का बृहत् प्रयत्न विफल जायेगा?"

"इस प्रयत्न की सफलता जापानियों की सहायता पर निर्भर है। हम नहीं जानते कि बोस बाबू के पास अपनी, कितनी फ़ौज है और जापान कितनी फ़ौज़ इनकी सहायता के लिये दे सकता है।

नरेन्द्र का कहना था, "देश का यह दुर्भाग्य है कि बोस बाबू देश में किसी ऐसी संस्था से सम्बन्ध नहीं रखते जो उनसे सहयोग कर सके। हम नहीं जानते कि कब और क्या करें कि उनके आक्रमण में सहायक हो सकें। इस कारण सिवाय प्रतीक्षा करने के और कुछ नहीं कर सकते। यदि आक्रमणकारी सेना ऐसी स्थिति में हो गयी कि हम उससे मिलकर उनकी योजना को समझ सकें तो फिर हमारे लिये यह आवश्यक हो जायेगा कि हम उनके कहने के अनुसार इस में कूद पड़ें।"

धीरेन्द्र के विचार भी बदल गये। वह चाहता था कि हिन्दुस्तान में रेल की पटरियां उखाड़कर युद्ध-कार्य में बाधा डाली जाय, परन्तु शंकर पंडित का यह कहना, कि अधूरी तैयारी के साथ अपनी शक्ति को व्यर्थ खोना बुद्धिमत्ता नहीं, उसे समझ में आने लगा।

नवरत्न-मंडल में सब लोग उत्साह में भरे हुए आये थे, परन्तु नरेन्द्र, शंकर पंडित और धीरेन्द्र के एक पक्ष में हो जाने से निराश होगये। शंकर पंडित ने अपनी योजना समझाई। वह बोला, "यदि हम तैयार होते तो यह अवसर विद्रोह करने का बहुत अच्छा था। हमारी तैयारी इस समय न होने के बराबर है। एक लाख से कुछ ऊपर नवयुवक तो हैं, परन्तु उनके पास लाठियां भी नहीं। साथ ही इस समय अंग्रेज़ी-सेना बीस लाख के लगभग है जो पूरी तरह सशस्त्र है। इसके अतिरिक्त पांच

लाख के लगभग अमेरिका के सिपाही भी यहां मौजूद हैं। हज़ारों हवाई जहाज़ इन फ़ौजों की सहायता के लिये हैं। समुद्री जहाज़ भी हैं। ऐसी अवस्था में केवल पटरियां उखाड़ देने से कुछ नहीं हो सकेगा। हमें इससे बहुत अधिक करना पड़ेगा।

"मैं तो समझता हूं कि विप्लव खड़ा करने का वह समय होगा जब ब्रिटिश सिंह युद्ध से थककर सुस्ताने की तैयारी करने लगेगा। उस समय हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी फ़ौज केवल नाममात्र की रह जाएगी। हिन्दुस्तानी सिपाही प्रायः सब फ़ौज को छोड़ हल जोतने चले जायेंगे। अमेरिका के सिपाही अमेरिका वापिस पहुंच चुके होंगे। वह समय होगा जब हम अपना आक्रमण करना उचित पायेंगे। उस समय के आने से पूर्व हमें विदेश में और देश में अपनी समिति को सुदृढ़ करना होगा।

"जब समय आवेगा हम एक प्रान्त में अपनी शक्ति को संचित कर लेंगे। हमारी सेना के कम से कम दस लाख आदमी उस प्रान्त में एकत्रित हो जावेंगे। उसी प्रान्त के मुख्य मुख्य केन्द्रों में हम अपने शस्त्र-भण्डार बनायेंगे। इसी समय किसी समीप स्थान पर, भारत की सीमा के बाहर हमारे हवाई जहाज़ एकत्रित रहेंगे। ठीक निश्चित समय पर हमारे स्वयं-सेवक तार-घर, टेलीफ़ोन-घर, डाक-घर, पुलिस और फ़ौज के केन्द्रों में विप्लव खड़ा कर देंगे। हम गवर्नर और कमिश्नरों को अपने अधिकार में कर लेंगे। उस प्रान्त की फ़ौज में जो मंडल हमारे हैं वे भी साथ ही विद्रोह करेंगे और अपने अफ़सरों को अपने आधीन कर लेंगे।

"मैं समझता हूं कि यदि हमारे लोग अनुशासन प्रिय हुए तो एक प्रान्त में यह विप्लव दो घंटों में समाप्त हो जायेगा। साथ ही हमारे पास दस लाख सेना होगी जिसको हम एक-दो दिन में सशस्त्र कर सकेंगे। समीप विदेश में स्थित हवाई-जहाज़ हमारी सहायता कि लिये उस प्रान्त में आजावेंगे।

"इसी समय शेष दस लाख स्वयं-सेवकों से हम दिल्ली, बम्बई,

कराची, कलकत्ता, मद्रास, सिंगापुर और अदन में विद्रोह खड़ा कर देंगे। इन स्थानों पर भी हमारे कार्य का ढंग वही होगा जो उक्त प्रान्त में होगा। हम छापा डालकर प्रायः सब बड़े अफसरों को अपने अधिकार में कर लेंगे।

"इतना हो जाने के पश्चात् भारतवर्ष के वे भाग जो हमारे आधीन होना पसन्द नहीं करेंगे विजय किये जावेंगे। बुरी से बुरी परिस्थिति में भी हम चार-पांच मास में पूर्ण भारतवर्ष को अपने आधीन कर सकेंगे।

"संक्षेप में हमारी योजना यह है। हमने वह प्रान्त चुन लिया है जहां पर विद्रोह खड़ा किया जायगा। उस प्रान्त की सीमा वह नहीं जो ब्रिटिश-राज्य से निश्चित किसी भी प्रांत की है। प्रत्युत हमने संयुक्त प्रान्त के पूर्वी ज़िले, बिहार प्रान्त पूर्ण, साथ ही कुछ ज़िले उड़ीसा प्रान्त के इस विद्रोह करने वाले प्रांत में सम्मिलित किये हैं। यह प्रान्त उत्तर में नैपाल के साथ छूता होगा। दक्षिण में बंगाल की खाड़ी तक पहुंच जायेगा। पश्चिम में सीतापुर, लखनऊ, कानपुर, झांसी, जबुलपर बिलासपुर तथा कटक सीमा होगी। और पूर्व में कलकत्ता, बर्दवान, मुर्शिदाबाद, मालदा, भागलपुर, पूर्णिया, जलपागुरी और दार्जिलिंग सीमा होगी।

"हमने प्रत्येक आवश्यक स्थान का और इस पूर्ण प्रान्त का मान-चित्र बनवाया है। पग पग भूमि यहां की देख ली गई है और जितने भी राजनैतिक और सैनिक विचार से आवश्यक स्थान हैं सब की सूची बना ली गई है। वहां पर हमारे सैनिक कितनी संख्या में कब और कैसे पहुंचेंगे विचार कर लिया गया है। वे सब लोग कैसे और कहां रहेंगे, फिर उनके खाने-पीने का प्रबन्ध और उनके लिये उचित शस्त्र कहां एकत्रित होंगे, अभिप्राय यह कि जहां तक मनुष्य की बुद्धि काम कर सकती है सब विषयों और परिस्थितियों पर विचार कर लिया गया है। हम यत्न कर रहे हैं कि जिन केन्द्रों पर हम विद्रोह खड़ा करना चाहते हैं वहीं पर अधिक मंडलियां बनायें।

"योजना के अनुसार पूर्ण तैयारी होने पर भी भारी जोखिम का काम होगा और इस सब के लिये बहुत धन की आवश्यकता होगी।

"मैं समझता हूं कि बोस बाबू को यदि भारत के भीतर से सहायता न मिली तो सफलता की आशा कम है। परन्तु हम बे सरोसामान होने पर उचित सहायता कर भी तो नहीं सकते। बोस बाबू की राष्ट्रीय सेना ने अपनी शक्ति पर भरोसा कर ही तो तैयारी आरम्भ की है। यदि उनकी सेना आसाम से उतर कर बंगाल के मैदानों में आगई तो हमें अस्त्र-शस्त्र प्राप्त होने लगेंगे। तब तो हम अपनी सीमित शक्ति से भी उस सेना की सहायता करने पर तैयार हो जावेंगे। अन्यथा उपस्थित परिस्थिति में तो अपने हज़ारों स्वयं-सेवकों को मरवा डालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।"

नवरत्न-मंडल के लोग शंकर पंडित और नरेन्द्र के इस समय विद्रोह करने से इनकार करने पर निराश हुए थे, परन्तु शंकर पंडित की योजना सुन पुनः उत्साह से भर गये। वे योजना की पूर्ति के लिये अब और भी अधिक वेग से कार्य करने का संकल्प करने लगे थे। बनारसीदास ने पूछा, "योजना चलाने के लिये कितने धन की अवश्यकता होगी?"

नरेन्द्र ने गिनती की थी। उसने बताया, "योजना को तीन भागों में बांटा है। पहला तैयारी। यह तो अब चल रही है और पूर्ण तैयारी होने तक तीस से चालीस करोड़ रुपया लगेगा। दूसरा भाग है आक्रमण। इसके लिये एक अरब के लगभग चाहिये। और अंतिम भाग है विजय का, अर्थात भारतवर्ष के उन भागों को जीतने का जहां विद्रोह नहीं हो सकेगा। एक अरब रुपये के लगभग ही उसके लिये भी चाहियेगा। योजना के इस अंतिम भाग में तो रुपया हमें अपने अधीन स्थान से भी मिल जायेगा। पहले दो भागों को पूर्ण करने के लिये तो हमें अपनी समिति के धनी लोगों पर ही निर्भर करना होगा। साथ ही इतना धन सरकारी नोटों में नहीं चाहिये। यह सब सोने में चाहिये। लगभग अढ़ाई अरब रुपये का चांदी-सोना खरीदकर अपने केन्द्र-स्थानों में संचित

करना पड़ेगा ।"

"कितने स्वयं-सेवकों की आवश्यकता होगी ?"

"लगभग बीस लाख ।"

"कर्मचारी-सदस्य कितने चाहियें ?"

"लगभग पांच लाख ।"

"इन लोगों का क्या करना होगा ?"

"अगले वर्ष से इन कर्मचारी-सदस्यों को हम अपने निश्चित इलाके में और अन्य विद्रोह के केन्द्रों में, कारखानों और व्यापार के कामों में, लगाना आरम्भ कर देंगे, ताकि विद्रोह होते ही दस्तकारी और व्यापार पूर्ण रूप में हमारे हाथ में हो सके।"

अनेकों ही अन्य प्रश्नों के उत्तरों से नवरत्न-मंडल के सदस्य उत्साह से भर पुनः कार्य करने के लिये अपने स्थान पर वापिस चले गये।

[१७]

शंकरगढ़ में आकर रहने से पूर्व शंकर पंडित और गौरी कैलाश-यात्रा पर गये थे। मार्ग में एक शिष्ट नैपाली परिवार के एक यात्री से उनकी भेंट हो गई। उस नैपाली सज्जन ने शंकर पंडित को बताया था कि सीसोदिया वंश के राजपूतों के नैपाल पर अधिकार जमाने से पूर्व यह देश तिब्बत के लामा के अधीन था और नैपाल की प्राचीन राजधानी पाटन से चलकर तिब्बत की राजधानी ल्हासा तक एक मार्ग था जो वर्ष में बारहों मास खुला रहता था। जब नैपाल में राजपूतों का अधिकार हो गया तो तिब्बत के लामा की आज्ञा से यह मार्ग बन्द कर दिया गया था। सीसोदिया वंश के राजपूतों ने कभी तिब्बत तक जाने की आवश्यकता अनुभव नहीं की और धीरे धीरे लोग इस मार्ग के होने को ही भूल गये हैं।

शंकर पंडित इस मार्ग का वृत्तान्त सुन फड़क उठा और उसने उस नैपाली सज्जन से पूछा कि वह इस मार्ग के विषय में कैसे जानता है। इस पर उसने बताया, "हमारे परिवार के पूर्वज तिब्बत राज्य के मुख्य

कर्मचारी थे। सीसोदियों के आने पर हमने उनकी सेवा स्वीकार नहीं की और अपनी ज़मींदारी पर आकर बसने लगे। हमारे परिवार का एक पुस्तकालय है जिसमें बहुत से हस्त-लिखित ग्रन्थ रखे हैं और उन ग्रन्थों में एक इस मार्ग के विवरण पर भी है।"

कैलाश यात्रा से लौटकर शंकर पंडित ने इस परिवार से सम्पर्क पैदा किया और एक बार उनके निवास-स्थान, जो पाटन से दक्षिण बीस मील के अंतर पर था, पर जाकर उनके पुस्तकालय की देखभाल की और पाटन-ल्हासा मार्ग पर पाली भाषा की पुस्तक ढूंढ़ निकाली। परिवार के मुखिया एक वृद्ध सज्जन थे। वे इस पुस्तक को देने के लिये उद्यत नहीं हुए। इस पर शंकर पंडित ने, शंकरगढ़ में रहने का प्रबन्ध करने के पश्चात्, पुनः इस पुस्तक को प्राप्त करने का यत्न किया। धन के लालच से अथवा प्रार्थना करने से भी जब यह नहीं मिली तो फिर चोरी करवाकर यह पुस्तक प्राप्त की गई। इसके पश्चात् इस पुस्तक का पाली के विद्वानों से अनुवाद कराया गया और फिर नैपाल के भूगोल-विशेषज्ञों से इस मार्ग का मान-चित्र तैयार करवाया गया।

इस पुस्तक के अंत में लिखा था, 'जब भारतवर्ष में यवनों का राज्य स्थापित होगया तो भगवान लामा की आज्ञा से तिब्बत की पवित्रता को सुरक्षित रखने के लिये इस मार्ग को बन्द करवा दिया गया।' कहां से और कैसे इस मार्ग को बन्द करवाया गया, यह नहीं लिखा था।

[१८]

अब इतना कुछ हो जाने के पश्चात् इस मार्ग की खोज के लिये जाना आवश्यक था। गुरु जी का पत्र प्राप्त हुआ था। लिखा था कि शंकर पंडित शीघ्रातिशीघ्र इस मार्ग की खोज के लिये जायें। साथ जाने के लिये चार नैपाली, पहाड़ों पर चढ़ने और उतरने में सिद्धहस्त, प्रत्येक प्रकार की आवश्यक सामग्री के साथ, पाटन भेज दिये गये हैं। वहां धर्मशाला में वे मिल जायेंगे।

इस आज्ञा के पश्चात् शंकर पंडित जाने के लिये तैयार हो गया।

गौरी इस समय सातवें मास में जारही थी। इस पर भी शंकर पंडित, इच्छा न रहते हुए भी, जाने को उद्यत हो गया। यह खोज भयरहित नहीं थी। इस पर भी गौरी को इसकी कठिनाइयों को कम कर के ही बताया गया। शंकर पंडित ने नरेन्द्र और गौरी को कहा, "मैं आशा करता हूं कि गौरी के प्रसव-काल से पूर्व ही लौट आऊंगा। यदि गौरी स्वस्थ होती तो मैं तो उसे भी साथ ले जाता, पर अब विवश हूं।"

पृथक में शंकर पंडित ने गौरी से कहा, "देखो गौरी, अब मेरे लिये इस मार्ग की खोज के लिये जाने में ढील करने का कोई कारण नहीं रहा। मैं चाहता था कि इस समय तुम्हारे पास रहूं, परन्तु...।"

गौरी जो खाट पर लेटी हुई थी उठकर बैठ गई और माथे पर त्योरी चढ़ाकर बोली, "क्या हो गया है आपको आज? यह मोह-ममतावश कर्तव्य को छोड़ना आपने कब से आरम्भ किया है। आप को यह शोभा नहीं देता।"

"कर्तव्य छोड़ने की बात नहीं है, गौरी। यह तो एक कर्तव्य और दूसरे कर्तव्य की आवश्यकता में तुलना करने की बात है। अभी तक तो मैं तुम्हारे समीप ठहरने को अधिक आवश्यक समझता था, परन्तु परिस्थिति जल्दी जल्दी बदल रही है और गुरु जी की भी यही सम्मति है कि मार्ग ढूंढ़ने में अब ढील करनी ठीक नहीं।"

"मुझे आपके इस परिणाम पर पहुंचने से प्रसन्नता हुई है। आप कब जा रहे हैं?"

"सब प्रबन्ध हो चुका है। मेरे साथ जाने वाले साथी पाटन पहुंच गये हैं और मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं यह सोच रहा हूं कि यदि कहीं देरी हो गई तो कैसे होगा?"

"फिर वही बात। सब ठीक होगा। आप इस बात की चिन्ता क्यों करते हैं? यहां गांव की रहने वाली स्त्रियों के भी तो बच्चे होते हैं।"

"मैं समझता हूं कि यदि तुम कलकत्ते चली जाओ तो ठीक न होगा

क्या ?"

"मेरी चिन्ता आप छोड़िये। मैं अगले मास में अपने लिये उचित प्रबन्ध कर लूंगी। आप अपने विषय में बताइये। आपकी तैयारी के लिये क्या किया जाय ?"

"सो रेवतीदेवी और नरेन्द्र कर रहे हैं। तुम्हें कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।"

उसी रात शंकर पंडित ने नरेन्द्र से पृथक में कहा था, "नरेन्द्र भैया, काम अति कठिन है और यदि कोई ऐसी-वैसी बात हो गई तो गौरी को तुम्हारे हाथ में दिये जा रहा हूं। मैं उससे अगाध प्रेम करता हूं और उसे सुखी देख मुझे आनन्द होता है।"

नरेन्द्र ने गौरी को सुखी रखने का पूरा पूरा आश्वासन दिया और अगले दिन शंकर पंडित पाटन को चल पड़ा।

[१६]

पाटन से उत्तर-पूर्व की ओर लगभग दस मील के अन्तर पर एक गुफ़ा है। यह गुफ़ा पाटन से काठमंडू को जाने वाले मार्ग से हटकर एक वादी में है। कोई कोई पाटन के बूढ़े इस गुफ़ा के विषय में जानते हैं और इसे भूत-गृह के नाम से सम्बोधन करते हैं। उनका कहना है कि इस गुफ़ा में प्रेतात्मा निवास करती हैं। यद्यपि कभी किसी ने वहां जाकर किसी प्रेतात्मा को देखा नहीं है तथापि वहां जाने का मार्ग सीधा और सरल न होने के कारण किसी को वहां जाने का उत्साह नहीं होता था। एक और भी कहावत है, कि उस गुफ़ा की रक्षा के लिये द्वार पर तक्षक नाम का सांप रहता है। उसकी फुँकार बीस बीस गज़ के अन्तर पर आने वाले को मृत्यु के घाट उतार देती है। इन बातों के विख्यात होने के कारण उस गुफ़ा के समीप कोई नहीं जाता।

शंकर पंडित ने पाटन पहुंचकर जब ये किंवदन्तियां सुनीं तो उसे विश्वास हो गया कि वही मार्ग-द्वार है। इस मार्ग के विवरण में लिखा था कि पाटन से एक पगडंडी उत्तर-पूर्व को जाती है। यह पगडंडी इतनी

चौड़ी है कि इस पर तीन घुड़-सवार एक साथ चल सकते हैं। यह पगडंडी पांच कोस जाकर एक गुफ़ा के द्वार के सम्मुख समाप्त होती है। यह द्वार पर्वत को काटकर बनाया गया है। यही मार्ग-द्वार है।

शंकर पंडित ने पाटन में रहते हुए गुफ़ा पर जाकर इसकी देख-भाल की। इससे उसे अपनी धारणा पर और भी विश्वास हो गया। गुफ़ा का मुख पर्याप्त चौड़ा और ऊंचा था, परन्तु द्वार पर बांस और झाड़ियां इतनी घनी उगी थीं कि गुफ़ा के भीतर जाया नहीं जा सकता था। शंकर पंडित ने अपने साथी पहाड़ियों से इनको कटवाकर मार्ग साफ़ करवाया और एक दिन रात के दो बजे, जब पाटन गहरी नींद सो रहा था, चार खच्चरों पर माल लाद, स्वयं अपने साथियों के साथ इस गुफ़ा में जा पहुंचा। गुफ़ा के एक बाजू में एक दरार थी। ऐसा प्रतीत होता था कि किसी समय भूचाल से पर्वत में दरार पड़ गई है। यह दरार इतनी चौड़ी थी कि इसमें एक बैल-गाड़ी सुगमता से घुस सकती थी।

इस स्थान से पाटन और ल्हासा के मार्ग का विवरण, जो प्राचीन पाली की पुस्तक में लिखा था, मिलता था। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही ये लोग वहां पहुंच गये थे। वहां शौचादि से निवृत्त हो वे गुफ़ा में घुस गये। इस समय बाहर प्रभात का प्रकाश फैल रहा था, परन्तु गुफ़ा में अभी भी अन्धेरा था और बिजली के टॉर्च जलाकर मार्ग देखा जा रहा था। जब ये लोग दरार में पहुंचे तो इन्होंने देखा कि यह दरार पर्वत की चोटी तक गई हुई है। नीलवर्ण आकाश दरार के ऊपर दिखाई देता था। दरार की भूमि बहुत चिकनी और फिसलनी थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उस पर काई जम गई है। लगभग पांच सौ गज चले जाने पर दरार की भूमि में ढालान आरम्भ हो गई। मार्ग अब और भी चौड़ा हो गया। लगभग तीस फ़ुट चौड़ा प्रतीत होता था। दरार की दीवारें एकदम सीधी खड़ी थीं जिससे यह अनुमान और भी पक्का हो गया था कि यह दरार भूकम्प से बनी थी। हां, भूमि छीलकर समतल की गई थी। दरार की दीवारें इतनी ऊंची थीं कि आकाश

बहुत दूर दिखाई देता था।

लगभग दो मील तक ढालू मार्ग पर चलकर ये लोग दरार के अन्त तक पहुंच गये। यहां एक भीत के समान चट्टान खड़ी थी जिससे प्रतीत होता था कि दरार समाप्त हो गई है। इस चट्टान में बांई ओर एक सुरंग थी। उसे देख यह अनुभव होता था कि किसी पहाड़ के अथवा नाले के नीचे से जाती है। इन लोगों ने टॉर्चें जलाईं और इस में घुस गये।

सुरंग की भूमि को समतल देख यह अनुमान लगाना कठिन नहीं था कि यह खोदकर बनाई गई है। दरार तो, अब पीछे रह गई थी, प्राकृतिक प्रतीत होती थी और मनुष्य ने उसका प्रयोग कर लिया था। सुरंग की छत और दीवारें बहुत साफ बनी थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि ये भीतर से पलास्तर की हुई हैं। शंकर पंडित अपनी टॉर्च के प्रकाश में यह देख रहा था। वह चकित था कि सुरंग की वायु स्वच्छ है। इस में सन्देह नहीं था कि सदियों से इस मार्ग पर कोई गया नहीं था, इस पर भी वायु की स्वच्छता से यह कोई बन्द मार्ग प्रतीत नहीं होता था।

कुछ दूर जाने पर 'शर-शर' जल-प्रपात का शब्द सुनाई दिया। किसी नाले का पानी सुरंग में गिरता प्रतीत होता था। पंडित ने समझा कि कहीं से छत टूट गई है और शायद आगे-जाने का मार्ग भी नहीं होगा। परन्तु पानी के समीप जाने पर उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। उसने देखा कि सुरंग के एक ओर से पानी गिर रहा है और वह पानी सारी सुरंग के मार्ग को रोक देने के बजाय एक कुँड में पड़ता है और उसी में समाता जाता है। उसने अनुमान लगाया कि सुरंग बनाते समय यह कोई चश्मा मार्ग में आगया है और उसको बहुत ही चतुराई से ठीक ढंग पर प्रयोग में लाया गया है। वह स्वयं और उसके साथी कुछ प्यास अनुभव कर रहे थे।। खच्चरें तो पानी का शब्द सुनते ही कुँड में से पानी पीने लगी थीं।

कुँड के समीप बैठ कुछ काल तक आराम कर पंडित ने जेब से घड़ी

निकाल समय देखा। साढ़े दस बजे थे। यह न जानते हुए कि सुरंग कितनी दूर तक है, पंडित ने समय खोना उचित नहीं समझा। सब चल पड़े। तीन घंटे तक ये सुरंग में ही चलते गये। सुरंग बिलकुल अच्छी अवस्था में थी और किसी स्थान पर भी दम घुटने का अनुभव नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि दो दो मील के अंतर पर पानी के झरने बने थे, जो सुरंग की एक अथवा दूसरी दीवार से गिरते थे और झरनों के नीचे बने कुँडों में समा जाते थे। झरनों के पानी के साथ स्वच्छ वायु सुरंग में आजाती थी।

इन लोगों ने सुरंग के भीतर ही एक झरने के समीप बैठकर खाना खाया। लगभग एक बजे दोपहर के ये फिर चल पड़े। जब से ये सुरंग में आये थे अपनी बिजली की टॉर्चों से प्रकाश कर रहे थे। सुरंग में प्रकाश आने का कोई प्रबन्ध नहीं था। तीन बजे के लगभग ये सुरंग के दूसरे द्वार पर पहुँचे। यहां भी मार्ग पेड़ और झाड़ियों से सर्वथा रुका हुआ था। झाड़ियां काटकर खच्चरों के निकलने योग्य मार्ग बनाकर ये लोग सुरंग के बाहर निकले तो इन्होंने अपने को एक अति सुन्दर घाटी में पाया।

यहां ये लोग घाटी में खड़े थे। चारों ओर गगन-भेदी पहाड़ों की चोटियां थीं और सब की सब बर्फ से ढकी हुई थीं। घाटी की तह पर हरियाली थी। यहां छोटी छोटी झाड़ियों का जंगल था, जिन पर छोटे छोटे लाल रंग के फल लगे थे।

इस स्थान पर पहुँच शंकर पंडित ने मान-चित्र निकाला और अपना स्थान उसमें निश्चय कर आगे चलने के लिये तैयार हो गया। उसे वहां से पूर्व की ओर चलना था और उस ओर कोई मार्ग नहीं था। सुरंग तो वायु और आंधी की थपेड़ों से बची थी, परन्तु खुला मार्ग तो इनके प्रभाव से बच नहीं सका। सैकड़ों वर्षों से मरम्मत न होने के कारण, गाड़ी और घोड़ों के चलने-योग्य मार्ग छोड़, यह तो पगडंडी भी नहीं रहा था। इस प्रकार कोई निश्चित मार्ग न देख, पंडित हाथ में

कम्पास लिये, जहां तक सम्भव था, पूर्व की ओर चल पड़ा। झाड़ियां इतनी घनी थीं कि उनमें से गुज़रना कठिन था। पग पग पर खच्चरें अटक जाती थीं और उनके लिये झाड़ियों की शाखायें काटकर मार्ग बनाना पड़ता था। घाटी के तल पर एक अति स्वच्छ और बर्फ-समान ठंडे जल की छोटी सी नदी बह रही थी। यह जल वेग से बहता हुआ घोर नाद कर रहा था और यह नाद चारों ओर खड़े पर्वतों से टकराकर ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रहा था। सूर्य-किरणें वेग से उछलते-कूदते जल की तरंगों पर पड़कर सहस्रों इन्द्र-धनुष बना रही थीं। यह स्थान शंकर पंडित को अति लुभायमान प्रतीत हुआ और उसने इसी नदी के किनारे रात भर के लिये डेरा डालने का निश्चय कर लिया। पहाड़ी सामान खच्चरों से उतार खेमा लगाने लगे और शंकर पंडित नदी-किनारे बैठ जेब से मान-चित्र निकाल प्राचीन पुस्तक का अनुवाद पढ़ने लगा। साथ साथ मान-चित्र भी देखता जाता था।

घंटे भर से अधिक पुस्तक और मान-चित्र के अध्ययन से उसे विश्वास हो गया कि वे ठीक मार्ग पर हैं और इसी घाटी से दूसरी सुरंग आरम्भ होती है।

[२८]

पहाड़ी खेमे गाड़कर खाना पकाने का प्रबन्ध कर रहे थे। शंकर पंडित प्रकृति का सौंदर्य देखने में लीन था। सूर्य अस्ताचल की ओर चल पड़ा था। घाटी चारों ओर ऊंचे ऊंचे पहाड़ों से घिरी होने के कारण शीघ्र ही अन्धेरे में छिपती जाती थी। इस घाटी में न तो कोई पक्षी दिखाई देता था और न ही कोई जंगली जानवर। नदी के गरजने के शब्द के सिवाय और सब प्रकार से शान्ति थी।

एकाएक शंकर पंडित को बहुत से लोगों का भारी स्वर में, कुछ गाने का शब्द सुनाई देने लगा। शब्द कुछ दूर से आता हुआ प्रतीत होता था। शंकर पंडित के कान खड़े हो गये और वह पहाड़ी लोगों की ओर देखने लगा। वे भी अपना काम छोड़ उधर देख रहे थे जिधर से

शब्द आता प्रतीत होता था। इसमें तो सन्देह नहीं रहा था कि यह मनुष्य का अर्थात् बहुत से मनुष्यों के मिलकर गाने की आवाज़ थी। सब को अचम्भा इस कारण हो रहा था कि उनको वहां किसी के रहने की आशा नहीं थी।

शंकर पंडित को जब यह विश्वास हो गया कि वहां उस वादी में मनुष्य का निवास है तो वह हाथ में पिस्तौल और टॉर्च ले उन्हें देखने को उद्यत हो गया। एक पहाड़ी ने कहा, "ये लोग कहीं जंगली न हों।"

"कुछ भी हो। देख लेना और समझ लेना ठीक है। रात होने पर क्या हो सकेगा। शायद हमें दो-तीन दिन यहां रहना पड़े।"

दो पहाड़ियों को साथ ले वह उस ओर चल पड़ा जिधर से शब्द आ रहा था। कुछ दूर जाने पर उसे एक पगडंडी मिली। इससे उसे और भी विश्वास हो गया कि वहां मनुष्य रहते हैं। वह पगडंडी एक पर्वत से नाले की ओर आती थी। शब्द पर्वत की ओर से आ रहा था।

उस पगडंडी पर चलते हुए शंकर पंडित और उसके साथी पर्वत तक जा पहुंचे। वह पगडंडी एक गुफा के द्वार तक थी। शब्द गुफा के भीतर से आ रहा था। गुफा का द्वार साफ़ और उसके बाहर की भूमि समतल और साफ़ थी। द्वार बहुत चौड़ा और ऊंचा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उस द्वार को मनुष्य के हाथों ने खोदकर बनाया है। कन्दरा बाहर से देखने पर बहुत गहरी प्रतीत नहीं होती थी। सामने से यह बन्द थी, परन्तु दोनों पहलुओं की ओर खुली थी। दाहिनी ओर से यह शब्द आ रहा था। शंकर पंडित इसी ओर घूम गया। वास्तव में गुफा ड्योढ़ी मात्र ही थी। इस ड्योढ़ी से बरामदे की भांति दोनों ओर मार्ग गया था। शंकर पंडित जहां जा रहा था वह एक सुरंग सी प्रतीत होती थी जो अंधेरी थी। उसने अपनी टॉर्च जला ली और एक हाथ रिवाल्वर पर रख लिया। सुरंग सीधी नहीं थी, प्रत्युत घूमती जाती थी। लगभग एक सौ पग चले जाने पर यह सुरंग का मार्ग खुला हो गया, अर्थात सुरंग एक बड़े से कमरे में बदल गई। यहां का दृश्य देख तीनों

अचम्भे में खड़े रह गये।

इस स्थान के मध्य में एक कुँड में अग्नि जल रही थी। उस अग्नि के चारों ओर लगभग सौ-सवासौ आदमी पलथी मारे बैठे थे। ये लोग सिर से पांव तक नंगे थे। सिर पर बर्फ-समान श्वेत जटायें, मुख पर दाढ़ी-मूछें बहुत लम्बी लम्बी थीं। कइयों की पीठ पर भी घने बाल थे। मुखों पर झुर्रियां नहीं थीं और न ही शरीर किसी प्रकार से जीर्ण प्रतीत होते थे। सब के सब एक स्वर से कुछ उच्चारण कर रहे थे। जब शंकर पंडित ने ध्यान देकर शब्दों को समझने का यत्न किया तो वह समझ गया कि वे वेद-मन्त्र बोल रहे थे। बात स्पष्ट हो गई कि वे लोग हवन कर रहे थे। गुफा में हवन की अग्नि का ही प्रकाश था और इस से ही वहां पर बैठे लोगों का मुख और आकृति दिखाई देती थी। शंकर ने अपनी टॉर्च बुझा दी और उस स्थान और वहां बैठे लोगों का अध्ययन करने लगा। सब लोग शान्तिपूर्वक बैठे उच्चारण में लीन थे। अग्नि के समीप सब से आगे एक भव्य मूर्ति, आसपास बैठे हुओं में तीन-चार इंच ऊंचा सिर उठाये, बैठा था। या तो अग्नि के प्रकाश से या उसके अपने ओज से उसका मुख औरों से अधिक दैदीप्यमान था। उसे देखते ही शंकर पंडित समझने लगा था कि अवश्य वह ही सब का नेता है।

इतने में सब लोग बोले, "ओं स्वाहा ! स्वाहा ! और साथ ही बैठे हुओं ने अग्नि में कुछ डाला। शकर पंडित ने समझा कि यह अन्तिम आहुति दी गई है। इसके पश्चात वे सब के सब उठ खड़े हुए और शान्ति-पाठ पढ़ने लगे।

जब शान्ति-पाठ हो चुका तो सब पुनः अपने अपने स्थान पर बैठ गये। वह भव्य मूर्ति नहीं बैठा, प्रत्युत अपने स्थान से चलकर वहां पहुंचा जहां शंकर पंडित और पहाड़ी अन्धेरे में खड़े थे। शंकर पंडित इस भव्य मूर्ति को ध्यान से देख रहा था। वह समीप आ पूछने लगा, "को ऽसि (कौन हो) ?"

शंकर पंडित ने भी संस्कृत भाषा में उत्तर दिया, "अहम् शंकर पंडितोस्मी (मैं शंकर पंडित हूं)।"

वार्तालाप संस्कृत भाषा में आरम्भ हो गया। भव्य मूर्ति ने पूछा, "किस देश के रहने वाले हो?"

"भारतवर्ष में नैपाल राज्य का रहने वाला हूं।"

"किस प्रयोजन से आए हो?"

"नैपाल से तिब्बत का मार्ग ढूंढने के लिए।"

"इसमें क्या प्रयोजन है? भारतवर्ष में मलेच्छ राज्य है। वे लोग हमारे आश्रम में आकर विघ्न डालेंगे।"

शंकर पंडित ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "मलेच्छ से आप का क्या अभिप्राय है?"

"आर्य सभ्यता को न मानने वाला।"

शंकर पंडित ने फिर पूछा, "आर्य सभ्यता क्या है?"

"आर्य सभ्यता कर्म-प्रधान है, अर्थात कर्म-फल को अनिवार्य मानने वाली। इससे विपरीत जो यह समझते हैं कि चतुराई से, अथवा सिफारिश से, बुरे कर्मों का फल टल सकता है वे मलेच्छ हैं।"

"तो आप यहां कब से रहते हैं?"

"चार सहस्र वर्ष से यह आश्रम है। तुम कौन हो?"

"मैं आर्य हूं। आपके कथनानुसार कर्म-फल को अनिवार्य मानता हूं।"

वह भव्य मूर्ति मुस्कराया और हाथ से साथ आने का संकेत कर पूछने लगा, "नैपाल राज्य में क्या कार्य करते हो?"

शंकर पंडित कुछ काल तक चुप रहकर यह विचार करता रहा कि वह इन लोगों को क्या और कितना बताये। फिर उस भव्य मूर्ति के आलौकिक प्रभाव के कारण अथवा अपनी कथा बिना छिपाये बताने में हानि न मान कहने लगा, "मैं नैपाल राज्य का कर्मचारी नहीं हूं। मैं वास्तव में भारतवर्ष का रहने वाला हूं और एक ऐसी समिति का

सदस्य हूं जो भारतवर्ष से विदेशी राज्य हटाने की योजना कर रही है। भारतवर्ष पर सात सहस्र मील की दूरी से आये हुए अंग्रेज लोग राज्य कर रहे हैं। इस राज्य से भारतवासियों की आर्थिक हानि तो हो ही रही है, साथ ही चरित्र में पतन भी आ रहा है। हमारी सभ्यता, संस्कृति और धर्म इन विदेशियों के प्रभाव से नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है।

"यों तो भारतवर्ष पर लगभग आठ-नौ सौ वर्ष से विदेशी राज्य कर रहे हैं, परन्तु अंग्रेजों का राज्य तो अत्यंत हानिकर सिद्ध हो रहा है। हम भी इस राज्य को हटाने में सिर-तोड़ यत्न कर रहे हैं।"

शंकर पंडित की यह बात भव्य मूर्ति को अप्रिय नहीं लगी। प्रत्युत उसने उत्सुकता से पूछा, "क्या क्या प्रयत्न किये हैं आपने?"

"अंग्रेज़ों का राज्य अभी भली भांति स्थापित भी नहीं हुआ था कि मरहट्टों, मुसलमानों और आगरा व अवध के रहने वाले कुछ राजा-रईसों ने इन्हें निकाल देने का यत्न किया। यह सन १८५७ में हुआ था। स्वतंत्रता का युद्ध सफल नहीं हुआ। फिर भारतवर्ष में हिन्दू-राज्य स्थापित करने का विचार गुरु रामसिंह कूका तथा स्वामी दयानन्द ने उपस्थित किया। परन्तु यह विचारमात्र ही रह गया। पश्चात् १९०७ में भारत में हिन्दू-मुसलमानों का सांझा राज्य अर्थात् स्वराज्य स्थापित करने का विचार श्री सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, श्री बालगंगाधर तिलक, श्री विपिनचन्द्र पाल प्रभृति महापुरुषों ने उपस्थित किया और इस विचार की पूर्ति के लिये कई प्रयत्न किये गये। १९०७ का बंगाल में 'बॉम्ब कल्ट' अर्थात् बम्बबाज़ी से अंग्रेज़ों को डराकर भगाना, फिर १९११ में दिल्ली षडयंत्र, १९१३ का ग़दर-पार्टी का आयोजन, १९१७ में होम-रूल लीग की स्थापना और फिर १९२१, १९३०, १९३१ और १९४२ में गान्धी जी का सत्याग्रह-आन्दोलन— इस प्रकार कई आन्दोलन किये गये हैं, परन्तु सफल नहीं हुए।"

"और आपने क्या किया है?"

"हमारी संस्था स्वराज्य-संस्थापन-समिति के नाम से है। हमारे

कार्यक्रम में और इससे पहले वाले कार्यक्रमों में अन्तर है। हम जन-साधारण में आन्दोलन को इतना महत्व नहीं देते जितना एक सीमित संख्या में लोगों को उचित शिक्षा देकर उन्हें संगठित करने में। इस दिशा में मैंने एक शिक्षा-आन्दोलन चलाया था। सहस्रों विद्यार्थियों को एक प्रकार की शिक्षा देने का ढंग सिखाकर एक मास के लिये देश भर में लोगों को गुलामी की श्रृंखलाओं को तोड़ फेंकने के लिये तैयार करने के लिये भेज दिया। विचार था कि कुछ वर्षों तक वर्ष में एक मास यही किया जाएगा, परन्तु यह भी चल नहीं सका। उस योजना में जो दोष था उसे समझकर और दूर कर अब यह समिति बनाई है। इस में मेरे साथ सहयोग देने वाले कई और भी धनी-मानी और अनुभवी विद्वान भी हैं। हम लगभग बीस लाख ऐसे युवक तैयार करना चाहते हैं जो देश के स्वाधीनता के युद्ध में प्रत्येक प्रकार से कार्य करने के लिये शिक्षित हों।"

इस पर उस भव्य मूर्ति ने बताया, "मैं लगभग छः सौ वर्ष से समाधिस्थ था। यह समाधि मैंने लगभग एक पक्ष हुआ तोड़ी है, इस से बहुत सी बातों का मुझे ज्ञान नहीं है।"

शंकर पंडित का विस्मय उसकी प्रत्येक बात से बढ़ता जाता था। वह छः सौ वर्ष की समाधि की बात सुन तो अवाक मुख रह गया। छः सौ वर्ष की समाधि का अर्थ तो था इतने काल तक बिना भोजन के रहना। इस पर भी उसका शरीर उसे किसी प्रकार से भी क्षीण नहीं दिखाई दिया। वह कठपुतली की भांति उसके पीछे पीछे चल उसके समीप जा बैठा जहां वह भव्य मूर्ति पहले बैठा था। वह भव्य मूर्ति शंकर पंडित का विस्मय निवारण करने के लिये कहने लगा, "मेरी आयु दो सहस्र पांच सौ चौबीस वर्ष है।"

"सत्य ? आपका नाम क्या है ?"

"मेरा नाम चुमुण्ड था, परन्तु अब मुझे व्यास कहते हैं। इस म के गुरु की पदवी व्यास के नाम से विख्यात है। मैं जब यहां

आया था तो यहां पर एक और व्यास अर्थात् गुरू थे। उनका नाम अविकीर्ण था। वे मेरे आने से पूर्व दो सहस्र वर्ष से अधिक यहां रह चुके थे। उनको देह छोड़े हुए सात सौ वर्ष के लगभग हो चुके हैं। तब से मैं यहां का गुरु नियत हुआ हूं।"

"आपके ये साथी आपसे आयु में छोटे हैं या बड़े?"

"कई लोग मुझसे बड़े हैं," एक की ओर संकेत कर गुरु ने कहा, "ये कर्मिष्ठ हैं। इनकी आयु तीन सहस्र वर्ष से ऊपर है। हम में से कोई भी एक सहस्र वर्ष से कम आयु का नहीं। जब से यह मार्ग बंद हुआ है आश्रम में कोई नया रहने वाला नहीं आया।"

"आप लोग इस घाटी से बाहर भी जाते हैं या नहीं?"

"जाया करते थे, परन्तु जब से भारत में यवनों का राज्य हुआ है तब से हमारा बाहरी संसार में आना-जाना नहीं रहा।"

"आपके आश्रम में लोग इतनी लम्बी आयु तक जीवित कैसे रहते हैं?"

"काया-कल्प विधान और समाधि के द्वारा जीवन लम्बा किया जा सकता है।"

"जीवन अधिक से अधिक कितना लम्बा किया जा सकता है?"

"इस समय सब से दीर्घ आयु वाले कर्मिष्ठ ही हैं।"

"इतनी लम्बी आयु से क्या लाभ होता है?"

"ज्ञान और आत्म-शक्ति में वृद्धि।"

"इस वृद्धि से क्या लाभ जब आप उसका प्रयोग ही नहीं करते?"

"भगवान विकीर्ण व्यास और मुझ में इस बात पर मत-भेद हो गया था। प्राचीन काल में हिमालय पर्वत और सुमेरु पर्वत पर ऐसे कई आश्रम थे। इन आश्रमों में मनन और ध्यान से ज्ञान-वृद्धि का प्रयत्न होता था। जीवन और जगत के गूढ़ रहस्यों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता था। देश-देशान्तरों के विद्वान यहां आते थे और सहस्रों वर्षों के मनन से प्राप्त ज्ञान से लाभ उठाते थे। जो मीमांसा जीवन

की अथवा आत्मा-परमात्मा की इन आश्रमों में होती थी, उससे लोगों का मतभेद होने लगा। विपक्षियों को अपना मत मनाने के लिए बल-प्रयोग होने लगा। बलवान का मत प्रबल होने लगा। तब इन आश्रम वालों में संसार से तटस्थ रहने का विचार उत्पन्न हो गया। जो धैर्य से अपने विपक्षी का मत नहीं सुन सकता उसे सुनाने में लाभ न मान आश्रम वालों ने अपने को संसार से उदासीन बना लिया। परिणाम यह हुआ कि लोग आश्रमों की उपस्थिति ही भूल गये। हमें भी अपनी उपयोगिता में संदेह होने लगा।

"सात सौ वर्ष के लगभग हुए हैं जब विकीर्णदेव नैपाल मार्ग से भारतवर्ष में गये थे, तब यवन अधिपति गौरी-वंशज मुहम्मद ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था। इन्द्रप्रस्थ के राजा पृथ्वीराज ने कन्नौज के राजा जयचन्द्र की लड़की का स्वयंवर में उसके पिता की इच्छा के विरुद्ध अपहरण किया था। इससे जयचन्द्र यवन-राजा की सहायता करने के लिये तैयार हो गया। गुरु विकीर्ण व्यास ने जयचन्द्र को समझाया कि निज की बात को समाज के सामूहिक लाभ में बाधा नहीं बनने देना चाहिये। वह पृथ्वीराज की सहायता को तैयार हो गया, परन्तु युद्ध के पूर्व ही उसने अपनी सेना को अपने दामाद के विरुद्ध खड़ा कर दिया। यवन-अधिपति कई बार पृथ्वीराज से हार खा चुका था, परन्तु जयचन्द्र की सहायता पर विजयी हो गया।

"इस पराजय के पश्चात् भगवान विकीर्ण व्यास ने भारतीय राजाओं-महाराजाओं को संगठित कर पुनः यवन-राज से भिड़ा देने का यत्न किया, परन्तु उन में आर्यत्व लोप हो चुका था। उन में अधिकांश स्वार्थरत थे और कुछ परलोक सुधारने में लीन थे। परिणाम यह हुआ कि देश में यवनों का राज्य स्थापित हो गया। भगवान विकीर्ण व्यास असफल हो आश्रम में लौट आये। इस घटना के पश्चात् उन्होंने अपने जीवन और अपने संचित ज्ञान को व्यर्थ समझ देह छोड़ दी।"

"मैं उनसे मतभेद रखता था। मैं समझता था कि जीवित रहकर

समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये। उपयुक्त समय पर आर्य लोगों को हमारे ज्ञान की आवश्यकता पड़ेगी और हमें उन लोगों को सुखी रखने के लिए इस अद्वितीय ज्ञान और शक्ति को संचित रखना चाहिये। हिमालय के अधिकांश आश्रमों के निवासी भगवान विकीर्ण व्यास के मत के थे और एक के पश्चात् दूसरे देहावसान करते गये। वे आश्रम बंद हो गये और उनके सदस्य जो मेरे विचार के थे इस आश्रम में आकर रहने लगे। इस समय यहां एक सौ दस महानुभाव निवास करते हैं।

"जब दिल्ली में अलाउद्दीन राज्य करता था और लोगों में बल, छल, लोभ, लालच से इस्लाम का प्रचार कर रहा था, लोग त्राहि त्राहि कर उठे थे। इसे सुअवसर जान मैं भारतवर्ष में गया और मैंने हिन्दू राजा-रईसों का एक सम्मेलन बुलाया। मैं चाहता था कि उनको संगठित कर इस्लाम के विरोध के योग्य कर दूं। सब मेरी बात को मानते थे परन्तु अपना नेता और भारत का सम्राट चुनने में सहमत न हो सके। परिणाम यह हुआ कि दो मास तक, गोरखपुर में, वादविवाद करने के पश्चात्, बिना किसी निश्चय पर पहुंचे सब लोग अपने अपने घर लौट गये। वास्तव में उन में कोई भी नेता बनने के योग्य नहीं था। जैन तथा वैष्णव मतों ने भारतवासियों में समाजत्व का लोप कर दिया था। देश में मान-प्रतिष्ठा उसकी होने लगी थी जो संसार का त्याग करे, न कि जो संसार का नेता बने। ऐसे लोगों से सम्पर्क त्याग देने के लिये मैं समाधिस्थ हो गया। यह समाधि एक पक्ष हुआ टूटी है।

"जबसे समाधि टूटी है मैं संसार की बातों को जानने का यत्न कर रहा हूं।"

"संसार की बातों को? कैसे? आप तो बाहर आते-जाते नहीं हैं?"

"ठीक है। परन्तु हमारे पास साधन हैं कि हम पृथवी पर की किसी भी बात को सुन सकते हैं और किसी भी घटना को देख सकते हैं।"

"बहुत ही अचम्भा करने की बात है।"

"इस में विस्मयजनक बात कुछ भी नहीं। विस्मय तो इस बात का

है कि हम कभी कभी भविष्य में होने वाली बातें भी जान जाते हैं।"

"कैसे?"

"यह बात बताने की नहीं है, देखने और दिखाने की है।"

इस सब वृत्तान्त को सुन शंकर पंडित चकित रह गया। वह मन में सोचता था कि ये लोग सब प्रकार से संसार से पृथक होने पर भी संसार की बातों में रुचि रखते हैं। भारतवर्ष से इनका अधिक स्नेह है और वहां के लोगों को आर्य कहते और समझते हैं। वह मन ही मन इन्द्र, नारद, विश्वामित्र, शिव, ब्रह्मा इत्यादि देवताओं का हिमालय और सुमेरु पर रहना और उनका आर्य लोगों के मामलों में हस्ताक्षेप स्मरण कर रहा था।

[२१]

जब शंकर पंडित व्यासदेव से वार्तालाप कर रहा था तो आश्रम के प्रायः सब लोग घूमने बाहर चले गये थे। व्यासदेव भी उठा और शंकर पंडित को साथ ले गुफा से बाहर निकल आया। दोनों नदी की ओर चल पड़े। सायंकाल हो गया था और शंकर पंडित के खेमों से अग्नि का धुँआ उठता दिखाई दे रहा था। वहां खाना पक रहा था। व्यासदेव ने पूछा, "यह क्या हो रहा है?"

"यह हमारा डेरा है और भोजन तैयार हो रहा है।"

"यहां इसकी आवश्यकता नहीं। आप सब को खाने को मिल जायगा।"

"क्या खाते हैं आप?"

"हम लोग तो सप्ताह में एक अथवा दो बार ये फल खाते हैं," इतना कह उसने झाड़ियों पर लगे हुए लाल रंग के फलों की ओर संकेत किया।

"आप हमें क्या खाने को देंगे?"

"आप लोग ये फल पचा नहीं सकेंगे। इस कारण आपको दूसरे फल केला, अमरूद इत्यादि देंगे। हमने एक बग़ीचा इन फलों का लगा

रखा है। जब हम में से कोई व्रत रखता है तो उसे वे फल खाने को मिलते हैं।"

शंकर पंडित सोच रहा था कि वह सत्य कह रहा है क्या? वह उसकी प्रत्येक बात पर उसका मुख देखने लगता था और केशों से वृद्धता और शरीर से यौवन देख चकित रह जाता था। इस समय वे उस स्थान पर पहुँच गये थे जहां शंकर पंडित के साथी डेरा डाले पड़े थे। शंकर पंडित ने देखा कि आग जल रही थी, परन्तु खाना नहीं बन रहा था। वहां कई प्रकार के पके हुए फल एक ढेर में रखे हुए थे। एक पहाड़ी ने बताया, "ये इन लोगों ने भेजे हैं," और व्यासदेव की ओर संकेत कर दिया।

व्यासदेव ने कहा, "मैं अब लौट जाना चाहता हूं। आप मेरे साथ आइये। मैं आपसे बहुत कुछ पूछना चाहता हूं।"

शंकर पंडित वापिस लौट पड़ा। व्यासदेव ने पूछा, "आप इस गुप्त मार्ग को जानकर क्या करेंगे?"

शंकर पंडित के मन में शरारत सूझी। वह मुस्कराकर बोला, "आप तो भविष्य को जान जाते हैं न? आप ही बता दीजिये।"

"मैं त्रिकालज्ञ नहीं हूं। मैंने तो कहा था कि हम भविष्य में होने वाली घटनाओं को भी कभी कभी जान जाते हैं। हमारे पास इसको जानने के साधन हैं। आइये, मैं आपको दिखा सकता हूं।"

"अच्छी बात है।"

व्यासदेव ने बात फिर आरम्भ कर दी, "जब मैंने समाधि ली थी तो दिल्ली में अलाउद्दीन राज्य करता था। लगभग छः सौ वर्ष के पश्चात् अब मैंने समाधि तोड़ी है। बहुत सी बातें मैंने आश्रम-निवासियों से जान ली हैं। शेष मैं जानना चाहता हूं। हमारे पास जो यंत्र हैं उनसे हम, लोगों के उन विचारों को ही जान सकते हैं जो वे बातों में कहते हैं। जो बातें और घटनायें भूतकाल में हो चुकी हैं उनका चित्र धीरे धीरे धुँधला होता जाता है। उनको देखने में कठिनाई होती है। उन्हें

हमें लिखित पुस्तकों में देखना पड़ता है।"

"कहां का चित्र धुंधला पड़ता जाता है?"

"जो कोई घटना इस पृथवी पर घटती है अथवा जो कुछ कोई मनुष्य कहता है वह सब द्यूलोक में अंकित हो जाता है। जिन बातों और घटनाओं का प्रभाव गहरा होता है उनका चित्रण स्पष्ट होता है और अधिक काल तक रहता है। इस पर भी कालान्तर से धीरे धीरे मिटता जाता है। हमारे पास ऐसे यंत्र हैं जो द्यूलोक के इन चित्रों को हमारी आखों के सम्मुख चित्रित कर देते हैं।"

शंकर पंडित बातों के अर्थ तो समझ रहा था, परन्तु वह नहीं समझ सका था कि इन लोगों के पास वे यंत्र कहां हैं, और फिर द्यूलोग कहां हैं और वहां कैसे चित्र बन रहे हैं। सब से बड़ी बात तो यह थी कि इन लोगों के पास पहनने को कपड़ा तक तो था नहीं और इतने अद्भुत यंत्रों की बात ये कर रहे थे। व्यासदेव शंकर पंडित के मुख को देख यह जान गया था कि उसके कहने का विश्वास नहीं हो रहा। इससे वह पूछने लगा, "आपको इन बातों का विश्वास नहीं होता न? देखिये, आप ही के विषय में मैं कुछ बातें बताता हूं। आज से पांच दिन पूर्व पाटन से दस मील इधर इस मार्ग के द्वार पर की झाड़ियां आप लोग काट रहे थे। इस काम में आपको तीन दिन लगे। फिर एक दिन आपने कुछ नहीं किया और उससे अगली रात आप रात को ही खच्चरों पर माल लादकर इस मार्ग के द्वार पर आ पहुंचे और आज प्रातःकाल से आप चलते हुए मध्यान्ह पश्चात् यहां पहुंचे थे। जब आप खेमा लगा रहे थे तब हमारे उपासना का समय हो गया और हम आपको छोड़ हवन पर आ बैठे।"

"तो आपको यह भी विदित हो गया होगा कि हम किस प्रयोजन से इधर आ रहे हैं?"

"हां, वे सब बातें जो आप परस्पर करते रहे हैं हम अब भी बता सकते हैं। परन्तु आपके इस मार्ग का ढूंढने का मुख्य प्रयोजन उन

बातों में नहीं आया। इससे हम नहीं जानते।"

इस समय वे गुफा के द्वार पर पहुंच गये। शंकर पंडित को व्यासदेव अब बांई ओर ले गया। हवन करने का स्थान दाहिनी ओर था। गुफ़ा में पूर्ण अन्धकार था। कुछ दूर तक तो पंडित बाहर के धुधंले प्रकाश में मार्ग देख चलता गया। पश्चात् उसे दिखाई देना बन्द हो गया और वह पावों से टटोल टटोलकर चलने लगा। इस समय व्यासदेव ने कहा, "अन्धेरा प्रतीत होता है क्या ?"

"अजी, मेरी आंखें बिल्ली की नहीं है।"

"अच्छी बात। अपने स्थान पर खड़े रहो। मैं प्रकाश करता हूं।"

शंकर पंडित वहीं खड़ा हो गया। एक आध मिनट तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी, फिर धीरे धीरे अन्धेरा लुप्त होता और प्रकाश बढ़ता प्रतीत होने लगा। उसने ऊपर, नीचे और चारों ओर देखा, परन्तु वह नहीं जान सका कि प्रकाश कहां से आरहा है। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि गुफा की छत और दीवारें प्रकाशमय हो गई हैं। प्रकाश दीवारों और छत से ही निकलता प्रतीत होता था। एक और मिनट में इतना प्रकाश हो गया कि शंकर पंडित अपने हाथ की बारीक से बारीक रेखा भी देख सकता था। व्यासदेव उसके समीप खड़ा था। शंकर पंडित ने पूछा, "यह आपने कैसे किया है ?"

इसका उत्तर देने के बजाय व्यासदेव ने कहा, "अब चले आओ।"

दोनों आगे बढ़े। इस सुरंग में कुछ दूर जाने पर वैसा ही एक बड़ा कमरा आया जैसा की सामने कि सुरंग में था। यह भी पूर्ण रूप से प्रकाशमय हो रहा था। इस कमरे के एक कोने में आश्रम के कुछ लोग खड़े किसी वस्तु को ध्यान से देख रहे थे। व्यासदेव ने बताया, "यह हमारी यंत्रशाला है। यहां हमारे भिन्न भिन्न प्रकार के यंत्र रखे हैं जिनसे हम बाह्य संसार से सम्पर्क रखते हैं। आइये, आपको दिखाऊं। ये लोग यूरोप के युद्ध की घटनाओं को देख रहे हैं।"

यूरोप का युद्ध !" यह शंकर पंडित के विस्मय को पराकाष्ठा तक ले जाने वाला सिद्ध हुआ। वह उन लोगों के समीप जा खड़ा हुआ। वे लोग एक कुँड के चारों ओर खड़े थे। कुंड में बिल्लौर की भांति एक सपाढ और स्वच्छ वस्तु रखी थी। उस में ये लोग देख रहे थे।

एक नगर का चित्र था। मकानों, दूकानों और बाजारों के दृश्य थे। स्थान स्थान पर फ़ौज़ी मोर्चा डाले खड़े थे। मकानों की छतों और दूकानों के भीतर से लोग उन मोर्चा डालने वाले सिपाहियों पर गोलियां चला रहे थे। वे भी मशीन-गनों से मकानों की छतों और सामने की दूकानों पर गोलियों की बौछार कर रहे थे। एक मकान के सामने तो घमसान लड़ाई मच रही थी। आक्रमण करनेवालों में से भी लोग धड़ाधड़ घायल हो रहे थे और मर रहे थे। मकान के नीचे दूकान थी और दूकान के बाहर साइनबोर्ड लगा था। साइनबोर्ड पर लिखा हुआ पढ़ शंकर पंडित ने कहा, "यह तो ओडिस्सा है।"

"हां," व्यासदेव ने कहा, "आप यहां की भाषा जानते हैं ?"

"मैंने इसे पढ़ा है। ये बाज़ारों में मोर्चा बांधे रूसी प्रतीत होते हैं।"

"हां, रूसी जर्मन वालों से यह नगर वापिस छीन रहे हैं और जर्मन या यों कहो कि जर्मनों के आधीन रुमानियन सिपाही नगर छोड़ कर भाग रहे हैं।"

कुंड के समीप एक कीली लगी थी। एक आश्रम-निवासी ने उसे घुमाया। इससे कुंड में की तस्वीर बदलने लगी। एक बाज़ार के पश्चात् दूसरा दिखाई देने लगा। इस प्रकार बदलते बदलते बन्दरगाह का दृश्य सम्मुख आगया। वहां पर जहाजों में घायल और स्वस्थ सिपाही चढ़ रहे थे। टैंक, हवाई जहाज़, तोपें और अन्य लड़ाई का सामान भी लादा जा रहा था।

व्यासदेव ने कहा, "यह 'ब्लैक सी' का दृश्य है। यहां भगदड़ मच गई है। व्यासदेव के कहने पर कीली और घुमाई गई और कुँड में

दृश्य बदलने लगे। इस बार कीली को नीचे दबाकर घुमाया गया और दृश्य जल्दी जल्दी बदल रहे थे। एक स्थान पर पहुँचकर व्यासदेव के कहने पर कीली पुनः ऊपर उठा ली गई और अब घुमाने पर दृश्य स्पष्ट और समीप दिखाई देने लगा।

व्यासदेव ने कहा, "यह बुखारेस्ट है। रूसी हवाई जहाज़ यहां आक्रमण कर रहे हैं।"

हवाई जहाज़ों से मच रही तबाही स्पष्ट दिखाई दे रही थी। अब पुनः कीली को दबाकर घुमाया गया। इस बार रूस के एक नगर का दृश्य था। यहां पहुंचकर फिर कीली को उभार लिया गया और दृश्य समीप होने से देखा गया कि यह युराल पर्वत का दृश्य है। बर्फ से लदी चोटियां और मैदान थे। दृश्य बदलते बदलते एक बहुत भारी कारखानों के केन्द्र पर पहुंच गया। एक कारखाने के सम्मुख पहुंचकर कीली का घुमाना रोक दिया गया। कारखाने के फाटक से टैंक बन बनकर निकल रहे थे। प्रत्येक दो मिनट में एक टैंक निकलता था। इस प्रकार टैंकों का एक प्रवाह सा निकल रहा था। व्यासदेव ने कहा, "यह जाति कभी हार नहीं सकती। अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ कि इस कारखाने की नीव रखी गई थी और अब दो मास हो गये हैं कि यहां से इन टैंकों की एक नदी सी बहती चली जा रही है। इसी प्रकार अन्य कारखाने हैं। कहीं पर तोपें, कहीं बंदूकें और कहीं गोला-बारूद इसी वेग से बन रहा है। इन कारखानों के चालू होने से युद्ध के मैदानों में इस प्रकार के सामानों का एक ज्वार-भाटा सा आगया है।"

इसके पश्चात् कारखानों के भीतर-बाहर के बहुत से दृश्य देखे गये। इस बीच में शंकर पंडित ने भारतवर्ष के किसी स्थान के दृश्य को देखने की इच्छा प्रकट की। इससे कीली घुमाने वाले ने पुनः कीली को नीचे दबाया और घुमाना आरम्भ कर दिया। देहली का दृश्य सामने आगया। दृश्य के समीप करने पर कनॉट सरकस और वहां से पार्लियामेंट स्ट्रीट और ऑल इंडिया रेडियो का मकान दिखाई दिया।

इस समय व्यासदेव ने पूछा, 'आप कुछ सुनना भी चाहेंगे शायद ?"

"हां, यदि सम्भव हो तो।"

व्यासदेव ने कीली घुमाने वाले की ओर घूमकर देखा। उसने उस कुंड के समीप एक ओर लगी हुई कीली को घुमाया। शीघ्र ही किसी के हिन्दुस्तानी में बोलने की स्पष्ट आवाज़ सुनाई देने लगी। फिर पहली कीली को घुमाने से दृश्य ब्रॉडकास्टिंग हाउस के भीतर का आगया। एक हिन्दुस्तानी, माईक्रोफ़ोन के सम्मुख बैठा, एक काग़ज हाथ में लिये पढ़ रहा था। पढ़ने वाला कह रहा था, "मिस्टर एमरी 'सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट फॉर इंडिया' ने पार्लियामैन्ट में मिस्टर सुरेन्सन के एक प्रश्न के उत्तर में कहा, 'बंगाल में अकाल की जो भयानक अवस्था कुछ हिन्दुस्तान के समाचार-पत्रों ने लिखी है वह सत्य नहीं है। कुछ भिखमंगे ज़रूर मर रहे हैं। वैसे आम लोगों की अवस्था अच्छी है।' इस वक्तव्य के पश्चात् अब किसी को यह कहने की अथवा लिखने की आवश्यकता नहीं रही कि हिज़ मैजेस्टीज़ की सरकार को हिन्दुस्तान के लोगों के खाने-पीने का फ़िकर नहीं है। भारत सरकार के महकमा-खुराक ने पंजाब से बंगाल के लिये गेहूं खरीदने का प्रबन्ध कर दिया है। फूड मैम्बर साहब अपनी ओर से सिर-तोड़ यत्न कर रहे हैं कि जल्दी से जल्दी अन्न-अनाज बंगाल में पहुंच जावे।

"कठिनाई यह है कि हिन्दुस्तान में दस वर्ष में लगभग पांच करोड़ की आबादी बढ़ गई है। हिन्दुस्तान में इन सब के लिये अन्न उत्पन्न नहीं होता, इस कारण कुछ लोगों को भूखे मरना ही पड़ेगा। इस समय दुनिया की हालत ऐसी है कि विदेशों से हिन्दुस्तान में अन्न-अनाज लाना कठिन है। फूड मैम्बर ने 'ग्रो मोर फूड' (अधिक अनाज पैदा करो) की नीति का प्रचार आरम्भ कर दिया है और आशा की जाती है कि मरने वालों की संख्या शीघ्र ही कम हो जायेगी।"

व्यासदेव शंकर पंडित को इसी कमरे के एक दूसरे कोने में लेगया। वहां ले जाकर उसने कन्दरा की दीवार में एक चौकोर पत्थर को

दिखाया और कहा, "इस पत्थर के पीछे वह यंत्र लगा है जिसके द्वारा हम प्रकृति की अतुल शक्ति का उपयोग कर सकते हैं। प्रत्येक पदार्थ के प्रत्येक परमाणु में भारी परिमाण में शक्ति रहती है। इस यंत्र से हम उस शक्ति का उपार्जन करते हैं। यूरोप के लोग, जो अपने को विज्ञान के भारी पंडित मानते हैं, अभी इसे प्राप्त करने का ढंग नहीं जान सके। अमेरिका में एक बड़ा कारखाना जो मीलों तक फैला हुआ है इसी काम के लिये लगा हुआ है। जो कुछ वहां किया जा सका है वह एक बहुत कम मात्रा में मिलने वाले पदार्थ के परमाणुओं की सहायता से एक दूसरा पदार्थ बनाया गया है और उस दूसरे पदार्थ के परमाणुओं को तोड़कर उनसे शक्ति प्राप्त करने का उपाय किया गया है। अभी तक तो वे लोग उस शक्ति से विनाशकारी कार्य ही कर सके हैं। इसके विपरीत हम एक ऐसी धातु से, जो दुनिया में काफी मात्रा में मिलती है, इस शक्ति को एक धारा-प्रवाह के रूप में प्राप्त कर सकने में सफल हो चुके हैं। धातु सीसा है। सीसा पहले एक क्रिया से सजग अर्थात् उत्तेजित किया जाता है। फिर इसे हम ऐसे ढंग पर इस यंत्र में लगाते हैं कि उस सीसे के टुकड़े की परमाणु-अन्तर्गत-शक्ति एक धारा के रूप में निकलने लगती है।

"इस शक्ति के प्रवाह को हम क्रियात्मक और विनाशात्मक कामों में लगा सकते हैं। आपने देखा है कि मैंने पूर्ण कन्दरा को प्रकाशमय कर दिया है। यह इसी शक्ति से किया है। हमारी सार्वभौमिक दिव्य दृष्टि तथा दिव्य श्रवण-शक्ति इसी के आश्रय बनी है और चलती है और अनेकों अन्य काम हम इसी शक्ति के आश्रय कर सकते हैं और यदि चाहें तो पूर्ण भारतवर्ष के कामों को फोकट में चला सकते हैं। इस शक्ति को परमाणुओं से मुक्त करना एक काम है और इस को किसी कार्य में लगाना दूसरा काम है।"

शंकर पंडित के मन में एक बात बार बार उठ रही थी। वह अब इसे पूछे बिना नहीं रह सका। उसने पूछा, "परन्तु भगवन्, यदि आप

इतने विशाल ज्ञान को रखते हैं तो क्या आप अपने लिये वस्त्र नहीं बना सकते ? आप नंगे हैं। आपके केश अनियमित रूप में बढ़े हुए हैं। आप भोजन पकाकर खाने के स्थान पर केवल फल खाते हैं। ये सब बातें तो विज्ञान-विहीन लोगों की सी प्रतीत होती हैं।"

व्यासदेव हंस पड़ा। फिर शंकर पंडित की ओर घूमकर कहने लगा, "आप हमारे पास आकर रहें तो दस वर्ष के भीतर ही आप कपड़ों का पहनना अथवा अन्न-अनाज का पका हुआ खाना पसन्द करना छोड़ देंगे। जब बाहर के संसार से कभी कोई नया व्यक्ति यहां रहने आता है तो वह कुछ वर्ष तक तो कपड़े पहनना, केश संवारना, पका भोजन करना पसन्द करता रहता है; पश्चात् अपने आप ही, बिना हमारे कहने अथवा प्रेरणा करने के, इन व्यर्थ की बातों को छोड़ देता है। हमारी पूर्ण शक्ति और रुचि तो ज्ञान प्राप्त करने और उस ज्ञान से आनन्द-भोग करने में लग जाती है। हमें कपड़े इत्यादि व्यर्थ की बातों में रुचि ही नहीं रहती।"

इसी प्रकार बातें करते करते वे और कुछ और लोग यज्ञशाला अर्थात उसी कमरे में चले आये जहां हवन हो रहा था। वहां कुछ लोग बैठे वही बेर के समान लाल रंग के फल खा रहे थे। शंकर पंडित ने पूछा, "सब लोग नहीं खाते क्या ?"

"नहीं। सप्ताह में एक या दो बार खाने की आवश्यकता रहती है। यह फल गरिष्ठ और शक्तिकारक है। एक बार खाने से कई दिन तक आधार रहता है। जिस दिन जिसको भूख लगती है यहां भोजन के समय आजाता है और फल खाता है।"

"तो आपने भोजन करना है आज ?"

"हां, मुझे आज भूख लग रही है।"

[२२]

व्यासदेव और शंकर पंडित खाने के लिये बैठ गये। शंकर पंडित केले और अमरूद खा रहा था और व्यासदेव वही लाल फल। दोनों

परस्पर बातें भी करते जाते थे। व्यासदेव ने कहा, "हिन्दुस्तान में अपने राजा से कितने लोग संतुष्ट हैं और कितने असंतुष्ट ?"

यों तो कोई नहीं चाहता कि अंग्रेज़ राज्य करें, परन्तु इस पर भी लोगों में अंग्रेज़ी राज्य हटा देने के विषय में भिन्न भिन्न विचार हैं। जनता का एक भाग है जो उन्हें तुरन्त निकाल बाहर करना चाहता है और ऐसे लोग भी हैं जो यह चाहते हैं कि धीरे धीरे राज्य अंग्रेज़ों से हिन्दुस्तानियों के हाथ में आवे। उनका अभिप्राय यह है कि जनता में जो स्थिति उनकी बन गई है वह बनी रहे। क्रान्ति में, अर्थात एकदम राज्य बदलने से, उनके अपनी स्थिति से च्युत हो जाने की संभावना है। कुछ लोग ऐसे हैं जो यह चाहते हैं कि राज्य अंग्रेज़ों के हाथ से निकलकर उनके सम्प्रदाय वालों के हाथ में आए, दूसरे मत वाले राज्य-कार्य न संभाल लें। इस प्रकार के मत-भेदों से अंग्रेज़ अपनी राज्य-सत्ता जमाये हुए हैं।"

"देखिये पंडित जी, हम लोग जो सैंकड़ों वर्ष तक संसार से पृथक रहकर भी अपना निर्वाह आनन्दपूर्वक कर सकते हैं, भारतवर्ष के सांसारिक मामलों में क्यों रुचि रखते हैं, यह एक प्रश्न है। मैं समझता हूं कि इसके विषय में मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर दूं तो ठीक होगा। संसार में सुख और शान्ति स्थापित रहने से हमें भी सुख और शान्ति मिलती है। लोगों को कीड़े-मकोड़ों की भांति मरते देख हमें दुख होता है। ये लोग क्यों परस्पर लड़कर मरते हैं, हम इसमें विचारों की अशुद्धता ही कारण मानते हैं। भारतवर्ष में एक ऐसी विचारधारा प्रचलित है जो संसार में सुख-शान्ति स्थापित करने और मानव-समाज को उन्नत करने की शक्ति रखती है। वह विचार-धारा है पुनर्जन्म का सिद्धान्त और कर्मों के फल मिलने में अनिवार्यता। जहां राजा से लेकर चाण्डाल तक यह समझता हो कि यद्यपि उससे किये गये अच्छे और बुरे कामों का फल दिखाई नहीं देता, तो भी फल अवश्य मिलेगा और इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में, वहां यह एक प्रकार का मनुष्य

की उच्छृङ्खलता पर प्रतिबंध है। अन्य किसी भी जाति की विचार-धारा में यह बात इस प्रकार धंसी हुई नहीं है जैसी भारतीय सभ्यता में है। हमने यह निश्चय किया है कि जो इस प्रकार की विचार-धारा रखते हैं उनकी विजय होनी चाहिये, जिससे वह जाति संसार में सुख और शान्ति स्थापित कर सके।"

"आप ठीक कह रहे हैं," शंकर पंडित ने उत्तर दिया, "परन्तु कई कारणों से अधिकांश भारतवासी ऐसी विचारधारा रखते हुए भी काम-काज में इसके अनुकूल आचरण नहीं करते। इस समय युद्ध चल रहा है। अनेकों लोग युद्ध के लिये सामग्री बनाने में लगे हुए हैं और यह तो हम लोग जानते है कि कितनी धोखा-धड़ी, बेईमानी और रिश्वत चल रही है। देखते देखते लोग भिखारी से राजा हो गये। वे स्वयं और उनको देखने वाले भी जानते हैं कि उनकी कमाई अधर्म की है, इस पर भी लोग समझते हैं कि वे पूर्व जन्म के पुण्य-कर्मों से धनी हुए हैं।"

"यह ठीक है और यही कारण है कि भारतवर्ष परतन्त्र है, परन्तु जो अच्छाई, बीज-रूप में, भारतीय सभ्यता में उपस्थित है वह अपना रंग लाये बिना नहीं रह सकती। हमारा तो यह मत है कि किसी अच्छे सिद्धान्त को मानते हुए यदि दूषित परिस्थिति के कारण लोग बिगड़े हुए हैं तो वे सुगमता से सुधर सकते हैं। सब से बड़ी बात तो यह है कि ऐसे लोगों के हाथ में राज्य-सत्ता सदैव हितकर ही सिद्ध होगी। पाश्चात्य सभ्यता में यही दोष है कि वे लोग मनुष्य का वर्तमान जीवन ही सब कुछ मानते हैं, अर्थात् न इसके पूर्व कुछ था और न पीछे कुछ रहेगा। अतएव जब यह देखा जाता है कि एक मनुष्य धोखा-फरेब से जन्म भर सुख और आनन्द प्राप्त कर लेता है तो लोगों का ईमानदारी और न्याय में विश्वास ही उठ जाता है। इससे दिन-प्रतिदिन समाज पतन की ओर ही जाता है। यही कारण है कि भौतिक वैभव प्राप्त करने पर भी यूरोप घोर पतितावस्था में है। लोग कीट-पतंग की भांति पैदा होते हैं, क्षण भंगुर सुख-वैभव में चकाचौंध रहकर मर जाते हैं।"

"इस पर भी वे संसार पर राज्य करते हैं।"

"उनके संसार पर राज्य करने से हमें चिन्ता नहीं। हमें चिन्ता है आर्य धर्म के मानने वालों पर उनके राज्य करने की। मुसलमान और अंग्रेजों का राज्य भारतीयों पर उचित नहीं। इस पर भी वे शासक हैं और इस में कारण है भारतीयों के हाथ में अनमोल रत्न रहते हुए उसके मूल्य को न जानना।"

इस पर शंकर पंडित ने नैपाल-तिब्बत मार्ग को ढूंढने का कारण बताते हुए कहा, "हम भारतबर्ष में स्वराज्य स्थापित करने की योजना बना रहे हैं। उस योजना में हमें भारतवर्ष से बाहर रहकर कुछ तैयारी करनी है। इससे हम चाहते हैं कि विदेशों से सम्पर्क रखने के लिये भारत की सीमा को पार करने का कोई गुप्त मार्ग मिल जाय। चालू मार्गों पर अंग्रेज़ों की देखरेख रहती है।"

"स्वराज्य का क्या रूप होगा ?"

"प्रजातंत्र राज्य-पद्धति प्रचलित होगी। परन्तु यह बात तो पीछे विचार करने की है। हमारी संस्था तो अभी विदेशी राज्य को हटाने का यत्न कर रही है।"

"राजा कौन होगा ?"

"प्रजातंत्र राज्य-पद्धति में राजा को प्रधान कहते हैं जो समय समय पर लोगों की सम्मति से बदला जा सकता है।"

"राजा के पद के इच्छुक लोगों के लिये कोई न्यून से न्यून योग्यता निश्चित होगी या नहीं ?"

"होनी ही चाहिये; परन्तु यह योग्यता क्या होगी अभी कहना सम्भव नहीं। प्रजा के विद्वान लोग ही इस बात को निश्चय करेंगे। राजा कौन हो, किस योग्यता का हो और कितने काल के लिये हो, प्रजा से निर्मित विधान-समिति ही निश्चय करेगी।"

"यदि लोग एकमत न होंगे तो ?"

"तो बहुमत मान्य होगा। अल्प-मत को बहुमत के सम्मुख शिर

झुकाना पड़ेगा ।"

"यदि बहुमत के लोग निर्बल हों और अल्प-मत के लोग शक्तिशाली, तो अल्प-मत बहुमत को अपने अधीन कर लेगा ?"

"यह बात ठीक है। इस समय यही तो हो रहा है। अंग्रेज़ों की संख्या भारतवासियों से बहुत कम है। इस पर भी शक्तिशाली होने से वे भारतवर्ष पर, यहां के रहने वालों की इच्छा के प्रतिकूल, अपना राज्य रखे हुए हैं। जब तक भारतवासी, भारतवर्ष में अंग्रेज़ों से अधिक शक्तिशाली नहीं हो जाते तब तक राज्य अंग्रेज़ों के हाथ से छीना नहीं जा सकता ।"

"परन्तु मैं तो यह कह रहा हूं कि भारतवर्ष में भी दो पत्त हो सकते हैं, और अल्प-मत अधिक शक्तिशाली हो सकता है ।"

"हां, इस समय भारतवर्ष में मुसलमानी मत के लोग भी हैं। उनका व्यवहार हिन्दुओं से विभिन्न है और वे राजनैतिक विषयों पर उनसे मतभेद रखते हैं। मुसलमानों की शक्ति इस समय में हिन्दुओं से अधिक है, यद्यपि संख्या में वे कम हैं। कारण यह है कि ब्रिटिश सरकार मुसलमानों को पिछले ४० वर्ष से अधिक और अधिक शक्तिशाली बनाने का यत्न करती रही है। ब्रिटिश सरकार की अपनी शक्ति भी मुसलमानों के पत्त में रहती है। इस पर भी हमारी संस्था इन बातों से नहीं डरती। हमारा मत है कि हिन्दुस्तान में मुसलमानों की सहायता के बिना भी स्वराज्य स्थापित हो सकेगा। मुसलमानों के विरोध से कुछ कठिनाई अवश्य होगी, परन्तु स्वराज्य की स्थापना असम्भव नहीं है। रहा स्वराज्य प्राप्त करने के पश्चात् मुसलमानों अथवा किसी और अल्प-मत का विरोध। उसके लिये भी हम नहीं डरते। जब सब को बराबर का अधिकार और सब के लिये उन्नति करने का बराबर का अवसर होगा तो फिर अल्प-मत किसी प्रकार भी बहुमत से प्रबल नहीं हो सकेगा ।"

"मुसलमान और उनके नेता जिन्ना क्या चाहते हैं ?"

"वे समझते हैं कि हिन्दू बहु-संख्या में है। प्रजातंत्र राज्य स्थापित हो जाने पर हिन्दू बहुमत रखते हुए उनकी सभ्यता का विरोध करेंगे। इस कारण वे हिन्दुस्तान के कुछ भागों में अपना राज्य चाहते हैं।"

"यदि मुसलमानों का एक पृथक् राज्य हो भी गया तो क्या हिन्दू राज्य में मुसलमानों की सभ्यता सुरक्षित हो जाएगी?"

"वास्तव में अधिकांश मुसलमान यह समझते हैं कि अंग्रेजी राज्य के पश्चात् हिन्दुस्तान में मुसलमानों का राज्य होना चाहिये और जब वे देखते हैं कि हिन्दू लोग ऐसा होने नहीं देंगे तब वे हिन्दुओं का विरोध करते हैं और चाहते हैं कि अंग्रेजों का राज्य तब ही जाय जब मुसलमान राज्य लेने के योग्य हो जाएं और हिन्दू अयोग्य।"

"यह कांग्रेस और मुस्लिम लीग का परस्पर क्या विवाद है?"

"प्रायः हिन्दू यह चाहते हैं कि देश में देश के रहने वालों का राज्य हो। हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव न रहे। कांग्रेस में प्रायः हिन्दू हैं। मुस्लिम लीग वाले यह कहते हैं कि हिन्दुस्तान में यदि प्रजातंत्र राज्य हो गया तो वास्तव में हिन्दुओं का राज्य हो जाएगा। इस कारण वे चाहते हैं कि पहले तो हिन्दुस्तान का एक भाग पूर्ण रूप से मुसलमानों के हाथ में हो जाए, पश्चात् या तो धमकी देकर हिन्दू भाग को डराकर मुसलमानों के आधीन रखेंगे, नहीं तो हिन्दू भाग को विजय कर लेंगे। हिन्दू और हिन्दुस्तान में बसने वाले दूसरे लोग हिन्दुस्तान के टुकड़े नहीं चाहते और न ही किसी एक सम्प्रदाय का राज्य चाहते हैं। इन लोगों के प्रतिनिधि महात्मा गान्धी है।"

"मुसलमानों के मन में यह विश्वास क्यों नहीं बैठा दिया जाता कि उनके धर्म अथवा सभ्यता पर कोई आघात नहीं किया जायगा?"

"विश्वास बातों से नहीं बैठाया जा सकता और न ही पक्षपात से पूर्ण मन में विश्वास जम सकता है। जब स्वराज्य होगा तब ही तो मुसलमानों को अपनी सभ्यता और धर्म की स्वतंत्रता का भास हो

सकता है। पहले तो केवल बताने की ही बात है। यथार्थ में बात विश्वास दिलाने की नहीं है, प्रत्युत विश्वास के विषय की है। उदाहरण के रूप में मुसलमान चाहते हैं कि किसी मुसलमान को यदि वह चाहे भी तो हिन्दू सभ्यता और धर्म स्वीकार करने की स्वीकृति न हो और हिन्दू को मुसलमान मत स्वीकार करने में बाधा न हो। मुसलमान चाहते हैं कि मसजिदें तो सर्वत्र हो सकें, परन्तु दूसरे मतावलम्बी भजन-कीर्तन अथवा बाजा भी उनके सम्मुख न बजा सकें। मुसलमान चाहते हैं कि मसजिदों के समीप यदि कोई मन्दिर हो तो उसमें आरती-कीर्तन न हो सके। यहां तक कि यदि कोई मर भी जाय तो उसके सम्बन्धी भी, यदि वे किसी मसजिद के समीप हों, तो राम-नाम नहीं जप सकते। केवल इतना ही नहीं, प्रत्युत वे चाहते हैं कि योग्यता-अयोग्यता का विचार छोड़ कर मुसलमानों को एक निश्चित संख्या में नौकरियां मिल जायें।

"हिन्दू समझते है कि इस प्रकार काम नहीं चल सकता और वे ऐसी किसी बात का आश्वासन देना नहीं चाहते। अधिक से अधिक जो कुछ हो सकता है वह राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक मामले में सम-अधिकार देने की बात है।"

"क्या आपकी संस्था, जो स्वराज्य प्राप्त करने के लिये यत्न कर रही है, महात्मा गान्धी की अनुयाई है?"

"पूर्ण रूप से नहीं। महात्मा गान्धी की पूर्ण हिन्दू जाति मान और प्रतिष्ठा करती है। हम लोग भी उनके प्रशंसकों में हैं, परन्तु राजनीति के विषय में हम कई मामलों में उनसे मतभेद रखते हैं। उदाहरण के रूप में हम समझते हैं कि अधिकार प्राप्त करने के लिये आत्मिक, शारीरिक, मानसिक शक्ति और साधनों की शक्ति होनी चाहिये। बिना इस शक्ति को उपलब्ध किये जो अधिकार मांगने अथवा प्राप्त करने जाता है वह सफल नहीं हो सकता। हम पूर्व इसके कि ब्रिटिश राज्य को यह कहें कि वे भारत छोड़ दें अपने में इतनी शक्ति उपन्न करना चाहते हैं कि दो बार इस बात के कहने की आवश्यकता न रहे। दूसरी बात जो

हमें महात्मा जी की पसन्द नहीं, वह है दुष्ट को दुष्टता करने का अवसर देना। हम उनकी भांति यह विश्वास नहीं रखते कि दुष्ट की आत्मा ही दुष्ट को ठीक मार्ग पर आने की प्रेरणा करेगी। दुष्ट की दुष्टता मिटाने का उपाय है, उसे ठीक मार्ग पर चलने का अभ्यास डलवाना। यह अभ्यास मीठी मीठी बातों से नहीं पड़ता। इसके लिये बल-प्रयोग की आवश्यकता है। यह ठीक है कि बल प्रयोग के साथ साथ शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये, परन्तु केवल शिक्षा से काम नहीं चल सकता। नेताओं को राज्य के नेक, शान्ति-प्रिय और ईमानदार लोगों का अधिक ध्यान रखना होगा। दुष्टों को शिक्षा ईमानदारों को कष्ट देकर नहीं दी जा सकती।"

व्यासदेव का कहना था, "यह सब ठीक है, परन्तु महात्मा गान्धी तथा उनके अनुयायी कैसे दुष्ट को दुष्टता करने का अवसर देते हैं?"

"उनकी अहिंसात्मक नीति का यही अभिप्राय और परिणाम है। वे लोगों को यह बताते हैं कि कभी भी किसी को किसी पर भी बल-प्रयोग करने का अधिकार नहीं होना चाहिये। यह तो ठीक है कि महात्मा जी के अनुयायियों के हाथ में अभी राज्य-सत्ता नहीं है, परन्तु यह नीति न तो स्वराज्य-प्राप्ति में और न ही स्वराज्य-रक्षा में सफल हो सकती है।"

"छोड़िये इन झगड़ों को। मैं यह जानना चाहता हूं कि आप क्या प्रयत्न कर रहे हैं और फिर सफल होने पर क्या करना चाहते हैं?"

"हमारा विचार यह है कि हमारी संस्था दस वर्ष में उतनी शक्ति-शाली हो जायगी कि हम अंग्रेज़ों से राज्य छीनने में सफल हो जायेंगे। उस समय हम ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को यह कह देंगे कि हिन्दुस्तान को उन पर राज्य करने की आवश्यकता नहीं है। वे इस सम्मति को मानेंगे अथवा नहीं, कहना कठिन है। यदि उस समय 'कंज़र्वेटिव पार्टी' प्रभुत्व में हुई तो फिर हमें विप्लव खड़ा करने पड़ेगा और यदि मज़दूर-दल का प्रभुत्व हुआ तो हमारी इंगलैण्ड से किसी प्रकार की सन्धि हो

जायेगी जिसमें भारत की स्वतंत्रता निहित होगी। और यदि विप्लव खड़ा करना ही पड़ा तो हम उसके लिये पहले ही तैयार होंगे। यह विप्लव केवल हिन्दुस्तान के भीतर ही नहीं होगा, प्रत्युत विदेशों में रहने वाले हिन्दुस्तानी और हिन्दुस्तान से सहानुभूति रखने वाले विदेशी भी हमारा सहयोग देंगे। जहां तक मैं समझता हूं अंग्रेज़ इतनी मूर्खता नहीं करेंगे कि संसार भर के लोगों से झगड़ा कर लें।

"जब स्वराज्य प्राप्त हो जावेगा या जब अंग्रेज़ अपना अधिकार हिन्दुस्तान से उठा लेंगे तब अस्थाई राज्य तो हमारी संस्था ही करेगी और स्थाई राज्य के विधान को भारतवर्ष की जनता के प्रतिनिधि निश्चय करेंगे। एक अवधि निश्चय कर दी जाएगी जिसके भीतर विधान तैयार कर देना होगा। फिर राज्य उस विधान के अनुकूल चलेगा। प्रत्येक बीस अथवा तीस वर्ष के पश्चात् नई विधान समिति बुलाई जाया करेगी जो पुराने विधान में संशोधन किया करेगी।"

[२३]

अगले दिन शंकर पंडित अभी उठा ही था कि व्यासदेव और अन्य आश्रम-निवासी नदी में स्नान करने पहुंचे हुए थे। शंकर पंडित शौचादि से निवृत्त हो नदी-किनारे पहुँच गया। उसका विचार स्नान करने का नहीं था। बर्फ से तुरंत पिघला हुआ जल नदी में बह रहा था। इस जल में हाथ डालने से सुन्न हो जाता था, परन्तु आश्रम-निवासी कमर तक जल में खड़े हो मंत्र-पाठ कर रहे थे। व्यासदेव भी नदी में खड़ा था। शंकर पंडित हाथ-पांव भी संकोच से धो रहा था। व्यासदेव की दृष्टि उस ओर गई तो हंस पड़ा। व्यासदेव पाठ समाप्त कर चुका था और बिना बदन पोंछे शंकर पंडित के समीप आ कहने लगा, "आप इस जल की शीतलता सहन नहीं कर सकेंगे।"

"आप इतने वृद्ध होकर भी इस में कितने ही काल से खड़े हैं।"

"हमारी बात दूसरी है। हमने योगाभ्यास से अपनी इन्द्रियों को अपने अधीन कर रखा है। ऊष्णता तथा शीतलता अनुभव करने के

लिये स्पर्श इन्द्रिय बनी है। यह हमारे अधीन है। जैसे किसी मकान का मालिक अपनी इच्छा से दरवाज़ा खोल या बन्द कर सकता है वैसे ही हम अपने शरीर के मालिक हैं।"

शंकर पंडित के मन में पिछली रात से एक प्रश्न चक्कर काट रहा था। अब सुअवसर जान उसने पूछ लिया, "इस योगाभ्यास से आपको क्या मिलता है?"

"आनन्द।"

"आनन्द की क्या रूप-रेखा है?"

"मन इन्द्रियों का राजा है। यह इन्द्रियों के द्वारा सांसारिक बातों का आनन्द अथवा सुख अनुभव करता रहता है। इन्द्रियें ऐसा यंत्र हैं कि वे शीघ्र थक जाती हैं। इस कारण जो सुख अथवा आनन्द एक सांसारिक जीव अनुभव करता है वह क्षणिक होता है। वह इन्द्रियों के थक जाने से लुप्त हो जाता है। यदि हमारे मन में यह शक्ति हो कि इन्द्रियों की सहायता के बिना भी सुख तथा आनन्द भोग कर सकें तो वह आनन्द अधिक काल तक भोग किया जा सकेगा। वह चिरस्थाई होगा। तब हम इसे आनन्द कहते हैं। योगाभ्यास से सांसारिक सुखों को प्राप्त करने की शक्ति इन्द्रियों की सहायता के बिना भी प्राप्त हो जाती है।"

"तो आप भी सुखों के अभिलाषी हैं?"

"हां, क्यों नहीं। प्रत्युत हमने तो अपने में अनन्त काल तक सुख प्राप्त करने की शक्ति पैदा कर ली है। जब इन इन्द्रियों के सुख एक-दम प्राप्त होते हैं तो हम इसे परमानन्द कहते हैं।"

शंकर पंडित को ये बातें विचित्र प्रतीत हो रही थीं। वह सुख, आनन्द और महानता के कुछ और लक्षण समझता था। भारतवर्ष में प्रचलित विचारों के अनुसार लोग साधु और महात्मा उन्हें समझते हैं जो सांसारिक सुखों का त्याग कर दें। यहां ये साधु उन सुखों को छोड़ने के स्थान पर उनको और अधिक काल तक पाने में यत्नशील हैं, और फिर पांचों इन्द्रियों के सुख को एकदम प्राप्त करने को अपने यत्न की

चरम सफलता मानते हैं। उसने विस्मय में पूछा, "भारतवर्ष में तो तपस्या अर्थात् सुखों के त्याग को जीवन का परम लक्ष्य माना जाता है।"

"हम सहस्रों वर्षों के अनुभव से इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सुखों को छोड़ने से कुछ प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत सुख को इन्द्रियों की सहायता के बिना प्राप्त करने से शरीर में शिथिलता नहीं आती और मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य को सुगमता से और भरपूर मात्रा में पाता है। इसे परमानन्द की अवस्था अथवा मोक्ष-सिद्धि कहते हैं। ऐसी अवस्था में यह स्थूल शरीर रहे या न रहे कुछ अन्तर नहीं पड़ता।"

इस समय तक शंकर पंडित हाथ-मुख धोकर, तौलिये से हाथ-पांव सुखा, कपड़े पहन, व्यासदेव के साथ जाने के लिए तैयार हो गया था। साथ चलते चलते शंकर पंडित ने अपनी यात्रा का प्रयोजन पुनः वर्णन किया और उसमें सहायता मांगी। व्यासदेव ने उत्तर दिया, "मैंने रात भर आपकी बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि हम अभी आपको सहायता देने का वचन नहीं दे सकते।"

रात की बातों से शंकर पंडित को बहुत आशा हो गई थी कि इन साधु-वैज्ञानिकों से भारतवर्ष की स्वतंत्रता की योजना में भारी सहायता मिलेगी। परमाणु-अन्तंगत शक्ति का चमत्कार वह रात देख चुका था और व्यासदेव की बातों से वह समझने लगा था कि उस शक्ति का प्रयोग भारतवर्ष को स्वतंत्र करने में हो सकेगा। परन्तु अब व्यासदेव के सहायता करने से इनकार करने पर उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। उसने बहुत नम्रता से पूछा, "क्यों?"

"मैं अभी आपके विषय में इतना नहीं जान सका कि परमाणु-अन्तर्गत-दिव्य-शक्ति पाने के आप अधिकारी हैं या नहीं। हम चाहते हैं कि भारतवर्ष स्वतंत्र हो, परन्तु हमे इस अतुल विनाशकारी शक्ति को अयोग्य और अनधिकारी लोगों के हाथ में नहीं दे सकते। क्या आप नहीं जानते

कि अर्जुन को इसी दिव्य शक्ति के प्राप्त करने के लिए इन्द्रदेव की कितनी तपस्या करनी पड़ी थी ? इन्द्रदेव ने जब तक अर्जुन की परीक्षा कर उसके अधिकारी होने का निश्चय नहीं कर लिया तब तक उसे दिव्य शक्ति नहीं दी थी। जहां यह शक्ति उपकार करने का साधन बन सकती है वहां किसी अनधिकारी के हाथ में जाने से भारी अनिष्ट भी कर सकती है। आपकी संस्था क्या है, मैं नहीं जानता। आप देश के राज्य को कैसे चलायेंगे, मुझे विदित नहीं। आपके रात के कथन से तो मैं केवल यही जान सका हूं कि बहु संख्यक लोगों में राजनीति, धर्म, आचार-व्यवहार और देश-प्रेम मिथ्या मार्ग पर चल रहा है। हम यह शक्ति ऐसे लोगों के हाथ में नहीं दे सकते।"

शंकर पंडित ने अपनी संस्था के संगठन के ढंग का वर्णन किया और यह दर्शाने का यत्न किया कि वे सदैव धर्म और न्याय के अनुसार आचरण को ही स्वीकार करेंगे।

व्यासदेव ने शंकर पंडित की बात को स्वीकार करते हुए कहा, "मैं आपकी बात अस्वीकार नहीं करता, परन्तु हम आश्रमवासी बिना पूर्ण बात की परीक्षा किये इस प्रबल शक्ति को आपके हाथ में नहीं दे सकते। कल रात मैंने आपको 'ओडीस्सा' में युद्ध का चित्र दिखाया था। वहां की लड़ाई इस परमाणु-अन्तगर्त-शक्ति से युद्ध के सम्मुख बच्चों का खेल रह जाती है। इस शक्ति से आक्रमण तथा संरक्षण दोनों ऐसी पूर्णता से हो सकते हैं कि आजकल के अस्त्र-शस्त्र उसका मुकाबला नहीं कर सकते। यदि हम समुद्र-तट पर इससे विद्युत-तरंगे समुद्र की ओर भेजें तो तट से दो सौ मील तक किसी समुद्री अथवा हवाई-जहाज़ का सही-सलामत रहना असम्भव है। हमारे कर्मिष्ठ जी शस्त्र-शास्त्री हैं, और उन्होंने अलाउद्दीन के काल में हिन्दू राजाओं-महाराजाओं के सम्मुख इन अस्त्रों की शक्ति का प्रदर्शन किया था। उस समय भारतवर्ष से मुलसमानों को निकाल देना सुगम था, परन्तु उस समय के राजाओं-महाराजाओं में एक भी अर्जुन के समान अधिकारी नहीं पाया गया जिसे

ये अस्त्र-शस्त्र चलाने के लिये दिये जा सकते।

"गोरखपुर में भारतवर्ष के मुख्य मुख्य हिन्दू राजाओं-महाराजाओं की सभा की गई थी। दो मास तक यह सभा चलती रही। इन दो महीनों में वे यह भी निर्णय नहीं कर सके थे कि उनका नेता कौन होगा। मैंने एक एक की परीक्षा की और देखा। उनमें एक भी ऐसा नहीं था जिसे भारतवर्ष का सम्राट बनाया जा सकता। प्रत्येक नेता बनने का इच्छुक मेरे पास आता था और मुझे धन, भूषण, वस्तु और स्त्रियों का प्रलोभन देकर मुझसे अपने नेता बनने में सहायता चाहता था। वे राजा-लोग मुझे अपने घर ले जाते थे, अपनी स्त्रियों और लौंडियों को मेरे पास भेजकर मुझे अपने पक्ष में करने का यत्न करते थे। अन्त में मैं उनकी इन बातों से निराश और क्रुद्ध हो उनकी सभा छोड़ चला आया। एक समय तो उन्होंने समझा कि कर्मिष्ठ को कैद कर, उसके अस्त्र-शस्त्रों पर अधिकार कर अपनी राज्य-सत्ता भारत में स्थापित कर लेंगे। परन्तु वे कर्मिष्ठ की बुद्धि और चतुराई का गलत अनुमान लगाने से अपने प्रयत्न में विफल हो गये। कर्मिष्ठ उनके निवास स्थानों को भस्म कर वापिस यहां चला आया।

"हमने सहस्रों वर्षों के प्रयत्न से जो आविष्कार किये हैं वे उनके हाथ में नहीं दे सकते जो उनसे अपना ही सर्वनाश कर बैठें अथवा उनसे दुष्ट-दमन के स्थान आर्य लोगों का दमन ही आरम्भ कर दें।"

शंकर पंडित ने विनम्र स्वर में कहा, "यदि यह शक्ति का भण्डार इंगलैंड, अमेरिका अथवा जर्मनी वालों के हाथ आगया तो वे तो आर्य-अनार्य का विचार किये बिना इसका प्रयोग करेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि जर्मनी तो इस शक्ति के रहस्य को जानने के बहुत ही समीप पहुंच चुका है।"

"हम सब कुछ जानते हैं। जर्मनी से अमेरिका इस रहस्य के अधिक समीप पहुंच चुका है, परन्तु अमेरिका वाले इस आविष्कार से शीघ्र ही अपने को ही भस्म कर लेंगे। हम आप लोगों के विषय में बिश्वास किये

बिना आपको स्वयं ही भस्म हो जाने के लिये इस यंत्र को आपको नहीं देंगे ।"

"परन्तु हम तो भारत में भारतीयों का राज्य स्थापित करने के लिये ही आपसे यह अस्त्र मांगते हैं ।"

"आप किन का राज्य चाहते हैं और कैसा राज्य चाहते हैं, यही तो हम जानना चाहते हैं ।"

"यह आप कैसे जान सकेंगे ?"

"मैं तुम्हें बता ही चुका हूं कि अलाउद्दीन के काल में हिन्दू राजाओं अथवा महाराजाओं को स्वार्थी, निर्दयी चरित्रहीन और मूर्ख देखकर मैं आश्रम में आकर समाधिस्थ हो गया था और अभी अभी समाधि से उठा हूं और संसार की अवस्था से परिचित होना चाहता हूं। मैं भारतवर्ष जाऊंगा और वहां के लोगों से मिलूंगा। आपकी स्वराज्य-संस्थापन-समिति से भी परिचय प्राप्त करूंगा। यदि मैं समझ सका कि हमें आपकी सहायता करनी चाहिये तो फिर एक मास के भीतर ही हम राज्य पलट देंगे ।"

शंकर पंडित ने फिर आशा बांध कहा, "हमें आपको भारत में ले जाने में अति प्रसन्नता होगी और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप हमारी स्वराज्य-संस्थापन-समिति को इन अस्त्र-शस्त्रों के पाने का अधिकारी मानेंगे। मैं आपके साथ जाने के लिये एक पहाड़ी भेज सकता हूं। मुझे तो पाटन-ल्हासा के मार्ग का पता करना है। हमारी बहुत सी योजनाएं इस मार्ग के पाजाने पर अवलम्बित हैं ।"

इस समय तक शंकर पंडित और गुरु व्यासदेव कंदरा में जा पहुंचे थे। वहां कई आश्रमवासी पहले ही पहुंच चुके थे। वे अपने पूजा-पाठ अर्थात् आत्मा-परमात्मा तथा संसार की अन्य बातों के मनन में लगे हुए थे। शंकर पंडित को भूमि पर बैठा व्यासदेव ने कहा, "इस मार्ग को मैं दूसरों के ज्ञान में नहीं आने दूंगा। हम नहीं चाहते कि लोग यहां आ आकर हमारी सुख-शान्ति में बाधा डालें ।"

"परन्तु गुरुदेव," शंकर पंडित का कहना था, "हम तो इस मार्ग की खोज के लिये ही घर से निकले हैं और बिना इसको पाये घर नहीं लौटेंगे।"

व्यासदेव हंस पड़ा। उसने शंकर पंडित की निष्ठा की सराहना करते हुए कहा, "परन्तु यह हठ करने की बात नहीं है। मैंने इस मार्ग को बन्द करवाया था और मैं जानता हूं कि यह कहां से बन्द है। एक पर्वत का पर्वत ही इस मार्ग को रोके हुए है। यह पर्वत केवल परमाणु-अन्तर्गत-शक्ति के प्रयोग से ही हटाया जा सकता है और उस पर्वत द्वारा इस मार्ग को बन्द करने के लिये इस शक्ति से ही काम लिया गया था।"

"माना," शंकर पंडित का आग्रह था, "कि आप अपने अस्त्र-शस्त्रों को हमारे हाथ में नहीं देना चाहते, परन्तु इस मार्ग के प्रयोग की हमें स्वीकृति क्यों नहीं देते?"

"केवल इसलिये कि हम अपने आश्रम को और अपने आपको लोगों के लिये एक तमाशा बनाना नहीं चाहते।"

"परन्तु भारतवर्ष में स्वराज्य-स्थापन क्या इतना आवश्यक नहीं कि आप अपने आश्रम की यह थोड़ी सी सुविधा का भी त्याग नहीं कर सकते?"

"इसमें आश्रम की सुविधा-असुविधा का प्रश्न नहीं। इसमें तो भारतवर्ष और अन्य लोगों की, जिनके लिये यह मार्ग खुल जायगा, मानसिक प्रवृति का प्रश्न है। आर्य लोगों के प्रभुत्व-काल में तो यह मार्ग खुला था, परन्तु उस समय जन-साधारण श्रद्धा-भक्ति से और कुछ सीखने के लिये हमारे पास आते थे और अब तो लोग हमें एक मनोरंजन की वस्तु समझ यहां आवेंगे।"

"भगवन्, क्या हमारा आश्वासन कि आपको यहां कोई कष्ट नहीं होगा, पर्याप्त नहीं है?"

"आपके आश्वासन की कीमत देखने के लिये ही तो मैं भारतवर्ष जाना चाहता हूं।"

[२४]

शंकर पंडित की निराशा का ठिकाना नहीं रहा था। वह अपने डेरे में आकर दिन भर इस नई परिस्थिति पर विचार करता रहा। उसको परमाणु-अन्तर्गत-शक्ति से बने अस्त्र-शस्त्रों के न मिलने का तो इतना दुःख नहीं था, जितना मार्ग के सुलभ न होने का। इन अस्त्र-शस्त्रों का तो उसके मन में विचार तक भी नहीं था। उसने अभी तक इनके काम को देखा नहीं था। केवल व्यासदेव के कहने से, कि वे अत्यंत उपयुक्त वस्तुएं हैं, वह उनका मन में चित्र चित्रित नहीं कर सका था। यदि वे मिल जाते तो ठीक था। अब नहीं मिले तब भी कुछ हानि प्रतीत नहीं होती थी। कारण यह कि स्वराज्य-संस्थापन-समिति की योजना इनके आश्रित नहीं थी; परन्तु पाटन-ल्हासा मार्ग की बात दूसरी थी। यह उनकी योजना का एक अंग बन चुकी थी। गुरु व्यासदेव से विदा होने के समय उसने मार्ग की खोज छोड़ देने का वचन नहीं दिया। यह ठीक है कि व्यासदेव के कहने ने कि इस मार्ग को एक पर्वत रोके खड़ा है उसके मन पर भारी बोझ डाल दिया था, परन्तु वह इसकी परीक्षा किये बिना अपना विचार बदलना नहीं चाहता था।

दिन भर वह उस मान-चित्र का, जो उसने भूगोल के विद्वानों की सहायता से तैयार कराया था, अध्ययन करता रहा। उसे इतना तो समझ आता था कि इस घाटी से मार्ग नदी पार कर मिलना चाहिये। उसने बहुत विचारोपरान्त यह निश्चय कर लिया था कि वह इस मार्ग के लिये अभी इस वादी में ठहरेगा और अगली सुरंग का द्वार ढूंढने का यत्न करेगा। अगले दिन, डेरे को वहीं रख, दो आदमियों को साथ ले, नदी पार कर, पर्वत की देखभाल के लिये प्रातःकाल ही वह चला गया। दिन भर घूमने के पश्चात् जब डेरे पर लौटा तो अत्यंत थका होने के कारण सो गया। अगले दिन उसी पर्वत के दूसरे भाग की जांच-पड़ताल के लिये चला गया। इसी प्रकार शंकर पंडित को इस काम में कई दिन लग गये। दिन प्रति दिन निराशा बढ़ती जाती थी। कारण

यह था कि मार्ग के विवरण के अनुसार इस घाटी से एक और सुरंग को आरम्भ होना चाहिये था और उस सुरंग का मुख अथवा मुख का कोई चिन्ह भी दिखाई नहीं दे रहा था।

पांच-छः दिन की खोज के पश्चात् शंकर पंडित हताश अपने डेरे में बैठा था कि आश्रम के दो निवासी उसके पास पहुंचे। इनमें एक कर्मिष्ठ था। शंकर पंडित ने उसको आदर से बैठाया और आने का कारण पूछा। कर्मिष्ठ ने कहा, "गुरुदेव की आज्ञानुसार आपके भली भांति होने का समाचार लेने आये हैं।"

शंकर पंडित ने कहा, "हम सब बहुत मज़े में हैं। गुरुदेव को मेरी नमस्कार कह दीजियेगा।"

कर्मिष्ठ ने मुस्कराते हुए कहा, "आप यहां से वापिस कब तक लौटने का विचार रखते हैं?"

"अभी मेरा विचार कुछ दिन और यहां ठहरने का है।"

"यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो बताइयेगा। यथा सम्भव सेवा करने का यत्न किया जावेगा।"

अब मुस्कराने और व्यंग का भाव दिखाने की बारी शंकर पंडित की थी। उसने कहा, "आप यहां जंगल में बैठे क्या सेवा अथवा सहायता कर सकते हैं? जो कुछ कर सकते थे सो तो आपने किया नहीं। आप इस मार्ग को खोल देते तो हम पर बहुत कृपा होती।"

कर्मिष्ठ ने हंसकर कहा, "आप तो हमारी सहायता के बिना ही इस मार्ग को ढूंढने जा रहे हैं।"

"जब आप सहायता देते ही नहीं तो क्या किया जाय?"

"हम सब आश्रमवासी इसमें एक मत हैं कि इस मार्ग को खोलने की न तो आवश्यकता है और न ही इसके लिये उचित अवसर।"

"तो फिर आप और क्या कर सकते हैं?"

"गुरुदेव ने कहला भेजा है कि यदि आप बर्मा और मलाया के समाचार जानना चाहते हैं तो आश्रम में आइये। वहां एक नवीन

आन्दोलन खड़ा हो रहा है।"

"सुभाष बाबू का न?"

"जी, आज सुभाष बोस दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुरशाह के नये मकबरे के खोलने की रस्म मना रहे हैं।"

शंकर पंडित इस समाचार से फड़क उठा। उसके मन में बर्मा में भारतवासियों के भारत को स्वतंत्र करने के प्रयत्नों के विषय में जानने की लालसा जाग उठी। वह अपने डेरे से व्यासदेव के आश्रम की ओर चल पड़ा। मार्ग में कर्मिष्ठ और उसके साथियों द्वारा भारतवर्ष को स्वतंत्र करने के विषय में बहुत बातचीत हुई। कर्मिष्ठ व्यासदेव से भी अधिक उग्र प्रवृत्ति रखता था। उसका मत था, "हम भारतवर्ष से अधिक प्रेम वहां के रहने वालों की मानसिक प्रवृत्ति के कारण ही रखते हैं। भारतवासी अन्य लोगों से अधिक मनुष्यता के समीप थे। अन्य लोगों ने इस विषय में कुछ उन्नति की है, परन्तु भारतवासियों में तो पतन ही आया है। इस पतन के कारण हमारी सहानुभूति उनसे कम हो गई है। हम किसी अन्य देश के वासियों की सहायता कर उन्हें विश्व-विजयी बना देते, परन्तु वे तो विश्व-विजयी होने से पूर्व ही निर्दयी, अन्यायी और आतताई बन रहे हैं।"

शंकर पंडित का कहना था, "यदि यह सत्य है कि आप परमाणु-अन्तर्गत-शक्ति से ऐसे अस्त्र-शस्त्र बना सकते हैं कि जिनसे विश्व विजय किया जा सकता है तो आप स्वयं ही न्याय और धर्म की पताका संसार भर में क्यों नहीं फहरा देते?"

कर्मिष्ठ ने उत्तर दिया, "इसकी सत्यता तो गुरुदेव आपको कभी दर्शायेंगे। वे मुझे अपने अस्त्र-शस्त्रों सहित उनके साथ भारतवर्ष में चलने को कह रहे हैं। इस पर भी हम राज्य करना नहीं चाहते। आर्यावर्त के ब्राह्मण पूर्ण शक्तिमान होते हुए भी कभी राज्य-सत्ता के अभिलाषी नहीं रहे। राज्य करना क्षत्रियों का काम है, मंत्रणा देना ब्राह्मणों का। परन्तु ब्राह्मणों की मंत्रणा न मानने वाले क्षत्रियों को वे सहायता

देने से इनकार ही तो कर सकते हैं।"

"आप ऐसा क्यों नहीं करते कि जो कम अधर्मी हैं, कम निर्दयी हैं, अथवा जो कम आततायी हैं उनकी सहायता करें?"

"हमने एक मापदंड निश्चय किया है। उस मापदंड से उत्तीर्ण होने वाले ही हमारी सहायता के अधिकारी हो सकते हैं। दुर्भाग्य की बात यह है कि हमारे विचार में इस समय कोई भी जाति उस मापदंड से उत्तीर्ण नहीं हो रही।"

व्यासदेव शंकर पंडित को कर्मिष्ठ के साथ आते देख हंस पड़ा। जब शंकर पंडित ने हाथ जोड़ नमस्कार कहा तो कहने लगा, "आप आगये सो ठीक हुआ। मैं चहाता हूं कि आप बर्मा में जो घटनायें घट रही हैं उनको जान लें ताकि हमारे भारतवर्ष के स्वराज्य-आन्दोलन से तटस्थ रहने का कारण समझ सकें।"

शंकर पंडित इस कथन के भाव को नहीं समझ सका था। इस पर भी वह बिना कुछ पूछे अथवा कहे व्यासदेव के पीछे पीछे यंत्र-शाला में चला गया। वहां पहले ही कई लोग चित्र-कुंड के समीप खड़े थे। इनको भी देखने और सुनने का स्थान मिल गया।

एक सर्वथा श्वेत रंग की इमारत के सम्मुख बहुत से लोग फौजी वर्दी पहने पंक्तियों में खड़े थे। दूसरी ओर लाखों की भीड़ थी। भीड़ में हिन्दुस्तानी और बर्मी लोग थे। माइक्रोफोन उस इमारत के चबूतरे पर लगा था जो भूमि से दस फुट ऊंचा इमारत के चारों ओर बना था। इस चबूतरे पर चढ़ने के लिये पचास फुट चौड़ी सीढ़ियां थीं जिन पर और चबूतरे पर लाल रंग की दरियां बिछी थीं। माईक्रोफोन के सम्मुख जनता के पूज्य और भारतीय राष्ट्रीय सेना के नेता श्री सुभाष चन्द्र बोस खड़े व्याख्यान दे रहे थे। श्री बोस बाबू कह रहे थेः—

"भारत के अंतिम सम्राट जहांपनाह बहादुरशाह के अंतिम निवास-स्थान पर इस नये मकबरे के उद्‌घाटन की रस्म अदा करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। १८५७ में शाह ने हिन्दुस्तान की आज़ादी

के लिये जंगे-अज़ीम किया था। दुर्भाग्य से जंग में हिन्दुस्तान की हार हुई और विदेशियों का देश पर अधिकार हो गया। शाह कैद कर लिये गये और रंगून में उनका स्वर्गवास हुआ।

"यह किस्मत का खेल है कि हिन्दुस्तान के अंतिम सम्राट का अंतिम निवास-स्थान बर्मा में बना और बर्मा के अंतिम राजा का मकबरा हिन्दुस्तान में। अंग्रेज़ी राज्य की, एक के आश्रय दूसरे को मारने-धमकाने की नीति का यह एक पक्का प्रमाण है। इस पवित्र स्मारक के सम्मुख हम अपना बज्र निश्चय फिर से दुहराते हैं। हिन्दुस्तान के स्वतंत्रता के युद्ध के इस अमर सैनिक का हम अभिनन्दन करते हैं। वह आदमियों में बदशाह था और बादशाहों में आदमी।

"आज हमने अपनी आज़ादी की लड़ाई आरम्भ कर दी है। हम मौत के इस घर के सामने खड़े होकर शपथ लेते हैं कि मौत भी हमें अपने मार्ग से हटा न सकेगी। बर्मा और भारत के निवासी सशस्त्र विद्रोह से अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर मानवता के प्रसार के लिये कदम से कदम मिलाकर चलेंगे।

"यह एक गम्भीर अवसर है और मैं इस समय अपने बहादुर सिपाहियों को यह बतला देना चाहता हूं कि आज़ादी की लड़ाई केवल शरीर की नहीं, प्रत्युत आत्मा की है। मरने से यह समाप्त नहीं होगी। शाह का यह शेर हमें यही बताता है:—

गाज़ियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की
तख्ते लन्दन तक चलेगी तेग़ हिन्दुस्तान की ॥"

इस वक्तृता के पश्चात् मकबरे की इमारत खोली गई और लोगों में इतना उत्साह था कि बोस बाबू को फूलों और मालाओं से लाद दिया गया। लाखों लोगों के एक स्वर में बोस बाबू के जय घोष से आकाश फटने लगा।

व्यासदेव कुंड से पीछे हट गया। शंकर पंडित की आंखें, इस जोश और उत्साह को देख, चमक उठी थीं। उससे नहीं रहा गया और उसने व्यासदेव को सम्बोधन कर कहा, "स्वाधीनता की अभिलाषा जब इतनी

प्रबल है तो उसको कौन रोक सकता है ?"

व्यासदेव ने उत्तर नहीं दिया, केवल मुस्करा दिया। यह शंकर पंडित को भला प्रतीत नहीं हुआ। उसने पूछा, "आपको इसकी सफलता में सन्देह है क्या ?"

"नहीं," व्यासदेव ने खड़े हो शंकर पंडित की ओर देखते हुए कहा, "मैं समझता हूं कि जो कुछ ये चाहते हैं अवश्य प्राप्त कर लेंगे, परन्तु यह वह नहीं होगा जिसे हम आर्य राज्य कहते हैं।"

"मैं नहीं समझा," शंकर पंडित ने अचम्भे में मुख उठाकर पूछा। व्यासदेव छः फुट चार इंच ऊंचा था और शंकर पंडित को उसकी आंखों में देखने के लिये मुख उठाना पड़ता था।

व्यासदेव ने कहा, "भारतवर्ष में भांति भांति के पत्ती बसेरा किये हुए हैं। कुछ तो भारतवर्ष में बसते हुए भी अपने को इससे पृथक समझते हैं। अधिकांश मुसलमान इसी श्रेणी में आते हैं। मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, बाबर, औरंगज़ेब और हजारों दूसरे शाह, बादशाह, नवाब, ज़मींदार सब के सब भारतवर्ष के खेतों में दाना चुगकर उड़ जाने वाले पत्ती हैं। बहादुरशाह इनसे विलक्षण था, इसका कोई प्रमाण नहीं। कुछ मरहट्टों और पूर्वी प्रान्त के लोगों ने सांझी मुसीबत में इसे अपना नेता बनाया, इससे यह देश-भक्त हो गया हो, कैसे मान लें ? ऐसे संदिग्ध देश-भक्तों को आदर्श मानकर बोस बाबू कितनी दूर तक पहुंच सकेंगे ? यदि जापानियों की सहायता भरसक प्राप्त हुई तो भारतवर्ष में मदारी के थैले जैसा राज्य स्थापित हो जायगा। इसे स्वराज्य अथवा आर्य राज्य नहीं कहा जा सकता।"

"तो आपका अभिप्राय यह है कि भारतवर्ष के मुसलमानों को देश के राज्य में भाग नहीं मिलेगा ?"

"निस्सन्देह। जैसा व्यवहार मुसलमानों ने देश के रहने वाले हिन्दुओं से किया है उससे तो उनका इस देश पर राज्य करने का अधिकार नहीं रह जाता।"

"परन्तु उनकी संख्या देश में दस करोड़ के लगभग है। उनको देश के नागरिक अधिकारों से वंचित कैसे किया जा सकता है?"

व्यासदेव ने गर्दन सीधी कर और आज्ञा देने के भाव में कहा, "उनकी संख्या संसार में साठ करोड़ है। इससे क्या होता है? संसार में राक्षसी प्रवृत्ति के लोगों की संख्या दैवी प्रवृत्ति वालों से कई गुणा अधिक है, तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि राक्षसी मनोवृत्ति वालों को राज्य करने का अधिकार दे दिया जाय। देखिये शंकर पंडित, मैं आपको एक तत्व की बात बताता हूं। इस समय संसार में सब से भारी अनर्थ जो हो रहा है वह है ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानों का जन-साधारण के अधीन हो जाना। देखते नहीं हो कि वैज्ञानिक लोग जीवन भर परिश्रम कर कोई आविष्कार करते हैं और मूर्खों के गुरु (जन-साधारण से चुने गये नेता) उन आविष्कारों का दुरुपयोग करते हैं और ब्राह्मण इसे नापसन्द करते हुए भी उन्हें मना नहीं कर सकते।

"इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य-जन्म में आने के नाते किसी का अधिकार यह तो हो जाता है कि उसे भोजन, वस्त्र, मकान तथा शिक्षा मिले, परन्तु राज्य करना प्रत्येक मनुष्य का अधिकार नहीं हो सकता। राज्य करना योग्य और चरित्रवान लोगों का अधिकार है। मुसलमानों को जीवन और सुखमय जीवन का अधिकार तो हो सकता है, परन्तु राज्य करने का अधिकार तो अधिकारी सिद्ध होने पर ही होगा।

"मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि राज्य करना और नागरिक अधिकार रखने में भारी अन्तर है। उनको नागरिक अधिकार मिल सकते हैं, परन्तु राज्य करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता।"

शंकर पंडित इस बात को नहीं समझ सका, परन्तु यह विचार कर कि व्यासदेव आज से सदियों पहले की विचार-धारा में पला हुआ होने से आधुनिक जगत की बातें समझ नहीं सकता चुप रहा।

शंकर पंडित अभी भी पाटन-ल्हासा के मार्ग की खोज छोड़ना नहीं चाहता था।

चौथा भाग

भूल

बहादुरशाह के मकबरे के उद्घाटन की रस्म को धीरेन्द्र ने भी रेडियो पर सुना था। यद्यपि वह उद्घाटन के समय के दृश्य को, जैसा कि शंकर पंडित ने व्यासदेव के हिमालय के आश्रम में दिव्य-दृष्टि-यंत्र में देखा था, नहीं देख सका था; इस पर भी बोस बाबू की वक्तृता तथा रंगून रेडियो वालों की इस रस्म पर समालोचना इतनी प्रभाव-शाली और मनोद्गारों को उभारने वाली थी कि धीरेन्द्र के आंसू निकल आये। नवरत्न-मंडल के बोस बाबू से अभी सहयोग न करने के निश्चय होने पर भी धीरेन्द्र बोस बाबू से सम्पर्क उत्पन्न करने का विचार करने लगा।

उसने नाहरसिंह को बुलाया और उससे राय कर बोस बाबू से सम्पर्क उत्पन्न करने की योजना बना डाली। कुछ ही दिनों में नाहरसिंह अपने १९१४ के युद्ध में प्राप्त पदक अपनी नई बनाई वर्दी पर लगा आसाम में जा पहुंचा। सौभाग्य से सरहद पर कांटेदार तार की रखवाली पर कुछ गोरखा सिपाही लगे हुए थे जो स्वराज्य-संस्थापन-समिति के सदस्य थे। इससे उसे हदबंदी पार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

आसाम में, मनीपुर के इलाके में, इम्फाल से लगभग दस मील पूर्व की ओर, एक घाटी में, पांच सौ के लगभग फौजी एक नाले के किनारे डेरा डाले पड़े थे। इनकी वर्दी तो अंग्रेज़ी सिपाहियों की सी प्रतीत होती थी, परन्तु उस पर बैजों में आई० एन० ए०, अर्थात्

भारतीय राष्ट्रीय सेना, लिखा था।

ये लोग छोटे छोटे झुण्डों में बैठे बातें कर रहे थे। एक झुण्ड में कुछ लोग भूमि पर बैठे, सम्मुख एक मान-चित्र बिछाये गम्भीरतापूर्वक उस पर विचार कर रहे थे। एक आदमी, जो उस टिकड़ी का नेता प्रतीत होता था, मान-चित्र में एक स्थान पर उंगली रखकर कह रहा था, "हम यहां पर पहुंच गये हैं। यह मार्ग इम्फाल को जाता है। दस मील और दो फर्लांग के लगभग अंतर है। इम्फाल के दो मील इधर गोरखा सिपाहियों की चौकी है। उस चौकी के इस ओर लोहे की कांटेदार तार, मीलों तक उत्तर से दक्षिण की ओर लगी है। उस तार के पीछे प्रत्येक सौ गज़ के अंतर पर पहरेदार बैठे हैं।

"इतना कुछ विदित हो चुका है और मैं समझता हूं कि अब और अधिक समय व्यर्थ न खोकर, रात को हमें इस चौकी पर अधिकार कर लेना चाहिये। प्रातःकाल दिन चढ़ने से पूर्व हवाई अड्डे को हमें अपने अधीन करना है।........"

वह आदमी अभी बातें ही कर रहा था कि नाले के पार अर्थात् ब्रिटिश चौकी की ओर से पांच आदमी झाड़ियों के पीछे से आते दिखाई दिये। नाले में पानी बहुत नहीं था, इस पर भी नाले की चौड़ाई बहुत अधिक थी। इस ओर से, जहां ये पांच सौ आदमी छोटी छोटी मंडलियों में बैठे थे, पार के आदमियों को पहचानना कठिन था। विशेष रूप में, जब अंग्रेज़ सिपाहियों और राष्ट्रीय सेना के लोगों की वर्दी एक जैसी ही थी। नेता के पास दूरबीन थी, जो जापानी बनी थी। उसने कमर से लटकते डिब्बे में से निकाल, आंखों से लगा, पार के लोगों को देखा। उन्हें पहचान बोला, "ये केहरसिंह इत्यादि हैं, परन्तु..." वह देखते हुए कुछ सोचने लगा, "पांच गये थे और छः आ रहे हैं। एक इनमें अपरिचित है। वर्दी तो अंग्रेज़ी है। किसी अंग्रेज़ी सिपाही को पकड़ लाए प्रतीत होते हैं। ठीक हुआ। पहले इनकी रिपोर्ट सुननी चाहिए।"

उन लोगों को नाला पार करने में आधा घंटा लग गया। नाला

प्रायः सूखा था। कहीं कहीं पानी था। कूदते-फांदते, पानी में से गुज़रते हुए वे लोग टिकड़ी के नेता के पास आ पहुंचे। छठा आदमी जो उनके साथ था, एक गोरखा सिपाही की वर्दी पहने था और कोई वृद्ध पैनशनी प्रतीत होता था। उसके हाथ रस्सी से बंधे थे जो एक राष्ट्रीय सेना के सिपाही ने अपनी कमर से बांधी हुई थी, कि कहीं वह भाग न जाय। टिकड़ी के नेता ने प्रश्न भरी दृष्टि से केहरसिंह की ओर देखा। केहरसिंह देखभाल के लिये गई पार्टी का नेता था। केहरसिंह ने राष्ट्रीय सेना के ढंग से फ़ौजी सलाम कर जय हिन्द कहा। उसके चार साथी और उनमें वह वृद्ध गोरखा कैदी उसके पीछे खड़े थे। टिकड़ी के नेता ने पूछा, "यह कौन है?"

केहरसिंह ने 'सावधान' अवस्था में खड़े रहकर कहा, "कहता है, 'मैं नेता जी से मिलने आया हूं। मैं फ़ौजी नहीं हूं, यह वर्दी अंग्रेज़ी सिपाहियों को धोखा देने के लिये पहनी है। मैं एक शहरी हूं और भारतवर्ष की एक क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य हूं'।"

"ओह!" टिकड़ी के नेता ने घूरकर उस वृद्ध को देखा। पश्चात् कुछ सोचकर अपने साथियों से कहा, "तुम लोग ज़रा दूर चले जाओ।"

सब लोग जो वहां बैठे थे और केहरसिंह के साथी वहां से दूर हट गये। वृद्ध गोरखा के हाथों पर बंधी रस्सी, केहरसिंह के साथी ने अपनी कमर से खोल, नेता के हाथ में दे दी और स्वयं दूर चला गया।

नेता ने उस वृद्ध को अपने पास बैठने को कहा। वह उसके सामने बैठ गया। उसके हाथ अभी भी बंधे थे। नेता ने पूछा, "क्या नाम है?"

"नाहरसिंह।"

"कहां के रहने वाले हो?"

"नैपाल के।"

"किस मतलब से यहां आये हो?"

"नेता सुभाष बोस से मिलने और अपने नेता का संदेशा उन्हें

पहुंचाने, तथा यहां की तैयारी और शक्ति का अनुमान लगाकर अपने नेता तक पहुंचाने।"

"तुम्हारे नेता का क्या नाम है?"

"गुरु धीरेन्द्र।"

"यहां की शक्ति जानकर क्या करोगे?"

"हम भारतवर्ष में क्रान्ति उत्पन्न करने की योजना कर रहे हैं। हमारी तैयारी अभी अधूरी है। इस पर भी मुझे गुरु जी ने आज्ञा दी है कि मैं स्वयं यहां पहुंचकर अनुमान लगाऊं कि आपके जीत जाने की क्या सम्भावना है। यदि आप मैदानी इलाके तक आने की शक्ति रखते हैं तो हम बंगाल में अपने स्वयं-सेवक एकत्रित कर विप्लव खड़ा कर सकते हैं।"

"आपके पास कितने आदमी हैं?"

"दो लाख बिलकुल तैयार हैं। धन हमारे पास है, परन्तु हथियार अभी नहीं हैं। हमने संसार भर के युद्ध में न सम्मिलित देशों को छान डाला है, परन्तु कहीं से भी मदद नहीं मिल सकी। बिना हथियारों के हमारे नेता कार्यवाही करना नहीं चाहते।"

"दो लाख लोग तो वैसे भी हमारी सहायता कर सकते हैं। सड़कें उखाड़ दें, तारों के खम्भे तोड़ दें, रेल के स्टेशनों को फूंक दें, पुलों को उड़ा दें और जहां भी कोई अंग्रेज़ मिले उसे मार दें।"

"यह सब ठीक है। ऐसा महात्मा गान्धी के पकड़े जाने पर देश में हुआ था। यह सफल नहीं हुआ। कारण यह था कि इस काम के साथ साथ फ़ौजी कार्यवाही, देश के भीतर या बाहर भी, होनी चाहिए थी। यदि आपकी सेना आसाम की पहाड़ियां पार कर बंगाल के मैदानों में आ सके, तब हम अंग्रेज़ी फ़ौजों के पीछे गुरेला युद्ध आरम्भ कर सकते हैं। उस समय आपके इलाके से बंदूकें और कारतूस तो मिल ही सकेंगे। अभी तो हमारे लोगों के पास लाठी भी नहीं।"

ढिकड़ी का नेता चुपचाप नाहरसिंह की बात सुन रहा था। जब

बात समाप्त हो गई तो उसने कहा, "तुम खुफ़िया पुलिस के आदमी प्रतीत होते हो। तुम हमारा भेद लेने आये हो। इसके लिये मैं तुम्हें मौत का दंड देता हूं।"

नाहरसिंह कुछ नहीं बोला। वह चुपचाप वहां बैठा रहा। नेता कुछ देर तक उसका मुख ध्यान से देखता रहा। जब नाहरसिंह कुछ नहीं बोला तो उसने कहा, "तुम क्या कहना चाहते हो?"

"कुछ नहीं। मैं मरने से नहीं डरता। इस पर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि भेदिये का काम करने वाले इतनी स्पष्ट बातें नहीं किया करते। यदि मैं भेदिया होता तो आपको कहता, 'मैं फ़ौजी हूं। भागकर आपके साथ मिलकर, मातृ-भूमि को स्वतंत्र करने के लिये अपना रक्त बहाने आया हूं। मुझसे हिन्दुस्तान की दासता अब अधिक नहीं सही जाती। ......इत्यादि...इत्यादि...' मैं फिर आपका विश्वास प्राप्त कर यहां की सब बातें देखकर, जैसे उधर से इधर खिसक आया हूं, इसी भांति आपको छोड़ वापिस चला जाता।"

"इसका तो केवल यह अर्थ है कि तुम दूसरे जासूसों से अधिक चतुर हो।"

आप मुझे नेता जी के पास भेज दें। मैं अपनी सफाई वहां दे लूंगा।"

"मेरे पास तुम्हारे साथ भेजने को फालतू आदमी नहीं है।"

"तो फिर जो मन में आये करें।"

टिकड़ी के नेता ने तार की हदबन्दी से निकल आने के विषय में पूछा। नाहरसिंह ने सब विवरण स्पष्ट बता दिया और पीछे अपने राष्ट्रीय सैनिकों से पकड़े जाने का वृत्तान्त भी बताया।

"अच्छी बात है," टिकड़ी के नेता ने कहा, "मैं तुम्हें अपने अफ़सर के पास भेज देता हूं। वह यहां से दस मील के अंतर पर डेरा डाले हुए है।"

इसके पश्चात् नाहरसिंह को एक पेड़ के नीचे बैठाकर उसके पांव

भी बांध दिये गये और टिकड़ी का नेता अपने साथियों से रात को करने वाले आक्रमण के विषय में विचार करने लगा।

इस समय अंग्रेज़ी हवाई जहाज़ों की एक टोली इम्फाल की ओर से उड़ती हुई आई। उनकी आवाज़ सुनते ही सब लोग झाड़ियों में छिप कर बैठ गये। हवाई जहाज़ आगे निकल गये।

[२]

रात पड़ते ही सब के सब राष्ट्रीय सैनिक आक्रमण के लिये इम्फाल की ओर चल पड़े। प्रत्येक सिपाही के पास एक-एक साधारण बंदूक और कुछ कारतूस थे। इनके साथ न तो घायलों के लिये कोई एम्बुलेंस थी और न ही खाने-पीने का कोई सामान था।

जाते समय टिकड़ी का नेता, जिसका नाम कैप्टन अज़ीज़ था, नाहरसिंह के पास आया और बोला, "मुझे आज्ञा हुई है कि मैं सामने के पहाड़ पर चढ़ अंग्रेज़ी किला-बन्दी पर आक्रमण कर दूं। इस समय मैं एक भी आदमी को तुम्हारी देखभाल के लिये पीछे नहीं छोड़ सकता। पहले ही मेरे पास कम आदमी हैं। मैं तुम्हें मुक्त भी नहीं कर सकता। तुम भागकर शत्रु को समाचार दे सकते हो। अतएव मैं तुम्हें यहां बंधा हुआ छोड़ रहा हूं। यदि हमारा आक्रमण सफल हुआ तो मैं किसी को कल प्रातः तुम्हारे पास भेज दूंगा, जो तुम्हें बड़े अफ़सर के पास ले जावेगा।"

इतना कह वह अपने लोगों को साथ ले इम्फाल की ओर चला गया। वास्तव में इम्फाल पर कई ओर से आक्रमण किया जा रहा था। कैप्टन अज़ीज़ अपनी टुकड़ी के साथ ठीक एक बजे हदबन्दी के तार के समीप जा पहुंचा। तार काटने के लिये दस आदमी एक पंक्ति में रेंगते हुए आगे बढ़े। तारों के समीप पहुंच वे कतीरों से तारें काटने लगे। इस समय एक स्थान पर खड़ाक का शब्द हुआ। उस आवाज की ओर एक गोली दाग़ दी गई। इससे सब तार काटने वाले दस मिनट तक चुपचाप लेटे रहे। इसके पश्चात् पुनः कार्य आरम्भ किया गया। इस

बार काम निर्विघ्न समाप्त हो गया। तार काटने वालों ने दस फुट चौड़ा मार्ग साफ कर दिया। अब पीछे आने वालों को संकेत किया गया। देखते देखते पांच सौ सैनिक इस मार्ग से हदबन्दी में घुस गये। ये लोग तीर की भांति भागते हुए हवाई जहाजों के अड्डे की ओर लपके। हवाई अड्डे पर फिर कांटेदार तार की हदबन्दी थी। वहां पहुंचने पर इनको पता चला कि उनके साथी दूसरी दिशाओं से वहां पहुँच गये हैं और हवाई अड्डा इनके घेरे में आगया है। इन लोगों ने पहुंचते ही तार काटनी आरम्भ कर दी थी और दूसरी ओर से दरवाज़े पर खड़े गार्ड पर आक्रमण कर दिया गया था। दोनों ओर से गोली चलने लगी थी।

वास्तव में अंग्रेज़ी फ़ौज यहां किसी आक्रमण की आशा नहीं करती थी। उनके अपने सिद्धान्त के अनुसार एक आक्रमण करने वाली सेना को पीछे से सहायता पहुंचाने के लिये सड़कों का प्रबन्ध होना चाहिये। बर्मा से आसाम की इस सरहद तक ऐसी सड़कें अभी नहीं बनी थीं जो फ़ौजी सामान और टैंकों इत्यादि के लाने योग्य होतीं। इससे इस मोर्चे पर कोई भारी आक्रमण की आशा नहीं थी। परन्तु वे नहीं जानते थे कि भारतीय राष्ट्रीय सैनिक जोश से भरे हुए इन सब कठनाइयों की चिन्ता न करते हुए, बिना सरोसामान के मोर्चे पर आ कूदेंगे।

हवाई अड्डे को लेने में दो घंटे से अधिक नहीं लगे। दिन निकलने तक पांच हज़ार सैनिक हवाई अड्डे में घुस गये थे। जो भी काम में आने योग्य हवाई जहाज़ वहां थे उड़कर अधिक सुरक्षित स्थान पर पहुंच चुके थे। शेष टूटे-फूटे हवाई जहाज़ और एयरोड्रोम की इमारत के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगा। इस पर भी यह एक भारी और अपूर्व जीत थी।

इम्फाल नगर को घेरा डाल दिया गया, परन्तु शीघ्र ही घेरा डालने वालों को यह समझ में आगया कि घेरा डालने से काम नहीं चलेगा। उन्हें यह पता लग गया था कि नगर में घिरी हुई फ़ौज के पास खाने

का इतना सामान है कि छः मास तक भी वह कष्ट अनुभव नहीं करेगी। इसके विपरीत घेरा डालने वाले बे सरोसामान थे और शीघ्र ही इनके भूखों मरने की सम्भावना थी। इस कारण घेरा प्रबल करने के स्थान पर आक्रमण करना ही उचित समझा गया। रात के समय इम्फाल नगर पर आक्रमण कर दिया गया। नगर में सेना तो काफ़ी थी, परन्तु भाड़े के टट्टू पंजाबी मुसलमान सिपाही अधिक काल तक मुकाबला नहीं कर सके और दिन निकलने से पूर्व ही नगर के सिपाहियों ने हथियार डाल दिये।

उसी दिन दोपहर को इम्फाल के हवाई मैदान में विजयी सेना की परेड हुई और नगर की जनता को इस परेड को देखने का अवसर दिया गया। यह एक नवीन घटना और परिस्थिति थी। आज से पहले हिन्दुस्तानी सेना ने हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करने के लिये बाहर से हिन्दुस्तान पर आक्रमण नहीं किया था। सोलहवीं शताब्दी के मध्य में हुमायूं ने ईरानी फ़ौज लेकर पठानों से राज्य छीनने के लिये भारत पर आक्रमण किया था। परन्तु उस घटना की इससे कुछ भी तुलना नहीं हो सकती थी। विदेशी लोग तो अपना राज्य जमाने के लिये हिन्दुस्तान पर कई बार चढ़कर आये हैं, परन्तु हिन्दुस्तान के अपने रहने वालों ने हिन्दुस्तान की वफ़ादारी की कसम खाकर, हिन्दुस्तानियों की भलाई के लिये, देश के बाहर से हिन्दुस्तान पर पहले कभी आक्रमण नहीं किया था।

इस विचित्र परिस्थिति को इस समारोह में उपस्थित-गण जानते थे और प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति अपने मन में अनेक प्रकार के उठते हुए उद्‌गारों को अनुभव कर रहा था।

अब एक ओर खड़े एक फ़ौजी दस्ते ने भारत-माता की जय का गीत आरम्भ कर दिया:—

जन गण मन अधिनायक जय हो
भारत भाग्य विधाता
पंजाब सिन्ध गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंगा
चंचल सागर बिन्ध हिमाचल, नीला यमुना गंगा ॥

तेरे नित गुण गायें
तुझसे जीवन पायें
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय जय हो
भारत भाग्य है जागा।
जन गण.........भारत भाग्य विधाता।
सब के दिल में प्रीत बसे तेरी मीठी वाणी
हर सूबे के रहने वाले हर मज़हब के प्राणी ॥
सब मन के फरक मिटा के
सब गोद में तेरी आ के
गूंथे प्रेम की माला
सूरज बनकर जग में चमके भारत नाम सुभागा।
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय जय हो
भारत भाग्य है जागा
जन गण.........भारत भाग्य विधाता
सुबह सवेरे पंख पखेरू तेरे ही गुण गावें
बास भरी भरपूर हवायें जीवन में रुत लावें
सब मिलकर हिन्द पुकारें
जय जय हिन्द के नारे
प्यारा देश हमारा
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय जय हो
भारत भाग्य है जागा
जन गण.......भारत भाग्य विधाता।

अब राष्ट्रीय सेना के अधिनायक ने अपना भाषण आरम्भ किया। "भगवान की असीम कृपा से हम आज भारत-भूमि पर स्वतंत्र-सरकार के आधीन खड़े हैं। सैंकड़ों वर्षों की दासता, हमसे दूर भागती जा रही

है," ऐसा कहते हुए वक्ता ने पश्चिम की ओर संकेत कर दिया, "और हमने इस दासता को धकेलकर अरब सागर में डुबो देना है। मेरे जवान दोस्तो, यह तो अभी आरम्भ है। हमने दिल्ली पहुंचना है जो यहां से दो हज़ार मील दूर है। हम दिल्ली पहुंचेंगे। लाल किले पर कौमी झंडा फहरायेंगे। क्या हुआ यदि हमारे पास हवाई जहाज़ और बंदूकें कम हैं? क्या हुआ यदि हमारे पास खाने को मक्खन, अंडे और डबल रोटियां नहीं हैं? क्या हुआ यदि हमारे कपड़े फट रहे हैं? हम गुलामी के घी से आज़ादी का घास खाना अधिक पसन्द करेंगे।

"आज हमने अंग्रेज़ी राज्य के मज़बूत किले में सूराख कर दिया है और मां के आशीर्वाद से यह सूराख़ इतना बड़ा हो जायेगा और इसमें से राष्ट्रीय सैनिक उमंगों से भरे हुए इतनी भारी संख्या में भारतवर्ष में घुस जाएँगे कि अंग्रेज़ों को दुम दबाकर भाग जाने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं रहेगा।"

एक फ़ौजी बोला, "कौमी नारा!"

सारा मैदान जो फ़ौजियों और नगर के लोगों से भरा हुआ था एक स्वर से गूंज उठा, "जय हिन्द।"

वक्ता ने कहा, "हम दिल्ली चलेंगे।"

सब बोल उठे, "दिल्ली चलो।"

[३]

जब कैप्टन अज़ीज़ के साथी नाहरसिंह को पेड़ के साथ बंधा छोड़ चले गये तो वह बहुत घबराया। पिछली रात जंगल में रहने के कारण और दिन भर चलते रहने के कारण, वह भूखा और थका हुआ था। जब वह इम्फाल से चला था, तो उसने अपनी जेबों में कुछ रोटी के टुकड़े खाने के लिये रखे हुए थे, परन्तु राष्ट्रीय सेना के सिपाहियों ने, उसकी तलाशी लेते समय, ये टुकड़े निकाल लिये थे। राष्ट्रीय सेना के लोगों के पास पर्याप्त राशन नहीं था इस कारण जाते समय उसे खाने को कुछ नहीं दे गये।

इस समय नाहरसिंह को भूख लगी थी और थकावट भी थी, परन्तु वह बहुत जीवट का आदमी था। मुसीबत के साथ विचार-शक्ति को न खोना ही बहादुरी के लक्षण हैं और नाहरसिंह को 'विक्टोरिया क्रॉस' वास्तविक बहादुरी के उपलक्ष में ही मिला था।

वह कुछ काल तक विचारकर अपने को छुड़ाने का यत्न करने लगा। उसने अपनी कलाई पर बंधी रस्सी को पेड़ से रगड़ना आरम्भ कर दिया। उस रस्सी को घिस घिसकर तोड़ने में आधे घंटे से ऊपर लगा। जब हाथ खुल गये तो पांव खोलने में कठिनाई नहीं हुई। शीघ्र ही वह बन्धनों से मुक्त हो अपने स्थान पर खड़ा हो आगे के लिये विचार करने लगा।

वह कुछ खाने और आराम करने के लिये स्थान की खोज में था। विवश अपने चारों ओर जंगल और पहाड़ों को देख रहा था। दूर दूर तक कहीं किसी के रहने का चिन्ह दिखाई नहीं देता था। आगे जाने का मार्ग उसे मालूम नहीं था और पीछे उन्हीं लोगों की ओर जाने को चित्त नहीं करता था, जो उसे पेड़ के साथ बांधकर जंगली जानवरों की दया पर छोड़ गये थे। जब कुछ सूझ नहीं पड़ा तो वह एक पेड़ पर चढ़ने लगा जिस पर वह रात जानवरों से सुरक्षित रहकर व्यतीत कर सके। इस पेड़ पर अभी कुछ ही ऊपर चढ़ा था कि उसे थोड़ी दूर जंगल में एक दीपक टिमटिमाता दिखाई दिया। उसके मन में सभ्यता का यह चिन्ह देख कुछ आशा पैदा हो गई और वह पेड़ से नीचे उतर उस दीपक की ओर चल पड़ा।

लगभग आधा फर्लांग झाड़ियों के बीच में से जाने पर उसे एक झोंपड़ी मिली, जिसमें वह दीपक जल रहा था। झोंपड़ी में तीन प्राणी बैठे थे जो दीपक के प्रकाश में स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। तीनों किसी चिन्ता में प्रतीत होते थे। एक पुरुष था और दो स्त्रियां। नाहरसिंह के पांव की आहट सुन पुरुष ने आवाज़ दी, 'कौन है?' नाहरसिंह ने एक फ़ौजी की भांति उत्तर दिया, "एक मित्र।"

पुरुष झोंपड़ी के कोने से तीर-कमान उठा, तीर चढ़ा, नाहरसिंह की ओर तानकर बोला, "वहीं खड़े रहो।"

नाहरसिंह खड़ा हो गया। जब वह पुरुष खड़ा हुआ तो नाहरसिंह समझ गया कि किसी जंगली जाति का आदमी है। उसके बदन के ऊपर का भाग नंगा था। शरीर हृष्ट-पुष्ट प्रतीत होता था। उसने नाहरसिंह से कहा, "हाथ ऊंचे करो।"

नाहरसिंह समझ गया कि यद्यपि कोई जंगली है तो भी सभ्यता के तरीकों से परिचित है। वह हिन्दुस्तानी भी बोल सकता है। नाहरसिंह ने अपने स्थान पर खड़े खड़े हाथ ऊंचे कर दिये।

उस जंगली ने पूछा, "कितने आदमी हो?"

"अकेला हूं।"

"तो आगे चले आओ। देखो, यदि कोई और भी निकला तो तीर का निशाना बना दूंगा।"

नाहरसिंह हाथ ऊंचे किये हुए झोंपड़ी के समीप, प्रकाश में आकर खड़ा हो गया। उस जंगली ने पूछा, "तुम अंग्रेज़ी फौजी हो?"

"नहीं। यह वर्दी तो उनसे बचने के लिये पहनी है।"

"तो तुम कौन हो?"

"यह एक लम्बी बात है। कुछ खाने को दो तो सब बात बता दूंगा। भूख से मरा जाता हूं।"

इस पर उस पुरुष ने एक स्त्री की ओर देखकर अपनी भाषा में कुछ कहा। दोनों में से बड़ी आयु की स्त्री उठी और नाहरसिंह के समीप पहुंच उसकी तलाशी लेने लगी। नाहरसिंह ने आपत्ति नहीं उठाई।

नाहरसिंह के पास इम्फाल से चलने के समय एक पिस्तौल तो था, परन्तु राष्ट्रीय सेना के लोगों ने उसकी तलाशी लेते समय निकाल लिया था। उस स्त्री ने नाहरसिंह की जेबों में जब कुछ नहीं पाया तो पुरुष को अपनी भाषा में बताया। पुरुष के कहने पर स्त्री अपने स्थान पर लौट आई। जंगली ने नाहरसिंह को कहा, "आ सकते हो।"

वह झोंपड़ी में चला आया। यह जंगल की लकड़ियां गाड़कर बनाई गई थी। छत पर भी लकड़ियां और सूखे पत्ते डाले हुए थे। एक टूटे हुए मट्टी के ठीकड़े में, सूखी घास की बटकर बनी बत्ती और कोई तेल की भांति गाढ़ा पदार्थ, दीये का काम दे रहा था। दोनों स्त्रियां कमर पर एक अति मैले कम्बल की भांति मोटे कपड़े का लहंगा सा पहने थीं। कमर से ऊपर का शरीर नंगा था। गले में भांति भांति के पत्थरों की मालायें थीं। कानों में और सिर के बालों में भी कुछ श्वेत सी वस्तु टंगी थी। वह स्त्री जिसने नाहरसिंह की तलाशी ली थी कुछ बड़ी उमर की प्रतीत होती थी। दूसरी तो अभी लड़की ही प्रतीत होती थी। रूप-रेखा भी कुछ अच्छी थी। यद्यपि रंग गोरा था, परन्तु धूप-आंधी में नंगा रहने से भूरा सा हो गया प्रतीत होता था।

नाहरसिंह ने झोंपड़ी में पहुँच जब किसी खाने-योग्य पदार्थ का चिन्ह भी नहीं देखा तो निराश हो गया। जंगली यह सब नाहरसिंह के मुख पर देख मुस्कराकर पूछने लगा, "बहुत भूख लगी है?"

"हां।"

"हमारे पास लोमड़ी का भुना मांस है। खाओगे?"

नाहरसिंह ने भूख का ध्यान कर कहा, "देखता हूं। खा सका तो खाऊंगा।"

बड़ी आयु की स्त्री उठी और झोंपड़ी के बाहर निकल गई। पुरुष ने नाहरसिंह को बैठने को कहा। वह एक कोने में रखे कुछ सूखे पत्तों पर बैठ गया। स्त्री घास की बनी रस्सी से बंधी लोमड़ी की एक टांग जो धुँए में काली हो गई थी, हाथ में लटकाये आगई। पुरुष ने टांग पकड़ रस्सी खोल दी और नाहरसिंह को देकर बोला, "बस यही है। खा सकते हो तो खा लो। दोपहर को दो लोमड़ियां मारी थीं और उनको आग पर भूनकर खाया था। एक टांग बच गई थी सो तुम ले सकते हो।"

उस मांस की शक्ल देखकर तो नाहरसिंह की खाने को रुचि नहीं

होती थी, परन्तु भूख से उसका पेट बिलबिला रहा था। इससे उसने सोचा कि ज़रा चखकर देखें। उसने उस पर अंगुली रगड़कर ज़बान पर लगाई तो उसे प्रतीत हुआ कि नमक लगा है। उसने जंगली की ओर देखकर कहा, "नमक लगा है?"

"हां, वह हमें मिल जाता है।"

अब नाहरसिंह ने नाक के समीप ले जाकर सूंघा। गंध भुने मांस की सी थी। अब उसने मुख लगाया और पश्चात् चबा चबाकर खाने लगा। खाते हुए नाहरसिंह ने पूछा, "तुम कौन हो और यहां अकेले कैसे रहते हो?"

"हम नागपाल हैं। नाग की उपासना करते हैं। मैं छोटी उमर में अपने-मां बाप को छोड़ एक साहब की नौकरी करने चला गया था। उसके साथ दस वर्ष कलकत्ते में रहा हूं। फिर वह साहब चाय के खेतों में अफ़सर बनकर चला आया। मैं भी उसके साथ चला आया। ये स्त्रियां चाय के खेत में काम करती थीं। मैंने इससे," बड़ी आयु वाली की ओर संकेत कर कहा, "विवाह कर लिया। यह दूसरी इसकी छोटी बहन है।

"छः मास हुए अंग्रेज़ी फ़ौज आसाम में पहुंच गई तो उसमें के गोरे सिपाहियों ने चाय के खेतों में काम करने वाली स्त्रियों के साथ दुराचार करना आरम्भ कर दिया। एक दिन इसको (छोटी की ओर संकेत कर) एक गोरा सिपाही पकड़कर ले गया। यह बहुत रोई, छटपटाई और छूटने का यत्न करती रही। खेत में सब स्त्रियां ही थीं। वे भागकर साहब के पास आईं और रोने-गाने लगीं। मैं समीप खड़ा था। एक ने बताया कि एक गोरा कानू को पकड़कर खेत के एक कोने में ले गया है।

"साहब ने कहा, 'चुप रहो! अपना अपना काम करो।' मेरी स्त्री की आंखों से आंसू निकल आये। यह मुझसे देखा नहीं गया। मेरी अंटी में एक चाकू था जिससे जानवरों की खाल उतारी जाती है। मैंने उस चाकू को टटोलकर देखा। वह अपने स्थान पर था। मैं बिना किसी को कुछ भी कहे, खेत के उस कोने की ओर चल पड़ा जिधर स्त्रियों ने

गोरे को कानू को ले जाते देखा था।

"मैं जब वहां पहुंचा तो वह इससे दुराचार कर रहा था। यह भूमि पर उसके नीचे बेबस पड़ी थी। मैंने अंटी से चाकू निकाल उसकी पसली में घोंप दिया। वह आह कर लोट-पोट होने लगा। मैंने कानू को उठाया और अपनी स्त्री को आवाज़ दे बुलाया। वह भागती हुई मेरे पीछे पीछे आ रही थी और पूर्व इसके कि अन्य लोग हमारे समीप आते मैं इनको साथ ले भाग खड़ा हुआ। हमने उस रात तो समीप के जंगल में छिपकर जान बचाई और अगले दिन भाग बर्मा की सरहद में घुस आये। यह स्थान अंग्रेज़ों के आधीन नहीं है। इस कारण यह झोंपड़ी बना ली है और अब यहां रहता हूं। हमारे पास इन कपड़ों के अतिरिक्त और कपड़े नहीं हैं। हमारे पास खाना पकाने को बर्तन नहीं हैं। यह ठीकरा, जिससे दीपक बनाया है, यहीं पड़ा मिल गया था। इसमें जानवरों की चर्बी डालकर जलाता हूं। जानवरों का मांस और पेड़ों के कंद-फल खाकर निर्वाह करते हैं।

आज सुबह बहुत से फ़ौजी बर्मा की ओर से आसाम की सरहद की ओर जाते दिखाई दिये हैं। इससे मैं यह समझा हूं कि इस जंगल में भी गोरे सिपाहियों से बचना कठिन हो जायगा। ये (औरतें) इस समाचार से सहमी हुई हैं और तुम्हारे आने से पूर्व हम सोच रहे थे कि और घने जंगल में चले जायें, परन्तु अब वर्षा आरम्भ होने वाली है और यह झोंपड़ी, जो छः मास के कठोर परिश्रम से तैयार की है, छोड़ने को मन नहीं मानता।"

नाहरसिंह ने लोमड़ी की टांग का आधा मांस धीरे धीरे खा लिया था। इससे उसकी भूख कुछ कुछ मिट गई और उसकी और अधिक मांस खाने में रुचि नहीं रही। इस समय उसने देखा कि कानू होठों पर ज़बान फेर रही है, इससे उसने शेष मांस का टुकड़ा कानू की ओर बढ़ाकर कहा, "तुम खालो।"

कानू ने अपने जीजा की ओर देखा। वह हंस पड़ा। कानू ने इसे

स्वीकृति मान खाना आरम्भ कर दिया।

नाहरसिंह ने उस जंगली आदमी से उसका नाम पूछा। उसने उत्तर दिया, "अम्बर।"

नाहरसिंह ने कहा, "मैं बर्मा जा रहा हूं। मैं भी अंग्रेज़ी राज्य से भागकर आया हूँ। तुम मेरे साथ चलो।"

अम्बर ने प्रश्न भरी दृष्टि से स्त्रियों की ओर देखा और अपनी भाषा में कुछ पूछा। कानू ने तुरंत सिर हिला दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपने इस जीवन से सर्वथा ऊब गई है। कुटिया के एक कोने में सूखे पत्तों को बिछाकर सोने का स्थान बना था। कानू का स्थान नाहरसिंह को सोने के लिये दिया गया। वह थका होने से लेटते ही सो गया।

[४]

इधर इम्फाल पर राष्ट्रीय सेना का अधिकार हुआ तो उधर कोहीमा पर आक्रमण कर दिया गया। यदि ऋतु अनुकूल होती और जापानी थोड़े से हवाई जहाज़ों से हिन्दुस्तानी राष्ट्रीय सेना की सहायता करते तो राष्ट्रीय सेना, जिस तेज़ी से इम्फाल तक आई थी, उसी वेग से आसाम पार कर जाती। युद्ध विशेषज्ञों का कहना है कि यदि एक बार राष्ट्रीय सेना बंगाल के मैदानों में आजाती तो बंगाल में विप्लव खड़ा हो जाता।

यह ठीक था कि सन १९४२ का समय नहीं था। इस वर्ष के आरम्भ में अंग्रेज़ों के पास रक्षा का प्रबन्ध बिलकुल नहीं था। परन्तु अब सन १९४४ का मध्य था। अंग्रेज़ों ने बहुत तैयारी कर ली थी। साथ ही लाखों अमेरिकन सिपाही अरबों रुपये की लागत का लड़ाई का सामान साथ लेकर हिन्दुस्तान में स्थान स्थान पर छावनियां डाले हुए थे। इस पर भी जन-साधारण के सम्मुख यह सब कुछ विफल जाता। देश भर में इतना असन्तोष था कि किंचितमात्र भी विद्रोह की सफलता की आशा होने पर, सूखे घास में चिन्गारी की भांति, पूरा देश विद्रोह से

सजग हो उठता।

परन्तु ऐसा होना नहीं था

धीरेन्द्र ने यह देखने के लिये कि नाहरसिंह सही-सलामत बर्मा में चला जाता है या मार्ग में रोक लिया जाता है, एक और आदमी उसके पीछे भेज दिया। वह जासूस नाहरसिंह को तार की हदबंदी पार करते देख आया था। अब धीरेन्द्र यह आशा लगाये हुए था कि शीघ्र ही कोई सूचना प्राप्त होगी।

[५]

यह इस प्रकार हुआ। नाहरसिंह के जाने के दो मास उपरान्त, एक दिन एक पंजाबी सिख युवक धीरेन्द्र से मिलने आया। धीरेन्द्र लिखने का काम कर रहा था कि मोहन कमरे में आकर बोला, "गुरु जी, एक पंजाबी सिख आपसे मिलने आया है।"

"क्या कहता है?"

"मुझसे पूछता था, 'तुम मोहन हो?' जब मैंने हां कहा तो बोला, 'गुरु जी से कहो कि मैं बर्मा से आया हूं।"

धीरेन्द्र ने उसे तुरंत बुला लिया और बैठाकर कमरा बन्द कर लिया, ताकि निर्विघ्न बातें हो सकें। वह सिख युवक साधारण नागरिकों का पहरावा पहने हुए था, परन्तु कमरे में प्रवेश करते ही उसने फ़ौजी ढंग से सलाम कर 'जय हिन्द' कही थी। धीरेन्द्र ने 'जय हिन्द' का उत्तर दे पूछा, "क्या काम है?"

"मुझे नेता जी ने भेजा है।"

"प्रमाण"

सिख युवक ने कोट के अन्दर की जेब में से एक अंगूठी निकाल कर दिखाई और कहा, "संकेत पर संकेत कहूंगा।"

गुरु जी ने देखा कि अंगूठी नाहरसिंह की है। उसे पहचान धीरेन्द्र ने संकेत दिया, 'भुवनेश्वर।"

सिख युवक ने उत्तर में कहा, "जय शंकर।"

गुरु जी ने कहा, "हां, अब बताइये। कैसे आना हुआ है?"

"मुझे कल रंगून में एक गोरखा अफ़सर के पास भेजा गया था। उस अफ़सर ने मुझे आपसे मिलने का पता बताया और यह अंगूठी संकेत के लिये देकर एक चिट्ठी दी है। मुझे आज्ञा है कि वह चिट्ठी केवल आपके हाथ में दूं। उस गोरखा अफ़सर का नाम नाहरसिंह है। नेता जी की आज्ञा है कि यदि कहीं पकड़ा जाऊं तो विष, जो मैं अपने पास लिये हूं, खाकर मर जाऊं। कल सायंकाल मैं एक जापानी हवाई जहाज़ में सवार होकर रंगून से चला था और रात के बारह बजे के लगभग कलकत्ते से दस मील उत्तर की ओर पैराश्यूट बांधकर कूद पड़ा।

एक हाथ में पिस्तौल और एक हाथ में विष लेकर मैं घटाटोप अंधेरे में कूदा था। जब भूमि पर पहुंचा तो मुझे प्रतीत हुआ कि मैं एक खेत में ग्रांड ट्रंक रोड के समीप हूं। मैंने पैराश्यूट को खोल डाला और उसे लपेटकर एक पुल के नीचे छिपा दिया। मुझे मालूम था कि कलकत्ता दक्षिण की ओर है। अतएव सड़क पर पहुंच मैं दक्षिण की ओर चल पड़ा। दिन निकलने तक कलकत्ते पहुंच गया और ढूंढता हुआ आपके पास आ पहुंचा हूं।"

इतना कह उसने कोट की जेब से एक लिफ़ाफ़ा निकालकर गुरु जी को दे दिया। धीरेन्द्र ने पत्र लेकर पूछा, "आपका नाम क्या है?"

"कृपालसिंह।"

"कहां के रहने वाले हैं?"

"जिला गुजरात पंजाब का हूं।"

धीरेन्द्र ने आवाज़ दे मोहन को बुलाया और सिख युवक को दूसरे कमरे में ले जाकर स्नान तथा भोजन इत्यादि का प्रबन्ध करने को कहा। उसके वहां से चले जाने पर धीरेन्द्र ने पत्र खोलकर पढ़ना आरम्भ किया। लिफ़ाफ़े में एक पत्र बहुत बारीक अक्षरों में लिखा हुआ था और दो और पत्र थे। इनमें एक नेता जी का अपने हाथ का लिखा था।

धीरेन्द्र ने नेता जी का पत्र पहले पढ़ा। लिखा थाः—

"भाई, आपका दूत मिला। जिस जीवट का वह आदमी है उससे तो वह ठीक ही विक्टोरिया क्रॉस का अधिकारी सिद्ध होता है। उसने स्वराज्य-संस्थापन-समिति का परिचय दिया है। यह जानकर मेरा मन आनन्द से बल्लियों उछल रहा है। भारतवर्ष पर भगवान की असीम कृपा प्रतीत होती है जो आप लोग हमारे स्वागत करने के लिए तैयार हैं। मैं इस बात को भली भांति समझ रहा हूं कि बंगाल में विप्लव खड़ा करने का समय तब आवेगा जब हम बंगाल के मैदानों में उतर आवेंगे। मैं तो समझता था कि अब तक हमें कलकत्ते पहुंच जाना चाहिये था। हमारे बहादुर सिपाही तो इतने वेग से आगे बढ़े थे कि एक समय तो अंग्रेज़ी फ़ौज के छक्के छूट गये थे, परन्तु मुझे जापानियों की ओर से धोका हुआ है। वहां से मुझे हवाई जहाज़ों की सहायता का वचन मिला था। उस सहायता की चार मास से प्रतीक्षा कर रहा हूं। यदि इस समय मेरे पास दस-बीस भी लड़ने वाले हवाई जहाज़ होते तो उनकी रक्षा में हमारे बहादुर सिपाही बंगाल के हरे-भरे मैदानों में पहुंच चुके होते।

"अब वर्षा आरम्भ होगई है। हमारे पास न तो मोटर-ट्रैक हैं, न ही बारबरदारी के लिये खच्चर। हम अपने उन सिपाहियों को, जो आगे की पंक्ति में खड़े अमेरिकन और अंग्रेज़ी फ़ौजों का और उनके पूर्ण अस्त्र शस्त्रों का दृढ़ता और बहादुरी से मुकाबला कर रहे हैं, खाने का सामान और दारू-बारूद भी नहीं भेज सकते।

"जापान ने सहायता का वचन दिया था। यह वचन पूरा नहीं हुआ, इस कारण हमारे सिपाहियों को कुछ पीछे हट आना पड़ा है। अब पुनः जनवरी के महीने में आक्रमण करेंगे। ईश्वर की कृपा से, इस बार हम पूरी तैयारी से आगे बढ़ेंगे। सब प्रकार का प्रबन्ध हम स्वयं अपना कर रहे हैं।

"मैं चाहता हूं कि जनवरी तक आप योजना बनाकर अपने पूरे

बल से चोट करने के लिये तैयार रहें। फरवरी में हम बंगाल के मैदानों में कूद पड़ेंगे। आप हमारे प्राईवेट ब्रॉडकास्ट को सुना करें।"—सुभाष

नाहरसिंह की दो चिट्ठियां थीं। एक इस प्रकार थी :—

"गुरुवर, चिट्ठियां लिखना भयरहित नहीं, परन्तु इसके बिना दूसरा उपाय भी नहीं है। अतएव लिखता हूं। पत्र-वाहक कृपालसिंह बहुत विश्वासी आदमी है। साथ ही यह भी ध्यान रखा गया है कि वह जीवित शत्रु के हाथ में न पहुंच सके। पत्रों में किसी का नाम तथा पता नहीं लिखा और कृपालसिंह को इस प्रकार समझा दिया गया है कि वह आपको पहचानने में धोखा न खाये।"—नाहर

तीसरा पत्र लम्बा था। यह एक प्रकार का नाहरसिंह का रोज़-नामचा था। इसमें उसने कलकत्ते से विदा होने के समय से लेकर रंगून में पहुंचने तक का वृत्तान्त और फिर नेता जी से भेंट और जनता के विचारों की पूर्ण कथा लिखी थी। अम्बर से मिलने तक की बात लिख, उसने लिखा:—

"अगले दिन हम तीनों दक्षिण की ओर चल पड़े। उनको साथ रखने से मुझे यह लाभ हुआ कि जंगल में बिना खाने पीने और ठिकाने के भी शिकार से निर्वाह होता गया। रात को किसी न किसी जानवर का भुना हुआ मांस मिल जाता था। अम्बर का पूरा सामान तीर-कमान, एक तेज़ चाकू, दो चकमक पत्थर और कपड़े की पोटली में बंधा थोड़ा नमक था।

"दो दिन चलने के पश्चात् वर्षा आरम्भ हो गई। इस समय हम एक गांव में जा पहुंचे थे जहां राष्ट्रीय सेना के लोग डेरा डाले हुए थे। उनके अफ़सर से मिलकर मैंने अपना वृत्तान्त और आशय प्रकट किया। तत्पश्चात् हमें एक मोटर-ट्रक में बैठाकर रंगून भेज दिया गया। यहां जो कुछ मैंने देखा वह एक मृत शव में भी जीवन-संचार कर देने वाला है। पूर्ण हिन्दुस्तानी समाज राष्ट्रीय सेना से सहयोग दे रहा है। नेता जी यहां देवता के समान पूजे जाते हैं। लोग अपनी प्रत्येक वस्तु को उन

पर न्योछावर करने के लिये तैयार हैं।

"मैंने अभी उस दिन नेता जी की वर्ष-गांठ का उत्सव देखा है। लोगों का प्रेम देख तो मेरे आंसू निकल आये थे। नेता जी का तुलादान किया जा रहा था। सब जानते थे कि यह सोना-भूषण इत्यादि राष्ट्रीय सेना के काम आवेगा और स्त्री-पुरुष एक न समाप्त होने वाली पंक्ति में तराजू के दूसरे पलड़े में अपने भूषण और सोने के टुकड़े डालने के लिये उमड़े चले आते थे। प्रत्येक आगे निकलकर अपनी भेंट अर्पण करना चाहता था। लोगों को संदेह था कि कहीं उनकी बारी आने से पूर्व तुला पूरी हो गई तो इस पुण्य-कार्य के भागी न हो सकेंगे। देखते देखते पलड़ा भूषणों से भरता जाता था। एक एक कर लोग आते थे और अपनी भेंट पलड़े में डाल, नेता जी को केसर का तिलक लगा, विदा होते जाते थे। नेता जी के स्थान के बाहर लोग लाखों की संख्या में नेता जी के दर्शन को खड़े थे।

देखते देखते भूषणों से लदा पलड़ा झुक गया। सब के मुख से जय जयकार के शब्द निकल पड़े। वास्तव में ही हृदय को आन्दोलित कर देने वाला दृश्य था। स्त्रियां अपने हाथों की चूड़ियां, कानों की बालियां अथवा गले का हार निकाल निकाल ऐसे दे रही थीं मानो रांगा-लोहे के बने हों।

"एक दिन एक मुसलमान खोजा आया और एक करोड़ रुपये की पूर्ण सम्पत्ति नेता जी को दे गया। ऐसी घटनायें नित्य होती रहती थीं। उस दिन मैं फ़ौजी परेड देखने गया था। पंजाबी, गोरखे, बंगाली, मद्रासी, बच्चे, पुरुष, स्त्रियां सब इस सेना में थे। हिन्दुस्तान के लिये गौरव की बात है कि एक वर्ष के भीतर पचास हज़ार से ऊपर आदमी फ़ौजी शिक्षा पा सेना में भरती हो चुके हैं।

"हिन्द राष्ट्रीय सेना के साथ सहानुभूति और सहायता का जहां तक सम्बन्ध है वह बर्मा, सिंगापुर, थाइलैंड और फ्रैंच इन्डो-चाइना में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को पूर्ण रूप में प्राप्त है। सिंगापुर में एक

सभा में एक लाख के लगभग लोग उपस्थित थे। नेता जी जब पहुंचे तो लोगों ने फूलों की माला पहनाई। नेता जी ने वह माला अपने सम्मुख रख भाषण दिया; पश्चात् इस माला को नीलाम किया गया। एक हज़ार से बोली आरम्भ हुई। बढ़ती बढ़ती एक लाख तक पहुँच गई। एक लाख की बोली एक पंजाबी युवक की थी। एक और ने डेढ़ लाख कह दिया। इस पर उस पंजाबी युवक ने दो लाख कहे। दूसरे ने तीन लाख कह दिया। इस पर पंजाबी युवक बोल उठा, 'मेरी सारी सम्पत्ति और साथ ही मैं भी। अगले दिन उस पंजाबी ने साढ़े चार लाख की सम्पत्ति नेता जी को देकर अपना नाम सेना में लिखा दिया।

"इस प्रकार की घटनायें यहां नित्य होती रहती हैं। इस पर भी मुझे एक वस्तु का अभाव प्रतीत होता है। वह है फ़ौजी सामान का। बर्मा, मलाया और थाइलैंड में बन्दूकों, कारतूसों, बमों, हवाई जहाज़ों के बनाने अथवा मरम्मत करने का एक भी कारखाना नहीं। इस समय भी जो मुहिम आसाम में चल रही है उसके लिये दारू-बारूद, मोटर-गाड़ियां और हवाई जहाज़ों की कमी है।

"लोगों के त्याग और उत्साह को देखकर तो मन गदगद हो जाता है, परन्तु सामान का अभाव देखकर हृदय डर से कांप जाता है। नेता जी का व्यक्तित्व तो जादू का असर दिखा रहा है, परन्तु बिना सरो-सामान के तो भगवान भी असफल रह जायेंगे।

"जापानियों ने हवाई जहाज़ और ट्रक देने का वचन दिया है, परन्तु यह शरद ऋतु के पूर्व नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह है कि आक्रमण स्थगित करना पड़ रहा है।

"मुग़ल राज्य के विरुद्ध राजपूताना और विशेष रूप में उदयपुर ने विद्रोह का झंडा ऊंचा किया था। वहां लगन, त्याग और बहादुरी की कमी नहीं थी। कमी थी तो फ़ौजी सामान की। अकबर के पास तोपें थीं और जयमलसिंह तथा फतहसिंह के पास तीर-कमान। वही बात मुझे

अब मालूम हो रही है। हिन्दुस्तानी राष्ट्रीय सैनिक फटी हुई वर्दी पहने, टूटे हुए जूतों से, जंगल के घास और पत्ते खाते हुए अंग्रेज़ी फ़ौज के छक्के छुड़ा रहे हैं। परन्तु यह कब तक हो सकेगा। अंग्रेज़ों और अमेरिकनों के पास फ़ौजी सामान असीम है।" —नाहर

[६]

इस चिट्ठी ने धीरेन्द्र के जोश पर ठंडा पानी डाल दिया। उसने कृपालसिंह से और विषयों में भी परिचय प्राप्त करने का यत्न किया। जो कुछ उसे मालूम हुआ उससे वह इस परिणाम पर पहुंचा था कि इस युद्ध में अंग्रेज़ों और अमेरिकनों की जीत होगी। अंग्रेज़ों की जीत और जर्मन तथा जापानियों की हार में कारण यह नहीं था कि अंग्रेज़ न्याय और दया के पक्ष में थे और जर्मन अन्याय और निर्दयता के पक्ष में। वास्तविक बात यह थी कि अंग्रेज़ों के साथ रूस और अमेरिका का शामिल हो जाना ही उनकी जीत का कारण बन गया। रूस और अमेरिका की अस्त्र-शस्त्र और जन-शक्ति अतुल थी। जापान, जर्मनी और इटली उनके मुकाबले में न तो अस्त्र-शस्त्र बना सके और न ही फ़ौजी भरती कर सके। दुर्भाग्य से बोस बाबू जापानियों और जर्मनों की सहायता पर भरोसा कर रहे थे, और असफलता अनिवार्य थी।

इतना विचार कर धीरेन्द्र ने बोस बाबू के आन्दोलन से अपना ध्यान हटाकर हिन्दुस्तान के भीतर अपना ध्यान केंद्रित कर दिया। इस समय स्वराज्य-संस्थापन-समिति की शक्ति की परीक्षा की गई। सब से दुखद बात जो धीरेन्द्र को प्रतीत हुई वह इस समिति में मुसलमानों का अभाव था। क्षत्रिय वर्ग में तो एक भी मुसलमान नहीं था और कर्मचारी वर्ग में कहीं दस हजार में दो-चार मुसलमान थे। धीरेन्द्र के मस्तिष्क में तो हिन्दुस्तानियों के स्वराज्य के चित्र में मुसलमानों का एक मानयुक्त स्थान था। शंकर पंडित और नरेन्द्र स्वराज्य-संस्थापन-समिति में और स्वराज्य-प्राप्ति पर भारत सरकार में मुसलमानों के होने या न होने को किसी प्रकार का महत्व नहीं देते थे। इस विषय पर परस्पर मतभेद

होते हुए भी काम चल रहा था। अभी इस पर सोचने का अवसर नहीं आया था, परन्तु अब ज्यों ज्यों विप्लव खड़ा करने का समय समीप आता-जाता था मुसलमानों का समिति में अभाव अखरने लगा था।

धीरेन्द्र ने नरेन्द्र को और नवरत्न-मंडल के अन्य सदस्यों को देहली में इसी विषय में विशेष प्रयत्न करने के लिये और प्रयत्न के ढंग पर विचार करने के लिये आमंत्रित किया। नरेन्द्र, बनारसीदास और शेखरानन्द की सम्मति यह थी कि यदि कोई मुसलमान समिति में सम्मिलित होने आता है तो आपत्ति नहीं उठानी चाहिये, परन्तु उनको सम्मिलित करने के लिये विशेष प्रयत्न करना और इसके लिये विशेष योजना बनानी अनुचित है। ऐसा करने का अभिप्राय यह होगा कि उनको विशेष सुविधायें दी जायें। यह स्वेच्छा से सम्मिलित रहने वालों के साथ अन्याय होगा।

इसके विपरीत धीरेन्द्र, सेठ कुञ्जबिहारी, नरोत्तम और नरहरिराव समझते थे कि समिति में बिना मुसलमानों को पर्याप्त संख्या में सम्मिलित किये विप्लव के समय मुसलमानों के मन में सन्देह बना रहेगा और सम्भव है कि वे अंग्रेज़ों की सहायता करने पर और समिति का विरोध करने पर उतर आवें। यह एक भारी विघ्न और बाधा बन जायगी। इस कारण मुसलमानों को सम्मिलित करने के लिये विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है।

शंकर पंडित अभी हिमालय से लौटा नहीं था और नाहरसिंह बर्मा में था। इस प्रकार तीन के मुकाबले में चार सम्मितियों से धीरेन्द्र की योजना स्वीकार हो गई। मुसलमानों को समिति में सम्मिलित करने के लिये विशेष प्रयत्न-स्वरूप विशेष धन की स्वीकृति दी गई।

धीरेन्द्र ने क्षत्रिय वर्ग के और कर्मचारी वर्ग के उप-नेताओं को इस विषय में प्रयत्न करने का आदेश दे दिया। इसमें भिन्न भिन्न प्रांतों में कई स्थानों पर मुसलमानों को मण्डलियों में लाने के लिये कहा गया। इस विषय में सिर-तोड़ यत्न होने लगा।

कुछ मण्डलियों के हिन्दू-सदस्यों को मुसलमानों से सम्पर्क उत्पन्न करने के लिये कहा गया। इनमें एक चूनीलाल था। यह अमृतसर वीविंग मिल्ज़ में काम करता था। इसके विभाग में बीस आदमी थे जिन में पन्द्रह मुसलमान थे और पांच हिन्दू। इस विभाग का फोरमैन एक मुसलमान अब्दुलक़रीम था।

चूनीलाल ने अब्दुलक़रीम को अपने घर पर चाय-पार्टी दी। इस पार्टी में उसने अपने एक और मित्र अमरनाथ को भी बुलाया था। नगर के बाहर, लोहगढ़ दरवाजे से कुछ दूर एक छोटे से मकान में, जहां चूनीलाल रहता था, यह चाय-पार्टी हो रही थी। तीनों एक मेज के आस-पास लकड़ी की कुर्सियों पर बैठे बातें करते हुए चाय की प्रतीक्षा कर रहे थे। चूनीलाल ने कहा, "मिस्त्री जी, गांव से बढ़िया घी आया था। मैंने सोचा कुछ दोस्त मिलकर खायेंगे तो बहुत मज़ा रहेगा। बस यह आज की चाय-पार्टी का कारण है। घी के साग वाले पकौड़े और चाय, बस इतना ही है।"

अमरनाथ ने कहा, "परन्तु ऐसे अवसरों पर खाने से अधिक मेल-मुलाकात की बात होती है।"

"हां," चूनीलाल का उत्तर था, "देखिये, यह मिस्तरी अब्दुल-करीम हैं। कारखाने में हमारे विभाग के फोरमैन हैं और बहुत ही अच्छे आदमी हैं। इनका हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े से कोई सरोकार नहीं। इनकी मुझ पर तो बहुत ही कृपा है।"

अब्दुलकरीम अपनी प्रशंसा सुन झेंप रहा था। अभी कुछ दिन पूर्व की बात है कि उसने चूनीलाल की तरक्की का विरोध कर एक मुहम्मदअसलम की सिफारिश की थी। यद्यपि तरक्की चूनीलाल की ही हुई थी इस पर भी अब्दुलकरीम का विचार था कि यह पार्टी उस की खुशामद करने के लिये दी गई है। चूनीलाल ने अब्दुलकरीम को कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया और अपने मित्र अमरनाथ का परिचय कराते हुए कहा, "ये हैं मेरे गहरे दोस्त अमरनाथ जी। पंजाब

नैशनल बैंक की हाल बाज़ार की ब्रांच में क्लर्क हैं। हम जब तक एक दूसरे को रात तक देख नहीं लेते हमें नींद नहीं आती। यह हाल बाज़ार में ही रहते हैं।"

अब अमरनाथ की बारी थी। उसने अब्दुलकरीम की ओर देख कर कहा, "मुझे आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई है। मुझे उम्मीद है कि मैं आपको अपने गहरे दोस्तों में गिन सकूंगा।"

"हां, हां! क्यों नहीं। इन्शा अल्ला मैं आपकी ख़िदमत के लायक बन सकूं तो मुझे अज़हद खुशी होगी।"

इस समय चूनीलाल की बहन हाथ में पकौड़ों का थाल लिये हुए कमरे में दाख़िल हुई। अमरनाथ ने उसे देखकर कहा, "ओह······ इन्द्रा······तुम गांव से कब आई हो?"

"यही तो घी लेकर आई है," चूनीलाल ने उत्तर दिया। "मां आजकल बीमार रहती है। मैं परसों गया था और इसे ले आया हूं।"

इन्द्रा पन्द्रह वर्ष की लड़की थी, परन्तु देहात में पली होने के कारण उन्नीस-बीस वर्ष की प्रतीत होती थी। एक युवा लड़की को सम्मुख देख अब्दुलकरीम उसका मुख देखता रह गया। इन्द्रा पकौड़े रख रसोईघर में चली गई। अब्दुलकरीम ने बात आरम्भ कर दी, "आप मुसलमानों के साथ खाने को बुरा नहीं मानते न?"

"नहीं," चूनीलाल का कहना था, "आओ, खाना शुरू करें।"

इस समय एक बड़े कांच के प्याले में चटनी लेकर इन्द्रा फिर आई। अब्दुलकरीम एक पकौड़ा उठा खाने लगा था, कि इन्द्रा को सम्मुख देख खाना भूल गया। इन्द्रा ने पूछा, "अभी पानी लाऊं या एकदम चाय ले आऊं?"

अब्दुलकरीम ने एकदम कह दिया, "पहले पानी। चाय पीछे लेंगे।"

इन्द्रा मुस्कराकर चली गई। अब्दुलकरीम ने कहा, "देहात की

होने पर भी बातें तो शहर वालों की सी करती है।"

"मेरे भाई जंडियाला में दूकान करते हैं। उनके कोई सन्तान नहीं और इस लड़की से उनका बहुत स्नेह है। इसे अक्सर अपने घर रखते हैं। इस पर भी यह यहां आती रहती है।"

तीनों एक ही प्याले में रखी चटनी से लगा लगाकर पकौड़े खा रहे थे। अब्दुलकरीम ने फिर कहा, "आप लोग मुझसे परहेज़ नहीं करते?"

अमरनाथ ने कहा, "आप हिन्दुस्तानी जो हैं। एक हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी से परहेज़ नहीं कर सकता।"

"मगर पहले तो हिन्दू लोग मुसलमानों से छूकर भी खाना नहीं खा सकते थे।"

"ठीक है। पहले पहल जो मुसलमान यहां आये थे वे अपने आप को ईरान और ग़जनी का रहने वाला कहते थे। उस समय के हिन्दू विदेशियों से घृणा करते थे। इसलिये यह नफ़रत की रिवाज चल गई थी। मगर अब तो तुम लोग अपने को हिन्दुस्तानी ही मानते हो, इसलिये हम तुम्हारे साथ खाने में परहेज़ नहीं करते।"

अब्दुलकरीम मन में सोच रहा था कि वह तो मुसलमान है। हिन्दुस्तानी नहीं। इस पर भी अपनी ओर से वह उनसे विवाद में पड़ना नहीं चाहता था। फिर भी उसने पूछा, "विवाह के विषय में आपका क्या विचार है। क्या वह भी आप मुसलमानों से कर सकते हैं?"

"मैं समझता हूं कि यह परहेज़ भी नहीं रहेगा, मगर इससे पहले एक-आध बात का और विश्वास कर लेना आवश्यक है। यदि मुसलमान गाय की कुरबानी देना और गोमांस खाना बन्द कर दें और पति पत्नी को अथवा पत्नी पति को मज़हब की स्वतंत्रता दे सके तो हिन्दू और मुसलमानों में विवाह का रिवाज भी चल सकेगा।"

"मगर" अब्दुलकरीम का कहना था, "जब एक लड़की मुसलमान से विवाह करेगी तो वह खुद ही मुसलमान हो जायगी। फिर उसे गोमांस

से परहेज़ की ज़रूरत नहीं रहेगी।"

"लेकिन अगर एक हिन्दू लड़की मुसलमान से विवाह कर भी हिन्दू रहना चाहती है तो वह आशा करेगी कि घर में गोमांस न बनाया जाय।"

अब्दुलकरीम यह नहीं समझ सका कि एक हिन्दू लड़की मुसलमान की स्त्री बनकर भी कैसे हिन्दू रह सकेगी और फिर एक मुसलमान कैसे गाय की कुरबानी से अपना हक़ छोड़ देगा। परन्तु उसके मन में इन्द्रा के रूप ने हलचल मचा रखी थी। इस कारण वह अपने मन की बात कह नहीं सका। चुपचाप सुनता रहा।

अब इसी विषय को अमरनाथ ने आगे चलाया। उसने कहा, "हक़ीकत यह है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों में दोष हैं। जहां मुसलमान जब किसी ग़ैर मुसलमान से विवाह करते हैं तो वे उसे इस्लाम स्वीकार करने पर विवश करते हैं और हिन्दू मुसलमानों से नफ़रत करते हैं। हम इन दोनों बातों को अनुचित समझते हैं। इस कारण हिन्दुस्तान में हम ने एक नई मजलिस बनाई है। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। दोनों की बुरी बातों को मिटाकर दोनों की अच्छी बातों को ग्रहण करना चाहते हैं।"

अब्दुलकरीम के मन में अभी भी इन्द्रा का रूप समा रहा था। इससे वह अमरनाथ की बात के अर्थ समझे बिना ही सिर हिला रहा था। चूनीलाल ने उसके मन के भावों को जानने के लिये कहा, "अगर हम अपनी इस मजलिस को कामयाब कर सके तो हिन्दुस्तान में कितना सुख और शान्ति होगी। सब लोग बिना भेद-भाव के, बिना खानपान और विवाह-शादियों के बन्धनों के भाई भाई की भांति रह सकेंगे। मज़हब हर एक शख़्स की अपनी अपनी बात रह जायगी। जैसे एक दावत में जिसका मन चाहे मिठाई खाता है और जिसका मन चाहे नमकीन, कोई किसी को नमकीन या मिठाई खाने पर विवश नहीं कर सकता, इसी प्रकार हम चाहते हैं कि हमारी इस मजलिस में लोग भी,

जो चाहें मुसलमान बनें और जो चाहें हिन्दू। कोई किसी दूसरे को मजबूर न कर सकेगा।"

"आपकी यह मजलिस कहां है?"

"यहां अमृतसर में भी है।"

"उसमें क्या मुसलमान भी हैं?"

"कम हैं।"

"मुसलमानों के लिये बहुत मुश्किल है। हम यह समझते हैं कि एक परिवार में, एक मुहल्ले में, एक नगर में और एक देश में एक मज़हब के मानने वाले ही होने चाहियें। अगर कुछ ग़ैर-मुसलिम, देश नगर या मुहल्ले में रह जाते हैं तो यह हमारी मजबूरी की वजह से है। परिवार में तो ग़ैर-मज़हब के लोग हम कभी भी दाख़िल नहीं करेंगे।"

"तो इसका मतलब यह है कि ग़ैर-मज़हब वाले मुसलमानों से शादी का रिश्ता पसन्द नहीं करेंगे।"

इस बात ने अब्दुलकरीम पर घड़ों पानी डाल दिया। वह कुछ उत्तर नहीं दे सका। इस समय इन्द्रा चाय का सामान ले आई। वह प्याले और चायदानी इत्यादि मेज़ पर रखने लगी थी। अब्दुलकरीम सोच रहा था कि चूनीलाल की आर्थिक स्थिति का आदमी इस सब सामान और दावत पर इतना व्यय कैसे कर सकता है। परन्तु इन भावों को इन्द्रा की सूरत-शक्ल देख वह प्रकट नहीं कर सका। उसका विचार फिर विवाह के विषय की ओर चला गया। उसने अपने प्याले में चाय डालते हुए कहा, "परन्तु तुम हिन्दू लोग भी तो यह पसन्द नहीं करोगे कि तुम्हारे घर में तुम्हारी स्त्री कुरान पढ़े, निमाज़ अदा करे और ईद के दिन कुर्बानी दे।"

इन्द्रा खड़ी अमरनाथ के लिये चाय बना रही थी और अमरनाथ अब्दुलकरीम की बात सुन रहा था। चूनीलाल ने इस बात का उत्तर दिया, "यह ठीक है कि हिन्दू इसे पसन्द नहीं करते और यही वजह है कि हमें एक नई समाज यानी सुसाइटी बनाने की ज़रूरत महसूस हुई

है । हमारी इस सुसायटी के लोग यह चाहते हैं कि जैसे एक देश, सूबा या नगर में मुख्तलिफ़ मज़हबों के लोग अपना अपना मज़हब रखते हुए ग़ैर-मज़हब वालों से व्यापार, लेन-देन और नौकरी-चाकरी करते हैं वैसे ही एक परिवार के लोग भी करें । हर एक अपना अपना मज़हब रखने में आज़ाद हो । इस पर भी अपनी अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियां सब निभाते रहें ।"

अब्दुलकरीम को बात कुछ कुछ समझ आने लगी थी । इस समझ आने में इन्द्रा की उपस्थिति, उसका रूप-यौवन ही मुख्य कारण था । उसने कहा, "यह बहुत ही अच्छी बात है । मगर क्या यह हो सकेगी ?"

चूनीलाल का कहना था, "कुछ हद तक तो हम हिन्दू पहले ही ऐसा व्यवहार रखते हैं । मैं अपनी ही बात बताता हूं । मेरे भाई मूर्ति पूजा करते हैं और मैं आर्यसमाजी हूं । मेरी मां मांस नहीं खाती । वे इसे खाना पाप समझती हैं और मैं अंडा-मुर्गी सब खा जाता हूं । मेरी जहां सगाई हुई है वहां परमात्मा की हस्ती को नहीं माना जाता और मैं आर्यसमाजी होने से निराकार ईश्वर की प्रार्थना करता हूं । देखो, कैसा ग़ज़ब का मेल होगा । मां ठाकुर की आरती उतारेंगे । मैं पलथी मार, आंखें मूंद, सन्ध्या करूंगा और मेरी बीवी 'कार्ल मार्क्स' पढ़ा करेगी ।"

"और आपकी आपस में लड़ाई नहीं होगी ?" अब्दुलग़नी ने अचम्भे में पूछा ।

"इस बात पर नहीं । हां, यदि मैं झूठ बोलूंगा, या पर-स्त्री-गमन करूंगा या चोरी-डाका डालूंगा तो ज़रूर झगड़ा होगा । परन्तु मज़हब की बातें तो अपनी अपनी आत्मा से सम्बन्ध रखती हैं । इनका दूसरों से कोई सम्बन्ध नहीं ।"

"मान लो," अब्दुलकरीम ने झिझकते झिझकते पूछा, "कि आपकी बहन का विवाह किसी मुसलमान से हो जाये और जब आपकी मां ठाकुर की आरती कर रही हो और उसका दामाद नमाज़ पढ़ने लगे तो फिर भी क्या झगड़ा नहीं होगा ?"

"नहीं होना चाहिये। नमाज़ और पूजा का वक्त आगे पीछे कर लिया जावेगा। झगड़ा तो तब होता है जब झगड़ा करने की नीयत हो।"

अब्दुलकरीम बात समझ रहा था। इन्द्रा उसकी परेशानी देख मुस्करा रही थी। इस समय वह अपने भाई के लिये चाय बना रही थी। अब्दुलकरीम समझ रहा था कि जो बात उसे कठिनाई से समझ में आ रही है इनको अत्यंत सरल प्रतीत होती है। इसी से इन्द्रा उस पर मुस्करा रही है। इससे उसे लज्जा अनुभव हो रही थी। उसने चाय के प्याले की ओर देखते हुए कहा, "आपकी सुसायटी का नाम क्या है?"

"स्वराज्य-संस्थापन-समिति।"

"क्या मैं इसमें शामिल हो सकता हूं?"

"क्यों नहीं?"

"तो मेरे साथ खानपान और रिश्तेदारी कर सकेंगे आप?"

"हां, हां! क्यों नहीं।"

[७]

चाय-पार्टी समाप्त हुई। अब्दुलकरीम चूनीलाल और अमरनाथ ने एक नई मंडली की नींव रख दी। अमृतसर वीविंग मिल्ज़ के कुछ और मुसलमान भी इस मंडली में सम्मिलित हो गये। पन्द्रह के लग-भग सदस्य होगये थे। सब परस्पर सायंकाल मिलते थे। कहीं शहर के बाहर किसी खुले मैदान में जा वर्ज़िश करते थे। फिर एक स्थान पर एकत्रित हो परस्पर विचार-विनिमय किया करते थे। यह विचार-विनिमय की सभायें बारी बारी से सदस्यों के घर पर होती थीं। मुसलमान सदस्यों के घरों में तो स्त्रियां परदे में रहती थीं, परन्तु हिन्दू सदस्यों की स्त्रियां और लड़कियां इन सदस्यों से परदा नहीं करती थीं। प्रायः मुसलमान सदस्यों के लिये वे आकर्षण बनी रहती थीं। चूनीलाल के घर जब भी सभा होती थी अब्दुलकरीम की आंखें इन्द्रा को देखने के लिये लालायित रहती थीं। वह इन्द्रा से अधिक और अधिक मेल-जोल पैदा करने का यत्न भी करता रहता था।

परन्तु इस प्रकार का मेल-जोल अधिक काल तक नहीं चल सका। जितना हृदयों का समीप इन सभाओं से होता था उतना ही प्रत्युत उस से भी अधिक उलटा प्रभाव होता था मुस्लिम लीग के प्रचार का।

एक नवाब इरशादअली, जो संयुक्त प्रान्त के रहने वाले थे, अमृतसर में मुस्लिम लीग की ओर से प्रचार-कार्य के लिये आये हुए थे। उनका व्याख्यान था। मुसलमानों को वे मुस्लिम लीग के उद्देश्य समझा रहे थे। अब्दुलकरीम और कुछ और मुसलमान-सदस्य भी उनका व्याख्यान सुन रहे थे। इरशादअली साहब ने साफ साफ कह दिया था कि हिन्दुओं के साथ शामिल होकर बहिश्त भी मिलता हो तो नहीं लेना चाहिये, स्वराज्य तो बहुत छोटी सी वस्तु है।

जिन्हा साहब दिन-रात मुसलमानों के संगठन करने में लीन थे। दूसरी ओर मिस्टर एमरी, 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इंडिया' ने यह कह दिया था कि जब तक मुसलमानों को उनकी रक्षा का आश्वासन नहीं दिया जाता तब तक हिन्दुस्तान के शासन में सुधार नहीं किया जा सकता।

इससे महात्मा गान्धी, जो जेल से छूट चुके थे, घबड़ा उठे। महात्मा जी ने समझा कि जिन्हा समझाने से समझ जायगा। इस कारण उससे बातचीत करने बम्बई पहुंच गये। कई दिन तक वार्तालाप होता रहा, परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकला। जिन्हा इस बात पर डटा रहा कि हिन्दुस्तान को दो टूक कर दिया जाय और एक भाग में मुसलमानों की मज़हबी हुकूमत कायम करने का वचन दे दिया जाय। तब वह हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिलने में आपत्ति नहीं करेगा।

महात्मा जी को जिन्हा को राज़ी न कर सकने का भारी शोक था। वे समझते थे कि वास्तव में हिन्दुस्तान को स्वराज्य का मिलना जिन्हा ने रोका हुआ है। गांधी-जिन्हा सम्मेलन का एक परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों को जिन्हा का कहना, कि हिन्दू मुसलमानों के शत्रु हैं, सत्य प्रतीत होने लगा। अमृतसर की हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त स्वराज्य-संस्थापन-

समिति की मंडली भी इस विषाक्त वातावरण के प्रभाव से बच नहीं सकी। नित्य प्रति की सभाओं में इन बातों पर चर्चा होने लगी थी। कोई दिन खाली नहीं जाता था जब मिस्टर जिन्हा अथवा महात्मा गान्धी के किसी न किसी वक्तव्य पर चर्चा न होती हो। आख़िर एक दिन बात बढ़ ही गई। शेखरानन्द जो हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त मंडलियों पर विशेष ध्यान दे रहा था अमृतसर आया हुआ था। उसने इस मंडली की विशेष बैठक दोपहर के दो बजे चूनीलाल के घर पर बुलाई। चूनीलाल ने, जो इस मंडली का मंडलीक था, मंडली के सदस्यों को सूचना भेज दी। मंडली के अधिकांश सदस्य अमृतसर वीविंग मिल्ज़ में नौकर थे। वे छुट्टी मांगने मैनेजर के पास गये। वह इतने आदमियों को एकदम छुट्टी मांगते देख छटपटा उठा।

अब्दुलकरीम को छुट्टी मिलनी असम्भव थी। इस पर भी जब चूनीलाल के घर जाने की बात थी तो वह अपने को रोक नहीं सका। वह अन्य सदस्यों के साथ मैनेजर को यह कह कि 'हमें बहुत आवश्यक काम है और हम जा रहे हैं' चला आया।

मार्ग में एक मुहम्मदइसहाक ने, जो अब्दुलकरीम के आधीन काम करता था और स्वराज्य-संस्थापन-समिति का सदस्य केवल उसे खुश करने के लिये बना था, कहा, "उस्ताद, मैनेजर बहुत नाराज़ मालूम होता था।"

"तो फिर क्या होगा?"

"नौकरी भी छूट सकती है।"

"मगर हमारी सुसायटी का तो यह मक़सद है कि हम में से सब एक के लिये हैं और एक सब के लिये है। ऐसी हालत में नौकरी से ज़रूरी लीडर का कहना मानना है।"

"मगर मैं तो," इसहाक ने कहा, "इस सुसायटी से स्तीफ़ा दे रहा हूं।"

"क्यों?"

"भाई, हमें हिन्दुओं के सुराज से क्या मतलब ?"

"अब्दुलकरीम भी यही समझता था, परन्तु उसका इस समिति में शामिल होने का कारण कुछ और था और वह इस कारण को दूसरों पर प्रकट करना नहीं चाहता था। इससे वह चुप रहा।

चूनीलाल के घर पहुंचने पर उन्होंने अमरनाथ को भी आते देखा। अब्दुलकरीम ने उससे पूछा, "तो आपको छुट्टी मिल गई है ?"

"बहुत बहाना करना पड़ा है। बैंक में छुट्टी बहुत कठिनाई से मिलती है। इस कारण एक बजे मैं अपनी कुर्सी से उठा और बैंच पर जाकर लेट गया और हाय हाय करने लगा। मैनेजर भागा आया और पूछने लगा, 'क्या बात है, अमरनाथ ?'

"मैंने कहा, 'पंडित जी, पेट में शूल हो रहा है,' और फिर हाय हाय करने लगा। बैंक के सामने डाक्टर चोपड़ा रहते हैं। मैनेजर ने उसे बुला भेजा। वह देखकर बोला, 'रीनल कॉलिक है'। मुझे टांगे में बैठाकर घर भेज दिया गया।"

अब्दुलकरीम हंस पड़ा, परन्तु मुहम्मदइसहाक को नौकरी छूटने की चिन्ता लग रही थी। उसने कहा, "हमें तो ऐसा बहाना करना नहीं आता और मुझे डर है कि मेरी तो नौकरी छूट जायगी। मैनेजर पहले ही मुझसे नाराज़ रहता है।"

अमरनाथ ने कहा, "तो इसमें डरने की कौन बात है। जब एक शख्स हमारी समिति में शामिल होता है तो फिर उसे अपनी नौकरी की परवाह नहीं रहनी चाहिये।"

मुहम्मदइसहाक कहने लगा था कि वह समिति को छोड़ने वाला है, परन्तु इस समय शेखरानन्द वहां पहुंच गया और बात वहीं रुक गई।

शेखरानन्द के आते ही सभा की कार्यवाही आरम्भ हो गई। आज इन्द्रा की सहायता के लिये अमरनाथ की स्त्री रुक्मणी भी आई हुई थी और शेखरानन्द के आते ही दोनों चाय और खाने का सामान

परसने लगीं। जब सब लोग चाय पी रहे थे तो चूनीलाल ने परस्पर परिचय कराया। सब से पूर्व शेखरानन्द का परिचय कराते हुए कहने लगा, "मैंने आपको कई बार बताया है कि हमारी संस्था एक महान संस्था है। इसकी शाखायें हिन्दुस्तान भर में फैली हुई हैं। इसकी एक केन्द्रीय-सभा भी है। उस केन्द्रीय सभा के आप सदस्य हैं। आप हैं मिस्टर आनन्द, दिल्ली के एक प्रसिद्ध वकील हैं। ये आज हमसे मिलने यहां अमृतसर में आये हैं। हमारी मंडली में विशेष दिलचस्पी रखते हैं।"

इसके पश्चात् चूनीलाल ने मंडली के पन्द्रह सदस्यों का परिचय कराया। इनमें पांच हिन्दू और दस मुसलमान थे। सब का परिचय हो जाने पर शेखरानन्द ने कहना आरम्भ किया, "मुझे आप लोगों से मिलकर अति प्रसन्नता हुई है। आपकी इस मंडली में पन्द्रह सदस्य हैं और आपने परस्पर एक दूसरे की सहायता का वचन दिया हुआ है। मैं आपको बताना चाहता हूं कि आपके अमृतसर में ही इस समय पांच सौ के लगभग मंडलियां हैं। उन सब में सदस्यों ने परस्पर सहायता का प्रण किया हुआ है। उन पांच सौ से ऊपर मंडलियों के नेताओं की एक सभा है और नेताओं के ऊपर एक नगर के मुखिया हैं। और इस प्रकार उन पांच सौ मंडलियों के दस हज़ार सदस्यों की ऐसी सभा है जो एक जान और एक रूप होकर रहते हैं। इतनी बड़ी संस्था के सदस्य होकर आपको अपने खाने-पहरने की चिन्ता नहीं होनी चाहिये। सब के सब सदस्य सब की प्रत्येक सहायता के लिये कटिबद्ध हैं।

"अमृतसर की तरह अन्य नगरों और ग्रामों में भी इसकी संस्थायें हैं। पञ्जाब प्रान्त के सब नगरों और जिलों के मुखिया भी एक श्रृङ्खला में बंधे हुए हैं और फिर प्रान्तों के नेता केंद्रीय सभा के आधीन हैं। इस प्रकार हमारी यह महान समिति भारतवर्ष में स्वराज्य स्थापित करने के लिये यत्न कर रही है। अब युद्ध का अन्त समीप आता जाता

है और हम स्वराज्य स्थापित करने के लिये एक महान यत्न करने वाले हैं। इससे आप लोगों को उस समय के लिये तैयार रहना चाहिये।

स्वराज्य शब्द के प्रयोग से मुहम्मदइसहाक को जोश चढ़ आया। वह मिस्टर जिन्हा और मुहम्मदइकबाल के कलाम पढ़ने वाला था। इस कारण उसे स्वराज्य के शब्द से भय लगने लगा था। जब शेखरानन्द अपना वक्तव्य समाप्त कर चुका तो मुहम्मदइसहाक ने अपनी बात कहनी आरम्भ कर दी। उसने कहा, "हम मुसलमान हिन्दुओं को स्वराज्य लेने नहीं देना चाहते। ये लोग हमसे नफ़रत करते रहे हैं। हम इनसे नफ़रत करते हैं। हमारे लीडर कायदे-आज़म मिस्टर जिन्हा का कहना है कि हिन्दू बनिया धोखा देगा। उससे मिलकर काम नहीं करना चाहिये।"

शेखरानन्द ने कहा, "मगर मैं तो हिन्दुओं का स्वराज्य लाने को नहीं कह रहा। मेरा मतलब तो हिन्दुस्तानियों के राज्य से है।"

"मगर जिस देश में सड़सठ प्रति सैंकड़ा हिन्दू हैं वहां स्वराज्य का मतलब होगा हिन्दुओं का राज्य। कांग्रेस वाले भी तो यही कहते हैं। हम हिन्दुओं के मातहत नहीं रह सकते।"

शेखरानन्द सोच रहा था कि कांग्रेस की नीति तो मुसलमानों के पक्ष में है और यदि इसे भी ये लोग मुसलमानों के विरुद्ध समझते हैं तो स्वराज्य संस्थापन-समिति की नीति को ये क्यों पसन्द करेंगे। हम तो किसी भी जाति के पक्ष की बात नहीं करना चाहते। इस पर भी उसने कहा, "स्वराज्य में कोई किसी के मातहत नहीं होगा। सब को बराबर बराबर के हकूक होंगे। जो दूसरे कर सकेंगे वही आप भी कर सकेंगे। जिस बात की आपको मनाई होगी उसी बात की दूसरों को होगी।"

इस पर एक और सदस्य पूछने लगा, "हम मज़दूर लोगों ने अपनी अपनी यूनियनें बनाई हुई हैं। हम जिस किस्म का राज्य चाहते हैं वह उन यूनियनों की मार्फ़त मिल जायगा। इससे हमें आपकी समिति में शामिल होने की ज़रूरत नहीं।"

शेखरानन्द ने इसके उत्तर में बताया, "हम ट्रेड-यूनियनों के विरुद्ध नहीं हैं। हम तो केवल यह चाहते हैं कि हर एक पेशे के लोग अलहदा अलहदा यूनियन बनाने के बजाय सब जन-साधारण मिलकर एक बड़ी यूनियन बनायें। ऐसा करने से पूर्ण जाति ही अपना बल इस्तैमाल कर सकेगी। पृथक पृथक पेशे वालों की यूनियन होने से पूर्ण जाति के लाभ का ध्यान नहीं रह सकता। प्रत्येक यूनियन अपने सदस्यों के लाभ की बात ही सोच सकती है। उदाहरण के तौर पर रेल के मज़दूरों का कपड़े के कारखानों अथवा कोयले की खानों की यूनियनों से कोई सम्बन्ध नहीं। अगर रेल के मज़दूर हड़ताल कर देते हैं तो कपड़े के कारखानों के मज़दूर भूखे मरने लगते हैं। कोयला न उठ सकने से कोयले की खानों का काम बन्द हो जाता है और मज़दूर बेकार हो जाते हैं। केवल यही नहीं, समाज के दूसरे अंग भी बेकार हो जाते हैं। यह पृथक पृथक यूनियनें बनाना और फिर उनका अपने ही मैम्बरों की भलाई देखना जहां मज़दूरों के लिये हानिकर है वहां देश की पूर्ण जनता के लिये भी हानिकर है।

"इसलिये हमने पूर्ण जाति की एक समिति बनाई है जिसमें जाति का प्रत्येक अंग सम्मिलित है। सब की भलाई इस समिति का उद्देश्य है। देश में आप जैसी लगभग एक लाख मंडलियां बन चुकी हैं। सब मंडलियां परस्पर सम्बन्ध रखती हैं। मतलब यह है कि ये बीस लाख के लगभग लोग परस्पर एक दूसरे के सुख-दुख में साथी हैं। आप यहां पंद्रह के लगभग हैं। आपके इस प्रकार इकट्ठे होने से आप में साहस और अपने पर विश्वास बढ़ता है। अब विचार करें कि यदि आप तीस लाख लोगों से सम्बन्ध जोड़ लें जो सब एक दूसरे की प्रत्येक प्रकार से सहायता करने को तैयार हों तो आप में कितना साहस और दृढ़ता आ सकती है। एक से जब दो भाई परस्पर सहायक होते हैं तो आदमी सिर ऊंचा कर चलता है। यदि आप हमारी समिति में शामिल हो जायें तो आपके लाखों भाई आपके साथी बन जायेंगे। फिर देखियेगा कि आप

में कितना उत्साह, बल, और सफलता आती है।"

शेखरानन्द से मुहम्मदइसहाक ने फिर पूछा, 'आप चन्दा क्या लेते हैं?"

"कुछ नहीं।"

"तो आपके साथ सम्बन्ध कैसे जुड़ सकता है?"

"इस बात की कसम लेने से कि हम सब एक के लिये हैं और हर एक सब के लिये है।"

"मगर बिना पैसे के एक दूसरे की मदद कैसे होगी? मानो हम में से एक पर अगर कोई मुसीबत आगई तो कोई कैसे और कहां से किसी की मदद करेगा?"

"रुपया हमारे पास बहुत है। आप लोगों को इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।"

अब अमरनाथ ने बातों के बहाव को बदल दिया। उसने पूछा, "हमें इस समिति में शामिल होकर करना क्या होगा?"

"हां! यह बात जाननी बहुत ज़रूरी है," शेखरानन्द ने उत्तर दिया, "आप इस मंडली में पन्द्रह मैम्बर हैं। आप सब दिन में कम से कम एक बार मिल लिया करें, जिससे हर एक के सुख-दुख का पता सब को लगता रहे। दिन भर में एक घंटा ज़रूर वर्जिश और खेल-कूद में खर्च करना चाहिये और फिर वर्ष में एक मास अपना काम-काज छोड़ 'ट्रेनिंग' लेने के लिये हमारे पास आना चाहिये।"

"और यदि नौकरी से छुट्टी न मिली तो?" मुहम्मदइसहाक का प्रश्न था।

"तो नौकरी छोड़ देनी चाहिये। हम नौकरी का बंदोबस्त कर देंगे।"

"आप कहते तो ठीक हैं, मगर यह करना मुश्किल है। मैं अपने मैनेजर से लड़कर आया हूं और मुझे डर है कि कल बर्खास्त कर दिया जाऊंगा।"

शेखरानन्द ने तुरंत उत्तर दिया, "इसीलिये तो कहता हूं कि आप

हमारी समिति में शामिल हो जाइये। मैं समझता हूं कि बीस लाख लोगों के परिवार में किसी को काम न मिलने की फ़िकर नहीं करनी चाहिये। मान लें कि किसी को कुछ महीने काम न भी मिले तो क्या आपके बीस लाख भाई आपको या आपके परिवार को भूखा मरने देंगे।"

"मगर आपकी सभा में दाख़िल होने से लाभ क्या होगा?"

"हमारी सभा का उद्देश्य है कि हम हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों का राज्य स्थापित करें।"

"मगर," मुहम्मदइसहाक ने कहा, "हम तो हिन्दुस्तानियों की हुकूमत नहीं चाहते। हम पाकिस्तान में मुसलमानी हुकूमत चाहते हैं।"

"पाकिस्तान एक स्वप्न-मात्र है।"

"तो हम आपके साथ शामिल नहीं हो सकते।"

"बहुत अच्छी बात है। आप स्वराज्य हासिल करने की कोशिश करें तो हम आपके साथ शामिल हो जायेंगे।"

"हमारी कोशिश क़ायदे-आज़म जिन्हा साहब कर रहे हैं, और उनको आपकी मदद की ज़रूरत नहीं है।"

शेखरानन्द निराशा अनुभव कर रहा था। इस पर भी उसने पुनः यत्न किया और कहा, "तो फिर क्या किया जाय?"

इसका उत्तर अब्दुलकरीम ने दिया, "देखिये पंडित जी, हम अपनी मंडली को आपकी समिति में शामिल नहीं करते। हमें इसमें कुछ भी लाभ नहीं मालूम होता। हमें अपने हाल पर छोड़ दीजिये।"

"तुम्हें अपना राज्य नहीं चाहिये?"

"हमें मुसलमानी राज्य क़ायम करना है।"

इसके बाद कुछ कहने को नहीं रह गया था। इस पर भी सब उपस्थित लोगों की सम्मति ली गई। ग्यारह मुसलमानों में से दस समिति में शामिल होने के विरुद्ध थे। चार हिन्दू इसके पक्ष में थे। एक मुसलमान, अब्दुलकरीम, निष्पक्ष रहा।

इस पर शेखरानन्द ने कहा, "अच्छी बात है। आप हमारी समिति में शामिल नहीं होना चाहते तो न सही। इस पर भी मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि आपको कभी किसी बात में सहायता की आवश्यकता होगी तो मैं समिति से दिलवाने का यत्न करूंगा।"

इसके कुछ बाद यह सभा समाप्त हुई। सब लोग अपने अपने घर चले गये। शेखरानन्द, अब्दुलकरीम, अमरनाथ और चूनीलाल रह गये थे। इस समय इन्द्रा और रुक्मणी भी बाहर बैठक में आगई। शेखरानन्द सभा की कार्यवाही पर टीका-टिप्पणी अब्दुलकरीम के सम्मुख नहीं करना चाहता था। इस कारण इन्द्रा ने जब अब्दुलकरीम को कहा, 'भाईजान, आप भी पाकिस्तान चाहते हैं क्या?' तो शेखरानन्द ने बात बदलने के लिये उसे कहा, "हमें तो कुछ खिलाया-पिलाया ही नहीं, इन्द्रा बहन?"

इन्द्रा उठकर भीतर चली गई और बाज़ार की बनी मिठाई तशतरी में रख ले आई। इस बीच में अब्दुलकरीम अपनी सफाई देने लगा था। वह कह रहा था, "हमने यह सभा मित्रों में मेलजोल के लिये बनाई है। हमें सियासियात से कुछ भी सरोकार नहीं। क्या हम लोग सियासियात में मुख़्तलिफ़ विचार रखते हुए भी दोस्त नहीं रह सकते?"

इन्द्रा, जो मिठाई लेकर आगई थी और जिसने अब्दुलकरीम का अन्तिम वाक्य सुन लिया था, बोल उठी, "क्यों नहीं। मित्रता सियासियात से ऊंची वस्तु है।"

शेखरानन्द को इन्द्रा को डांटना पड़ा। उसने कहा, "इन्द्रा, तुम इस विषय में कुछ नहीं समझती। देखो मिस्टर अब्दुलकरीम," उसने अब्दुलकरीम की ओर घूमकर कहा, "राजनीति और मज़हब में भेद है। मज़हब एक व्यक्ति की अपनी वस्तु है। मज़हब में मनुष्य की अपनी आत्मा से सम्बन्ध रखने की बातें हैं। इससे प्रत्येक मनुष्य अपना अपना मज़हब रखता हुआ भी परस्पर मित्रता का भाव रख सकता है। परन्तु राजनीति किसी की अपनी निज की अर्थात अपनी आत्मा से सम्बन्ध रखने वाली बात नहीं। राजनीति का अर्थ ही है एक देश में

जनता के परस्पर सम्बन्ध की बातें। इसमें हम भिन्न भिन्न मत रखते हुए मित्र नहीं रह सकते। राजनीति में मूल आधार की बात एक देश के लोगों में एक होनी चाहिये। जब वह ही एक नहीं, तो मित्रता नहीं हो सकती। उदाहरण के तौर पर जो मुसलमान हिन्दुस्तान के एक टुकड़े को पृथक करना चाहते हैं और वहां मज़हबी हुकूमत बनाना चाहते हैं वे उन लोगों के मित्र कैसे हो सकते हैं जो देश को एक सूत्र में बंधा हुआ देखना चाहते हैं। अस्थाई रूप में, ऊपर से मित्रता का भाव बनाया भी जा सकता है, परन्तु एक न एक दिन तो दोनों पक्ष के लोगों में युद्ध हो जाना निश्चय है। उस समय यह मित्रता का दिखावा टूट जायगा। एक दूसरे को ये लोग संदेह और शत्रु-भाव से देखने लगेंगे।"

यद्यपि बात अब्दुलकरीम को सुनाई गई थी, परन्तु शेखरानन्द ने यह इन्द्रा तथा अमरनाथ आदि के लिये कही थी। और इन्द्रा ने ही इस पर प्रश्न पूछा, "क्या महात्मा गान्धी जो मिस्टर जिन्हा से, यद्यपि इस विषय पर एक मत नहीं हो सके, मैत्री और मान-प्रतिष्ठा का भाव दिखाते हैं वह असत्य और प्रदर्शनमात्र के लिये है?"

"मैं महात्मा जी को असत्यवादी नहीं समझता। मैं समझता हूं कि उनके मन, वचन और कर्म में अन्तर नहीं है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ वे सोचते, कहते अथवा करते हैं उस में भ्रम नहीं हो सकता। वे स्वप्नों के देखने वाले हैं। ये स्वप्न भंग होंगे, परन्तु कब, कहना कठिन है। कहीं उनके अपने जीवन में ही उनका स्वप्न भंग हुआ तो उनको अत्यंत दुख होगा। राजनीति में मतभेद रखने वाले मित्र नहीं हो सकते। वे सदैव एक-दूसरे पर विजय प्राप्त करने के लिये यत्नशील रहते हैं। हां, यह यत्न अहिंसात्मक उपायों से भी चल सकता है। इस पर भी यह मैत्री नहीं कही जा सकती।"

[८]

अगले दिन अब्दुलकरीम कारखाने में हाज़िर नहीं हुआ। दूसरे मुसलमान और हिन्दू लोग, जो पहले दिन सभा में उपस्थित थे, कारखाने

में समय पर पहुंच गये थे; परन्तु मुसलमान सदस्यों को कारखाने के मैनेजर ने बुला भेजा और उनसे पहले दिन अनुपस्थित रहने का कारण पूछने लगा। सब लोगों ने बहाने बताये जिनको मैनेजर झूठे बताता था। इससे मुहम्मदइसहाक से नहीं रहा गया और वह बोला, "आप ने हमें ही बुलाया है; चूनीलाल इत्यादि, जो हिन्दू ग़ैरहाज़िर थे, उन्हें क्यों नहीं बुलाकर पूछते ?"

चूनीलाल, गौरी और मोहन ने अपने ग़ैरहाज़िर रहने का कारण बताकर मुझे विश्वास दिला दिया है, मगर तुम लोग तो ऐसी बातें करते हो जिसका विश्वास और निश्चय हो ही नहीं सकता।"

"आप हिन्दुओं से रियायत करते हैं।"

"क्या कहा ? अच्छी बात है तुम अपना आज तक का वेतन लेकर यहां से चले जाओ। मैं तुम्हें डिसमिस करता हूं।" दूसरों को दो दो रुपये जुर्माना कर छोड़ दिया।

मुहम्मदइसहाक को विश्वास था कि चूनीलाल इत्यादि से रियायत की गई है। वह कारखाने से जाने के पूर्व चूनीलाल से मिला और कहने लगा, "मिस्टर चूनीलाल, तुमने हमें बहुत धोखा दिया है।"

"क्यों ?"

"मुझे कल ग़ैरहाजिर होने की वजह से बर्खास्त कर दिया गया है।"

"मैंने तो अपनी मां की बीमारी का डाक्टरी सर्टीफिकेट जमा करा दिया है। तुमने ऐसा क्यों नहीं किया ?"

"मुझे क्या मालूम था कि ऐसा होगा। तुम कल कहते थे कि मुझे नौकरी दिलवा दोगे। बताओ, अब मैं कहां जाऊं ?"

"बात यह है, मुहम्मदइसहाक, कि मैं तो समिति के भरोसे ही तुम्हारी सहायता के लिये कह रहा था। जब तुम उसके मैम्बर ही नहीं बन रहे तो समिति तुम लोगों के लिये क्या और क्यों करे ?"

मुहम्मदइसहाक दांत पीसता हुआ कारखाने से निकल गया। वह सोच रहा था कि अब्दुलकरीम से मिलकर उसे अपनी बर्खास्तगी का

समाचार बता दे और फिर अपनी नौकरी का प्रबन्ध करे। वह वहां से अब्दुलकरीम के मकान पर पहुंचा। अब्दुलकरीम का मकान मोरी दरवाजे के बाहर था। वहां पहुंच मकान के नीचे के दरवाज़े का कुंडा खटखटाया। एक ल खिड़की में से झांककर देखा और फिर पीछे हटकर पीछे खड़े किसी आदमी से कुछ कहा। पश्चात् झांककर बोली, "ठहरो, अब्बाजान आते हैं।"

एक मिनट के भीतर ही अब्दुलकरीम ने मकान के नीचे का दरवाज़ा खोला और इसहाक से उसके बेवक्त आने का कारण पूछा। उसने उत्तर में अपने बर्खास्त किये जाने का समाचार बताया और उससे आज भी कारखाने में हाज़िर न होने का कारण पूछा।

अब्दुलकरीम बोला, "मैं एक मुसीबत में फंस गया हूं। मैंने समझा था कुछ, और हो गया कुछ और। चूनीलाल की बहन इन्द्रा को जानते हो न ? मैं उस पर आशिक हो गया हूं। मेरा ख्याल था कि वह मुझे मुहब्बत करती है। इसलिये आज जब चूनीलाल कारखाने गया तो एक मोटर टैक्सी ले उसको बरगला कर यहां ले आया हूं। मेरा ख्याल था कि आज इन्द्रा से निकाह पढ़ाकर अमृतसर से बाहर चला जाऊंगा, मगर०तुम्हारी चाची (मुहम्मदइसहाक अब्दुलकरीम को चाचा और उसकी बीवी को चाची कहकर पुकारा करता था) ने झगड़ा खड़ा कर दिया है और निकाह पढ़ाने में एतराज़ करती है। इन्द्रा का भी अब हौसला बढ़ गया है। वह पहले सहम गई थी और मैं उसे डरा-धमकाकर निकाह के लिये तैयार कर रहा था। अब वे दोनों शोर मचाकर मुझे पकड़वा देने को कह रही हैं। भाई, इस मुसीबत से छूटने की कोई तरकीब बताओ।"

मुहम्मदइसहाक इस नई उलझन में अपनी कठिनाई को भूल गया। कुछ सोचकर बोला, "चलो तो, मैं चाची को समझा देता हूं।"

दोनों मकान के ऊपर चढ़ आये। अब्दुलकरीम की स्त्री मुहम्मद इसहाक से पर्दा नहीं करती थी। जब वे ऊपर पहुंचे तो वह एक पीढ़े

पर बैठी गम्भीर विचार में पड़ी हुई थी। समीप फर्श पर वह लड़की, जो खिड़की के नीचे झांकी थी, बैठी थी। इन्द्रा वहां नहीं थी। इसहाक ने पहुँचते ही कहा, 'चाची, सलामालेकुम।"

"आओ बेटा," अब्दुलकरीम की स्त्री ने उत्तर में कहा, "बैठो, देखो तुम्हारे चाचा की अकल ख़राब हो गई है। बूढ़े होकर एक नया शौक सवार हुआ है।"

"चाची," इसहाक ने नरमी से कहा, "चाचा बूढ़ा हो गया है क्या? नहीं चाची। अभी पैंतीस साल से तो ज़यादा उमर नहीं है और लोग तो पचास साल की उमर से भी ऊपर शादी करते हैं।"

"पर मैं पूछती हूं कि इसकी ज़रूरत ही क्या है? क्या मैं मर गई हूं या बूढ़ी हो गई हूं? और फिर पहले मेरी अकेली का तो खर्चा चलता नहीं, अब इसे कहां से खिलायेगा?"

अब्दुलकरीम ने जोश में कह दिया, "तुम्हें तलाक़ दे दूंगा।"

"लाहौलविला" मुहम्मदइसहाक ने हैरानी से देखते हुए कहा, "इसकी क्या ज़रूरत है? हज़रत सुलाहुल इस्लाम ने तो मर्द को चार औरत एकदम रखने की इजाज़त दी है। देखो चाची, एक काफ़िर लड़की को इस्लाम के नूर से मुनव्वर करने की बात है। तुम अजीब मुसलमान औरत हो जो उस बेचारी मौसूम को इस्लाम की बरकतों से दूर रखने को कहती हो।"

अब्दुलकरीम की बीवी इन्द्रा के सौन्दर्य और जवानी को देख चुकी थी और डर रही थी कि उससे विवाह कर अब्दुलकरीम उसे भूल जायेगा। अपने निजी अधिकारों में कमी आजाने के डर से उसे शरह और तबलीग़ की बात समझ में नहीं आ रही थी। उसने कहा, "मैं इन बातों को नहीं जानती। मैं उस लड़की की इनसे शादी नहीं होने दूंगी, और चाहे किसी से हो जाय। मुझे इससे क्या?"

अब्दुलकरीम ने यह झगड़ा किसी और का घर बसाने के लिये नहीं किया था। इस कारण वह अपनी स्त्री के प्रस्ताव को मानने को

तैयार नहीं था। परन्तु मुहम्मदइसहाक ने उसे आंख से संकेत कर चुप रहने को कहा और बोला, "ठीक है, चाची। मैं भी तो यही कहता हूं। वह बेचारी अब यहां आगई है। घर में बदनाम तो हो ही गई है और कौन हिन्दू अब उससे शादी करेगा? मैं समझता हूं कि उसका निकाह किसी और नौजवान मुसलमान से पढ़ा दिया जाय। मेरी नज़र में एक लड़का है भी।"

अब्दुलकरीम इससे इनकार करने वाला था, परन्तु मुहम्मदइसहाक से आंख से संकेत किये जाने पर चुप रहा। मुहम्मदइसहाक ने कहा, "चाचा, मान जाओ। चाची बहुत अच्छी हैं। आख़िर इनको तंग करने से क्या फ़ायदा होगा?"

अब्दुलकरीम कुछ समझ नहीं सका था। इससे चुप रहा। मुहम्मद इसहाक ने अपना कहना जारी रखा, "इन्द्रा कहां है?"

अब्दुलकरीम की औरत ने बताया कि उसके मुख पर कपड़ा बांध और हाथ-पांव बांध उसे कोठरी में डाल रखा है।

"ठीक है। लड़का मनावां में रहता है। चाचा, जाओ एक टैक्सी ले आओ। इसे अभी यहां से ले जाकर शाम से पहले इसका निकाह पढ़ा देंगे।"

अब्दुलकरीम को बात समझ में आगई। इससे उसने कुछ बहाना बनाने के लिये कहा, "तो तुम खुद ही टैक्सी ले आओ न। आखिर मैं उस पर पैसा क्यों खर्च करूं।"

"पैसा सब मैं दूंगा, मगर मैं समझता हूं कि जिसकी शादी करने को कह रहा हूं वह सब खर्चा दे देगा। इसके इलावा कुछ और भी दे सकेगा। एक अच्छे खा़से ज़मींदार का लड़का है। दौलत की कमी नहीं है।"

अब्दुलकरीम की स्त्री इस प्रकार बला टलती देख खुश थी और बिना कुछ अधिक छानबीन किये इस योजना को सफल बनाने में राय देने लगी, "तो जल्दी करो। देरी करने से क्या फ़ायदा?"

अब्दुलकरीम गया और एक मोटर-टैक्सी ले आया। इसका ड्राइवर एक पठान था। गाड़ी मकान के दरवाज़े के साथ लाकर खड़ी कर दी गई। एक बुर्का लाकर इन्द्रा को, जिसके मुख पर पट्टी बंधी थी, उससे ढांप दिया। फिर उसे धकेलकर टैक्सी में बैठा दिया। इन्द्रा के एक तरफ अब्दुलकरीम बैठ गया और दूसरी तरफ मुहम्मदइसहाक। गाड़ी भगा दी गई। मार्ग में ड्राइवर ने पूछा, "किधर चलना है?"

मुहम्मदइसहाक ने कहा, "लाहौर दाता गंदबख्श की दरगाह पर। चाचा, अब घबराओ नहीं; सब ठीक है।"

[६]

चूनीलाल सायंकाल घर आया तो उसकी मां ने उसे सब प्रकार से सही-सलामत देख अचम्भे में पूछा, "इन्द्रा मिली?"

"इन्द्रा?" अब हैरान होने की बारी चूनीलाल की थी। उसने पूछा, "कहां गई है?"

"तुम्हें अस्पताल में देखने। तुम्हें चोट लग गई थी न?"

"किसने कहा है?"

"वही तुम्हारी कमेटी का करीम मोटर लेकर आया था और कहता था तुम्हें चोट लग गई है। इन्द्रा घबराई हुई उसके साथ चली गई थी।"

"कब की बात है, मां?"

"सुबह आठ-नौ बजे का वक्त रहा होगा। मेरा माथा तो उस समय ही ठनका था, पर बेटा... ।" इसके आगे वह कुछ नहीं कह सकी और उसकी आंखों से आंसू निकलने लगे।

चूनीलाल भौचक्का खड़ा रह गया। वह जानता था कि अब्दुल करीम उस दिन कारखाने में हाज़िर नहीं था। वह यह भी जानता था कि उसे कहीं चोट नहीं लगी। इससे वह इस परिणाम पर पहुंच गया कि इन्द्रा के साथ धोखा किया गया है। अब्दुलकरीम की नीयत में संदेह करने में कोई कसर नहीं रही; साथ ही उसने सुना कि यह घटना सुबह आठ

नौ बजे की है और इस समय शाम के छः बज रहे हैं। इतना शक होते ही वह खड़ा खड़ा ही घर से बाहर निकल गया और अब्दुलकरीम के घर जा पहुंचा। नीचे के दरवाज़े का कुंडा खटखटाया तो अब्दुलकरीम की लड़की ने खिड़की में से झांककर कहा, "अब्बाजान घर पर नहीं हैं।"

चूनीलाल ने नीचे से आवाज़ दी, "फ़ातिमा बेटी, नीचे आओ तो।"

फ़ातिमा ने पीछे हट मां की बात सुनकर उत्तर दिया, "अम्मा कहती हैं, नीचे मत जाओ।"

इस पर फ़ातिमा को किसी ने खिड़की से पीछे खैंच लिया और खिड़की बंद कर दी। इससे चूनीलाल के मन में विश्वास बैठ गया कि दाल में कुछ काला है।

वह वहां से अमरनाथ के मकान पर पहुंचा। उसे पूर्ण वृत्तान्त सुना कर उसकी राय लेने लगा। अमरनाथ की स्त्री रुक्मणी वहीं बैठी थी। उसने कहा, "मुझे तो कल ही भय लग रहा था। यह अब्दुलकरीम इन्द्रा की ओर घूर घूरकर देख रहा था, और इन्द्रा उसकी ओर मुस्कराती हुई देखती रही थी।"

चूनीलाल यह बात सुन क्रोध से उतावला हो उठा, परन्तु अमरनाथ ने बात संभाल ली। वह कहने लगा, "नहीं, इन्द्रा ऐसी लड़की नहीं हो सकती। छोड़ो रुक्मणी, तुम्हारे मन का संदेह झूठा है।"

अमरनाथ ने कपड़े पहन लिये और दोनों मकान से बाहर निकल आये। चूनीलाल के पांव चलते नहीं थे। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके जूते लोहे के बने हैं, परन्तु अमरनाथ उसकी बांह में बांह डाले, उसे घसीटता हुआ लिये जा रहा था। मार्ग में उसने चूनीलाल से कहा, "हमें अपने नगर के अगुआ को सूचना दे देनी चाहिये।"

"वह क्या करेगा?"

"उसे इन्द्रा को ढूंढने में सहायता देनी चाहिये।"

दोनों अगुआ, कृष्णराव रानडे, के मकान पर पहुंचे। अमरनाथ

अपनी मंडली का मंडलीक होने से रानड़े से परिचित था।

रानड़े ने जब बात सुनी तो अमरनाथ और चूनीलाल को घर लौट जाने को कहा और बोला, "अब्दुलकरीम का पता और हुलिया एक काग़ज पर लिखकर मुझे दे दो। मैं एक-दो दिन में सब कार्यवाही कर उसे उचित दंड दिलवाऊंगा।"

चूनीलाल ने पूछा, "क्या मैं पुलिस में रिपोर्ट करूं?"

"नहीं।"

"क्या मैं उसे स्वयं ढूंढ़ने का यत्न करूं?"

"नहीं"

"तो फिर?"

"जब और जहां मैं बुलाऊं चले आना। देखो चूनीलाल, मुझे उपनेता की आज्ञा है कि अमृतसर के बीस सहस्र सदस्यों के माल और जान का मैं संरक्षक हूं। मैं पूर्ण अमृतसर के सदस्यों को ढूंढ़ने में लगा दूंगा और आवश्यकता पर प्रान्त के बाहर से भी सहायता मिल सकती है। भला एक सदस्य की बहन धोखा देकर भगाई जाय और हमारी शक्तिशाली समिति उसे छुड़ा न सके,यह हो नहीं सकता। तुम्हारी बहन को ढूंढ़ने के लिये बीस लाख सदस्य दिन-रात एक कर देंगे। तुम देखोगे कि इन्द्रा यदि जीवित है तो कल सायंकाल तक तुम्हारे घर पहुंच जायगी।"

चूनीलाल और अमरनाथ का धीरज बंध गया। वे शान्त-चित्त अपने अपने घर लौट गये।

जब अमरनाथ और चूनीलाल आये थे तो रानड़े खाना खा रहा था। उसने खाना छोड़ दिया और दोनों के जाते ही अपने मकान की बैठक में आ अपने नौकर को बुलाया और आज्ञा दी, "भूपति, आज 'सुदर्शन' चलने की सूचना है।"

भूपति ने बिना एक भी प्रश्न किये, बाइसिकल उठाई और मकान के बाहर निकल गया। उसे गये अभी दस मिनट भी नहीं हुए थे कि

एक आदमी आया। रानड़े ने उसे कहा, "श्रीकान्त, लोहगढ़ दरवाज़े के बाहर हमारा एक सदस्य चूनीलाल है। वह अमृतसर वीविंग मिल्ज़ में काम करता है। उसकी बहन इन्द्रा को इसी कारखाने के एक और कारीगर अब्दुलकरीम ने चुरा लिया है। वह मोरी दरवाज़े के बाहर चंगर मोहल्ले में रहता है। वहां उसकी औरत और लड़की तो हैं, मगर अब्दुलकरीम और इन्द्रा का पता नहीं चला। दोनों को ढूंढकर यहां लाना है।"

श्रीकान्त बिना कुछ कहे चला गया। मोरी दरवाज़ा उसी के विभाग में था। अब एक और व्यक्ति आया। नाम था मदन। वह अमृतसर के एक दूसरे विभाग का नायक था। रानड़े ने उसको भी सब वृत्तान्त बताया और लड़की का पता निकलाने की आज्ञा दे दी। पश्चात् बारी बारी से कई नायक आये और सब को इन्द्रा को ढूंढने का आदेश दिया गया।

एक अगुआ रमेश था जिसका विभाग रेल के स्टेशन की ओर था। उसने बताया, "मैं समझता हूं कि लड़की लाहौर पहुंच गई है। हमारे एक सदस्य ने एक बजे दोपहर के लगभग एक मोटर-गाड़ी को बेतहाशा ग्रांडट्रंक रोड पर लाहौर की ओर जाते देखा है। उसमें एक औरत बुर्के में और दो आदमी और बैठे थे।"

रानड़े ने कुछ सोचकर कहा, "तुम स्वयं मेरा संदेशा लेकर लाहौर के अगुआ निर्मलराय के पास चले जाओ। हाल बाजार नम्बर तीस पर सुदर्शन संकेत देकर मोटर मांगना। वह मिल जायगी। लाहौर मोहनी रोड पर इक्यावन नम्बर पर निर्मलराय रहते हैं। उन्हें सब बात बताकर लाहौर ढूंढने को कहना।"

रमेश तुरंत रवाना हो गया।

रमेश के जाने के पन्द्रह मिनट पश्चात् एक और विभाग का अगुआ आया। "आनन्द," रानड़े ने कहा, "एक लड़की को ढूंढने की आवश्यकता पड़ गई है। तुम दिल्ली चले जाओ। वहां चांदनीचौक,

कटरानील में बृजबिहारी के पास चले जाओ और दिल्ली ढूंढने के लिये कहना। उन्हें कह देना कि यदि कल तक कुछ पता न चला तो टैलीफोन करूंगा। गाड़ी के वक्त में आधा घंटा है। यदि कोई अच्छा सा तांगा लोगे तो गाड़ी पकड़ सकोगे।"

रानड़े इतना कुछ कर उत्सुकता से अपनी कार्यवाही की प्रतीक्षा करने लगा। दस, ग्यारह, बारह और फिर एक बजा। वह नींद को रोकने के लिये उठकर कमरे में चक्कर काटने लगा। इस समय श्रीकान्त आ पहुंचा। वह मोटर में था। उसके साथ एक औरत बुर्के में और एक पांच वर्ष की लड़की थी, जो बहुत सहमी हुई प्रतीत होती थी। उनके पीछे दो आदमी और थे। दरवाज़ा बन्द कर रानड़े ने प्रश्न भरी दृष्टि से श्रीकान्त की ओर देखा। श्रीकान्त ने कहा, "यह अब्दुल-करीम की स्त्री है और यह उसकी लड़की है। मैं अपने अधीन मंडलीकों को ढूंढने के लिये कह, इन दो को साथ ले, ठीक बारह बजे इनके मकान के नीचे जा पहुंचा। नीचे का दरवाज़ा खटखटाने के बजाय तोड़ डाला और हम तीनों ऊपर जा पहुंचे। यह औरत गम्भीर विचार में पड़ी थी और लड़की सो रही थी। हमें देख शोर करने ही लगी थी कि मैंने छुरी दिखा चुप कराया और अब्दुलकरीम के विषय में पूछा। यह कहती है कि वह और मुहम्मदइसहाक एक पठान की मोटर टैक्सी में सवार हो कहीं बाहर गये हैं। मुझे इसके कहने पर विश्वास नहीं आया। इसलिये इसे मोटर टैक्सी में बैठाकर यहां ले आया हूं। इस लड़की को वहां छोड़ आना उचित नहीं समझा।"

रानड़े ने अब्दुलकरीम की स्त्री को पर्दा उठाने को कहा। उसने बुर्का उठा लिया। उसके मुख पर पट्टी बंधी हुई थी। रानड़े ने अल-मारी में से छुरी निकाल, मारने के लिये छुरी तैयार कर उस औरत की पट्टी खोलने को कहा। श्रीकान्त के एक साथी ने पट्टी खोल दी। रानड़े ने कहा, "देख री, अगर शोर मचाया या झूठ बोला तो मार डालूंगा। बता, इन्द्रा तेरे घर किस वक्त आई थी?"

वह औरत सख्त डरी हुई थी। रानड़े की छुरी देख वह थरथर कांपने लगी। उसने रुकती हुई आवाज़ में कहा, "मैं सच कहती हूं। वह मेरे घर वाले के साथ एक मोटर गाड़ी में साढ़े आठ बजे के करीब आई थी। इन्द्रा को घर पर लाकर मेरे घर वाले ने उससे शादी कर लेने को कहा। इन्द्रा इनकार कर रही थी। दोनों में झगड़ा होगया। शोर सुन मैं चौके में से उठकर आई और इन्द्रा से डांटकर पूछने लगी कि क्या माजरा है। इन्द्रा ने बताया कि वह उसे धोखा देकर वहां लाया था और अब शादी करने को कहता है। इससे मुझे क्रोध चढ़ आया और मैं अपने खाविन्द से लड़ने लगी। उसने इन्द्रा के मुख पर पट्टी बांध दी और उसके हाथ-पांव बांध एक कोठरी में बन्द कर दिया। इसके बाद मेरे साथ बारह बजे तक झगड़ा करता रहा। मैं अपने पर सौतिन सहने को राज़ी नहीं होती थी। इस समय मुहम्मदइसहाक हमारे घर आ पहुंचा। उसने मेरी बात मान ली और मनावां गांव में अपने एक रिश्तेदार से इन्द्रा की शादी कराने के लिये एक मोटर गाड़ी में बैठाकर ले गया। मेरा खाविन्द साथ गया है। इससे और ज्यादा मुझे कुछ मालूम नहीं। मैं उनके आने की इन्तज़ार कर रही थी, जब ये आपके आदमी वहां पहुंच गये और मुझे पकड़ लाये हैं।"

रानड़े ने कुछ सोचकर कहा, "अच्छी बात है। जब तक इन्द्रा मिल नहीं जाती तुम दोनों यहां कैद रहोगी।"

"श्रीकान्त, इन दोनों के मुख बांध दो और इस साथ के कमरे में बन्द कर दो।"

अब श्रीकान्त ने बताया कि एक मंडली को मैंने हाल-गेट के बाहर मोटर-स्टैंड पर एक पठान ड्राइवर को पकड़ लाने के लिये भेजा है। वह आती ही होगी।"

रानड़े ने भूपति को बुलाकर कर्मों की ड्योढ़ी में एक और अगुआ के पास यह संदेशा भेजा कि वह मनावां गांव में मोटर ले जाकर पता करे कि इन्द्रा वहां तो नहीं गई और यदि मिले तो लाने का प्रबन्ध किया

जाय। भूपति चला गया। इसके कुछ ही बाद में समिति के कुछ सदस्य पुलिस की वर्दी पहने हुए, एक पठान को, हाथ-पांव बांधे हुए, लेकर आये। पठान को सदस्यों ने हाथ और पांव पकड़कर लटकाया हुआ था। भीतर लाकर उसे फर्श पर लेटा दिया। रानडे ने चिन्ता में पूछा, "मर गया है क्या?"

"नहीं, जीता है। इसकी इतनी मरम्मत की गई है कि केवल यह चल नहीं सकता।"

उसके मुख से पट्टी खोल दी गई। रानडे ने छुरी हाथ में पकड़कर पूछा, "क्या नाम है?"

"शेरखां।"

"अब्दुलकरीम ने तुम्हें लाहौर जाने के कितने रुपये दिये हैं?"

"कुछ नहीं।"

"क्यों?"

"यह दीन का काम था। इसमें हम एक पैसा लेना भी हराम समझते हैं।"

"कैसा दीन का काम? एक लड़की भगा ले जाना दीन का काम है क्या?"

"एक काफ़िर की लड़की का एक मुसलमान से निकाह पढ़ाना और इस काम में मदद देना दीन ही का काम है।"

"कहां निकाह पढ़ाया है?"

"मैं लाहौर में छोड़ आया हूं।"

"कहां?"

"भाटी दरवाज़े के बाहर दाता की दरगाह में। मैं तो वापिस चला आया हूं। वह लड़की अब तक दोनों में से एक की बीवी बन चुकी होगी। उन्होंने वापिस अमृतसर नहीं आना था, इस कारण मैं चला आया।"

"वे कहां जाने वाले थे?"

"मुझे मालूम नहीं।"

"अच्छी बात है," रानड़े ने कहा, "जब तक लाहौर से समाचार नहीं आता तुम्हें हमारा कैदी बनकर रहना होगा।"

शेरखां इतना पीटा गया था कि उसमें किसी भी बात को छिपाने अथवा कुछ करने की शक्ति नहीं रही थी। वह चुप रहा। रानड़े के कहने पर, उसके हाथ पांव बांध और मुख पर पट्टी बांधकर उसे एक और कोठरी में डाल बाहर से बन्द कर दिया गया।

उचित आज्ञायें देकर एक और आदमी को लाहौर भेज दिया गया। इस समय भूपति वापिस आगया था और उसने कर्मों की ड्योढ़ी में संदेशा पहुंचाने, और वहां के अगुआ को मनावां भेजने की बात बताई। रानड़े ने इससे सन्तोष अनुभव किया। उसने भूपति से कहा, "भूपति, इस समय चाय बन जाय तो बहुत अच्छा हो।"

"हां साहब," भूपति ने आखिर अपना मुख खोला, "परन्तु दूध नहीं है और इस समय प्रातःकाल के तीन बज रहे हैं।"

"ओह! अच्छा तो अब नमक डालकर बिना दूध के ही चाय पियूंगा। मैं लाहौर और मनावां से समाचार आये बिना सोना नहीं चाहता।"

'अच्छी बात है' कह भूपति रसोई घर में चला गया। रानड़े ने श्रीकान्त से कहा, "सब षड्यंत्र स्पष्ट होता जाता है। मैं समझता हूं कि अमृतसर में खोज बन्द कर दी जावे।"

"हां, इसकी अब आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।" इतना कह श्रीकान्त ने इसी विषय की आज्ञा अपने साथी को देकर भेज दिया।

[९०]

दिन चढ़ने से पूर्व मुहम्मदइसहाक की बीवी भी पकड़कर लाई गई, परन्तु उससे कोई नई बात पता नहीं लगी। दस बजे तक इन्द्रा, जिसके मुख पर कई घाव थे, रानड़े के सम्मुख लाकर उपस्थित की गई। उसको लाने वाले तीन आदमी थे, जो लाहौर से सीधे मोटर में आये थे। उनमें से एक से हाथ मिलाते हुए रानड़े ने कहा, "ओह! निर्मल राय जी, आइये।"

निर्मलराय ने इन्द्रा की ओर संकेत कर कहा, "लीजिये, जीती ही मिल गई है, मगर अब्दुलकरीम मारा गया है और इसहाक खतरनाक हालत में दरगाह में पड़ा है।"

इन्द्रा बहुत थकी हुई थी और कमजोर होरही थी। इस पर भी उसने हिम्मत नहीं छोड़ी और वहां पहुंचते ही निर्मलराय से कहने लगी, "आपने तो मुझे मेरे भाई के पास ले चलने को कहा था?"

इसका उत्तर रानड़े ने दिया, "चूनीलाल को यहीं बुला देता हूं।"

उसने एक आदमी को पता दे चूनीलाल को बुलाने के लिये मोटर में भेज दिया और भूपति को सब के लिये चाय लाने को कहा।

चाय पीते हुए निर्मलराय ने इन्द्रा को छुड़ाने का वृत्तान्त बताया। उसने कहा, "लाहौर की पन्द्रह चुँगियों पर मैंने अपने आदमी बैठाये हुए हैं जो लाहौर में होने वाले अनेकों पाप-कर्मों का पता लेते रहते हैं। इन भेदियों में से एक ने, जो शौह की गाड़ी के पुल पर की चुंगी पर देख-भाल करता है, मुझे कल सायंकाल बताया था कि उसने एक मोटर में एक औरत भगाकर लाहौर लाती हुई देखी है। चुंगी के मुन्शी को सन्देह होगया था कि औरत बुर्के में कोई माल छुपाये हुए है। वह औरत की तलाशी लेना चाहता था परन्तु उस औरत के साथी तलाशी देने के सख्त खिलाफ़ थे। उन्होंने चुंगी के मुन्शी को पचास रुपये घूस भी दी थी। इससे हमारे भेदियों को सन्देह होगया। वह मोटर साइकल पर उनके साथ साथ दरगाह तक पहुंचा था। रात जब आपका सन्देशा मिला तो मैं तुरंत समझ गया था कि यह दरगाह में पहुंची लड़की के विषय में ही है। मैंने तुरंत दो आदमी मुसलमानी पोशाक में वहां भेजे। वे समाचार लाये कि लड़की और उसके दोनों साथी सराय में पड़े हैं और लड़की का एक से निकाह पढ़ा दिया गया है।

"इस समाचार के पाते ही मैंने दस दस आदमियों की पांच टोलियों को दरगाह के भीतर और बाहर भेज दिया और मैं स्वयं मुसलमानी पोशाक पहन दरगाह में मुसाफिरों के रहने के कमरे में जा पहुँचा।

लड़की कमरे के एक कोने में बैठी थी और दो पुरुष दूसरे कोने में। ये परस्पर काना-फूसी कर रहे थे। मुझे देख अब्दुलकरीम ने अचम्भे में मेरी ओर देखा। मैंने वहां पहुंचते ही उनसे पूछा, 'तुम में अब्दुकरीम कौन है?'

'मैं हूं। क्या बात है?'

"मैंने कहा, 'लड़की के अगवा की बात पुलिस में पहुंच गई है और पुलिस दरगाह की तलाशी के लिये यहां आ रही है। यहां से जल्दी इस लड़की को ले जाओ।"

"इस पर अब्दुलकरीम ने मुझसे पूछा कि मैं कौन हूं। मैंने बताया, 'मैं यहां का हिसाब रखने के लिये मुन्शी हूँ।' इस पर वह घबड़ा उठा और बोला कि वह लाहौर में किसी को नहीं जानता। वह नहीं जानता कि कहां जाये।

"मैंने कहा, 'यहां तो पुलिस आने वाली है। यहां से तो चले जाना ही ठीक है। अगर तुम्हारा कोई दोस्त यहां नहीं तो मेरे घर चलो। दिन निकलते ही वहां से चले जाना।'

"दोनों आदमी वहां से उठ खड़े हुए और लड़की से कहने लगे 'उठो, चलो।'

"इस पर इसने कहा, 'मैं नहीं जाती। पुलिस आती है तो अच्छा है।'

"इस पर अब्दुलकरीम ने इसका हाथ पकड़कर घसीटना चाहा। यह शोर मचाने लगी। मैंने अब्दुलकरीम से कहा, 'इसे छोड़ दो। इसे मैं लाता हूं। यहां शोर मचना ठीक नहीं है।'

"मैंने इसे गोदी में उठा लिया। यह मेरे मुख पर चांटे मारने लगी और नाखूनों से नोचने लगी। मैंने इसके कान में कह दिया, 'इन्द्रा, चुप रहो। मैं हिन्दू हूं। भेष बदलकर तुम्हें छुड़ाने आया हूं।' इस पर यह शान्त हो गई। जब मैं दरगाह से बाहर आया तो हमारे अदमियों ने हमारे आगे और पीछे चलना आरम्भ कर दिया। इससे अब्दुलकरीम को

मुझ पर शक हो गया और छुरा निकाल मुझ पर हमला कर बैठा। मैं पैंतरा बदलकर पीछे हट गया। इस पर भी इसके मुख पर घाव लग गया। इस पर अब्दुलकरीम और मुहम्मदइसहाक की हमारे आदमियों से लड़ाई हो गयी। अब्दुलकरीम मारा गया और मुहम्मदइसहाक बुरी तरह घायल हो गिर पड़ा। इसे घर ले जाकर मरहम-पट्टी करवाई और अब यहां ले आये हैं।"

रानड़े अपने सुदर्शन-चक्र के कार्य की सफलता पर संतोष प्रकट कर रहा था। इन्द्रा चूनीलाल के हवाले कर दी गई। अमरनाथ और जिस जिसने स्वराज्य-संस्थापन-समिति के इस प्रकार मुस्तैदी से कार्यवाही करने का वृत्तान्त सुना, समिति के संगठन की सराहना करते थे। सायंकाल रानड़े ने बृजबिहारी को देहली में टैलीफ़ोन किया और बताया, "सुदर्शन सफल रहा। चिकित्सा लाहौर में हुई। रोगी ठीक है और घर आगया है। एक और रोगी है। दिल्ली भेज रहा हूं। उसकी बीमारी का हाल साथ जाने वाला बतायेगा। किसी योग्य चिकित्सक से चिकित्सा करवानी चाहिये।"

बृजबिहारी ने पूछा, "रोगी स्त्री है या पुरुष?"

"स्त्री है। विधवा है। गरीब है।"

इसके पश्चात् अब्दुलकरीम की स्त्री और लड़की को मोटर में लाद कर देहली भेज दिया गया। यह उचित समझा गया कि उसे अमृतसर में न रखा जाय और हो सके तो उसका किसी हिन्दू से विवाह कर दिया जाय। अब्दुलकरीम की बीवी को अभी उसके पति के मर जाने का ज्ञान नहीं था और वह समझती थी कि उसे इन्द्रा की खोज के सम्बन्ध में अमृतसर से बाहर ले जाया जा रहा है।

उसे देहली पहुंचने पर बृजबिहारी के सामने उपस्थित किया गया। बृजबिहारी ने साथ आने वाले आदमी से सब वृत्तान्त जानकर अब्दुलकरीम की बीवी से कहा, "तुम्हारे खाविन्द ने इन्द्रा से निकाह पढ़ा लिया था।"

'ओह !' एकाएक औरत के मुख से निकल गया ।

"परन्तु इन्द्रा को उससे छुड़ा लिया गया है। वह अपने भाई के पास पहुंचा दी गई है।"

"शुकर है खुदा का । मगर निकाह जो पढ़ा गया है ?"

"हां, निकाह का झगड़ा था। लेकिन एक बात और हो गई है। जब इन्द्रा को छुड़ाने के लिये हमारे आदमी गये तो अब्दुलकरीम ने मुकाबला किया और इस झगड़े में वह मारा गया है।"

"मारा गया ?" अब्दुलकरीम की स्त्री के मुख से चीख सी निकल गई। वह रोने लगी और कहने लगी, "मैं अब क्या करूंगी ? कहां जाऊंगी ? मेरा कौन है ?" इत्यादि ।

बृजबिहारी ने अब्दुलकरीम की बीवी के रहने का प्रबन्ध कर दिया। दो-तीन दिन के पश्चात् जब उसका शोक कुछ शान्त हुआ तो उसे देहली के समीप एक गांव में भेज दिया और उसे एक मकान रहने को तथा काम करने को दिलवा दिया। वह यदि चाहती तो वहां से जा सकती थी, परन्तु एक तो उसे इन्द्रा के छुड़ाने की पूरी कहानी सुनाकर डरा दिया गया था कि यदि उसने किसी को यह भेद बताया तो उसको और उसकी लड़की को मार डाला जायगा। दूसरी बात यह थी कि उसके मां-बाप नहीं थे जिनके पास जाकर वह रह सकती। आरम्भ में तो वह विवश होकर रहने लगी, परन्तु कुछ ही दिनों में गांव के एक आदमी से मेल-मुलाकात हो गई और दोनों का विवाह हो गया।

[११]

धीरेन्द्र का स्वराज्य-संस्थापन-समिति में मुसलमानों को सम्मिलित करने का प्रयत्न निष्फल गया। जैसा अमृतसर में अब्दुलकरीम इत्यादि ने किया, लगभग वैसा ही अन्य स्थानों पर मुसलमानों ने किया। वास्तव में जिन्हा और मुसलिम लीग के प्रचार का फल मुसलमानों में इतना व्यापक था कि ढूंढने पर भी किसी शुद्ध राष्ट्रीय विचार वाले मुसलमान का मिलना प्रायः असम्भव हो गया था। धीरेन्द्र और नरेन्द्र में यह पहला

मतभेद था जिसमें मत-समानता नहीं हो सकी। धीरेन्द्र को जब इस बात में निष्फलता प्राप्त हुई तो स्वाभाविक रूप में नरेन्द्र की महिमा नवरत्न-मंडल में बढ़ गई। नवरत्न-मंडल के लोग नरेन्द्र की बातें अधिक ध्यान से सुनने लगे।

शंकर पंडित को मार्ग की खोज में गये एक वर्ष से ऊपर हो गया था और उसका कोई समाचार नहीं आ रहा था। इस प्रकार ब्राह्मण वर्ग की ओर से नरेन्द्र ही नवरत्न-मंडल में रह गया था। इससे भी उसके विचारों को प्रधानता मिल रही थी।

जब युद्ध में जर्मन पक्ष की हार होनी आरम्भ हुई तो नरेन्द्र ने कार्य आरम्भ करने का प्रस्ताव धीरेन्द्र के पास भेजा। उसका कहना था कि युद्ध समाप्त होने से पूर्व ही भारतवर्ष में लोक-मत का इतना प्रभाव बढ़ जाना चाहिये कि उसके समाप्त होने पर अंग्रेज़ यहां अपने बाल-बच्चों को रखने में भय अनुभव करने लगें। इस कारण वह चाहता था कि आतंक (Terror) पैदा करने के लिये कार्य आरम्भ कर देना चाहिये। उस का विचार था कि प्रत्येक प्रान्त में एक या दो पुलिस अथवा सरकारी अफ़सर चुन लेने चाहियें जो जनता पर अत्याचार करने अथवा चोर बाज़ार में सहायता देने से बदनाम हो चुके हैं और मुकदमा कर उन्हें दंड देना चाहिये।

धीरेन्द्र इसमें लाभ नहीं समझता था। नरेन्द्र का कहना था कि जैसे किसी देश पर आक्रमण करने से पूर्व हवाई जहाज़ों से उस देश पर बम बरसा बरसाकर वहां के रहने वालों को भयभीत कर देना लाभ-कारी माना जाता है, वैसे ही हिन्दुस्तान में सरकारी अफ़सरों को भय-भीत करने के लिये ये छोटे-मोटे कार्यक्रम आवश्यक हैं। इनसे अफ़सरों में ऐसा भय समा जायगा कि वे पूरे आक्रमण के समय हतोत्साह होकर क्रान्ति में सम्मिलित हो जावेंगे।

धीरेन्द्र इस बात से मतभेद रखता हुआ भी, नवरत्न-मंडल में नरेन्द्र के साथ बहुमत होने से, आतंकवाद का कार्यक्रम बनाने में लग

गया और बम, पिस्तौल, डिनामाइट इत्यादि वस्तुएं बनने लगीं।

प्रान्त प्रान्त के अगुओं को कहा गया कि ऐसे अफ़सरों की सूचियां बनायें जिन्होंने अपने दुष्कर्मों से जनता में भारी बदनामी पैदा कर रखी है। नरेन्द्र का इस आतंक-चक्र से प्रयोजन यह था कि जहां सरकार का अजेय होने का विचार, जो जन-साधारण के हृदय में जमा हुआ था, विलीन हो जाय, वहां यह भी था कि अफ़सर लोग इतने भयभीत हो जायं कि वे विप्लव के समय सरकार का पक्ष ले ही न सकें।

इन सूचियों में नन्दलाल का नाम भी था। धीरेन्द्र जानता था कि नन्दलाल रेवतीदेवी का पति है इस कारण उस पर मुकद्मा चलाने के विषय पर दीर्घ काल तक निर्णय नहीं कर सका। अंत में उस ने यह प्रश्न रेवतीदेवी के सम्मुख रखना ही उचित समझा। उसने देहली प्रान्त के अगुआ का नन्दलाल के विरुद्ध दोषारोपण-चिट्ठा अपने निम्न पत्र के साथ भेजा। रेवतीदेवी अभी भी शंकरगढ़ में ही थी। वहां वह नरेन्द्र के कार्य में सहायता देती थी।

डाक पढ़ते पढ़ते रेवतीदेवी के नाम का पत्र निकला तो नरेन्द्र ने उसे दे दिया। रेवतीदेवी ने लेते हुए पूछा, "किसका है?"

"क्या जाने।"

रेवतीदेवी ने चिट्ठी खोलकर पढ़ी तो उसके मुख का रंग विवर्ण हो गया। चिट्ठी में लिखा था:—

श्रीमती रेवतीदेवी, नमस्ते।

आपको विदित होगा कि नवरत्न मंडल का बहुमत से यह निर्णय है कि उन सरकारी अफ़सरों पर मुकदमे चलाये जायें जिन्होंने जनता को बहुत कष्ट दिया है। ये मुकदमे ब्राह्मण वर्ग के उपनेता करेंगे। ऐसे सरकारी अफ़सरों की एक सूची बनाई गई है। इसमें भारतवर्ष के दो सौ से ऊपर अफ़सरों के नाम हैं। दिल्ली प्रान्त में एक सुप्रिन्टेंडेन्ट-पुलिस नन्दलाल का नाम है। उसके विरुद्ध दोषारोपण-चिट्ठा साथ है। नन्दलाल के विषय में, बहुत विचारोपरान्त, मैं इस परिणाम पर पहुंचा

हूं कि जब तक आपकी सम्मति न ले लूं तब तक मैं मुकदमा चलाने की अनुमति न दूं। इस कारण मैं जानना चाहता हूँ कि आप इसके विषय में क्या कहना चाहती हैं? एक-आध अफ़सर को छोड़ देने से हमारे इस आयोजन के प्रभाव में अन्तर नहीं पड़ेगा। इसी कारण मैंने इस विषय में आपकी सम्मति मांगी है। भली भांति विचारकर, शांत मन से सब दृष्टि-कोणों को समझकर अपनी सम्मति दें। आप अपना समय ले सकती हैं। —धीरेन्द्र

चिट्ठी पढ़कर रेवतीदेवी के मुख पर उदासी छा गई। वह क़ाफ़ी देर तक चिट्ठी और फिर दोषारोपण-चिट्ठे को पढ़ती और देखती रही।

नरेन्द्र ने उसकी परेशानी, जो उसके मुख पर स्पष्ट झलकने लगी थी, देखी तो पूछा, "रेवती, क्या है?"

"कुछ नहीं," इतना कह उसने चिट्ठी लपेट अपने ब्लाउज़ के भीतर रख ली।

इसने नरेन्द्र के मन में भारी उत्सुकता उत्पन्न कर दी। वह जानता था कि रेवतीदेवी ने, जबसे उनका मनो-मालिन्य मिटा था, उससे कभी कोई बात चोरी नहीं रखी थी। आज उसने इस चिट्ठी को छिपाने का यत्न किया है। इससे उसके मन में सन्देह हो गया कि अवश्य ही इस पत्र का उसके पति से सम्बन्ध है। वह मन में सोचता था कि यह क्या हो सकता है। किसने उसके पति के विषय में और क्या लिखा होगा। डाक तो समिति के डाकियों द्वारा आई थी। इससे यदि उसके पति का संदेशा होगा तो अवश्य समिति के किसी कर्मचारी के द्वारा आया होगा।

रेवतीदेवी उस दिन काम पर नहीं बैठ सकी। वह यह कहकर कि उसका चित्त ठीक नहीं है उठ अपने कमरे में चली गई। पश्चात् कई दिन तक वह समिति का काम करने में मन नहीं लगा सकी। गौरी ने एक-आध बार पूछा भी कि तबियत तो ठीक है। उसने ठीक है कहकर टाल दिया। धीरेन्द्र की चिट्ठी आने के लगभग एक सप्ताह पश्चात्

एक रात उसके कमरे का लैम्प रात भर जलता रहा था। दूसरे दिन प्रातःकाल जाग उठने के स्थान वह दस बजे तक सोई रही। गौरी ने जब उसे दस बजे भी सोया देखा तो उसके कमरे में जाकर उसे जगाने लगी; "रेवती, क्या बात है आज? उठी नहीं हो अभी। तबियत कैसी है?"

गौरी रेवती के माथे पर हाथ रखकर देखने लगी कि कहीं ज्वर तो नहीं है। इस विषय में निश्चिन्त हो उसे हिलाकर जगाने लगी। रेवती की आंख खुली तो वह अपने सामने गौरी को खड़ा देख घबराकर उठी और पूछने लगी, "कितने बज गये हैं?"

"दस।"

"ओह! बहुत देर होगई है। नरेन्द्र बाबू कहां हैं? खड्गबहादुर को डाक देकर भेज दिया है क्या?"

"नहीं। क्या बात है रेवती?"

"एक चिट्ठी भेजनी है।"

"इतना कहा वह खाट से नीचे उतरी और सामने मेज़ पर रखा एक बंद लिफ़ाफ़ा उठा नरेन्द्र के कमरे में चली गई। गौरी अचम्भे में उसे जाते हुए देखती रह गई।

नरेन्द्र सब डाक एक थैले में डाल रहा था। रेवती ने वहां पहुंचकर कहा, "नरेन्द्र जी, यह चिट्ठी भी जायगी।" इतना कहते हुए उसने हाथ में पकड़ा लिफ़ाफ़ा थैले में डाल दिया। डालते हुए नरेन्द्र ने चिट्ठी पर का पता पढ़ लिया। चिट्ठी धीरेन्द्र को भेजी जा रही थी।

थैला बन्द कर नरेन्द्र ने रेवती के मुख की ओर देखा तो उसे संतोष और प्रसन्नता से प्रफुल्लित पाया। नरेन्द्र के मुख से अनायास ही निकल गया, "क्या बात है रेवती? आज बहुत प्रसन्न प्रतीत होती हो।"

'हां' रेवती ने केवल इतना ही कहा और वह नरेन्द्र के कमरे से बाहर आगई। सायंकाल रेवती गौरी के छोटे बालक अक्षय को गोदी में और अजय को साथ लि तट पर घूमने गई तो नरेन्द्र साथ

था । सुबह की बात नरेन्द्र को भूली नहीं थी और वह देख रहा था कि रेवती कई दिन के पश्चात् उस दिन घूमने जा रही है । नरेन्द्र ने बात करने के लिये पूछ लिया, "आज कितने दिन के बाद घर से निकली हो, रेवती ?"

"आठ दिन पश्चात् । इतने दिन मैं मन में एक समस्या पर विचार कर रही थी । इससे मुझे और किसी काम में न तो रुचि रही थी और न उसके करने की शक्ति ।"

"इतनी विकट समस्या थी क्या ?"

"हां, परन्तु मैं इस विषय में अभी कुछ कहना नहीं चाहती । क्षमा करिये, नरेन्द्र बाबू ! यह मेरी आत्मा से सम्बन्ध रखने वाली बात है ।"

इससे नरेन्द्र इस रहस्य को जानने की अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं कर सका ।

[१२]

जबसे नन्दलाल की स्त्री, मनोरमा, घर से गई थी, नन्दलाल का स्वभाव अधिक और अधिक क्रूर होता जाता था । कभी कभी तो वह ऐसे काम कर देता था कि उसके अपने महकमे के आदमी भी दांतों तले अंगुली देने लगते थे । डिप्टी रघुवरदयाल की नज़रों से भी वह गिरता जाता था । दोनों में मेल-जोल कम होता जाता था ।

नन्दलाल के व्यवहार के कारण ही डिप्टी साहब का हरवंशलाल के परिवार से मिलना-जुलना बंद हो गया था । अब वे एक-दूसरे से मिलते नहीं थे । हरवंशलाल का दामाद इन्द्रजीत अभी तक जेल में था और उसकी लड़की कमला यह बात भली भांति जानती थी कि उसके पति को मनोरमा के भाग जाने के बदले में नन्दलाल ने पकड़वाया है । इसके अतिरिक्त यह बात विख्यात होती जाती थी कि राजनैतिक हलचल के बहाने नन्दलाल ने निरपराध लोगों को कष्ट दे देकर लाखों रुपये रिश्वत में खाये हैं ।

ऐसी अवस्था में जब धीरेन्द्र ने चोटी के बदमाश सरकारी अफ़सरों

की सूची मांगी और देहली के अगुआ बृजबिहारी ने जब शेखरानन्द और बनारसीदास से राय की तो सब के मुख से नन्दलाल का नाम सब से पहले निकला। देहली के पांच बदमाश अफ़सरों में नन्दलाल का नाम सब से पहला था। इस कारण जब कार्यवाही करने का अवसर आया तो इस कार्यवाही का सब से पहला शिकार नन्दलाल बना। शेखरानन्द ने देहली के अफ़सरों को पकड़ मुकदमे चलाने की योजना बना डाली।

एक दिन नन्दलाल अभी सोकर उठा ही था कि उसके रसोइये ने सम्मुख उपस्थित हो कहा, "हुज़ूर, आपको बाहर बुलाते हैं।"

"कौन हैं ?"

"मैं नहीं जानता। कोई साहब मोटर गाड़ी में आये हैं और कह रहे हैं कि आपसे ज़रूरी काम है।"

नन्दलाल 'स्लीपिंग सूट' में ही कोठी के बाहर, जहां एक मोटर और दो हैट-कोट-पतलून पहने युवक खड़े थे, जा पहुंचा। एक युवक ने आगे बढ़कर हाथ मिलाया और कहा, "हम एक ज़रूरी काम से आपके पास आये हैं।"

"हां फ़रमाइये।"

"शाहदरे में पांच सौ कपड़े की गांठें चोर बाज़ार में बिकने के लिये पहुंची हैं। इसमें काफ़ी लाभ होगा। हम चाहते हैं कि हमारा भी भाग उस लाभ में रहे। यह आपकी सहायता से ही हो सकता है।"

"मुझे क्या मिलेगा ?"

"देखिये, कपड़े का असली दाम पन्द्रह सौ रुपया प्रति गांठ के हिसाब से साढ़े सात लाख के लगभग है, पर चोर बाज़ार में प्रति गांठ का दाम तीन हज़ार से कम नहीं होगा। इस प्रकार नक़द लाभ साढ़े सात लाख है। इसमें कई आदमी मिले हुए हैं। इस पर भी एक एक पत्तीदार को एक लाख से कम का लाभ नहीं होगा। हम चाहते हैं कि सब मिलकर हम दोनों को दो लाख मिल जाय। यदि ऐसा हो जाय तो उस दो लाख में हम दो के स्थान पर तीन पत्तीदार बन जायेंगे।"

"यह तो कुछ नहीं," नन्दलाल ने नाक भौं चढ़ाकर कहा।

"तो आप ही बताइये कि उस दो लाख को हम कैसे बांटें ?"

नन्दलाल ने सिर खुजाते हुए कहा, "मैं समझता हूं कि एक लाख मेरा और एक लाख आप दोनों का।"

इससे वे दोनों युवक कुछ उदास प्रतीत हुए। एक जो अभी तक नहीं बोला था अपने साथी से कहने लगा, "हमारी महनत की कीमत ठीक नहीं लग रही।"

"हां," उसके साथी ने कहा, "छः महीने से हम इसके पीछे लगे हुए हैं। सैंकड़ों रुपयों का तो पैट्रोल फूंक डाला है।"

"पर यह कैसे पकड़ा जायेगा और रुपया कैसे वसूल होगा ?" नन्द लाल ने पूछा।

"आप अपनी वर्दी पहन हमारे साथ चलिये। हम आपको उस गोदाम के सम्मुख ले चलेंगे जिसमें माल रखा है। आप उस माल का 'परमिट' ('सप्लाई' बिभाग की मंज़ूरी) देखियेगा। वह आपको नहीं दिखाया जायगा। इस पर आप उनको धमकाइयेगा। वे आपको कुछ देना चाहेंगे। आप तीन लाख मांगियेगा। इस समय हम पहुंच जावेंगे और आपका फैसला दो लाख पर करवा देंगे।"

"रुपया नक़द मिलेगा क्या ?"

"नहीं मिलेगा तो आप जाब्ते की कारवाही कर दीजियेगा और हम सरकारी गवाह बन जायेंगे।"

नन्दलाल ने सोचकर कहा, "तो ठीक है। मैं अभी वर्दी पहनकर तैयार हो जाता हूं।"

ऐसे मुख़बर और इस प्रकार से रिश्वत का प्रबन्ध नन्दलाल के लिये नित्य प्रति की बात थी। इस कारण उसे इन लोगों के साथ जाने में किंचितमात्र भी हिचकिचाहट नहीं हुई।

मोटर का ड्राइवर अकेला आगे की सीट पर बैठा था और दोनों युवक नन्दलाल के आसपास पीछे की सीट पर थे। नन्दलाल ने कहा

भी कि एक आदमी आगे ड्राइवर के पास बैठ जावे, परन्तु एक युवक ने यह कहकर बात टाल दी कि एक और नौकर साथ जाने वाला है। वह आगे मिलेगा।

और ऐसा हुआ भी। शाहदरा से एक मील इधर ही एक आदमी सड़क के किनारे खड़ा हुआ बैठा लिया गया। ड्राइवर ने शाहदरा के समीप पहुँच गाड़ी खड़ी करने के स्थान और भी तेज़ी से भगा दी। इस पर नन्दलाल ने कहा, "शाहदरा तो पीछे रह गया है।" यह सुनकर दोनों युवक अचम्भे में उसका मुख देखने लगे।

"क्या आपने शाहदरा में कपड़ा पकड़वाने को नहीं कहा था?"

"कैसा कपड़ा?" एक ने पूछा।

इसी समय दूसरे ने जेब से पिस्तौल निकाल तानकर नन्दलाल को कहा, "हाथ उठा लो।"

नन्दलाल एक क्षण तक तो समझा ही नहीं कि क्या हो गया है। फिर तुरंत जान का भय जान हाथ ऊपर कर पूछने लगा, "क्या है?"

"तुम हमारे कैदी हो।"

"क्यों? मैंने क्या किया है?"

"तुम्हारे विरुद्ध चोरी, डाका, क़त्ल और देश-द्रोह का दोषारोपण है।"

इस समय दूसरे युवक ने नन्दलाल का पिस्तौल उतार अपने अधिकार में कर लिया। उसकी जेब में से घड़ी और अन्य सब प्रकार का सामान निकाल लिया गया। इस प्रकार उसे निशस्त्र कर युवक ने पिस्तौल नीचे कर कहा, "इन दोषों के आधार पर तुम पर मुकदमा चलाया जायगा।"

"मुकदमा कौन करेगा?"

"न्यायाधीश।"

"कौन न्यायाधीश? किस ने उसे नियुक्त किया है? क्या अधिकार है उसका कि मुझे पकड़वा लिया है?"

"यह हम कुछ नहीं जानते। जब तुम उसके सम्मुख उपस्थित किये जाओगे तो उसी से पूछ लेना।"

इस समय मोटर भागी जा रही थी। शाहदरा से गाज़ियाबाद और वहां से अलीगढ़, कानपुर होते हुए दोपहर के बाद वे लखनऊ पहुँच गये। वहां एक उजाड़ स्थान में शौचादि से निवृत्त हो मोटर सीतापुर, गोरखपुर होती हुई नैपालगंज जा पहुंची। जहां से झरनों का मार्ग आरम्भ होता है मोटर छोड़ नन्दलाल को पैदल चलने के लिये कहा गया और आधे घंटे में सब लोग झरनों पर जा पहुँचे। नन्दलाल के साथ वे तीनों युवक थे जो उसके साथ मोटर में बैठे थे। इनके अतिरिक्त एक और आदमी हाथ में 'टिफ़न-कैरियर' लिये, सड़क से पगडंडी पर उतरते समय उनके साथ हो गया था।

झरने पर पहुंचकर सब ने खाना खाया जो टिफ़िन-कैरियर में उनके लिये आया था। पश्चात् सब लोग पहाड़ पर चढ़ने लगे। इस समय अंधेरा हो गया था और मार्ग बिजली की टॉर्च जलाकर देखा जा रहा था। पहाड़ की चोटी पर पहुंच, वहां के सपाट पत्थर पर बैठ, कुछ आराम कर शंकरगढ़ी से उलटी ओर अर्थात् पश्चिम को चल पड़े। मार्ग घने जंगल में से था। नन्दलाल दिन भर की यात्रा और चिन्ता के कारण बेहद थक गया था। उसकी टांगें लड़खड़ा रही थीं। अत्यंत हतोत्साह हो उसने पूछा, "तुम लोग थके नहीं हो अभी? मैं और नहीं चल सकता।"

"एक फर्लांग तक तो और चलना ही होगा। आज की यात्रा का वहां अंत होगा।"

इससे नन्दलाल का साहस बंध गया और वह कमर पर हाथ रखकर चलने लगा। यह मार्ग शंकरगढ़ वाले मार्ग की भांति सुगम नहीं था। उधर भी जंगल तो इतना ही घना था, परन्तु ढालान इतनी तीखी नहीं थी जितनी इधर। पेड़ों और झाड़ियों को पकड़ पकड़कर चलना होता था। नन्दलाल के लिये इस प्रकार चलना अति कठिन था। उसके

साथी तो बन्दरों की भांति कूदते-फांदते जा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि मार्ग उनका देखा-भाला है।

दस मिनट और चलने पर वे एक पत्थरों से बनी कुटिया में जा पहुंचे। कुटिया में दो कमरे थे। कमरों के चारों ओर दस फुट ऊंची दीवार बनी थी। कहने को तो यह एक छोटा सा बंगला कहा जा सकता था, परन्तु इसमें रहने वाले के लिये सुविधायें तो कुटिया से भी कम थी। न कोई रसोई-घर था, न टट्टी-पेशाब के लिये स्थान, न स्नानागार, न कमरों में किवाड़ थे। छत बेक़ायदा कटे हुए स्लेट के टुकड़ों से बनी थी। चहारदीवारी में कोई फाटक नहीं था। एक स्थान पर दीवार नहीं बनी थी। यह दीवार में फाटक का काम देता था जिसे पेड़ों के सूखे तने रखकर बंद किया हुआ था।

नन्दलाल और उसके साथियों ने भीतर जाने के लिये इन तनों को हटाया नहीं, प्रत्युत उनके ऊपर चढ़, लांघकर भीतर चले गये। नन्द लाल के साथियों में से एक ने पुकारा, "रामेश्वर!"

"जी हां।"

"इसे लेट जाने दो," नन्दलाल की ओर संकेत कर कहा गया, "और इसकी पहरेदारी करनी है। कहीं इसे कोई बाघ इत्यादि न खा जाय।"

नन्दलाल वास्तव में ही बहुत थका हुआ था। एक कमरे में भूमि पर एक कम्बल बिछा दिया गया और उसे उस पर लेट जाने को कहा गया। वह उस पर लेटते ही सो गया

[१३]

चार आदमी नन्दलाल के साथ आये थे और एक रामेश्वर उस कुटिया में उपस्थित था। इस प्रकार नन्दलाल के अतिरिक्त वहां पांच आदमी थे। रामेश्वर ने सब के लिये खाना बना रखा था। नन्दलाल के सो जाने पर उन्होंने खाना खाया और रामेश्वर के अतिरिक्त सब सो गये। रामेश्वर हाथ में बंदूक ले, जो कुटिया के दूसरे कमरे में रखी थी,

चौकीदारी करने लगा।

नन्दलाल भूखा सोया था, इस कारण उसकी नींद जल्दी खुल गई। जब वह उठा तो उसने देखा कि उसके साथी जो उसे वहां लाये थे उसके समीप ही लेटे सो रहे हैं। हरीकेन लालटेन जल रही थी और उसके प्रकाश में उस सुनसान और वीरान स्थान में अपने को अकेला वहां देख वह कांप उठा। सरदी काफ़ी थी, इस कारण उसने अपने नीचे बिछे कम्बल को अपने पर लपेट लिया। अब वह जलती लालटेन की ओर देखते हुए अपनी अवस्था पर विचार करने लगा।

सब से प्रथम विचार उसके मन में वहां से भाग जाने का उठा। इस विचार के आते ही उसने अपनी जेब टटोली, जहां वह अपनी पिस्तौल रखा करता था। जेब खाली देख उसे स्मरण हो आया कि वह उससे छीना जा चुका है। अब उसने अपने साथियों के पिस्तौल देखने के लिये इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। सोये हुओं में से दो के पास पिस्तौल थे परन्तु वे भली भांति कम्बल लपेटे हुए थे, जिससे पिस्तौल बाहर दिखाई नहीं देते थे। उसने उनका कम्बल उठाकर पिस्तौल ढूंढने के लिये हाथ बढ़ाया, परन्तु उनको छूने से पहले ही रुक गया। वह डर गया था कि कहीं वे जाग न जाएं। कुछ काल सोचकर वह उठ पड़ा और हरीकेन लालटेन उठा कमरे से बाहर निकल आया। वह पेड़ों के तनों से बंद फाटक के पास आकर खड़ा हो गया और उन पर से कूद कर बाहर होने के विषय में सोचने लगा। वह अभी तनों पर चढ़ने की सोच ही रहा था कि पीछे से किसी के ज़ोर से हंसने का शब्द हुआ।

नन्दलाल ने घूमकर देखा। उसे दूसरे कमरे के दरवाज़े में रामेश्वर, उसकी ओर बंदूक ताने, खड़ा दिखाई दिया। वह डर गया और चुपचाप रामेश्वर की ओर देखते हुए खड़ा रहा। रामेश्वर ने उसे वहीं खड़ा देख आवाज़ दी, "मूर्ख आदमी, तुम नहीं जानते कि सीधे मौत के मुख में जा रहे हो।"

नन्दलाल ने लालटेन भूमि पर रख दी और कांपती अवाज़ में पूछा,

"यह क्यों ?"

"तुम कैदी हो और कैद से भागे जा रहे हो।"

"किस का कैदी हूं ?"

"इस समय मेरा।"

"तुम कौन हो ?"

"इस जेलखाने का दारोग़ा।"

"तुम्हें दारोग़ा किस ने बनाया है ?"

"जिसने तुम्हें पकड़ मंगवाया है।"

"मैं उसे नहीं जानता। उसके अधिकार को नहीं मानता। मुझे जाने दो, वरना उसके साथ तुम भी अपराधी बन जाओगे।"

"मुझे आज्ञा है कि यदि तुम भागने का यत्न करो तो तुम्हें एक बार रोक दूं। इस पर भी तुम यदि न मानो तो गोली मारकर तुम्हें अपाहिज़ करदूं।"

नन्दलाल देख रहा था कि बंदूक की नाली उसकी टांगों की ओर निशाना बांधे हुए है। इससे विवश हो, लालटेन उठा, वापिस अपने सोने के स्थान पर जा बैठा। इस समय उसके समीप सोये हुए चारों आदमी जाग चुके थे। उसे चुपचाप आकर बैठता देख, वे मुस्कराये। नन्दलाल ने धीरे धीरे अपने आप ही कहा, "कितना ज़ुल्म है ?"

यह बात दूसरे बैठे हुओं ने सुन ली थी, परन्तु कोई नहीं बोला। नन्दलाल इस चुप्पी से बहुत घबराया। उसने उकता कर पूछा, "क्यों साहब, मैंने आपका क्या बिगाड़ा है ?"

इस स्पष्ट प्रश्न का भी उत्तर जब उसे नहीं मिला तो उसने क्रोध में पूछा, "तुम लोग कौन हो ?"

एक हल्की सी मुस्कराहट के अतिरिक्त और कुछ भी प्रभाव साथ के लोगों के मुख पर दिखाई नहीं दिया। इससे तो वह उतावला सा हो गरज कर बोला, "मुझे भूख लगी है।"

इस पर साथ वालों में से एक ने अंगुली से कमरे के एक कोने में

रखे कपड़े की ओर संकेत कर दिया। कपड़े में कुछ लिपटा रखा था। नन्दलाल ने वहां पहुंच उसे उठा लिया। उसे खोलकर देखा। एक कटोरे में भात और दाल रखा मिला। नन्दलाल ने कहा, "रात के इस समय दाल-भात ?"

इसका उत्तर भी केवल मुस्कराहट ही थी। कुछ काल तक उसे देख नन्दलाल ने दाल-भात खाना आरम्भ कर दिया। कटोरा खाली कर उसने पानी मांगा। उसे दूसरा कोना दिखा दिया गया। वहां एक घड़ा पानी से भरा रखा था। नन्दलाल ने खाली कटोरे को पानी से भरा और पी गया। पश्चात् कम्बल ओढ़ अपने स्थान पर जाकर लेट गया।

[१४]

इस बार नन्दलाल की जाग दिन के दस बजे खुली। कुटिया के आंगन में धूप भर रही थी। नन्दलाल आंखें मलता हुआ जब आंगन में आया तो उसने दस-बारह आदमी खड़े देखे। वहां रामेश्वर भी खड़ा था। नन्दलाल ने उसके पास जाकर कहा कि उसे शौच को जाना है। वह अपनी बंदूक ले उसके साथ बाहर चला गया, और उसे शौच के लिये कुटिया से कुछ दूर एक छोटे से नाले के किनारे ले गया।

नन्दलाल शौचादि से निवृत्त हो जब लौटा तो आंगन में और लोग इकट्ठे हो गये थे। सब मिलकर बीस के लगभग थे। नन्दलाल ने सब को देखा। उनमें अपनी स्त्री मनोरमा को देख वह अवाक मुख पत्थर की मूर्ति बन खड़ा रह गया। वह इस सब दृश्य का अर्थ समझने में अशक्त था। उसे अचम्भे में स्तब्ध खड़ा देख रामेश्वर ने उसके कान में कहा, "तुम्हारा मुकदमा आरम्भ होने वाला है।"

"मेरा ?"

"हां।"

इस समय नरेन्द्र ने सब उपस्थित लोगों को सम्बोधन कर कहा, "मैं चाहता हूं कि आज की कार्यवाही आरम्भ कर दी जाय।"

यह सुन सब लोग अर्ध-चन्द्राकार पंक्ति में खड़े होगये। रामेश्वर ने

नन्दलाल को बांह से पकड़कर चन्द्राकार पंक्ति के खुली ओर ला खड़ा किया। नरेन्द्र उस पंक्ति के मध्य में खड़ा था। उसकी दहिनी ओर रेवतीदेवी खड़ी थी और बांई ओर एक बंगाली नवयुवक। शेष लोग उनके आगे अर्ध-चन्द्राकार पंक्ति को पूर्ण कर रहे थे।

जब सब लोग अपने अपने स्थान पर आ खड़े हुए तो नरेन्द्र ने जेब से एक काग़ज निकालकर पढ़ना आरम्भ किया। उसमें लिखा था:—

"मैं धीरेन्द्र, स्वराज्य-संस्थापन-समिति का नेता, समिति के ब्राह्मण वर्ग के नेता, श्री नरेन्द्रकुमार, के सम्मुख नन्दलाल, सुप्रिन्टेंडेन्ट पुलिस देहली, को न्यायार्थ भेजता हूं। मुझे मालूम हुआ है और मैंने इसके प्रमाण एकत्रित किये हैं, कि नन्दलाल ने दिल्ली नगर में घोर अन्याय और अत्याचार मचा रखा है। हिन्द-राष्ट्र के भले लोगों को इस अभियुक्त ने दारुण कष्ट दिये हैं। इसने वहां के लोगों से लाखों रुपये की रिश्वत ली है और इसने बीसियां निरपराध लोगों को जान से मार डाला है। इस कारण मैं इस पर अन्याय, कत्ल और लूट-मार का अपराध लगाता हूं।

"नन्दलाल को श्री नरेन्द्र जी के हवाले करते हुए सब गवाह और प्रमाण उपस्थित करने के लिये भेज रहा हूं जो इसके विरुद्ध हस्तगत हुए हैं। मैं समझता हूं कि ये सब इसे दोषी ठहराने के लिये पर्याप्त हैं और नन्दलाल को दंड दिया जा सकता है।

"नरेन्द्र की सहायता के लिये रेवतीदेवी तथा बसन्तकुमार दो सहायक नियुक्त कर रहा हूं। इस न्याय-मण्डल के प्रधान नरेन्द्र जी होंगे।

"नरेन्द्र जी को स्वयं और मण्डल के सदस्यों से यह शपथ ले लेनी चाहिये कि वे अपनी बुद्धि के अनुसार पक्षपातरहित शुद्ध न्याय करेंगे। संस्था की ओर से नन्दलाल के विरुद्ध मुकदमा चलाने के लिये उपनेता शेखरानन्द जी नियत किये गये हैं।

"न्याय-मंडल जो कुछ निर्णय देगा वह मुझे मिल जाना चाहिये

ताकि मैं उस निर्णय की पूर्ति का प्रबन्ध कर सकूं।"

नरेन्द्र ने इस पत्र को पढ़कर सब उपस्थित लोगों से कहा, "मैंने और न्याय-मण्डल के सदस्यों ने शपथ ले ली है और मैं नन्दलाल के मुकदमे को आरम्भ करने की आज्ञा देता हूं।"

इतना कह वह आंगन में जहां खड़ा था बैठ गया और रेवती जो उसके दाहिनी ओर थी और बसन्तकुमार जो बांई ओर था बैठ गये। पश्चात् अर्ध-चन्द्राकार पंक्ति में अन्य लोग भी अपने अपने स्थान पर बैठ गये। नन्दलाल अपने स्थान पर खड़ा रहा। रामेश्वर भी उसके पीछे खड़ा था।

जब सब लोग बैठ गये तो शेखरानन्द अपने स्थान पर खड़ा हो गया। उसने अपने बस्ते में से एक काग़जों का पुलन्दा निकाला और उसमें से पढ़कर सुनाने के लिये कोई काग़ज ढूंढने लगा। पूर्व इसके कि वह कुछ कहे नन्दलाल ने कहा, "इस मुकदमे के आरम्भ होने से पूर्व मैं यह पूछना चाहता हूं कि इस पत्र का, जो सुनाया गया है, लिखने वाला कौन है? उसको इस प्रकार राज्य के कर्मचारियों को पकड़ने तथा मुकदमा चलाने का अधिकार कहां से मिला है? मुझे पकड़कर यहां लाने वाले को ऐसा करने का क्या अधिकार था?"

नरेन्द्र ने इसका उत्तर दिया, "यों तो न्याययुक्त व्यवहार रखने का अधिकार ईश्वर-प्रदत्त है। इस पर भी संसार में अधिकार के दो स्रोत हैं। एक है शक्ति और दूसरा जनता की स्वीकृति। नेता धीरेन्द्र के अधिकार इन दोनों स्रोतों से उत्पन्न होते हैं।"

"आप में ब्रिटिश राज्य से भी अधिक शक्ति है क्या?"

"ब्रिटिश राज्य से भी अधिक सत्ता ईश्वर की है और नेता के अधिकार उसी से प्राप्त होते हैं। जहां तक जनता का सम्बन्ध है हमारे नेता को उसका सहयोग प्राप्त है।"

"मैं ऐसा नहीं समझता। यदि आप में सत्ता होती तो आप मुझे यहां छिपाकर न रखते और इस वीरान स्थान पर लाकर मुकदमा करने

के बजाय दिल्ली में और खुले में ही करते।"

"इस प्रकार की बातें तो ब्रिटिश सरकार बहुत कर चुकी है और करती रहती है। हम तो मुकदमा करेंगे, परन्तु ब्रिटिश सरकार तो अपने राजनैतिक कैदियों को बिना मुकदमा किये ही अज्ञात स्थानों पर अनिश्चित समय के लिये कैद करती रहती है। सन १६४२ में महात्मा गान्धी और कांग्रेस कार्य-कारिणी के सदस्यों से जो किया गया था, वह किस को विदित नहीं है?"

"तो आप मुझ पर मुकदमा करेंगे?"

"हां।"

"मुझे अपने को निर्दोष सिद्ध करने का अवसर मिलेगा?"

"हां।"

"परन्तु इस स्थान पर मैं कोई प्रमाण नहीं दे सकूंगा।"

"तुम जो प्रमाण देना चाहो उनके विषय में उचित समय पर बताना। हम यदि उनको मुकदमे में उपस्थित करने के योग्य समझेंगे तो उनको लाने और उपस्थित करने के लिये सुविधा देंगे।"

"अच्छी बात है।"

अब नरेन्द्र ने शेखरानन्द को आज्ञा दी कि वह अभियोग उपस्थित करे। शेखरानन्द ने एक काग़ज़ में से पढ़ना आरम्भ किया, "नन्दलाल, सुप्रिन्टेंडेन्ट ऑफ पुलिस देहली ने, जब से अपनी पदवी का भार सम्भाला है, देहली नगर के लोगों पर घोर अत्याचार किये हैं। उन सब का उल्लेख करना यहां सम्भव नहीं। वे इतने अधिक हैं कि उनको लिखने में तो महाभारत के बराबर ग्रन्थ बन जायेगा। इस कारण इस स्थान पर केवल तीन ऐसे अपराधों को उपस्थित करूंगा जिनके सिद्ध होने से इसको भारी से भारी दंड दिया जा सकेगा। वे तीन अपराध ये हैं। एक, मेरे घर पर डाका डालना; दूसरा, बनवारीलाल सौदागर चांदनी चौक दिल्ली के सुपुत्र कुन्दनलाल की हत्या करना; और तीसरा अपराध है, दिल्ली के एक रईस लाला बनारसीदास के सुपुत्र

इन्द्रजीत के विपरीत झूठे दोष लगा उसे पकड़वाकर कैद करवाना। इन तीनों अपराधों की घोरता अत्यंत बढ़ जाती है जब यह देखा जाय के ये उदाहरण उन सैकड़ों अपराधों में से लिये गये हैं जो अपराधी नन्दलाल ने अपने थोड़े से नौकरी के समय में किये हैं। मैं एक एक कर तीनों अपराधों के प्रमाण उपस्थित करता हूं।

"मैं राजपुर रोड नम्बर १०५ में रहता था। दिसम्बर १९४४ की पांच तारीख को सायंकाल नन्दलाल अपनी मोटर साइकल पर सवार हो वहां पहुंचा। मैं अपनी स्त्री मलिन्द के साथ कोठी के गोल कमरे में बैठा था कि इसने बिना मुझसे स्वीकृति मांगे मेरे सम्मुख उपस्थित हो मेरा नाम, मेरी स्त्री का नाम और अन्य अनावश्यक प्रश्न पूछने आरम्भ कर दिये। ये सब प्रश्न इस प्रकार पूछे जा रहे थे कि मैं डरकर दिल्ली छोड़ भाग जाऊं। इसने पूछा कि क्या मैं जमुना के पुल पर बम रखने वालों को जानता हूं? क्या मैं चन्द्रशेखर आज़ाद का सम्बन्धी हूं? मैं कितना इन्कम-टैक्स देता हूं? मेरा यहां ज़ामिन कौन है? इत्यादि।

"जब मैंने इन प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार किया तो बोला कि मैं इसका कैदी हूं। मैंने इस बात से इनकार किया तो मुझे पकड़ने के लिये पुलिस का एक दस्ता लेकर पहुंच गया। परन्तु मैं और मेरी स्त्री वहां से दूर हट चुके थे। हमें वहां न देख इसने हमारी कोठी लूट ली। मेरी स्त्री के भूषण भी इस लूट में ले लिये गये। कोठी का सब सामान, मेरी किताबें और हमारे कपड़े तक सब लूटकर ले जाये गये और फिर दूसरे दिन हमारी कोठी में एक और पुलिस-अफ़सर रख दिया गया।

"मेरी इस कथा की सत्यता का प्रमाण मेरे पास एक चिट्ठी है। यह चिट्ठी नन्दलाल ने डिप्टी इन्सपैक्टर जनरल पुलिस देहली, पं० रघुवर दयाल, के नाम लिखी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि डिप्टी साहब को मेरी कोठी लूटने और उसमें जबरदस्ती एक दूसरे पुलिस अफ़सर को बसाने की बात विदित होगई थी और उनको यह पसन्द नहीं था। उन्होंने नन्दलाल को डांटा होगा और यह चिट्ठी उनकी डांट के उत्तर

में लिखी गई प्रतीत होती है। नन्दलाल इस चिट्ठी में लिखता है :—

'जनाब, मैं आपकी चिट्ठी (D.O.) के उत्तर में इतना निवेदन कर देना चाहता हूं कि यह जो कुछ मैंने किया है और जिसका प्रमाण, आपके कहने के अनुसार आपके पास मौजूद है, मैंने एक सरकारी अफ़सर के लिये कोठी खाली कराने के लिये किया है। हम पुलिस वाले अगर सरकारी अफ़सरों की इतनी सहायता नहीं कर सकते तो हम कैसे अपनी तनख़ाह और अपने ओहदे की कीमत अदा कर सकते हैं। पुलिस-अफ़सर का सब से पहला फर्ज़ यह है कि वह सरकार के प्रबन्ध को ढीला न होने दे और अगर सरकार को मज़बूत बनाना है तो सरकारी अफ़सरों को सब प्रकार की सुविधाएं पहुंचाना हमारा कर्तव्य हो जाता है। मैंने जो कुछ किया है सरकार की ख़िदमत के ख़याल से किया है। रही बंगले को लूटने की बात। यह तो सिर्फ़ नीति की बात है। यदि शेखरानन्द का सामान वहां पड़ा रहता तो भला मेहरचन्द्र को वहां कैसे बसा सकता था। उसे वहां ले जाने से पूर्व बंगला बिलकुल खाली होना चाहिये था।

जनाब, मैं आपके सामने सब बात साफ़ साफ़ कह देना चाहता हूं। मैं थोड़ी सी ईमानदारी की ख़ातिर कानूनी-शिकंजे में फंस-जाने से बेईमानी कर कानून की नज़र में ईमानदार बनना बेहतर समझता हूं। हम लोगों को यह मालूम होना चाहिये कि कानून की नज़र में ईमानदार बनना ही ईमानदारी है। जो बेईमानी पकड़ी नहीं जा सकती वही ईमानदारी है। सारा पुलिस का महकमा इस उसूल की बात को जानता है और मैंने भी इसके मुताबिक ही काम किया है —नन्दलाल।'

"यह चिट्ठी नन्दलाल ने जिस नौकर के हाथ डिप्टी साहब को भेजी थी, उसने इसे चुराकर हमारे पास पहुंचा दी है। मैं समझता हूं कि इसके बाद और अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं कि अपराधी ने मेरे मकान को लूटा है।"

इतना कह शेखरानन्द ने वह पत्र न्यायाधीश नरेन्द्र को दे

दिया। नरेन्द्र ने शेखरानन्द से पूछा, "इस प्रथम अभियोग के सम्बन्ध में आपने कुछ और कहना है ?"

"नहीं। मैं समझता हूं कि यह पत्र ऐसा प्रमाण है कि और अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे अभियोगों के विषय में मुझे अभी कुछ कहना है।"

"मैं चाहता हूं कि पहले इतनी बात सिद्ध हो ले। शेष इसके पश्चात् देखा जायगा।"

नरेन्द्र ने नन्दलाल को सम्बोधन कर पूछा, "तुमने यह पत्र सुना है ?"

"हां।"

"इसके विषय में तुम कुछ कहना चाहते हो क्या ?"

"हां, यह पत्र मेरा लिखा नहीं है। मैं इसे नहीं जानता।"

नरेन्द्र ने वह पत्र रेवतीदेवी को दिखाकर पूछा, "आप इस पत्र की लिखावट को पहचानती हैं ?"

"हां, यह बाबू नन्दलाल का लिखा है।"

नरेन्द्र ने नन्दलाल से पूछा, "देखो नन्दलाल, जानते हो ये कौन बैठी हैं ?"

"हां, किसी समय मेरी स्त्री थी, मगर···।"

नरेन्द्र ने बात बीच में काटकर पूछा, "मगर-वगर को छोड़ो। ये कहती हैं कि इस चिट्ठी के लिखने वाले तुम हो।"

"ये झूठ बोलती हैं।"

"ये कसम ले चुकी हैं कि इस मुकदमे में निष्पक्ष रहकर सत्य, न्याय और धर्म के अनुकूल निर्णय देंगी।"

"इस पर भी ये झूठ कहती हैं।"

इस पर नरेन्द्र ने शेखरानन्द से कहा, "रेवतीदेवी के कथन का समर्थन किसी अन्य स्वतंत्र साक्षी द्वारा होना चाहिये।"

शेखरानन्द इसके लिये तैयार था। उसने कहा, "मैं अपने साथ

नन्दलाल के उस नौकर को लाया हूं जिसे चिट्ठी देकर डिप्टी साहब के घर भेजा गया था। शेखरानन्द ने अर्ध-चन्द्राकार पंक्ति के एक सिरे पर बैठे एक आदमी को सम्मुख उपस्थित होने को कहा। वह आदमी उठकर सम्मुख आ खड़ा हुआ।

वह गढ़वाल का रहने वाला प्रतीत होता था। पायजामा, कुर्ता और टोपी पहने था। शेखरानन्द ने उससे प्रश्न पूछने आरम्भ किये। उसने शपथ लेने के पश्चात् उत्तर देने आरम्भ किये। शेखरानन्द ने पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है ?"

"देवकीनन्दन।"

"क्या काम करते हो ?

"चपरासी का काम करता था।"

"कहां ?"

"नन्दलाल, सुप्रिन्टेंडेन्ट पुलिस देहली, के घर पर।"

"कब से वहां काम करते हो ?"

"डेढ़ वर्ष हो गया है।"

"पं० नन्दलाल को पहचान सकते हो ?"

"जी, वे सामने खड़े हैं।"

इस पर शेखरानन्द ने नरेन्द्र से चिट्ठी लेकर पूछा, "इस चिट्ठी को पहचानते हो ?"

"जी !"

"कैसे पहचानते हो ?"

"दो महीने के लगभग हुए हैं कि पंडित जी ने यह चिट्ठी मुझे देकर डिप्टी रघुवरदयाल जी के घर भेजा था।"

"यह चिट्ठी खुली थी क्या ?"

"नहीं, एक लिफाफे में बन्द थी। उस पर मुहर लगी थी, परन्तु मैंने वह चिट्ठी खोलकर पढ़ ली थी और पढ़कर डिप्टी साहब को उसकी नकल ही दी थी। असल बाबू बृजबिहारी को दे दी थी।"

"ऐसा क्यों और कैसे किया ?"

"बा० बृजबिहारी भारत-स्वराज्य-संस्थापन-समिति के एक अधिकारी हैं और मैं उसका सदस्य हूं। वास्तव में उस समिति ने मुझे पं० नन्द-लाल पर जासूसी करने के लिये नियुक्त किया हुआ था। यह मेरा काम था कि प्रत्येक चिट्ठी जो उसको आती थी या जो वह किसी को भेजता था स्वराज्य-संस्थापन-समिति के दफ्तर में ले जाऊं। वहां वह खोलकर पढ़ ली जाती थी। कभी असली चिट्ठी, कभी उसकी नकल आगे भेजी जाती थी। समिति के कार्यालय में पं० नन्दलाल के हस्ताक्षर करने का अभ्यास किया गया था। इस चिट्ठी को भी मैं समिति के दफ़्तर में ले गया था। वहां खोलकर पढ़ी गई थी। फिर मैंने इस चिट्ठी की नकल कराई थी। इससे मैं इसे पहचानता हूं।"

"तुमने इस चिट्ठी को अब सुना है ?"

"जी।"

"तो यही चिट्ठी है जो पं० नन्दलाल ने डिप्टी साहब को भेजी थी ?"

"जी हां ! मुझे भली भांति स्मरण है। यह वही चिट्ठी है।"

पश्चात् नरेन्द्र ने नन्दलाल को देवकीनन्दन पर जिरह करने के लिये स्वीकृति दे दी।

नन्दलाल ने देवकीनन्दन से पूछा, "तुम हर रोज़ कितनी चिट्ठियां चुराया करते थे ?"

"यों तो आपकी डाक काफ़ी बड़ी होती थी, परन्तु मुझे यह आदेश था कि लाहौर, कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई और कानपुर से आने वाले पत्र ही समिति के दफ़्तर में ले जाऊं। आपके लिखे तो प्रायः सब पत्र वहां जाते थे। वहां पर यह देख लिया जाता था कि कौन पत्र खोलना है और कौन नहीं खोलना।"

"इस काम में कितनी देरी लग जाती थी ?"

"आने-जाने का समय छोड़कर एक पत्र पढ़ने में दो-तीन मिनट से अधिक नहीं लगते थे। जो पत्र दस्ती जाते थे उनको सब से पहले देखा

जाता था। वे प्रायः वैसे ही बंद कर वापिस कर दिये जाते थे। जब किसी पत्र की नकल करनी होती थी तो कुछ समय अधिक लग जाता था और यह कभी कभी होता था।"

"तुम कुछ पढ़े लिखे हो?"

"जी हां। मैं लखनऊ विश्व-विद्यालय का ग्रेजुएट हूं।"

"ग्रेजुएट?"

"जी हां। आप समझते थे कि मैं अनपढ़ हूं। वास्तव में ऐसा नहीं है। मैंने चपरासी की नौकरी समिति के आदेश पर की थी।"

"समिति तुमको क्या वेतन देती थी?"

"कुछ नहीं। उसका काम अवैतनिक करता था।"

नन्दलाल ने नरेन्द्र को सम्बोधन कर कहा, "देवकीनन्दन का कथन सर्वथा असत्य और अस्वाभाविक है। यह मेरा कभी नौकर नहीं रहा।"

नरेन्द्र ने कुछ सोचकर स्वयं प्रश्न पूछने आरम्भ किये, "क्या यह असत्य है कि तुमने शेखरानन्द की कोठी पर अधिकार किया था?"

"मैंने अधिकार नहीं किया था। कोठी नम्बर १०५ खाली पड़ी थी। उसे सरकार की ओर से ले लिया गया था और एक सरकारी अफ़सर को वहां ठहराया गया है।"

"यह चिट्ठी जो शेखरानन्द ने पढ़कर सुनाई है तुम्हारी लिखी है या नहीं?"

"नहीं।"

[१५]

अब नरेन्द्र ने शेखरानन्द को दूसरा अभियोग उपस्थित करने को कहा। शेखरानन्द ने कहा, "अब मैं माननीय न्यायाधीश के सम्मुख इन्द्रजीत, पुत्र लाला बनारसीदास, का मामला उपस्थित करना चाहता हूं। बीस जनवरी सन १९४३ को हरद्वार से डिप्टी रघुवरदयाल ने यह तार नन्दलाल को भेजा था। इसके ऊपर दिल्ली तार-घर की मुहर लगी है। तार में लिखा है — seen Indarjeet Kamla.

Found them alone. They appear innocent. यह तार नन्दलाल के दफ़्तर से मिली है। इस तार का इतिहास यह है। १६ जनवरी १६४३ को नन्दलाल की स्त्री मनोरमा, जो अब रेवती देवी के नाम से प्रसिद्ध है, नन्दलाल का घर छोड़कर चली गई थी। नन्दलाल का विचार था कि इन्द्रजीत और कमला ने इन्हें छिपा रखा है। ये दोनों १६ तारीख को अपनी मोटर में सवार हो हरद्वार गये थे। डिप्टी रघुवरदयाल भी उसी दिन सायंकाल इन्द्रजीत और कमला के पीछे हरद्वार गये। उनका विचार भी यही था कि मनोरमा उनके साथ होगी। जब उन्होंने मनोरमा को उनके साथ नहीं पाया तो यह तार हरद्वार से इसे भेजी थी। इस पर भी नन्दलाल ने इन्द्रजीत को जब वह दिल्ली लौटा तो पकड़वा दिया। पहले डिफैन्स ऑफ इंडिया रूल २६ के आधीन दो मास के लिये हवालात में रखा, पीछे रूल १२६ के आधीन अनिश्चित समय के लिये जेल भिजवा दिया। इन्द्रजीत की स्त्री कमला लाला हरवंशलाल की लड़की है। लाला हरवंशलाल डिप्टी रघुवरदयाल के परम मित्र हैं। कमला की मां ने मनोरमा की मां अर्थात् डिप्टी साहब की स्त्री के सम्मुख रोया-गाया तो उसने कमला के पति इन्द्रजीत को छुड़ाने का वचन दे दिया, परन्तु वह सफल नहीं हुई। इस पर क्षमा मांगने के भाव में उसने अपनी सहेली, कमला की मां, को चिट्ठी लिखी, जो यह है :—

"बहन मोहिनी, मुझे लज्जा लग रही है। मैं अपने वचन के अनुसार इन्द्रजीत जी को छुड़ाने में सफल नहीं हो सकी। नन्दलाल को सन्देह है कि मनोरमा को छिपा रखने में इन्द्रजीत जी का हाथ अवश्य है। इससे वह हठ कर रहा है। उसने इन्द्रजीत जी के विरुद्ध मुकदमा इतना मज़बूत बना दिया है कि क़ायदे से उनका छूट सकना प्रायः असम्भव है। मुझे क्षमा करना मैं कोई सेवा आपकी नहीं कर सकी। कमला मेरी लड़की के समान है, परन्तु डिप्टी साहब खुले तौर पर इन्द्रजीत जी की सहायता नहीं कर सके। आप जानती हैं कि वे पुलिस-अफ़सर हैं और

आज सरकार कितनी सतर्क है। —आपकी…"

इस पत्र पर नन्दलाल ने आपत्ति उठाई। उसने कहा, "यह पत्र साक्षी के रूप में उपस्थित नहीं किया जा सकता। इसका लिखने वाला जीता है और वह स्वयं न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया जा सकता है। इससे इस लिखित पत्र की पुष्टि लिखने वाले से करवानी चाहिये।"

शेखरानन्द इस विषय में यह कहता था, "यह पत्र यदि अकेला ही प्रमाण होता तो पर्याप्त नहीं था, परन्तु मैं तो इस पत्र के साथ अन्य प्रमाण भी उपस्थित करने वाला हूं। उनकी उपस्थिति में यह पत्र भी एक प्रमाण माना जा सकता है।"

इस पर शेखरानन्द ने अपने सम्मुख रखे काग़ज़ों के पुलिन्दे में से एक और काग़ज़ निकाला और उसे पढ़कर सुनाना आरम्भ किया। यह काग़ज़ नन्दलाल के अपने हाथ का लिखा हुआ था। इसमें नन्दलाल ने 'सेक्रेटरी टू दी चीफ़ कमिश्नर देहली' के पास इन्द्रजीत के विरुद्ध रिपोर्ट लिखी हुई थी। शेखरानन्द ने इस पर लिखी रिपोर्ट को पढ़कर बताया कि इन्द्रजीत को जब दो मास तक हवालात में रखा जा चुका था तो उसके विपरीत यह रिपोर्ट की गई थी। "इस रिपोर्ट के पीछे चीफ़ कमिश्नर के सेक्रेटरी ने एक नोट लिखा है। वास्तव में वह नोट है जो सुनने-योग्य है। चीफ़ कमिश्नर के सेक्रेटरी मिस्टर ग्रीन लिखते हैं, 'मिस्टर नन्दलाल ने यह दसवीं रिपोर्ट की है जिसमें किसी ठोस प्रमाण के बिना ही एक आदमी को अनिश्चित काल के लिये जेल में रोक रखने की सिफ़ारिश की है। यद्यपि पहले लोगों के विषय में मैंने यह आपत्ति कभी नहीं उठाई तो भी यह बेक़ायदगी अधिक देर तक चल नहीं सकती। मैं इसे अब और अधिक सहन नहीं कर सकता। मैं चीफ़ कमिश्नर साहब से सिफ़ारिश करता हूं कि इन्द्रजीत को छोड़ दिया जाय।'

"इस नोट के नीचे चीफ़ कमिश्नर ने अपनी आज्ञा लिखी है।

'मिस्टर शीन का नोट ठीक होते हुए भी उचित नहीं है। आजकल के ज़माने में जब एक ओर विश्व-व्यापी महान युद्ध चल रहा है और दूसरी ओर विद्रोह की आग देश भर में व्यापक हो रही है, पुलिस के अफ़सरों पर काम का बोझा बहुत अधिक है और उनसे उतने योग्यतापूर्ण न्याय की आशा नहीं करनी चाहिये जितने की साधारण काल में की जाती थी। मैं समझता हूं कि किसी एक-आध निरपराध के पकड़े जाने में हानि नहीं है, परन्तु संदेह में किसी एक भी विद्रोही का जेल से बाहर रह जाना सर्वथा भयंकर परिणाम पैदा कर सकता है। आखिर पुलिस-अफ़सरों पर इतना भरोसा करना ही होगा, कि वे भली भांति विचार कर ही कार्य करते होंगे। इस कारण मैं इन्द्रजीत को अनिश्चित काल तक के लिये जेल में रोक रखने की आज्ञा देता हूं।"

शेखरानन्द ने अब कहा, "मैं समझता हूं कि यह प्रमाण जब डिप्टी रघुवरदयाल के तार और डिप्टी साहब की स्त्री के पत्र के साथ मिलाकर पढ़ा जाय तो नन्दलाल का इन्द्रजीत का चालान अकारण करने में सन्देह ही नहीं रह जाता है।"

अब नरेन्द्र ने फिर नन्दलाल से पूछा, "इस विषय में तुम्हें कुछ कहना है?"

"नहीं"

नरेन्द्र ने शेखरानन्द को आगे कहने की आज्ञा दे दी। उसने अब अर्ध-चन्द्राकार पंक्ति में बैठे एक और आदमी को सम्बोधन कर कहा, "लाला बनवारीलाल, अब आप आजाइये।"

वह आदमी अपने स्थान से उठकर सम्मुख, नन्दलाल के समीप, आकर खड़ा होगया। उसे देख नन्दलाल के शरीर में एक बार तो कंपकपी उत्पन्न हो गई। शेखरानन्द ने बनवारीलाल पर प्रश्न करने आरम्भ कर दिये। उसने पूछा, "आपका क्या नाम है?"

"बनवारीलाल।"

"कहां के रहने वाले हैं?"

"गंदी गली दिल्ली में रहता हूं।"

"क्या काम करते हैं?"

"चांदनी चौक बाज़ार में बिसाती की दूकान करता हूं।"

"आपके कितने लड़के हैं?"

"एक था। नाम चरणदास था।"

"उसका देहान्त कैसे हुआ था?"

"इस वर्ष जनवरी मास की छटी तारीख की बात है। नन्दलाल हमारी दूकान पर मौज़े खरीदने आया। इसने छः जोड़े मौज़े चुन लिये। मैंने एक काग़ज़ में लपेट बांध दिये, जिन्हें यह लेकर बिना मोल दिये चल पड़ा। मेरा लड़का चरणदास समीप ही बैठा था। उसने दूकान से उतरकर, इसको पकड़, दाम मांगे। इस पर यह लौटकर दूकान के सामने आ कहने लगा, 'लाला, मैंने दस का नोट दिया है। ये तो साढ़े सात रुपये के हुए न, शेष दो रुपये आठ आने वापिस करो।' मैंने बहुत नम्रता से कहा, 'आपने अभी कुछ नहीं दिया।' इस पर तो नन्दलाल गाली देने लगा और कहने लगा कि मैंने हरामज़दगी की है। मेरे लड़के को क्रोध चढ़ आया। उसने इसे पकड़कर कहा कि वह बिना दाम लिये छोड़ेगा नहीं। इस पर इसने दो कान्स्टेबलों को, जो वहां गश्त लगा रहे थे, बुलाकर चरणदास को पकड़वा थाने में भेज दिया। मैंने मैजिस्ट्रेट के पास पहुंच ज़मानत लेने को कहा। वह ज़मानत नहीं ले सका। मैजिस्ट्रेटों के अधिकारों में बहुत कांट-छांट की जा चुकी थी। मैंने लाहौर हाइकोर्ट में पैटीशन करने का निश्चय कर लिया था, परन्तु उसी रात के दो बजे दो कान्स्टेबल और चार मज़दूर चरणदास के मृत शव को लाकर हमारी गली के बाहर रखकर चले गये।"

इसके पश्चात् शेखरानन्द ने एक और को जो पंक्ति में बैठा था उठाकर उपस्थित किया। बनवारीलाल अपने स्थान पर जा बैठा।

शेखरानन्द ने इस नये आये से पूछना आरम्भ कर दिया, "क्या

नाम है आपका ?"

"बुधिया कहार "

"क्या काम करते हो ?"

"चांदनी चौक बाज़ार में झिल्ली उठाता हूं ।"

"इस आदमी को पहचानते हो ?"

"जी हां । ये दिल्ली के थानेदार हैं ।"

"इस वर्ष जनवरी के महीने में तुम्हें थाने में बुलाया गया था ?"

"जी हां, मुझे स्मरण है । मैं और मेरे साथ तीन आदमी और पकड़कर बुलाये गये थे । दो सिपाही आये और हमें हथकड़ी लगाकर थाने में ले गये । हमें इनके सामने पेश किया गया । इन्होंने एक काग़ज़ उठा पढ़ना आरम्भ कर दिया । हम कुछ नहीं समझे । जब पढ़ चुके तो मैंने कहा, 'हजूर, मैं नहीं समझा ।' इस पर आप बोले, 'कह तो दिया कि तुम चोरी के मामले में पकड़े गये हो ।' मैंने कहा, 'मैंने चोरी नहीं की ।' इस पर ये बोले, 'साले, झूठ बोलता है ।'

"हम सब चुप थे और नहीं जानते थे कि क्या करना चाहिये । इस पर वह कान्स्टेबल, जो हमको पकड़कर लाया था, बोला, 'देखो, मैं तुम्हें छूटने का एक तरीका बताता हूं ।' हम सब उसकी तरफ देखने लगे । वह बोला, 'अगर आज रात तुम वैसा ही करोगे जैसा मैं कहूं तो कल तुम छोड़ दिये जाओगे । और अगर तुम इस विषय में चुप रहोगे तो फिर इस चोरी के मामले में तुम्हें कोई नहीं पकड़ेगा ।'

रात के दो बजे हमें एक मृत लाश दिखाई गई और कहा गया कि इसे उठाकर चलो । हम विवश थे । उठाकर चल पड़े । वे दोनों कान्स्टेबल जो हमें पकड़कर लाये थे साथ थे । वह लाश फतहपुरी गंदी गली के बाहर लाकर रखवा दी गई और हमें यह धमकी देकर विदा कर दिया गया कि यदि यह घटना किसी को बताई गई तो चोरी के मामले में फिर पकड़ लिये जाओगे ।"

इसके पश्चात् नन्दलाल को पहचानने वाले तथा बनवारीलाल के

लड़के की मृत्यु के साक्षी बारी बारी से उपस्थित हुए और अपनी अपनी साक्षी देकर अपने स्थान पर जा बैठे। अब नरेन्द्र ने नन्दलाल को सम्बोधन कर पूछा, "तुम इस सब के विषय में क्या कहना चाहते हो?"

नन्दलाल इन सब साक्षियों तथा प्रमाणों के अपने विरुद्ध लाये जाने से भयभीत हो कांप उठा था। वह लड़खड़ाती आवाज़ में कहने लगा, "पर तुम मुझ पर मुकदमा करने वाले कौन हो? तुम्हारा क्या अधिकार है कि एक सरकारी अफ़सर को इस प्रकार पकड़कर उसे कष्ट दो। मैं तुम सब लोगों को सचेत करना चाहता हूं कि यह कार्यवाही सरकार से विद्रोह करना है और इसकी सज़ा फांसी तक हो सकती है।"

"हम यह जानते हैं," नरेन्द्र का उत्तर था, "परन्तु क्या तुम यह नहीं जानते कि ब्रिटिश सरकार का किसी हिन्दुस्तानी को पकड़कर बिना मुकदमा किये जेलखाने में बन्द कर रखने का अधिकार क्यों है? देखो नन्दलाल, मैं तुम्हें बताता हूं। ब्रिटिश सरकार ने यह अधिकार बना लिया है। इस कारण नहीं कि यह न्याय के अनुकूल है, प्रत्युत इस लिये कि ब्रिटिश सरकार के पास इसको चलाने की शक्ति है। अंग्रेजों ने नेपोलियन को कैद कर लिया था; इस कारण नहीं कि उसका कोई दोष सिद्ध हो गया था, प्रत्युत इस कारण कि युद्ध में अंग्रेजों की जीत हो गई थी। तुम्हारे मालिक अपनी सत्ता स्थिर रखने के लिये अधिकार बना लेते हैं, तो न्याय की विजय करने के लिये भला अधिकार क्यों नहीं बन सकते। तुम हमें अपनी सरकार से निर्बल समझते हो न? इसी लिये कहते हो कि हमारा अधिकार नहीं। मैं तो कहता हूं कि न्याय के नाते तुम अपराधी हो और इस समय हम तुम सरीखे अपराधी को दंड देने की शक्ति भी रखते हैं। पीछे हमारी शक्ति तुम्हारी सरकार के समान होगी, अधिक होगी या कम होगी परीक्षा से ही पता चलेगा। अभी तो मैंने तुम पर लगाये अभियोगों और उन पर प्रमाणों को सुना है। इनसे तो तुम अपराधी सिद्ध होते हो। यदि तुम अपने को अपराधी नहीं मानते तो इन अभियोगों का उत्तर दे सकते हो। केवल यह कह देना

कि मुझे न्याय करने का अधिकार नहीं मैं मानने को तैयार नहीं। न ही तुम्हारी यह धमकी कि तुम्हारी सरकार मुझे फांसी पर लटका देगी मुझे न्याय-संचालन से विचलित कर सकेगी। बताओ, तुम कुछ कहना चाहते हो ?"

नन्दलाल अनिश्चित सा खड़ा रह गया। नरेन्द्र ने उक्त प्रश्न तीन बार दोहराया। नन्दलाल ने तीसरी बार पूछे जाने पर कहा, "मैं तुमको मुझे दंड देने का अधिकारी नहीं मानता।"

इसके पश्चात् उसने कुछ अधिक नहीं कहा। नन्दलाल, जो अभी तक पंचायत के सम्मुख खड़ा था, अब बैठ गया। इस पर नरेन्द्र ने अपने दोनों मंत्रणा देने वाले सहायकों से कहा, "मैं समझता हूं कि दोषी को कुछ नहीं कहना है। इस कारण मैं आपसे राय करने के लिये आपको पृथक में आमंत्रित करता हूं।"

[१६]

तीनों उठकर उस कुटिया के अहाते से बाहर चले गये। नरेन्द्र को रेवती के न्यायाधीश नियुक्त किये जाने की बात आज प्रातः ही प्रतीत हुई थी, इस कारण वह इसका अभिप्राय समझ नहीं सका था। न ही वह इस विषय में रेवती के विचार जान सका था। रेवती के चुपचाप न्यायाधीश के पद पर आ बैठने से वह यह समझा था कि रेवती नन्दलाल को बचाने का यत्न करेगी। परन्तु सारी कार्यवाही में उसने ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत उसके विरुद्ध साक्षी की थी। अब जब सब एकान्त में नाले के किनारे पर पहुंचे तो नरेन्द्र ने सब से प्रथम रेवती से ही पूछा, "रेवतीदेवी, आप बाबू नन्दलाल के विषय में क्या समझती हैं ?"

"मैं उन्हें अपराधी समझती हूं, परन्तु अच्छा होता यदि पहले बाबू बसन्तकुमार राय देते।"

बसन्तकुमार ने कहा, "अपराधी तो मैं उसे मानता ही हूं, परन्तु यदि रेवतीदेवी कहें तो साधारण सा दंड देकर छोड़ा जा सकता है।"

"मेरे कहने से क्यों?" रेवतीदेवी ने कुछ उद्विग्न होकर पूछा।

"आपका उसके साथ रियायत करने को कहना स्वाभाविक ही है।"

इस पर नरेन्द्र ने पूछा, "आप उसके अपराध को कितने दंड के योग्य समझते हैं?"

वसन्तकुमार कहने लगा, "उसका अपराध तो उसे फांसी पाने के योग्य बनाता है, परन्तु रेवतीदेवी से उसके सम्बन्ध का भी ध्यान रखना है। मैं समझता हूं कि यदि वह अपने पूर्ण पाप-कर्मों के लिये क्षमा मांगे और प्रायश्चित करने पर उद्यत हो तो उसे जीवित रहने देना चाहिये।"

"इस जीवन-दान पाने के लिये क्या प्रायश्चित करे वह?"

"यह रेवतीदेवी निश्चय कर दें।"

"परन्तु मैं तो उसका जीवित रहना उचित नहीं समझती। वह कभी भी समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकता," रेवतीदेवी का उत्तर था।

"यह आप कैसे कह सकती हैं?" नरेन्द्र ने अचम्भे में पूछा। उसके विस्मय करने में कारण था। वह अपने पति को फांसी का दंड देना चाहती थी।

रेवतीदेवी ने कुछ काल तक सोचकर कहा, "मैं अपने अनुभव से ही तो यह कह रही हूं। उसकी आत्मा इतनी कलुषित है कि उससे कभी भी कोई भला उद्‌गार प्रादुर्भूत होने की आशा नहीं।"

"क्या यह सम्भव नहीं," नरेन्द्र ने पूछा, "कि उसकी आत्मा का मैल उस वातावरण के कारण हो जिस में वह रहता था? यदि वह अपना काम, संगी-साथी और स्थान बदलने को तैयार हो जाय तो उसकी आत्मा भी निर्मल हो सकती है।"

"मुझे इसकी आशा नहीं।"

"इस पर भी हमें उसे अवसर देना चाहिये। यदि वह अपने को सुमार्ग पर लाने के लिये मान जाय तो क्या उसे मंगोलिया में हवाई अड्डे पर भेज देने से कोई हानि होने का डर है?"

"वह अपने को शोषक श्रेणी में मानता है और दूसरों के शोषण को अपना अधिकार मानता है। मुझे उसके सुधरने में आशा नहीं। इसके अतिरिक्त वह हमारी समिति के मध्य में एक भयंकर भेदिया भी बन सकता है, और किसी समय समिति के विनाश का कारण बन सकता है।"

रेवतीदेवी को इस प्रकार युक्ति करते देख बसन्तकुमार ने कहा, "हां, यह बात तो विचारणीय है। उसे हमारे बहुत से भेद विदित हो चुके हैं।"

नरेन्द्र ने कुछ उत्तेजित होकर कहा, "ये बातें सोचनी एक न्याया-धीश का काम नहीं। यह तो प्रबन्ध-कर्ता का काम है कि कोई व्यक्ति, जिसे हम जीवन-दान दे रहे हैं, कैसे हानि करने से रोका जा सकता है। हम यदि यह समझें कि कोई व्यक्ति यह अधिकार रखता है कि वह खुले बाज़ार दिल्ली में घूम सके तो हम इसकी घोषणा कर देंगे। प्रबन्ध-कर्ता उसके निर्विघ्न वहां घूमने का प्रबन्ध कर सकता है या नहीं, इसका विचार करना हमारा काम नहीं।"

"इसी कारण तो मैं यह कह रही हूं," रेवतीदेवी ने कहा, "कि न्याय तो न्याय के आधार पर करना चाहिये। मेरे उससे सम्बन्ध का आपके निर्णय पर प्रभाव नहीं होना चाहिये।"

"हां," नरेन्द्र का कहना था, "परन्तु न्याय क्या है, इसके निर्णय में यह तो देखना ही होगा कि न्याय कल्याण के लिये होता है। जो कल्याणकारी नहीं वह न्याय नहीं।"

"किस का कल्याण?"

"समाज का कल्याण, या यों कहो कि अधिक लोगों का अधिक काल के लिये कल्याण। इससे मैं तो यह समझता हूं कि यदि नन्दलाल तुम्हें साथ लेकर कहीं विदेश में चला जाय तो उसके वहां रहने में उसके और अनेकों अन्य लोगों के कल्याण होने की आशा है।"

"मैं आपका अभिप्राय नहीं समझी।"

"बात स्पष्ट है। मृत्यु-दंड तो केवल उस समय ही देना चाहिये जब उसके बिना और कोई उपाय ही न सूझता हो। जब तक मनुष्य जीता है तब तक उसके सुधरने की आशा की जा सकती है। जब तक सुधरने की आशा है तब तक उसे जीने का अधिकार है।"

"आप ठीक कहते हैं, परन्तु यह तो अपने अपने अनुमान की बात है। मेरा पूर्व अनुभव है कि वह सुधर नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मैं तो यह कहती हूं कि मैं उसके साथ विदेश या और कहीं नहीं जाऊंगी। वह स्वयं भी आपकी आज्ञा से कहीं जायेगा या नहीं हम नहीं जानते। इस समय मृत्यु से बचने के लिये और पीछे हम सब को सरकार के हाथ में फंसा देने के लिये भले ही आपकी बात मान जाय। वास्तव में न तो उसे अपने किये पर पश्चाताप है, न ही वह अपने पाप-कर्मों के लिये प्रायश्चित करने पर तैयार है। मैं तो उसे प्राण-दंड दिये जाने की सिफ़ारिश करती हूं।"

"ठीक है। इस पर भी अपनी आत्मा के सम्मुख सफाई के लिये मैं यह उचित समझता हूं कि उसे अपने किये पर पश्चाताप करने के लिये अवसर दिया जाय। मैं स्वयं उसको कहता, पर शायद आपके कहने और समझाने का प्रभाव ठीक हो। इससे यदि आप उसके सम्मुख यह प्रस्ताव रखें कि वह एक पत्र में अपने किये पाप कर्मों को माने, उनके लिये पश्चाताप करे और फिर उनके बदले में प्रायश्चित करने के लिये रुचि प्रकट करे, तो मैं उसे १० वर्ष के लिये किसी विदेश में वास करने के लिये भेज सकता हूं।"

रेवतीदेवी इस प्रस्ताव से गम्भीर विचार में पड़ गई। नरेन्द्र ने समझा कि शायद वह नन्दलाल को जीवन बचाने का अवसर देना नहीं चाहती। इससे उसकी आत्मा की छिपी आवाज़ उसे कह रही थी कि उसके मार्ग का कांटा ही तो दूर हो रहा है। वह ऐसा समझने लगा था कि रेवतीदेवी नन्दलाल के जीवन-काल में उससे विवाह के लिये मान नहीं सकती और अब उसको दूर हटाने का अवसर पाकर

इसे व्यर्थ गंवाना नहीं चाहती। इससे उसको भीतर ही भीतर प्रसन्नता अनुभव हो रही थी, परन्तु वह इसे प्रकट नहीं होने देना चाहता था। साथ ही दया के भाव से प्रेरित हो वह किसी मनुष्य को जीने का पूरा अवसर देना चाहता था। अतएव, रेवती को चुप देख, बोला, "रेवती देवी, यदि आप स्वयं उससे बातचीत करना नहीं चाहतीं तो मैं ही जाकर कर लेता हूँ।"

"नहीं, नहीं! यह बात नहीं। मुझे उससे भय नहीं लगता। मैं तो कुछ और ही सोच रही थी।"

इतना कह वह कुटिया में, जहां शेष लोग खड़े थे, चली आई। नन्दलाल अभी भी भूमि पर बैठा था और रामेश्वर उसके पीछे बंदूक लिये खड़ा था। रेवतीदेवी ने वहां पहुंचकर कहा, "रामेश्वर भैया, इसे कमरे के भीतर ले आओ।"

रामेश्वर ने उसे बांह से पकड़कर कहा, "नन्दलाल बाबू, उठो।" वह उसे रेवतीदेवी के पीछे कमरे में ले आया। नन्दलाल चुपचाप उसके सामने आ खड़ा हुआ। रेवतीदेवी ने रामेश्वर से कहा, "भैया, तनिक बाहर हो जाओ।"

रामेश्वर कमरे से बाहर कुछ दूर हटकर खड़ा होगया। जब वह उनकी बातों की आवाज़ से दूर हट गया तो नन्दलाल ने पूछा, "क्या बात है, मनोरमा?"

"मैं न्यायाधीश का एक सन्देशा लेकर आई हूँ।"

"क्या?"

"यदि तुम स्वीकार करो कि तुम, भारतवर्ष से बाहर, मंगोलिया में जाकर शेष जीवन व्यतीत करोगे तो न्यायाधीश तुम्हें जीवन-दान देने को तैयार है।"

"और यदि मैं न मानूं तो?"

"तो तुम्हें प्राण-दंड होगा।"

"मेरी क्या गारन्टी है कि मैं बाहर जाऊंगा ही और फिर जाकर

वापिस नहीं लौटूंगा ?"

"तुम्हारे बाहर जाने की गारन्टी तो यह है कि तुम हमारे कर्मचारियों की देखरेख में ही जाओगे और वहां से लौट आ सकने की बात असम्भव है क्योंकि वहां से वापिस आने का मार्ग ही नहीं है। जिस स्थान पर हम तुम्हें भेजेंगे वहां पर हमारे लोग हैं। वे तुम्हारी पहरेदारी करेंगे।"

"तो इसके यह अर्थ हुए कि तुम लोग मुझे जीवित ही कब्र में दबा देना चाहते हो।" फिर कुछ सोचकर बोला, "मैं इसके लिये तैयार हूँ, यदि तुम मेरे साथ चली चलो तो।"

"मैं तुम्हारे साथ क्यों जाऊं ?"

"तुम मेरी स्त्री हो इसलिये।"

"मैं तुमसे सम्बन्ध-विच्छेद कर चुकी हूँ।"

"क्यों ?"

"तुम्हारा और मेरा विवाह भूल थी।"

"कुछ भी हो। कानून से तुम मेरी स्त्री हो और तुम्हें मेरे साथ ही रहना चाहिये।"

"न्याय और धर्म के अनुसार मैं तुम्हारी स्त्री नहीं हूँ। मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊंगी।"

"क्या मैं यह समझूं कि तुमने किसी दूसरे से विवाह कर लिया है ?"

"यह पूछने का तुम्हारा अधिकार नहीं है।"

"तो मेरी धारणा सत्य है कि तुम नरेन्द्र की पत्नी बन गई हो ?"

"सदैव की भांति तुम्हारी मति भ्रष्ट हो रही है।"

"और तुम्हारी मति शुद्ध है जो पर-पुरुष के साथ रहती हो ?"

"मैं तो यह कहने आई थी कि तुम गोली से मारे जाने के स्थान पर देश-निर्वासन को पसन्द करोगे या नहीं और तुम पूछने लगे मुझसे कि मैं तुम्हारी खातिर देश से निर्वासित होना पसन्द करती हूँ या नहीं। यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है।"

"पर मनोरमा, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और तुम्हारे लिये नरक में भी जाने को तैयार हूँ।"

"कितना झूठ है यह। तुम मेरे लिये पुलिस की नौकरी छोड़ने के लिये भी तैयार नहीं थे। नरक में जाने की बात तो बहुत दूर की है।"

"वह तो मैंने अभी भी नहीं छोड़ी और शायद कभी नहीं छोड़ूंगा।"

"तो तुम्हें प्राण-दंड मिलेगा।"

"परन्तु तुम्हें दंड देने से पूर्व नहीं। देखो मनोरमा, जब से मैंने तुम्हें यहां देखा है मैं ईर्षा से जल रहा हूं। मुझे अपने मरने का भय नहीं, परन्तु मैं तुम्हें किसी दूसरे की पत्नी बनी नहीं देख सकता। बताओ, तुम मेरे साथ मंगोलिया चलोगी या नहीं? यदि चलो तो मैं अपने कर्मों पर पश्चात्ताप भी कर सकता हूं। वहां तुम्हारे साथ में होने से मैं भाग कर निकल जाने का साहस कर सकूंगा।"

"यह सब असम्भव है। ऐसा नहीं हो सकेगा।"

"क्यों?"

"मैं तुम्हारे साथ नहीं आऊंगी और फिर तुम......"

इससे आगे वह नहीं कह सकी। नन्दलाल ने रेवतीदेवी को गर्दन से पकड़ लिया और उसका गला घोंट देने के लिये ज़ोर लगाने लगा। वह कह रहा था, "नहीं आओगी तो लो......"

रामेश्वर दूर खड़ा था, परन्तु वह दोनों को देख रहा था और ज्यों ही नन्दलाल के हाथ रेवतीदेवी के गले पर गये, उसने बंदूक उठाई, निशाना साधा और खड़ से फायर कर दिया। इस में भी बीस सैकण्ड तक लग गये और इतने में रेवतीदेवी अधमरी अवस्था में हो गई थी। ज्यों ही नन्दलाल भूमि पर गिरा, साथ ही रेवतीदेवी भी भूमि पर अचेत गिर पड़ी। नन्दलाल के सिर में गोली लगी थी और वह तुरंत मर गया था। गोली चलने का शब्द सुनकर नरेन्द्र, बसन्तकुमार और अन्य लोग, जो कुटिया के बाहर खड़े वहां का दृश्य देख रहे थे,

भागकर वहां पहुंचे। एक क्षण में ही सब बात स्पष्ट हो गई और नरेन्द्र तथा रामेश्वर रेवतीदेवी को होश में लाने का यत्न करने लगे।

[१७]

उक्त घटना के तीन दिन पश्चात् की बात है कि देहली में नन्दलाल के बंगले पर डाका पड़ा।

जब से नन्दलाल देहली से लापता हुआ था तब से ही डिप्टी रघुवरदयाल उसकी खोज करवा रहा था। रघुवरदयाल को विश्वास हो रहा था कि वह अपनी इच्छा से नहीं प्रत्युत विवश हो कहीं रुका हुआ है। खुफ़िया पुलिस के लोग उसे ढूंढने का अनथक यत्न कर रहे थे। नन्दलाल के बंगले पर पुलिस और खुफ़िया पुलिस का पहरा लगा दिया गया था। नन्दलाल के दो-एक सम्बन्धी भी वहां आ पहुंचे थे। वे, नन्दलाल की मृत्यु की अवस्था में, उसकी सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिये आये थे। पुलिस के लोग यह देखने के लिये नियत हुए थे कि कहीं नन्दलाल की सम्पत्ति चोरी न हो जाय।

रात के एक बजे की बात है। एक आदमी आया और बंगले का दरवाज़ा खड़खड़ाने लगा। दो पुलिस कान्स्टेबल बाहर बरामदे में सो रहे थे। वे जाग उठे। एक आदमी भीतर था। वह भी आवाज़ सुन बाहर निकल आया। वह कहने लगा, "कई बार टेलीफ़ोन किया है, परन्तु यहां से कोई उत्तर नहीं मिला। इस कारण मैं आया हूं। डिप्टी साहब ने कहा है कि आज रात को सचेत रहना चाहिये। खतरे की सूचना मिली है। साथ ही वे चाहते हैं कि इधर से टेलीफ़ोन कर बताते रहें कि सब ठीक है।"

सब लोग भीतर टेलीफ़ोन देखने चले गये। जो आया था वह भी उनके साथ भीतर चला गया। एक ने टेलीफ़ोन उठाकर कान से लगाया और उसे बिगड़ा हुआ जान निराश हो वापिस रख दिया। वह, जिसने कहा था कि वह डिप्टी साहब की कोठी से आया है, कहने लगा, "यूं तो इस बंगले के चारों ओर पहरेदार तैनात कर दिये गये

है, इस पर भी आपको सचेत करना आवश्यक समझा गया है।"

कोठी पर ठहरे हुए आदमी और पुलिस कान्स्टेबल इस अपरिचित के चारों ओर खड़े हो उसकी बात सुन रहे थे। इस समय एकाएक दस आदमी, हाथों में रिवाल्वर लिये, कोठी में घुस आये। एक-एक को दो-दो ने पकड़कर उनके मुख में कपड़ा ठूंस, उनके हाथ-पांव रस्सियों से बांध दिये। यह सब काम इतनी शीघ्रता और फुर्ती से किया गया था कि घर से बाहर तक शब्द नहीं गया।

पश्चात् नन्दलाल के घर का जो कुछ भी सामान था तोड़-फोड़ डाला गया। नक़दी और भूषण उठा लिये गये और पश्चात बाहर बरामदे में नन्दलाल का मृत शव उस खाट पर लेटा दिया गया जहां कान्स्टेबल लेट रहा था। समीप एक लिफ़ाफ़े में रखा पत्र रख दिया गया। इसके बाद सब लोग जैसे चुपचाप आये थे वैसे ही चुपचाप चले गये।

कोठी में रहने वाले इतनी दृढ़ता से बांधे गये थे कि दिन चढ़ने पर भी वे वैसे ही वहां पड़े रहे। कोई खिसककर बाहर नहीं निकल सका।

दिन के दस बजे के लगभग रघुबरदयाल वहां पहुंचा। वह नित्य प्रातःकाल टेलीफ़ोन कर पहरेदारों से पूछ लिया करता था। आज फ़ोन किया तो वह मिला नहीं। टेलीफ़ोन के दफ्तर से पूछने पर पता चला कि तार टूटी हुई है। इससे उसे सन्देह होगया और वह अपनी मोटर में सवार हो वहां आ पहुंचा। वह बरामदे में खड़ा पुकारने लगा, "कोई है! कोई है।"

जब कोई नहीं बोला तो वह इधर उधर देखने लगा। उसने देखा कि कोई खाट पर लेटा है और चादर से सिर-पैर-मुख ढका हुआ है। रघुबरदयाल ने चादर उठाई तो उसे नन्दलाल का शव दिखाई दिया, जिसे देख उसका हृदय धकधक करने लगा। उसने फिर जोर जोर से पुकारा। इस पर भी कोई नहीं बोला। अतएव दरवाज़ा खोल भीतर

घुस गया। भीतर पहुंचते ही उसने चारों व्यक्तियों को हाथ-पांव बंधे लेटे देखा। सब के मुख में कपड़ा ठूसा हुआ था। रघुवरदयाल ने एक के हाथ-पांव खोले और मुख से कपड़ा निकाला। पश्चात् उस आदमी ने दूसरों को भी मुक्त कर दिया।

रघुवरदयाल उनसे रात की घटना की व्याख्या सुन चकित रह गया। बाहर आ उसने नन्दलाल के शव के समीप रखी चिट्ठी उठाई और पढ़ी। लिखा था, "उन सब लोगों को, जिनका नन्दलाल से सम्बन्ध है, सूचित किया जाता है कि स्वराज्य-संस्थापन-समिति के न्याय-धीश ने इसे निम्नलिखित अपराधों का दोषी पाया है और उन अपराधों के लिये उसे प्राण-दंड तथा उसकी सम्पत्ति ज़ब्त कर लेने के दंड की आज्ञा दी है। साथ ही लोगों को ऐसे कुकर्म करने से रोकने के लिये, इस शव को उसी के बंगले के बाहर बरामदे में रख देने की आज्ञा दी है।

"नन्दलाल के अपराध तो अनेकों थे, परन्तु उनमें से केवल तीन की जांच-पड़ताल की गई है। इसने श्री शेखरानन्द के बंगले पर डाका डाला और वहां का सामान लूटकर लेगया। दूसरा, इसने बनवारीलाल के लड़के को अकारण थाने में बुलाकर इतना पीटा कि वह मर गया। तीसरा, इसने ला० बनारसीदास के लड़के पर झूठे दोषारोपण कर उसे बंदी बनवा दिया। इन तीन अपराधों के अतिरिक्त इसने अपनी स्त्री मनोरमा को मार डालने का यत्न किया। इन सब के निर्विवाद प्रमाण मिल चुके हैं और इन अपराधों तथा उसके अन्य अत्याचारों की ओर ध्यान कर उसे इस जीवन से मुक्त कर देना ही उपयुक्त समझा गया है।

"ब्रिटिश सरकार के हिन्दुस्तान में काम करने वाले कर्मचारियों को सचेत किया जाता है कि वे नन्दलाल के उदाहरण से शिक्षा लें। प्रत्येक कर्मचारी जब तक समय के कानून के अनुसार व्यवहार रखता है तब तक वह कुछ अधिक दोषी नहीं होता। उसका दोष तो केवल

मात्र इतना रह जाता है कि उसने असत्य, अन्याय, और अनधिकारियों के पास अपने को बेचा हुआ है। परन्तु यदि कोई कर्मचारी कानून की बुराई के ऊपर अपनी ओर से और अधिक अन्याययुक्त और असत्यता-पूर्ण व्यवहार करता है तब तो वह पूर्ण रूप से अपराधी बन जाता है और दंड पाने के योग्य हो जाता है। ऐसा ही नन्दलाल को पाया गया है और उसे दंड दिया गया है।

"कुछ लोग यह आपत्ति उठा सकते हैं कि स्वराज्य-संस्थापन-समिति को किसी भी व्यक्ति को दंड देने का अधिकार नहीं हो सकता। नन्दलाल ने भी न्यायाधीश के सम्मुख यह आपत्ति उठाई थी, परन्तु यह आपत्ति युक्तियुक्त नहीं है। न्याय करने तथा अपराधी को दंड देने के अधिकारों के केवल दो स्रोत हैं। एक जन-बल और दूसरा ईश्वरीय सत्ता। ईश्वर की सत्ता के विषय में कहना तो ठीक नहीं, परन्तु जन-बल स्वराज्य-संस्थापन-समिति के साथ है। इसके विषय में कुछ भी संदेह नहीं कि नन्दलाल जैसे आदमी को दंड देने का अधिकार समिति को है।

"नन्दलाल की पूर्ण सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई है। उसके घर का वह सामान जो समिति के मतलब का नहीं है तोड़-फोड़कर नष्ट कर दिया गया है। भूषण और नक़दी ले ली गई है, और बैंकों को, जहां उसका रुपया जमा है, नोटिस देकर रुपया किसी को भी न देने की आज्ञा दे दी गई है।"

रघुवरदयाल ने नन्दलाल के बंगले में ठहरे हुए लोगों से तथा पुलिस-कान्स्टेबलों से पूछगीछ की। वह उन लोगों की रूप-रेखा तथा वेष भूषा के विषय में जानना चाहता था। जब उनसे कोई मतलब की बात नहीं विदित हुई तो उसने आसपड़ोस के लोगों से प्रश्न करने आरम्भ कर दिये। अंत में निराश हो मामला खुफ़िया-पुलिस में भेज दिया।

[१८]

नरेन्द्र के मन में रेवती का व्यवहार एक पहेली ही बना रहा था।

नन्दलाल की मृत्यु के पश्चात शंकरगढ़ में बहुत से मेहमान आ ठहरे थे। उनके कारण उसे रेवतीदेवी से बातचीत करने का अवसर नहीं मिला था। गौरी और रेवती महमानों की सेवा-सुश्रूषा में लगी रहती थीं। नरेन्द्र, शेखरानन्द और धीरेन्द्र के साथ समिति के भविष्य के विषय में बातचीत तथा विचार-विनिमय करने में लगा रहता था। इस पर भी जब रात को सोने के लिये बिस्तर पर जाता था तो रेवती के विषय में सोचने लगता था। रेवती ने नन्दलाल के लिये मृत्यु-दंड का प्रस्ताव किया था। क्या उसका ऐसा मत केवल न्याय के आधार पर था? या क्या इसमें रेवती के उससे प्रेम का भी हाथ था? यदि उसने नन्दलाल को मृत्यु-दंड प्रेम से प्रेरित होकर दिलवाया है तो अब उसे विवाह कर लेने में बाधा नहीं उठानी चाहिये। जितना वह इस विषय पर सोचता था उतना ही उसे विश्वास होता जाता था कि रेवती उससे विवाह की स्वीकृति दे देगी।

बसन्तकुमार, जो धीरेन्द्र के साथ राय करने के लिये आया तथा ठहरा हुआ था, दिन प्रति दिन रेवती से अधिक और अधिक मेलजोल उत्पन्न करता जाता था। साथ ही नरेन्द्र को कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उसका समिति के कार्य के विषय में धीरेन्द्र से मतभेद होता जाता है और इस मतभेद में बसन्तकुमार मुख्य भाग ले रहा है।

सायंकाल प्रायः समिति के अगले पग पर बातचीत होती थी। बसन्तकुमार ऐसे अवसरों पर उपस्थित होता था। रेवती, गौरी आदि अन्य उपस्थित लोग, यद्यपि इस वादविवाद में भाग नहीं लेते थे तथापि सुनकर अपनी सम्मति बनाते रहते थे। नरेन्द्र को कुछ ऐसा भास हो रहा था कि बसन्तकुमार उसके कार्यक्रम का विरोध केवल इस कारण करता है कि वह उसे रेवती की दृष्टि में तुच्छ, अनुभवहीन और अदूरदर्शी सिद्ध कर दे। रेवती को, न जाने क्यों, बसन्तकुमार और धीरेन्द्र का मत अधिक युक्तियुक्त और लाभप्रद प्रतीत होता था।

नरेन्द्र का मत था कि हिन्दुस्तान की स्वराज्य-प्राप्ति में मुसलमान

बाधा डाल रहे हैं। वे चाहते हैं कि जब तक उनका एक पृथक राज्य न बना दिया जाय हिन्दुओं को स्वराज्य न दिया जाय, न कोई अन्य अधिकार। ऐसी परिस्थिति में अपने स्वराज्य की रूप-रेखा में मुसलमानों का स्थान नहीं हो सकता।

धीरेन्द्र तथा बसन्तकुमार इससे सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि जो मुसलमान इस प्रकार की बाधा उपस्थित कर रहे हैं वे संख्या में बहुत कम हैं। वे देश के मुसलमानों के विचारों को प्रकट नहीं कर रहे। वास्तव में वे सरमायादार हैं, और अंग्रेज़ों के बल पर पाकिस्तान की मांग उपस्थित कर रहे हैं। अतएव देश के सब मुसलमानों का बहिष्कार नहीं किया जा सकता।

नरेन्द्र का मत था कि इस्लाम में ही कुछ ऐसी बात है कि उसके अनुयायी हिन्दुस्तान को न तो अपना देश समझ सकते हैं और न ही वे अन्य धर्मावलम्बियों से मिलकर कोई कार्य कर सकते हैं। बसन्तकुमार का कहना था कि यह उलटा मत अंग्रेज़ों ने फैलाया है। वास्तव में हिन्दू-मुसलमान एक ही देश के रहने वाले हैं, एक ही जल वायु, अन्न और वातावरण में पले हैं। उनका एक ही राज्य में रहकर एक समान उन्नति करना स्वाभाविक ही है।

नरेन्द्र भी इतिहास पढ़ा था और शंकरगढ़ में शंकर पंडित ने एक बृहद पुस्तकालय बना रखा था। इससे उक्त वादविवाद में प्रमाण भी दिये जाते थे। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ कई दिन तक चलता रहा।

इस अवसर में एक घटना और घटी। वह यह कि शंकर पंडित नेपाल-तिब्बत मार्ग की खोज से वापिस आगया। शंकर पंडित के साथियों में दो की वृद्धि हो गई थी। उन पहाड़ियों के अतिरिक्त, जो शंकर पंडित के साथ गये थे, उसके साथ कर्मिष्ठ और गुरु व्यासदेव भी थे। दोनों सवा छः फुट ऊंचे कद वाले थे। चौड़ी छातियां, लम्बी भुजायें और मुख अलौकिक ओज से देदीप्यमान था। वे नग्न नहीं थे। धोती, कुर्ता, जूता और टोपी पहने थे।

शंकर पंडित के आगमन से तो गौरी और रेवती के काम में और भी वृद्धि हो गई। वहां भारी समारोह हो गया। जब शंकर पंडित ने अपने कार्य की असफलता का वर्णन किया तो धीरेन्द्र तथा अन्य लोगों को भारी निराशा हुई, परन्तु जब उनको गुरु व्यासदेव और कर्मिष्ठ का परिचय मिला तो सब के हृदय उत्साह और उद्गारों से बल्लियों उछलने लगे।

"तो आप तिब्बत नहीं पहुंच सके?" धीरेन्द्र का प्रश्न था।

"मुझे इस मार्ग पर आगे जाने ही नहीं दिया गया। ये लोग मेरे उस मार्ग की खोज को पसन्द नहीं करते थे। इससे पूर्ण एक वर्ष भर की खोज के पश्चात् मुझे लौट आना पड़ा।"

"इन लोगों को क्यों आपत्ति थी?"

"ये नहीं चाहते कि कोई अनार्य इस मार्ग का रहस्य जान सके। इनका आश्रम इसी मार्ग पर है और उसकी सुरक्षा ये लोग भारतवर्ष की स्वतंत्रता से भी अधिक मानते हैं। इनका कहना है कि आर्य लोगों के मस्तिष्क की पूर्ण उपज उस आश्रम में उपस्थित है। जब तक वह आश्रम सुरक्षित है तब तक आर्य-संस्कृति आर्य-कला, ज्ञान तथा विज्ञान सुरक्षित हैं। किसी भौगोलिक भाग को स्वतंत्र करा देने से आर्य-संस्कृति की समस्या सुलझ नहीं सकती। जैसे मनुष्य का मस्तिष्क सब से अधिक सुरक्षित स्थान पर रखा गया है वैसे ही आर्य लोगों का मस्तिष्क, वह आश्रम, दुष्ट लोगों से बचाकर रखना परमावश्यक है।"

इस कथन की पुष्टि में शंकर पंडित ने हिमालय के उस आश्रम का वृत्तान्त सविस्तार बताया। पश्चात् गुरु व्यासदेव का मत, कि भारत-वर्ष में आर्य-राज्य स्थापित करने में ही वे सहायता दे सकते हैं, बताया। जब इस बात में सहमत होने की स्वीकृति नहीं दी गई तो मार्ग का द्वार बताने से इनकार कर दिया गया। "मैंने इनकी सहायता के बिना मार्ग-द्वार ढूंढने का यत्न किया। एक वर्ष के प्रयत्न के पश्चात् भी जब मैं कुछ नहीं पा सका तो हताश इनके आश्रम में जा बैठा और जो

काम इनसे झगड़कर नहीं कर सका वह इनकी मिन्नत और खुशामद से करने का यत्न करने लगा। बहुत कठिनाई से ये लोग इस बात पर तैयार हुए कि मेरे साथ भारतवर्ष में आवें और स्वयं स्वराज्य-संस्थापन-समिति के सदस्यों से मिलकर अपनी दिल-जमाई कर लें। इस कारण मैं इनको साथ ही ले आया हूं।"

[१९]

जब तक धीरेन्द्र आदि शंकरगढ़ में रहे नरेन्द्र और रेवती को परस्पर मिलने का अवसर नहीं मिला। शंकर पंडित के आजाने से समिति के भविष्य के कार्यक्रम की बात और भी उग्र रूप धारण कर उपस्थित होगई। गुरु व्यासदेव से जो कुछ विदित हुआ था उससे तो ऐसा प्रतीत होता था कि भारतवर्ष में स्वराज्य स्थापित करना अति सुगम है, परन्तु उसमें हिमालय स्थित आश्रमवासियों की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। यह सहायता वे केवल एक शर्त पर देने के लिये तैयार थे, वह यह कि भारतवर्ष में हिन्दू राज्य स्थापित किया जाय। इसके लिये धीरेन्द्र तैयार न होसका। उसकी पूर्ण शिक्षा और जीवन इस कामना में व्यतीत हुई थी कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों का असाम्प्रदायिक राज्य स्थापित किया जायगा। अब वह केवल-मात्र हिन्दू-राज्य स्थापित करने के लिये अनुमति नहीं दे सका। अतएव नवरत्न-मंडल की बैठक कलकत्ते में बुलाने का निश्चय हुआ। नरेन्द्र के पक्ष को गुरु व्यासदेव के आने से पुष्टि मिली थी और वह भी कलकत्ते जाकर अपने पक्ष को बलपूर्वक रखने का विचार कर रहा था।

परन्तु कलकत्ते के लिये रवाना होने से पूर्व वह रेवतीदेवी से बात कर लेना आवश्यक समझता था। इसके लिये अवसर उसे तब मिला जब शंकरगढ़ से सब महमान विदा हो गये। सब लोग गुप्त मार्ग से जाना चाहते थे। इस कारण एक-एक दो-दो कर जाना ठीक समझा गया। परिणाम यह हुआ कि महमानों को जाने में कई दिन लगे। सब से अन्तिम जाने वाले धीरेन्द्र और बसन्तकुमार थे।

जाने से पूर्व बसन्तकुमार रेवतीदेवी से कितनी ही देर तक एकान्त में बातें करता रहा था। इस समय धीरेन्द्र शंकर पंडित और नरेन्द्र से बातें कर रहा था। जब धीरेन्द्र तैयार होकर घर के बाहर पहुंचा तब भी बसन्तकुमार रेवतीदेवी से बातें कर रहा था। जब उसे बुलाया तो रेवती भी उसके साथ ही चली आई। चलने के समय रेवती की इच्छा थी कि वह जाने वालों को कुछ दूर जंगल तक छोड़ आये। अतएव नरेन्द्र को उसके साथ वापिस आने के लिये साथ चलने को कहा गया। पहले तो नरेन्द्र ने इनकार कर दिया, परन्तु पीछे उसे रेवती से अपने विषय में बातचीत करने के लिये एकान्त पाने की आशा ने जाने को राज़ी कर दिया। वह साथ चल पड़ा। मार्ग में कोई विशेष बात नहीं हुई। केवल बसन्तकुमार अपने रूस में रहने की कथा बता रहा था। उसने कैसे सात वर्ष मॉस्को, लेनिनग्राड, ओडीसा, स्टालिनग्राड इत्यादि नगरों में तथा युक्रेन के संयुक्त खेतों में व्यतीत किये थे, वह बता रहा था। रेवती इसे बहुत ध्यान से सुन रही थी। धीरेन्द्र को यह पूर्ण कथा पहले ही विदित थी और नरेन्द्र को इसके सुनने में रुचि नहीं थी। इस कारण नरेन्द्र और धीरेन्द्र दूसरी बातों में लग गये।

नरेन्द्र कह रहा था कि सरकारी अफ़सरों पर अभी और आतंक डालना चाहिये। जितना उनको भयभीत किया जायगा उतना ही, अवसर पड़ने पर, सरकार को शक्तिहीन करना सुगम हो जायगा। धीरेन्द्र भी इस बात को मानता था; परन्तु वह कहता था कि इस आतंक से अपने में पतन आने की सम्भावना है। नरेन्द्र इस दुष्परिणाम की आशंका नहीं करता था। वह कहता था कि जब आतंक का कार्य-क्रम समिति चलायेगी, जिसमें किसी के स्वार्थ सिद्ध करने की बात नहीं होगी, तो इससे पतन आने की सम्भावना नहीं है।

जब सब लोग बिच्छू की पीठ जैसी चट्टान के समीप पहुंचे तो धीरेन्द्र ने नरेन्द्र और रेवती को लौट जाने को कहा। इस समय बसन्त

कुमार ने रेवती को हाथ जोड़ नमस्कार करते समय कहा, "आप भी कलकत्ता आइयेगा। आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी।"

"यत्न करूंगी" रेवती का उत्तर था। पश्चात् वे विदा होगये। कुछ काल तक रेवती और नरेन्द्र उनको घने पेड़ों के जंगल में विलुप्त होते देखते रहे। जब वे आंखों से ओझल होगये तो नरेन्द्र ने रेवती को, जो अभी भी उधर ही देख रही थी, कहा, "चलो चलें।"

"हां," रेवती ने चौंककर कहा और वह लौट पड़ी। नरेन्द्र भी उसके साथ साथ आ रहा था। नरेन्द्र सोच रहा था कि बात कैसे और कहां से आरम्भ करे। रेवतीदेवी चुपचाप चली जा रही थी। कुछ दूर तक चले आने पर नरेन्द्र को यह चुप्पी असह्य हो उठी। इससे उसने कह ही दिया, "बहुत दिनों के पश्चात् तुमसे एकान्त में बातचीत करने का अवसर मिला है।"

"हां, परन्तु ये दिन बहुत आनन्द के थे। धीरेन्द्र दादा कितने हंसमुख हैं और उनकी बातों में कितना रस था।"

"हूं! परन्तु मुझे तुमसे कई आवश्यक बातें करनी थीं।"

"आवश्यक! क्या हैं?" रेवती ने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा।

"प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व भी होता है। व्यक्तित्व न हो तो व्यक्ति शब्द ही अनर्थक हो जाय। हम एक सार्वजनिक कार्य में लीन हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमारी व्यक्तिगत भावनाएं और आकांक्षाएं हैं ही नहीं।। सो मैं कई दिन से अपने विषय में बातचीत करना चाहता था।"

"ओह! मैं तो अपनी बात इन दिनों की व्यस्तता में भूल ही गई थी।"

"भूलना तो मैं भी चाहता था, परन्तु भूल नहीं सका। एक बात विशेष हो रही है। वह यह कि हमारी संस्था का कार्य मेरी धारणा तथा विचार के अनुकूल नहीं चल रहा। कुछ कुछ विलक्षणता आती जाती

है। इससे इसके कार्य में वह शान्ति जो मैं पहले अनुभव करता था अब नहीं मिल रही। इससे मेरी दृष्टि अन्तर्मुखी हो गई है। मैं अपने विषय में अधिक विचार करने लगा हूं और यह विचार करते समय मुझे अपने में कहीं शून्यता प्रतीत होती है।'

"परन्तु अब तो देश-व्यापी आन्दोलन खड़ा होने वाला है। इस समय तो हमें अन्तर्मुखी होने के स्थान बाहर की ओर देखने की अधिक आवश्यकता पड़ेगी।"

"ठीक है, परन्तु मैं अनुभव कर रहा हूं कि भीतरी शून्यता को दूर किये बिना शायद बाहर की बात सोची नहीं जा सकती।"

"तो उस शून्यता को भर दीजिये।"

"वह तुम्हारे आधीन है रेवती !"

"मेरे आधीन ?" रेवती ने गम्भीर होकर पूछा।

"हां ! एक समय था जब मैं दिल्ली में था और तुम प्रायः नित्य मुझसे मिलने आया करती थीं। नन्दलाल अभी हमारे जीवन में प्रकट नहीं हुआ था। उस समय संसार से असन्तोष होते हुए भी जीवन से संतोष अनुभव होता था। बीसियों प्रकार की चिन्ताओं के उपस्थित होते हुए भी अलौकिक आनन्द मिलता रहता था। वह आनन्द, वह उत्साह, वह कर्म में संलग्नता और सफलता में आशा अब दिखाई नहीं देती। मैं समझता हूं कि कहीं अपूर्णता है। उस अपूर्णता को भर देना तुम्हारे हाथ में है। क्या मैं तुमसे आशा कर सकता हूं ?"

रेवतीदेवी यह सब कुछ सुनते समय उसके साथ साथ चल रही थी। वह सामने की ओर देख रही थी। जब नरेन्द्र ने बात समाप्त कर दी तो उसने उसके मुख की ओर देखा, परन्तु वह भूमि की ओर देख रहा था। इससे दोनों की आंखें नहीं मिलीं। रेवती ने फिर आगे की ओर देखते हुए कहा, "जो उस समय था वह अब भी हो सकता है।"

"सत्य ?" नरेन्द्र ने खड़े हो प्रसन्नता से लाल होते हुए पूछा।

परन्तु रेवती ने बिना ठहरे ही अपनी बात का समर्थन करते हुए

कहा, "हां, वह स्वप्न था। हम फिर स्वप्नों के संसार में प्रवेश कर सकते हैं। बहुत आनन्द था। मैं अति प्रसन्न थी। दिन-रात मेरे मन में नई नई भावनायें और योजनायें आती रहती थीं। परन्तु...."

"ओह! सत्य कहती हो मनोरमा!" नरेन्द्र ने रेवती के कंधे पर हाथ रख रोक लिया। वह आगे निकली जा रही थी।

मनोरमा ने खड़े हो नरेन्द्र की ओर घूमकर उसके मुख की ओर देखते हुए कहा, "हां, हां! सत्य कहती हूं। परन्तु...।"

नरेन्द्र इस शुभ समाचार से अपने में समा नहीं सका। जैसे लोहा चुम्बक की ओर खिंच जाता है, नरेन्द्र ने रेवती को गले लगाकर उसका मुख चूम लिया। यह सब इतना एकाएक हुआ कि वह इसे रोक नहीं सकी। वह यह नहीं चाहती थी। इससे उसकी प्रबल भुजाओं से छूटने का यत्न करने लगी। जब दूसरी बार मुख चूमने का उसने यत्न किया तो रेवती ने उसके मुख पर चांटा दे मारा और कहा, "मूर्ख... पशु...छोड़ दो...मैं यह कुछ नहीं चाहती।"

नरेन्द्र का नशा उतर गया। उसे अपनी भूल का भास हो गया। उसने रेवती को छोड़ दिया और वह छूटते ही दो पग पीछे हटकर खड़ी हो गई। नरेन्द्र ने देखा कि रेवती की आंखों में आंसू छलक रहे हैं। यह देख उसका मुख पीला पड़ गया और उसका पूर्ण शरीर कांप उठा। रेवती अपने ही मन के उद्‌गारों में लीन थी। वह नरेन्द्र की अवस्था को देख नहीं रही थी। उसने कहा, "बहुत नीच हैं आप। मुझे आपसे यह आशा नहीं थी।"

नीच...पशु...मूर्ख विशेषण उसने अभी तक किसी से नहीं सुने थे। वह जहां अपनी भूल से लज्जित हो रहा था वहां इन दुर्वचनों से क्रुद्ध भी हो रहा था। मन की इस मिश्रित अवस्था से उसकी विचित्र दशा हो रही थी। एक बात उसके मन में सर्वोपरि थी। वह समझता था कि उसके व्यवहार से रेवती को दुख हुआ है। इस कारण क्षमा मांगने के अतिरिक्त उसके लिये कोई दूसरा उपाय नहीं था। उसने आंखें

नीचे किये हुए कहा, "मैं समझता था कि मेरा यह व्यवहार तुम्हें अप्रिय नहीं होगा, परन्तु अब देखता हूं कि मेरा यह समझना भूल थी। इस कारण क्षमा-प्रार्थी हूं।"

इतना कह नरेन्द्र शंकरगढ़ की ओर चल पड़ा। वह गालियां सुन और मुख पर थप्पड़ खाकर अति विषाद से भरा हुआ था और उसका मन आत्म-ग्लानि से भर रहा था। रेवती इस घटना से इतनी उद्विग्न हो उठी थी कि वह समझ ही नहीं सकती थी कि उसके सम्मुख क्या हो रहा है। उसने नरेन्द्र की क्षमा-प्रार्थना सुनी, उसने उसका राख की भांति मलिन मुख देखा, परन्तु वह इसका अर्थ नहीं समझ सकी। उसे नरेन्द्र के मन में उठी आत्मग्लानि का भास नहीं हुआ। नरेन्द्र के चले जाने पर भी होश नहीं आया। जब वह कुछ दूर निकल गया तो उसे अपने अकेलेपन का भास हुआ और इस समय तक नरेन्द्र आवाज़ की पहुंच से दूर हो चुका था।

[२०]

नरेन्द्र घर पहुंचा तो शंकर पंडित, गौरी, गुरु व्यासदेव तथा कर्मिष्ठ नदी के किनारे घूमने गये हुए थे। घर में केवल भगवती और खड़गबहादुर थे। भगवती शाम का खाना बना रही थी और खड़ग बहादुर मकान के दरवाज़े पर बैठा अपनी दोनाली साफ कर रहा था। नरेन्द्र को देख खड़गबहादुर ने कहा, "गौरी बहन आपको तथा रेवतीदेवी को नदी-किनारे आने को कह गई हैं।"

यह नरेन्द्र ने सुना, परन्तु उस ओर ध्यान नहीं दिया। शायद उसे खड़गबहादुर की बात समझ ही नहीं आई। उसका मन अपमान में गला जा रहा था। वह सीधा अपने कमरे में गया और दरवाज़ा भीतर से बन्द कर अपनी चारपाई पर लेट गया। वह अपने भविष्य के विषय में एकान्त में मनन करना चाहता था।

जब रेवती आई तो खड़गबहादुर ने उसे भी गौरी का सन्देशा दिया; और वह भी नरेन्द्र की भांति मुख उठाये, बिना किसी प्रकार

का उत्तर दिये, अपने कमरे में चली गई और उसने भीतर से किवाड़ बंद कर लिये। खड़गबहादुर यह देख बहुत अचम्भा करने लगा, परन्तु इस विषय में पूछगीछ करना अपना काम न मान चुप रहा।

सायंकाल हो गया। पूर्णिमा थी। आभाहीन चांदी का बड़ा सा थाल पूर्व की ओर से पहाड़ों के पीछे से एक गुब्बारे की भांति आकाश में उठने लगा। इसका धीमा सा प्रकाश अत्यन्त लुभायमान प्रतीत हो रहा था और नदी के किनारे गये हुए लोग घर से अधिक आनन्द वहां अनुभव कर रहे थे। नित्य प्रति से अधिक काल तक वे वहां बैठे रहे। वे रेवती और नरेन्द्र की प्रतीक्षा में थे। वे नहीं आये तो सब लोग उठ कर घर को लौट पड़े।

रेवती जब जंगल में से अकेली आ रही थी तो उसे अपने किये पर विचार करने का अवसर मिला। उसे अपने को एकाएक नरेन्द्र की भुजाओं में पकड़ा देख क्रोध आगया था और उस क्रोध से उतावले पन में उसने नरेन्द्र के मुख पर थप्पड़ मार दिया था। पीछे जब वह जंगल में अकेली रह गई तो अपने और नरेन्द्र के व्यवहार की विवेचना करने लगी। इसमें उसे नरेन्द्र का कुछ भारी दोष प्रतीत नहीं हुआ। उसके व्यवहार को ओछापन तो कहा जा सकता था, परन्तु वह इतना बड़ा अपराध नहीं था कि उसके लिये उसे मूर्ख और पशु कहा जाता और फिर मुख पर चांटा भी लगाया जाता। रेवती को इस पर पश्चात्ताप होने लगा था। परन्तु इस सब घटना का एक दूसरा रूप भी था। रेवती ने नरेन्द्र की स्त्री बनने की अभी स्वीकृति नहीं दी थी। उसने तो केवल यह कहा था कि वैसा सम्बन्ध, जो देहली में उनके परस्पर झगड़ा होने से पूर्व था, पैदा हो सकता है। वास्तव में वैसा सम्बन्ध तो था ही, परन्तु इसमें विवाह की बात नहीं थी। इस अवस्था में उसका व्यवहार रेवती का अपमान करना ही माना जा सकता था और उसने अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये यदि एक चांटा लगा भी दिया तो कोई अचम्भे की बात नहीं हो सकती।

इन्हीं परस्पर विरोधी विचारों में लीन वह घर पहुंची और कमरे को भीतर से बन्द कर अपने बिस्तर में लेट गई। इस समय भी उसके मस्तिष्क में बवंडर उठ रहा था। एक क्षण वह सोचती थी कि नरेन्द्र जैसे सभ्य, सुशील, पढ़े-लिखे विद्वान और संयमी आदमी ने क्यों उसे आलिंगन करने का साहस किया, जब कि उसने उसकी स्त्री बनने की स्वीकृति नहीं दी थी। दूसरे ही क्षण उसके मन में आता था कि इससे हो क्या गया। मन में तो वह उससे विवाह कर लेने का निश्चय कर चुकी थी। फिर वह सोचती थी कि उसने कभी भी तो अपनी वाणी अथवा व्यवहार से यह प्रकट नहीं किया था कि वह उससे विवाह करेगी।

परन्तु नरेन्द्र के प्रति दुर्वचन और कठोर व्यवहार उसे अपने को बहुत ही छोटा मानने पर विवश कर रहे थे और वह यह सोच रही थी कि चाहे कुछ भी हो उसे उनसे इतना कठोर व्यवहार नहीं करना चाहिये था। साथ ही उन्होंने तो क्षमा मांग ली परन्तु उसने क्षमा नहीं मांगी।

इससे वह उठकर नरेन्द्र के पास जाने को तैयार हो गई; परन्तु फिर उसे संकोच हुआ और वह सोचने लगी कि अभी उनको क्रोध अधिक होगा। इस समय कोई ऐसी बात करनी उनके क्रोध को अधिक करने वाली होगी। यह अच्छा होगा कि रात निकल जाने दी जाय। कल प्रातःकाल न केवल अपने कटु व्यवहार के लिये क्षमा मांग लेगी प्रत्युत विवाह की अनुमति देकर जीवन भर का झगड़ा समाप्त कर देगी।

शायद उक्त विचार के साथ उसकी अन्तरात्मा अपने व्यवहार को अनुचित मान उसे नरेन्द्र के सम्मुख होने में लज्जित भी कर रही थी। उसे अब नरेन्द्र के सम्मुख उपस्थित होने में भय सा लग रहा था।

इस पर भी वह सोचती थी कि शीघ्रातिशीघ्र नरेन्द्र से सुलह-सफाई कर लेनी चाहिये। उससे झगड़ा करने में उसे अनिष्ट ही प्रतीत होता था।

शंकर पंडित, गौरी इत्यादि घर लौटे तो रात के दस बज चुके थे। उन्होंने आते ही पूछा कि नरेन्द्र कहां है। खड्गबहादुर ने उसके कमरे

की ओर संकेत कर दिया। रेवती के विषय में पूछने पर भी वही संकेत मिला। इससे गौरी ने पूछा, "तुमने मेरा संदेशा दिया नहीं क्या?"

"दोनों को कह दिया था, परन्तु दोनों ने ध्यान नहीं दिया और अपने अपने कमरे में चले गये।"

"खाना तैयार है?"

"जी।"

"तो नरेन्द्र को बुलाओ। कहो, भोजन तैयार है।"

खड्गबहादुर नरेन्द्र के कमरे की ओर चला गया और गौरी रेवती को बुलाने के लिये उसके कमरे का दरवाज़ा खटखटाने लगी। रेवती ने दरवाज़ा खोला तो गौरी ने कहा, "गुरु व्यासदेव जी ने तुम्हें नदी के किनारे बुलाया था।"

"मुझे नहीं मालूम।"

"खड्गबहादुर तो कहता है कि उसने तुम्हें कहा था।"

"उसने कहा था; मैंने सुना नहीं।" रेवती ने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा।

गौरी ने विस्मय में कहा, "तुमने नहीं सुना! शायद नरेन्द्र ने भी नहीं सुना। बहुत अचम्भा है।"

नरेंद्र के भी बुलाये जाने की बात सुन रेवती ने उत्सुकता से पूछा, "क्या काम था?"

गौरी रेवती के कमरे से नरेन्द्र के कमरे की ओर लौट पड़ी थी। रेवती उसके साथ साथ थी। गौरी उसके प्रश्न का उत्तर देने ही वाली थी कि खड्गबहादुर भयभीत नरेन्द्र के कमरे के बाहर खड़ा दरवाज़ा खटखटाता दिखाई दिया। गौरी ने रेवती के प्रश्न का उत्तर देने के स्थान खड्गबहादुर से पूछ लिया, "क्या बात है?"

"दरवाज़ा भीतर से बंद है, परन्तु कोई बोलता नहीं।"

"फिर खटखटाओ।"

खड्गबहादुर ने दरवाज़ा जोर जोर से खटखटाना आरम्भ कर

दिया। इस खटखटाने का शब्द सुन शंकर पंडित, गुरु व्यासदेव और कर्मिष्ठ भी वहां आ पहुंचे। खड्गबहादुर, जो नरेन्द्र के मलिन मुख को जंगल से आते समय देख चुका था, दरवाज़ा तोड़, भीतर घुसकर मालूम करने की स्वीकृति के लिये गौरी की ओर देखने लगा। शंकर पंडित इस देखने का अभिप्राय समझ गया और बोला, "तोड़ डालो।"

गुरु व्यासदेव ने कहा, "व्यर्थ है।"

इस पर भी दरवाज़ा तोड़ डाला गया। कमरे के पीछे की खिड़की खुली थी और नरेन्द्र भीतर नहीं था। लैम्प जल रहा था और मेज़ पर रखा था। मेज पर लैम्प के पास एक बंद लिफ़ाफ़ा रखा था जिस पर शंकर पंडित का नाम लिखा था। सब लोग कमरे के भीतर चले आये थे और मेज़ के समीप आ खड़े हुए थे। रेवती सब से पीछे थी। नरेन्द्र को वहां न देख उसके मुख से निकल गया, "तो चले गये?"

"हां," गौरी ने उत्तर दिया और मेज़ पर से लिफ़ाफ़ा उठा शंकर पंडित के हाथ में देते हुए बोली, "और यह छोड़ गये हैं।"

शंकर पंडित ने लिफ़ाफ़ा खोल पढ़ना आरम्भ कर दिया। आद्यो-पान्त पढ़, उसने चिट्ठी रेवती के हाथ में दे दी। गुरु व्यासदेव मुस्करा कर लौट गये। कर्मिष्ठ उनके पीछे पीछे था। रेवती चिट्ठी को पढ़ते पढ़ते अपने कमरे में जा पहुंची। शंकर पंडित और गौरी उसके साथ साथ थे। चिट्ठी में लिखा था :—

बहन गौरी तथा पूज्य पंडित जी, नमस्ते।

आज मुझसे एक भूल हो गई है। इसको लिखने में भी मुझे लज्जा लगती है और इससे मैं पतित हो गया अनुभव करता हूं। इसमें सब मेरा ही दोष है और मैं इसके लिये प्रायश्चित्त करने का निर्णय कर चुका हूं। परन्तु प्रायश्चित्त करने में समिति का कार्य बाधा बन रहा है। जिस कार्य के करने को मैं जीवन का लक्ष्य बना चुका हूं वही अब मेरे प्राय-श्चित्त में बाधा बन रहा है। इस कारण यदि उस कार्य को करने का अवसर मिला तो उसे प्रथम स्थान दूंगा, अन्यथा प्रायश्चित्त के लिये

तैयार हूं। इस बात का निर्णय दादा धीरेन्द्र ही कर सकते हैं। मैं उन्हें अपनी पूर्ण कथा बता देना चाहता हूँ और इसे सुनकर भी यदि वे मुझे समिति के कार्य के लिये अनिवार्य मानते रहे तो काम करूंगा; अन्यथा मेरी आज अन्तिम नमस्ते मानिये।

दादा धीरेन्द्र की सम्मति मैं यहां रहकर भी जान सकता था, परन्तु मैं ऐसी भूल कर चुका हूं कि मेरे लिये यहां एक क्षण भी रहना असह्य हो उठा है। अतएव मैं जा रहा हूं। आपसे मिले बिना जाने के लिये क्षमा चाहता हूं।

यहां से दादा को स्टेशन पर मिलने का यत्न करूंगा। यदि मैं समिति के कार्य से स्वतंत्र हो गया तो प्रायश्चित्त के लिये हिमालय में जा गल जाऊंगा। नरेन्द्र।

चिट्ठी पढ़ते पढ़ते रेवती के आंसू टपकने लगे थे। इस समय वह अपने कमरे में पहुँच गई थी। उसे इस प्रकार अधीर देख गौरी ने पूछा, "रेवती, क्या हुआ है?"

रेवती ने कुछ उत्तर नहीं दिया और भूमि की ओर देखती रही। शंकर पंडित कमरे से बाहर निकल गया। गौरी ने रेवती को खाट पर बैठाया और स्वयं उसके पास बैठकर पुनः अपना प्रश्न दुहराया, "क्या सत्य ही उसने कोई भारी पाप किया है?"

गौरी के मन में कई प्रकार के संशय उठ रहे थे और वह पूर्ण बात शीघ्रातिशीघ्र जानना चाहती थी। उसने आग्रह से फिर पूछा, "क्या समझती हो कि उसने कोई संस्था के साथ दग़ा किया है?"

"नहीं। मैं ऐसा नहीं समझती। वास्तव में बात तो यह है कि मैंने आज उनका अपमान किया है।"

"क्यों?"

"इसके बताने से क्या होगा। मैं चाहती हूं कि स्वयं उनसे मिलकर अपनी सफाई दे सकूं। परन्तु इस समय जंगल में जाना क्या जान-जोखम का काम नहीं है?"

"नरेन्द्र के लिये कोई भय की बात प्रतीत नहीं होती। वह मार्ग के एक एक पग को जानता है और उसके लिये घटाटोप रात में भी सीधे मार्ग पर चलते जाना साधारण सी बात है।"

"मेरी इच्छा उनके पीछे अभी जाने की है। मैं चाहती हूं कि नैपालगंज स्टेशन पर पहुंचने से पूर्व ही उनसे मिल लूं। इससे मैं सम‌झती हूं कि बहुत सी बातों का भ्रम दूर हो जावेगा।"

"परन्तु तुम अकेली कैसे जाओगी?" गौरी ने गम्भीर हो कहा, "मैं समझती हूं कि नरेन्द्र रात की गाड़ी पकड़ नहीं सकेगा और यदि पा गया तो तुम तो कभी भी उसके चलने से पूर्व वहां नहीं पहुंच सकती। इससे मैं समझती हूं कि तुम प्रातःकाल खड़गबहादुर के साथ चली जाना। कल दोपहर की गाड़ी के जाने से पहले ही वहां पहुंच सकोगी। यदि वह रात की गाड़ी पर गया तब तो तुम्हारा अब जाना और कल प्रातःकाल जाना एक समान ही होगा।"

रेवती यह बात समझ गई। यथार्थ बात यह थी कि रात के समय खड़गबहादुर को जंगल के मार्ग पर ले जाना उचित न जान चुप हो गई थी।

अगले दिन प्रातःकाल रेवती खड़गबहादुर को साथ ले नेपालगंज को चल पड़ी। नेपालगंज से गाड़ी एक बजे दोपहर के समय चलती थी और वह वहां बारह बजे ही जा पहुंची, परन्तु नरेन्द्र वहां नहीं था। गाड़ी चलने से एक घंटा पूर्व प्लेटफार्म पर आ खड़ी होती थी और रेवती ने एक एक डिब्बा भली भांति देख डाला था। जब वह नहीं मिला तो उसने खड़गबहादुर को यह कहकर वापिस कर दिया कि वह कलकत्ते जा रही है। स्वयं कलकत्ते का टिकट ले गाड़ी में बैठ गई।

पांचवां भाग

प्राप्ति-उत्सव

रेवती नरेन्द्र को ढूंढने इस कारण निकली थी कि उसे अपने व्यवहार पर शोक हो रहा था और वह नरेन्द्र को सुझा देना चाहती थी कि वह उससे प्रेम करती है तथा स्वराज्य-संस्थापन के पश्चात् उससे विवाह करने को तैयार है। इसके अतिरिक्त वह नरेन्द्र और दादा धीरेन्द्र में मतभेद देख चुकी थी और उनकी दिन प्रति दिन की वार्तालाप से यह समझ चुकी थी कि मतभेद अधिक और अधिक होता जाता है। इससे उसे भय लग रहा था कि यह मतभेद कहीं ऐसा न हो जाय कि नरेन्द्र अथवा धीरेन्द्र को पार्टी छोड़नी पड़े। इस अवस्था में नरेन्द्र क्या कर बैठे यह जान वह कांप उठती थी। इससे वह धीरेन्द्र से वार्तालाप होने के पूर्व ही उससे मिल लेना चाहती थी।

वह कलकत्ता पहुंची तो उसकी निराशा का ठिकाना नहीं रहा। न तो धीरेन्द्र इत्यादि वहां पहुंचे थे, न ही नरेन्द्र। वह सेठ कुंजबिहारी के घर चली गई और वहां से धीरेन्द्र और नरेन्द्र का पता जानने के लिये ठहर गई।

सेठ कुंजबिहारी और नरोत्तम धीरेन्द्र और नरेन्द्र का मतभेद जान चिन्तित प्रतीत होते थे और वे यह चाहते थे कि अभी हिन्दू-मुसलमान की समस्या को उठाया न जाय। इस कारण उन्होंने धीरेन्द्र को बुलाने के लिये कई आदमी भिन्न भिन्न स्थानों पर भेज दिये।

एक सप्ताह पश्चात् देहली से खबर मिली कि धीरेन्द्र वहां ला० बनारसीदास के स्थान पर है, परन्तु नरेन्द्र का कुछ भी पता नहीं चला।

नरेन्द्र के लापता होने की सूचना वापसी गाड़ी से देहली भेज दी गई। रेवती इससे संतुष्ट नहीं थी। वह स्वयं देहली जा धीरेन्द्र को नरेन्द्र के ढूंढ़ने के लिये आग्रह करने को तैयार हो गई।

धीरेन्द्र कलकत्ते में नवरत्न-मंडल की बैठक होने से पूर्व बनारसीदास से कई बातों में परामर्श करने के लिये देहली गया था। इसके अतिरिक्त वह देहली में राज्य-सत्ता के प्रबन्ध को समझ उस पर अधिकार पाने की योजना निर्माण करने के लिये वहां ठहर गया। इस बीच में कलकत्ता और शंकरगढ़ से सूचना मिली कि नरेन्द्र लापता है और फिर रेवती स्वयं वहां आ पहुँची। धीरेन्द्र ने नरेन्द्र को ढूंढने का कार्य शेखरानन्द को सौंप दिया।

बनारसीदास का लड़का इन्द्रजीत छूट चुका था और वह नरेन्द्र का पता करने के लिये बहुत उत्सुक था। इस प्रकार नरेन्द्र की टोह नियम-पूर्वक ली जाने लगी।

रेवती जो देहली में पुनः मनोरमा के नाम से जानी जाने लगी थी, अभी अपने माता-पिता से नहीं मिली थी और इस बात का पूरा ध्यान रखा गया था कि उसका देहली में होना किसी को मालूम न हो। परन्तु जब यह पता चल गया कि नरेन्द्र पकड़ा गया है तो रेवती को प्रकट होने की आवश्यकता अनुभव हुई।

[२]

नरेन्द्र जब शंकरगढ़ वाले मकान के पिछवाड़े की खिड़की में से निकल भागा था तो अभी सायंकाल ही हुआ था। नैपालगंज से चलने वाली रात की गाड़ी में चार घंटे शेष थे। इसी गाड़ी से धीरेन्द्र और बसन्तकुमार जा रहे थे। इस कारण उनको स्टेशन पर ही मिलने की इच्छा से नरेन्द्र भाग पड़ा। वह जंगल के मार्ग से पूरी तरह परिचित था और हृष्ट-पुष्ट, वरज़िशी शरीर रखने के कारण भागता हुआ नैपालगंज जा पहुंचा और छूटती छूटती गाड़ी में चढ़ गया। जिस डिब्बे में धीरेन्द्र बैठा था उसमें नैपालगंज से कुछ और लोग भी सवार हुए थे। इस

कारण वहां उससे कोई बातचीत नहीं हुई। धीरेन्द्र भी पूछ नहीं सका कि वह कहां जा रहा है।

इलाहाबाद स्टेशन पर नरेन्द्र और धीरेन्द्र का साक्षात चाय के स्टॉल पर हुआ। नरेन्द्र चाय का एक प्याला हाथ में लिये हुए अन्य-मनस्क भाव से खड़ा था। धीरेन्द्र वहां पहुंच चाय वाले से बोला, "एक प्याला चाय देना।"

जब चायवाला चाय बना रहा था तो उसने नरेन्द्र की ओर इस भाव से देखते हुए, कि मानो वे परस्पर अपरिचित हैं, पूछा, "क्यों साहब, यह गाड़ी देहली कब पहुँचेगी ?"

"रात के दस बजे," नरेन्द्र ने चाय की सरूकी लगाते हुए उत्तर दिया।

"आप भी देहली जा रहे हैं क्या ?"

"जी हां।"

"स्टेशन से बारहखंभा रोड कितनी दूर है ?"

"लगभग तीन मील।"

बस बात समाप्त हो गई। दोनों अपनी अपनी चाय समाप्त कर गाड़ी में जा बैठे। इस वार्तालाप से नरेन्द्र तो जान गया कि धीरेन्द्र देहली बारहखंभा रोड पर जा रहा है, परन्तु धीरेन्द्र को नरेन्द्र के विषय में कुछ पता नहीं चल सका। धीरेन्द्र का विचार था कि किसी अगले स्टेशन पर जाकर उसके विषय में जानने का यत्न करेगा और यदि उसने भी देहली जाना होगा तो फिर बातचीत वहीं जाकर होगी।

परन्तु नरेन्द्र इलाहाबाद स्टेशन के आगे कहीं दिखाई नहीं दिया। धीरेन्द्र ने समझा कि वह शायद इलाहाबाद तक ही आया था। जब देहली में पहुँच कलकत्ते से सूचना मिली कि नरेन्द्र लापता है तो उसे अचम्भा हुआ और फिर रेवती ने पहुँचकर सब बात बता दी। इससे धीरेन्द्र को नरेन्द्र के विषय में चिन्ता लग गई।

शेखरानन्द ने एक सप्ताह के भीतर ही नरेन्द्र के लापता होने की

कथा प्रतीत कर ली। इलाहाबाद स्टेशन पर जब वह एक डिब्बे में बैठा तो खुफ़िया पुलिस का एक आदमी उसको पहचान उसके पीछे लग गया। नरेन्द्र अपने विषय में सोचने में इतना लीन था कि उसे उस खुफ़िया पुलिस का उसके पीछे लगने का पता ही नहीं चला।

कानपुर पहुँचते ही नरेन्द्र पकड़कर जेल में डाल दिया गया। वहां से उसे देहली भेज दिया गया और देहली के लाल किले में बंद कर दिया गया। देहली के लाल किले में दिये जाने वाले कष्ट भली भांति विदित होने पर मनोरमा को इसका अति दुःख हुआ। वह यह समझती थी कि नरेन्द्र के इस कष्ट में उसका कठोर व्यवहार ही कारण है। वह सोचती थी कि यदि नरेन्द्र से विवाह कर लेने का उसका विचार था तो फिर यह कठोर व्यवहार उसने क्यों किया? जब नरेन्द्र की भुजाओं में पकड़ी हुई वह छटपटा रही थी, उस समय के अपने मन के भावों का विश्लेषण करने में वह अपने को असमर्थ पाती थी। उसने इस घटना को, पूर्ण रूप में, किसी से नहीं कहा था। इस कारण अपने मन के संशयों का निवारण नहीं कर सकी।

धीरेन्द्र को जब यह विश्वास हो गया कि नरेन्द्र देहली के लाल किले में है तो उसने उसको छुड़ाने की एक योजना बना दी और उसके अनुसार मनोरमा को अपने पिता के घर जाने का आदेश होगया। मनोरमा तथा नरेन्द्र को छुड़ाने के काम पर नियुक्त हुआ अधिकारी शेखरानन्द इस काम के लिये अवसर ढूंढने लगे। देखभाल से यह पता लगा कि डिप्टी रघुवरदयाल नित्य लाल किले जाते हैं। इसके अर्थ यह लगाये गये कि डिप्टी साहब नरेन्द्र के मामले में विशेष रुचि प्रकट कर रहे हैं। इससे मनोरमा का पुनः पिता के घर में जाना जहां आवश्यक होगया वहां सुगम भी।

एक दिन मनोरमा, ठीक उस समय जब डिप्टी साहब लाल किले जाया करते थे, फ़ैज़ बाज़ार की पटरी पर किले की ओर से देहली गेट की ओर चल पड़ी। जैसा कि उसका अनुमान था, उसे डिप्टी साहब

की मोटर देहली गेट की तरफ़ से आती दिखाई दी। वह मुख दूसरी ओर किये चलती गई। उसका विचार था कि डिप्टी साहब उसे देख लेंगे और पहचान लेंगे। डिप्टी साहब ने तो नहीं देखा, परन्तु मोटर के ड्राइवर ने पहचानकर डिप्टी साहब से कहा, "हुज़ूर, मनोरमा बीबी जा रही हैं।"

"मनोरमा! कहां?" डिप्टी साहब ने, जो अखबार पढ़ रहे थे, चौंककर पूछा।

"वे पटरी पर पीछे को जा रही हैं।"

"लौटाओ गाड़ी। उसे रोको।"

ड्राइवर ने गाड़ी घुमा दी और पटरी के साथ, जहां मनोरमा धीरे धीरे जा रही थी, लाकर खड़ी कर दी। डिप्टी साहब खिड़की में से झांककर देख रहे थे। गाड़ी खड़ी होते ही बोले, "मनोरमा!"

मनोरमा गाड़ी को लौटकर आती देख समझ गई थी कि योजना सफल हुई है। इस पर भी वह ऐसे चली जा रही थी मानो उसे कुछ भी पता नहीं है। अपना नाम पुकारा जाता सुन, अचम्भे का भाव बना, रुकी हो, डिप्टी साहब को मोटर से उतरते देख, भागने का बहाना करने लगी; परन्तु डिप्टी साहब ने लपककर बांह से पकड़कर कहा, "कहां भाग रही हो, मनोरमा?"

सड़क पर चलने वाले बीसियों लोग इस भागने और पकड़ने का दृश्य देख खड़े होगये। डिप्टी साहब ने वहां सड़क पर झगड़ा न कर उचित समझा कि मनोरमा को घर ले जायें। उन्होंने डांटकर कहा, "घर चलो।"

"नहीं जाऊंगी।"

"तुम्हारी मां तुम्हें मिलने के लये व्याकुल हो रही है।"

"सत्य?"

"हां, हां" डिप्टी साहब ने उत्साहित होते हुए कहा।

"परन्तु···" मनोरमा ने जाने से झिझकते हुए कहा

"घबराओ नहीं मनोरमा। एक बार चलकर मिल आओ, फिर तुम जहां चाहो जा सकोगी।"

वहां सड़क पर अधिक झगड़ा न करने के विचार से डिप्टी साहब ने मनोरमा को धकेलकर मोटर में बैठा लिया और ड्राइवर को मोटर घर ले चलने को कहा।

घर पर पहुंच डिप्टी साहब मनोरमा को उसकी मां के पास ले गये। मां और बेटी गले मिलीं। मनोरमा का हृदय मां को देखकर द्रवित हो उठा था और उसके आंसू बहने लगे थे। उसने कहा, "मां...।" इसके आगे वह कुछ नहीं कह सकी। मां भी उसे बार बार गले लगाती थी और मिलने की प्रसन्नता में इतनी आपे से बाहर होगई थी कि कोई सार्थक शब्द उसके मुख से निकल नहीं रहा था।

डिप्टी साहब खड़े यह सब कुछ देख रहे थे। उन्हें ये स्त्रियों की बातें पसन्द नहीं थीं। वे मतलब की बात पूछने के लिये व्याकुल हो रहे थे। नरेन्द्र के पकड़े जाने से वे उसे दंड दिलवाने के लिये परेशान हो रहे थे। नरेन्द्र ने यह माना था कि नन्दलाल को मारने वाला वही है परन्तु उसके इस कथन के साक्षी और अन्य प्रमाण नहीं मिल रहे थे। भारी यंत्रणा देने पर भी वह उक्त कथन के अतिरिक्त और कुछ नहीं बतलाता था। मनोरमा को देख डिप्टी साहब यह जानने की इच्छा रखते थे कि वह इस विषय में कुछ सहायता दे सकती है या नहीं। अतएव उन्होंने उसके मनोद्‌गारों के प्रदर्शन को बीच में ही रोककर कहा; "अब बस करो इस व्यर्थ के व्यवहार को। मुझे बताओ, मनोरमा, कहां रही हो इतने दिन?"

"कलकत्ते में," मनोरमा ने अपने को सावधान कर कहा।

"कलकत्ते में! वहां क्या करती थी तुम?"

"बच्चों को पढ़ाकर जीवन-निर्वाह करती थी।"

"किनके बच्चों को पढ़ाती थी?"

"यह नहीं बताऊंगी।"

"मुझे, अपने पिता को भी नहीं ?"

"आप पिता बनकर तो पूछ नहीं रहे। यह तो अफ़सरी ढंग है।"

"तुम्हारा पिता पुलिस-अफ़सर है।"

"जी, जानती हूं। तभी तो उनका नाम, जिन्होंने मेरी सहायता की है, बताना नहीं चाहती। क्या जानें आप उनका कोई अनिष्ट कर बैठें।"

"हां, यदि उन्होंने तुम्हारा कोई अनिष्ट किया होगा तो उनको दंड दिलाना मेरा कर्तव्य है।"

"क्या मेरा यह कहना, कि उन्होंने मेरी सहायता की है, पर्याप्त नहीं है ?"

"मुझे स्वयं अपनी राय बनानी होगी।"

"वह प्रायः मिथ्या होती है।"

"प्रायः मिथ्या ? कब ऐसा हुआ है ?"

"लाला हरवंशलाल आपके मित्र थे न ? उनका लड़का विनय मेरा भाई बना हुआ था न ? उसकी बहन कमला मेरी परम सखी थी। इस पर भी आपने विनय को अकारण बेंत लगवाये और कमला के निर्दोष पति को डेढ़ वर्ष भर क़ैद रखा।"

"देखो मनोरमा, सरकार की नीति को निश्चय करने वाला मैं नहीं हूं। मैं तो मशीन के एक पुर्ज़े की भांति आज्ञायें पालन करने वाला हूं।"

"ठीक है ! मैं यह मानती हूं और इसी कारण मैं आपको किसी का नाम-धाम नहीं बता सकती। मैं मुख़बिर बनना नहीं चाहती।"

"क्या मतलब ?"

"मैं अब जाना चाहती हूं।" इतना कह मनोरमा उठ खड़ी हुई।

"नहीं मनोरमा," मनोरमा की मां ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, "नहीं जाओ। तुम्हें अपनी मां के दुःख का कुछ तो विचार करना चाहिये। क्या मुझसे कुछ भी प्रेम नहीं है तुम्हारा ? तुम यहां रहो। अभी तो तुमसे मन भर कर बात भी नहीं कर पाई।"

"मां, मैं तो नहीं जा रही। पिता जी की इच्छा भी तो मुझे यहां

रखने की हो ।"

"तो मेरा कुछ अधिकार नहीं क्या ?" मां ने अति विनीत भाव से डिप्टी साहब की ओर देखते हुए कहा ।

"अच्छी बात है रखो इसे । पर यह इतना तो बताये न कि इसका असबाब वगैरा कहां रखा है ?" डिप्टी साहब ने कहा ।

"मैं केवल एक धोती के साथ गई थी । मेरा अपना कुछ नहीं है ।"

डिप्टी साहब के माथे पर त्योरी चढ़ गई, परन्तु कुछ सोच चुप कर रहे । मां ने कहा, "छोड़ो भी इस बात को । बेटी घर आगई है । क्या यह कम बात है ?"

"अच्छी बात है । जो मन आये करो । इसे बता दो कि यह विधवा हो गई है और किस प्रकार हुई है ।"

डिप्टी साहब का विचार था कि इस समाचार से मनोरमा को दुख होगा; परन्तु यह देख कि वह केवल भूमि की ओर देखती हुई खड़ी है, उन्होंने उत्सुकता से पूछा, "जानती हो, मनोरमा ! यह किस ने किया है ?"

"जानती हूं !" मनोरमा का गम्भीर उत्तर था ।

"ओह !" डिप्टी साहब के मुख से अपने आप निकल गया । वे स्वयं कुर्सी पर बैठ गये और मनोरमा को बैठने को कहा । जब वह बैठ गई तो उसकी मां ने याचना के भाव में डिप्टी साहब की ओर देखकर कहा, "आप सब बात अभी पूछेंगे क्या ? इसे तनिक आराम तो कर लेने दें । आप अब जाइये । फिर फुरसत के समय सब बातें होंगी ।"

डिप्टी साहब ने कुर्सी से उठ, खड़े होते हुए कहा, "बस यह एक बात पूछकर चला जाऊंगा ।" वे बोले, "मनोरमा, यदि मैं वचन दूं कि तुम्हें साक्षी के रूप में अदालत में नहीं घसीटा जायगा तो क्या तुम बता सकती हो कि नन्दलाल को किस ने मारा है ?"

"हां ।"

"वह कौन है ?"

"परन्तु आप उसको तो पुलिस के हवाले कर देंगे।"

"केवल तुम्हारे बताने पर नहीं। तुम्हारे कथन के पश्चात् अन्य प्रमाण ढूंढूंगा और उनके मिलने पर ही मुकदमा चलेगा। मैं तुम्हें साक्षी बना अदालत में नहीं भेजूंगा।"

"परन्तु मुझे दोषी मान तो अदालत में भेज सकते हैं?"

"दोषी? क्या मतलब?"

"मतलब स्पष्ट है। उनको मारने वाली मैं हूं।"

"तुम!" डिप्टी साहब ने आंखें फाड़कर देखते हुए कहा।

"हां। सत्य कहती हूं।"

"नहीं। मैं नहीं मान सकता।"

"तब अच्छा ही तो है। आप न मानिये।"

"तुम्हारी तरह एक और है जो अपने को उसका कातिल बताता है। वह भी सौगन्धपूर्वक कहता है। उसकी बात मानूं या तुम्हारी?"

"मुझे आपके दामाद से नाराज़गी थी। उन्होंने मुझसे बहुत बुरा व्यवहार किया था। इसी कारण मैं उन्हें छोड़ गई थी और अंत में मैंने गोली मार उन्हें मार डाला।"

"तुम उन्हें अकेले कहां ले गई थी, जहां गोली से मारा था, और फिर बंदूक कहां है जिससे मारा था?"

"स्थान नहीं बताऊंगी। बंदूक यमुना में फेंक दी है।"

डिप्टी रघुबरदयाल गम्भीर विचार में पड़ गये। कितनी ही देर तक वे कुर्सी पर बैठे बैठे सोचते रहे। पश्चात् अपने स्थान से उठे और कमरे से बाहर निकल गये। दो-तीन मिनट के पश्चात् उनकी मोटर स्टार्ट होने का शब्द हुआ और वे मोटर पर सवार हो चले गये।

[३]

धीरेन्द्र का देहली में पांच-छः दिन ठहरने का विचार था, परन्तु नरेन्द्र के लापता होने से उसके विषय में खोज करवाने में कई दिन लग गये। अब मनोरमा को अपने पिता के घर भेज उससे नरेन्द्र का हाल

जानने की इच्छा से उसे देहली में और भी ठहरने की आवश्यकता अनुभव हुई। इससे उसने नवरत्न-मंडल की बैठक कलकत्ते के बजाय देहली में ही बुला ली।

इस समय तक देश की राजनैतिक परिस्थिति में बेहद परिवर्तन हो चुका था। महात्मा गान्धी के जेल में रुग्ण हो जाने के कारण और उनकी धर्म पत्नी श्रीमती कस्तूरबा के देहान्त हो जाने के कारण उन्हें छोड़ दिया गया था। महात्मा गान्धी मिस्टर जिन्हा से बम्बई में एक सप्ताह तक वार्तालाप कर हिन्दू-मुसलमानों में ऐक्य उत्पन्न करने में असफल हो चुके थे। देश में छिपे-छिपे सरकारी कामों में विघ्न डालने की नीति लुप्त हो चुकी थी। जर्मनी युद्ध में हार खा चुका था। जर्मनी पर तीन देशों की फ़ौजों ने अधिकार कर लिया था और पोटसडेम कान्फ्रेन्स में तीनों मुख्य मित्र-राष्ट्रों के महा-नेता जर्मनी की लूट में समझौता कर चुके था। इन सब परिवर्तनों का हिन्दुस्तान पर भी प्रभाव हुए बिना नहीं रहा। भारत के वाइसराय विलायत गये और वहा से एक योजना बना हिन्दुस्तान में उत्तरदायी सरकार बनाने के यत्न में शिमला में हिन्दू-मुसलमान-सिक्खों का सम्मेलन बुला असफलता प्रकट कर चुके थे। असफलता इस कारण हुई थी कि जिन्हा कांग्रेस को केवल मात्र हिन्दुओं की संस्था मानता था और वह इसे वाइसराय की एक्ज़ी-क्यूटिव कौंसिल में मुसलमान प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं देता था। कांग्रेसी नेता मुस्लिम लीग को एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के आधे सदस्य भेजने का अधिकार देकर हिन्दुओं के आधे कोटा में से एक मुसलमान, जिसे वे राष्ट्रीय विचार का समझें, भेजने का अधिकार चाहते थे। मुस्लिम-लीग के सर्वेसर्वा इस बात पर भी राज़ी नहीं हुए तो सम्मेलन टूट गया और लार्ड वेवल, भारत के वाइसराय ने हिन्दू मुसलमानों में समझौता न हो सकने के कारण हिन्दुस्तानियों को अभी अधिकार न देने की घोषणा कर दी थी।

इस परिस्थिति में नवरत्न-मंडल की बैठक हुई थी। इस बैठक में

विशेष निमन्त्रण से गुरु व्यास और कर्मिष्ठ उपस्थित थे। नरेन्द्र पकड़ लिया गया था और लाल किले में कैद था। इस कारण नवरत्न-मण्डल के नौ सदस्यों में केवल आठ उपस्थित थे।

जो मुख्य बात इस बैठक में उपस्थित हुई वह स्वराज्य-संस्थापन-समिति की स्वराज्य सम्बन्धी नीति थी। इस नीति की घोषणा होनी दो कारणों से आवश्यक हो गई। एक तो देश की बदलती हुई परिस्थिति। अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ हिन्दू-मुस्लिम झगड़े को मुख्य रखकर विदेशी सरकारों के सम्मुख हिन्दुस्तान को बदनाम कर रहे थे और स्वराज्य-संस्थापन-समिति विदेशी सरकारों से हथियार तथा दारू-बारूद लेने का प्रबन्ध कर रही थी। इधर हिन्दुस्तान में मुसलमानों की मांगें दिन प्रति दिन कठोर होती जाती थीं। कांग्रेस इस समस्या को सुलझाने में असफल रहने पर भी अपनी नीति पर दृढ़ थी। दूसरा कारण, इस विषय पर विचार करने का यह था कि गुरु व्यासदेव ज़ोर दे रहे थे कि हिन्दुस्तान में आर्य राज्य स्थापित किया जाय।

अतएव जब इस विषय पर साधारण चर्चा हो चुकी तो गुरु व्यास को सभा में बुलाया गया और उनके विचार जानने के लिये चर्चा आरम्भ कर दी गई। शंकर पंडित ने बात आरम्भ की। उसने कहा, "आप आश्रम के गुरु हैं। आपके साथी उस आश्रम में वैज्ञानिक हैं। आप प्रकृति के एक ऐसे रहस्य को जानते हैं जिससे प्रकृति की अतुल शक्ति को हम अपने लाभ के लिये प्रयोग में ला सकते हैं। यह शक्ति युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रयोग की जा सकती है। आपका कहना है कि उस शक्ति के आश्रय से अंग्रेज़ों को भारतवर्ष से निकाला जा सकता है। परन्तु ये लोग उस शक्ति को मुसलमानों की प्रभुता रखने के लिये प्रयोग में नहीं लाना चाहते। उस शक्ति को हमें देने से पूर्व हमसे केवल आर्य राज्य स्थापित करने के लिये यत्न करने का वचन लेना चाहते हैं।"

इस पर गुरु व्यास से भिन्न भिन्न प्रश्न पूछे जाने लगे। सब से

अधिक प्रश्न करने वाला धीरेन्द्र था। उसने पूछा, "आप आर्य किस को कहते हैं?"

"श्रेष्ठ विचार, आचार और व्यवहार रखने वाले व्यक्ति को।"

"मुसलमान भी तो श्रेष्ठ विचार, आचार और व्यवहार वाले हो सकते हैं।"

"व्यक्तिगत रूप में हो सकते हैं, परन्तु उनके समाज की बनावट ऐसी है कि उसमें श्रेष्ठता रह ही नहीं सकती। इससे मुसलमान सामूहिक रूप में श्रेष्ठ आचार-व्यवहार नहीं रख सकते। जिस जिस मत में यह प्रबन्ध है कि मरने से पूर्व किसी परमात्मा के प्रतिनिधि पर विश्वास ले आने से पाप-कर्मों के फल से मुक्ति मिल सकती है, उस मत के मानने वाले सामूहिक रूप में कभी भी श्रेष्ठ नहीं हो सकते। कर्म-फल को अटल मानने वाले ही अपने व्यवहार को श्रेष्ठ रख सकते हैं।"

"हिन्दुओं में भी तो ऐसे लोग हैं जो दिन भर झूठ, दगा, फरेब और अन्य पाप-कर्म करते रहते हैं परन्तु अगले दिन प्रातःकाल भगवान का भजन कर अपने को मुक्त समझ लेते हैं।"

"यह व्यक्तिगत बात है। कोई व्यक्ति पाप-कर्म कर, झूठ मूठ मन को ढाढस बंधाने के लिये जो कुछ भी करे वह उसका निजी व्यवहार है। परन्तु हिन्दू समाज के नियम ऐसी कोई बात प्रतिपादित नहीं करते। यहां तो करनी और भरनी साथ साथ ही चलती है। यही कारण है कि हिन्दू व्यक्तिगत रूप में चाहे कितने ही बुरे हों, परन्तु सामूहिक रूप में हिन्दू समाज सर्व श्रेष्ठ है। हम चाहते हैं कि ऐसे समाज का राज्य स्थापित करना ही आपका लक्ष्य होना चाहिये।"

"आप क्या समझते हैं कि संसार में हिन्दुओं के अतिरिक्त और कोई नहीं जो श्रेष्ठ हो सके।"

हिन्दू समाज के अतिरिक्त और कोई समाज श्रेष्ठ नहीं हो सकता और इसमें कारण है। हिन्दू समाज ही एक समाज है जो यह मानता है कि मनुष्य अपने इस जन्म के कर्मों का फल भोगने के लिये पुनः

जन्म लेता है। इसमें जितना नियंत्रण अपने सदस्यों पर यह समाज डाल सकता है और कोई समाज नहीं डाल सकता।"

"यदि ईसाई भी ऐसा मानने लगें तो फिर क्या होगा?"

"तो उसे हम ईसाई न मानकर हिन्दू मानेंगे। ईसाई तो ईसा पर ईमान लाने वाले को ही कहते हैं न?"

"और यदि कोई हिन्दू पुनर्जन्म तथा कर्म-फल के सिद्धान्त को न माने तो?"

"तो वह हिन्दू समाज का अंग नहीं रह सकता।"

"भला हिन्दू समाज में आप किन किन को मानते हैं?"

"जितने मत-मतान्तर उक्त दोनों सिद्धान्तों पर विश्वास रखते हों। अतएव हिन्दू समाज के अन्तर्गत जैन, बौद्ध, सिख इत्यादि वे सब मत हैं जो भारतवर्ष में बने हैं। वे सब कर्म-सिद्धान्त को मानते हैं।"

"यदि मान भी लें कि हिन्दू भले आदमी हैं और मुसलमान बुरे तो भी जब तक कोई बुरा काम करता पकड़ा न जाय तब तक कैसे उसे दंड का भागी मान सकते हैं?"

"यदि महमूद गज़नवी से लेकर औरंगज़ेब तक के इतिहास से आपको यह भी पता नहीं चला कि मुसलमान समाज कितना अन्याय और अत्याचार कर चुका है तो आपको कभी भी कुछ पता नहीं लग सकता। हिन्दुस्तान से बाहर भी मुसलमानों ने अपने समाज की वृद्धि के लिये जो जो अत्याचार किये हैं क्या वे स्मरण नहीं रहे आपको?"

"यह सब ठीक है, परन्तु ये गुज़रे ज़माने की बातें हैं। अब तो तुर्की और रूस के कुछ प्रान्तों में मुसलमान शान्ति से रहते हैं।"

"यह केवल इसलिये है कि उन देशों में मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य मतावलम्बी नहीं रहे। अतएव यह कहना कि वहां का समाज अब शुभ आचार-व्यवहार वाला हो गया है, कहना कठिन है। समाज का संघर्ष तो समाज से ही होता है। जब संघर्ष होगा तब ही विदित होगा।"

हमें आपकी यह बात समझ नहीं आती कि व्यक्तियों से बनी हुई

समाज कैसे व्यक्तियों से भिन्न भावों वाली हो सकती है । यदि समाज में बहु संख्यक लोग श्रेष्ठ हैं तो समाज का श्रेष्ठ होना अनिवार्य ही है ।"

"सामूहिक और व्यक्तिगत व्यवहार में अन्तर तो सर्वत्र दिखाई देता है । आपको स्मरण होगा कि इंगलैण्ड के सम्राट किंग एडवर्ड आठवें को, एक ऐसे कार्य के लिये, जिसे व्यक्तिगत रूप में लोग अनुचित नहीं मानते, राजगद्दी छोड़नी पड़ी थी । समाज के नियम व्यक्तिगत व्यवहार से भिन्न होने का प्रमाण इससे बड़ा और क्या हो सकता है ? हमारे देश में भी महाराजा रामचन्द्र ने समाज के नियम और मर्यादा के लिये सीता को वनवास दे दिया था । समाज की गति भी व्यक्तिगत व्यवहार से भिन्न होती है । जो बात एक व्यक्ति व्यर्थ की मानता है समाज उसे अपनाने में लाभ समझता है । एक व्यक्ति के लिये वैराग्य श्रेष्ठ पदार्थ है, परन्तु एक समाज के लिये वैराग्य घातक सिद्ध हो जाता है ।"

धीरेन्द्र को ये सब बातें अयुक्तिसंगत प्रतीत होती थीं । वास्तव में जब से उसने राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया था तब से देश में रहने वालों को हिन्दुस्तानी समझ उनको स्वतंत्र करने के लिये यत्नशील रहा था । उसके मन में हिन्दू-मुस्लिम समस्या निरर्थक और मूर्खता-पूर्ण प्रतीत होती थी । वह समझता था कि गुरु व्यास दो सहस्र वर्ष पुराने विचारों में पला नवीन युग की समस्याओं को समझ नहीं सकता । इस धारणा से उसने और अधिक बातचीत करनी उचित नहीं समझी । परन्तु इससे बनारसीदास को संतोष नहीं हुआ । इस कारण उसने बातों की शृंखला को जारी रखा । उसने पूछा, "आप क्या चाहते हैं ? किस प्रकार का राज्य यहां हो, आप स्वयं ही बतायें ?"

"हम तो यह चाहते हैं कि भारतवर्ष में सहस्रों वर्ष तक सुख और शान्ति विराजमान रहे, परन्तु यह सुख और शान्ति शुभ विचारों और श्रेष्ठ संस्कृति के आधार पर ही स्थापित हो सकती है । भारतवर्ष में ऐसे विचार और ऐसी संस्कृति रही है और वही पुनः लाये जा सकते हैं । ईसाई, यहूदी और मुसलमान इस संस्कृति के विरोधी हैं । उनको

भारतवर्ष के राज्य-कार्य में सम्मिलित करने से यहां सुख और शान्ति स्थापित नहीं होगी।

"हम चाहते हैं कि राज्य कार्य में जन-साधारण की सम्मति न ली जाय। राज्य-कार्य से हमारा प्रयोजन राज-नियम बनाने से है। राज-नियम लोगों के मत से नहीं, प्रत्युत लोगों की भलाई के लिये बनने चाहियें। राज-नियम बनाने वाले लोगों की नियुक्ति जन-साधारण की इच्छा पर नहीं होनी चाहिये। इनकी नियुक्ति कुछ एक विद्वान लोगों के हाथ में होनी चाहिये। राजा अथवा प्रबन्धकर्ता, चाहे तो वह जन्म से इस उपाधि पर हो और चाहे योग्यता से, उन विद्वान लोगों से नियुक्त अधिकारियों से बनाये नियमों का पालन करे। राज-नियम बनाने वाला अर्थात् स्मृतिकार विद्वान, स्वस्थ, सद्चरित्र और प्रलोभनों से ऊपर होना चाहिये। जन-साधारण केवल एक बात कर सकता है। वह यह कि सुन्दर, सबल, सुडौल और सुयोग्य व्यक्ति निर्माण करे। योग्यता का माप-दंड जितना ऊंचा जन-साधारण का होगा उसके अनुपात में ही राजा, महाराजा तथा स्मृतिकार योग्य होंगे। मूर्ख समाज में नेता भी मूर्ख ही होंगे।

"मुसलमानी मत का इतिहास इतना गंदा और अन्याय तथा अत्याचारपूर्ण रहा है कि उस समाज में रहते हुए कोई श्रेष्ठ नेता बन सकेगा, संभव प्रतीत नहीं होता।"

"आपको मुसलमानों से इतनी चिढ़ क्यों है ?"

"उस समय का दृश्य मेरी आंखों के सामने अब भी नाच रहा है जब महमूद गज़नवी के सिपाही भारतवर्ष की निरीह स्त्रियों और लड़कियों के गलों में रस्सी बांधकर मीलों लम्बी पंक्तियों में लाखों की संख्याओं में साथ ले गये थे। फिर दिन-रात जो व्यभिचार उनसे किया गया था अभी भी स्मरण हो आता है तो क्रोध से रक्त उबलने लगता है। भारतवर्ष में स्त्रियों की मान-मर्यादा इतनी थी कि वे जंगलों में भी निधड़क घूम सकती थीं। परन्तु मुसलमानी राज्य में उन पर इतना

अत्याचार किया गया कि यहां स्त्रियों का नगरों में भी अकेला न घूमना नियम बन गया। स्त्री-पुरुष इस देश में निर्भय घूमते थे। मुसलमानी राज्य में उनको इतना दबाया गया कि वे भीरु बन गये। दुष्ट राज्य से जनता का पतन हुआ और दुष्ट राज्य दूषित संस्कृति का परिणाम था। उस संस्कृति में पलने वाले लोगों को पुनः राज्य-अधिकार देना अनिष्ट-कारी ही होगा।"

"मगर अंग्रेजों के डेढ़ सौ वर्ष के राज्य ने मुसलमानों में परिवर्तन कर दिया है। संसार में हो रही बातों के ज्ञान से उनकी विचार-धारा में अंतर आगया है। इस युग में हमें ऐसी कोई सम्भावना प्रतीत नहीं होती जिससे मुसलमानी काल की बातों की पुनरावृत्ति का भय हो।"

"मैं भविष्य-वाणी तो नहीं करता, परन्तु पिछले अनुभवों के आधार पर इतना कहने का साहस करता हूं कि अभी भारतवर्ष में मूर्खता भी विद्यमान है और पशुपन भी। इन दोनों के होने से भविष्य अन्धकार-मय ही प्रतीत होता है। इस देश के नेता महात्मा गान्धी एक साधारण सी बात भी तो समझ नहीं सकते। मुसलमानों के नेता मिस्टर जिन्ना तो कहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान भिन्न भिन्न जातियां हैं और महात्मा गान्धी कहते हैं कि मुसलमान और हिन्दू एक जाति है। अर्थात् वे मुसल-मानों को उनकी इच्छा के बिना हिन्दुओं के साथ रखना चाहते हैं। इसमें लाभ ही क्या है? यदि वे अपनी इच्छा से साथ रहना चाहते तो हम देखते कि वे इस बात के योग्य भी हैं या नहीं। अब उनकी योग्यता देखनी तो दूर रही उन अयोग्यों को ही अपने साथ रखना चाहते हैं। इसमें महात्मा जी को सफलता नहीं होगी और देश और जाति को इतनी भारी हानि होगी कि लोग सदियों तक भी भूल नहीं सकेंगे।"

"मान लो कि हिन्दू राज्य स्थापित कर लिया जाय तो मुसलमानों का क्या होगा?" बनारसीदास का प्रश्न था।

"मुसलमान यहां रहेंगे, परन्तु उनको न तो कोई उत्तरदाई पद दिया जायगा, न ही किसी राज्य-कार्य में भाग। वे स्वतंत्र रूप से अपने निर्वाह

का प्रबन्ध कर सकेंगे। राज्य की ओर से जो जो सुविधायें जन-साधारण को होंगी सो उनको भी होंगी। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।"

"तो वे यहां रहेंगे ही क्यों? उनके लिये केवल दो मार्ग खुले रह जायेंगे। एक तो यह कि वे देश छोड़ जायें और दूसरा यह कि वे यहां उपद्रव खड़ा कर दें और जब तक उनमें से एक भी जीता रहे हमारे साथ लड़ता रहे।"

"देश छोड़ कर वे नहीं जायेंगे। सन १९२१ में हिज़रत कर वे कटु अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। यहां उपद्रव तो वे अवश्य करेंगे। यदि उनको उत्तरदाई पदों पर नियुक्त कर दिया तो उनके उपद्रव सफल होंगे और हिन्दुओं को पुनः दासता के पद पर ले जायेंगे। और यदि हमने उन्हें किसी आवश्यक पद पर न रखा तो उनके उपद्रव सफल नहीं हो सकते। साथ ही मेरा पक्का विश्वास है कि आधी शताब्दी के हिन्दू राज्य से भारतवर्ष में से मुसलमानी संस्कृति समूल नष्ट हो जायगी। इन लोगों की सन्तान तो होगी, परन्तु इस्लाम नहीं रहेगा।"

[४]

गुरु व्यास से वार्तालाप के पश्चात् नवरत्न-मंडल स्वयं विचार करता था। इस प्रकार यह वार्तालाप कई दिन तक चलता रहा। नवरत्न-मंडल में, इन बातों के परिणाम-स्वरूप, दो पक्ष बनते जाते थे। एक इस बात को मानता था कि राष्ट्रीयता का अर्थ केवल भौगोलिक सीमाओं में रहने वाले लोगों से है और दूसरा पक्ष यह मानता था कि राष्ट्रीयता का अर्थ मनुष्यों के विचारों, उद्गारों और कर्तव्यों से अधिक सम्बन्ध रखता है। भौगोलिक सीमा गौण है, विचार-भेद मुख्य है। यदि गुरु व्यास और कर्मिष्ठ की अस्त्र-शस्त्रों में योग्यता सांस्कृतिक राज्य के पक्ष में न होती तो इतनी लम्बी बातचीत न चलती। सांस्कृतिक राज्य के विरोधी कभी कभी यह सोचते थे कि इन लोगों की सहायता क्या इतनी बड़ी है कि उसके सम्मुख सिद्धान्त का बलिदान कर दिया जाय। इसी विचार में देरी लग रही थी।

सांस्कृतिक आधार पर राज्य के पक्ष में केवल शंकर पंडित और बनारसीदास थे। इसके विरोध में शेष छः सदस्य थे। नरेन्द्र कैद होने के कारण न तो सम्मति दे सका, न ही दूसरों की सम्मति पर प्रभाव डाल सका। नवरत्न-मंडल की अंतिम बैठक होते होते जापान पर 'एटामिक बम' गिराये गये और जापान को घुटनों के बल कर लिया गया। इंगलैंड, अमेरिका और रूस को द्वितीय विश्वव्यापी युद्ध में विजय हुई और संसार की सब जातियां 'एटामिक बम' के समाचार से थर्रा उठीं।

इस घटना का नवरत्न-मंडल के विचार-विनिमय पर भारी प्रभाव हुआ। धीरेन्द्र का दृढ़ मत हो गया कि परमाणु-अन्तर्गत-शक्ति का जो भय था वह अब केवल गुरु व्यास आदि सन्यासियों के हाथ में नहीं रहा। उसका भेद अमेरिका और इंगलैंड को मिल गया है और यदि भारतवर्ष की क्रान्ति में इस शक्ति का प्रयोग किया गया तो इंगलैंड भी एटामिक बम हिन्दुस्तान पर बरसायेगा। इसका परिणाम भारतवर्ष की तबाही होगी। अतएव नवरत्न-मंडल की इस बैठक में धीरेन्द्र ने कह दिया, "हमें गुरु व्यास तथा कनिष्ठ की सहायता की अब आवश्यकता नहीं है। हमें अपनी नीति बदलने की आवश्यकता नहीं।"

बनारसीदास ने कहा भी कि गुरु व्यास आदि की सहायता की आवश्यकता के अतिरिक्त भी तो हमें सांस्कृतिक आधार पर राज्य स्थापित करने का यत्न करना चाहिये, परन्तु बहुमत धीरेन्द्र के साथ था।

नवरत्न-मंडल के इस निर्णय का परिणाम यह हुआ कि शंकर पंडित ने ब्राह्मण विभाग के नेतापन से त्याग-पत्र दे दिया। बनारसीदास ने भी नवरत्न-मंडल को छोड़ दिया। यह ठीक था कि आर्थिक सहायता देने का वचन बनारसीदास ने वापिस नहीं लिया।

ब्राह्मण विभाग का नेता बसन्तकुमार नियत किया गया और वैश्य विभाग में बनारसीदास के स्थान पर बम्बई का एक सेठ धनसुख नियत हुआ।

[५]

मनोरमा ने समिति के भेदिये द्वारा, जो डिप्टी साहब के घर के काम-काज के लिये नौकर था, अपने वहां पहुँचने का समाचार भेज दिया। इससे धीरेन्द्र और शेखरानन्द को भारी संतोष हुआ और वे अपनी योजना आगे चलाने लगे।

जिस दिन मनोरमा को डिप्टी साहब फ़ैज़ बाज़ार में से पकड़कर घर लाये थे उसी दिन सायंकाल की बात है। मनोरमा की मां ने उससे पूछा, "मनोरमा, अब नहीं जाओगी न?"

"मैं अपने आप नहीं गयी थी। घर से निकाली गई थी।"

"तो तुम्हें यहां आजाना चाहिये था।"

"परन्तु पिता जी भी तो वही कुछ कर रहे थे।"

"क्या कर रहे थे?"

"भाई विनय को बेंत लगवाने और चाचा जी से रिश्वत लेने में वे भी तो सम्मिलित थे।"

"तुम कैसे जानती हो यह?"

"मुझे आपके दामाद ने बताया था। पुलिस के प्रायः सब लोग रिश्वत लेते हैं और मार-पिटाई करते हैं। शायद मैं घर से न जाती यदि वे अपने सम्बन्धियों को छोड़ देते।"

मां कुछ देर तक चुप और गम्भीर विचार में मग्न रही। पश्चात् बोली, "परन्तु हम स्त्रियों को मर्दों की बातों में दख़ल देने की क्या आवश्यकता है। तुम्हें और कुछ कष्ट तो नहीं था। खाने, पहनने, सोने और घूमने इत्यादि की तो छुट्टी थी?"

"खाने-पहरने से ही तो सब कुछ नहीं हो जाता, मां! समझो मामा जी को दस बेंत लगवाकर पिता जी तुम्हें एक बढ़िया साढ़ी ला दें तो तुम प्रसन्न होओगी क्या? विनय मेरा भाई बना हुआ था, फिर कमला के पति को अकारण पकड़लिया और बीस हज़ार लिये बिना नहीं छोड़ा।"

इसके पश्चात् मां को बहस करने का साहस नहीं हुआ। उसने

केवल यह कहा, "कुछ भी हो मैंने तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा था। आखिर मुझे इतना कष्ट क्यों दिया गया है? अब मैं कहती हूं कि घर में रहो। कम से कम समाज में जो तुम्हारी निन्दा हो रही है वह तो बन्द हो सकेगी।"

मनोरमा ने घर से न जाने का वचन दे दिया और वह अपने कमरे में, जिसमें वह विवाह से पूर्व रहा करती थी, चली गई। सायंकाल जब डिप्टी साहब आये तो उसके कमरे में पहुंच पूछने लगे, "नरेन्द्र को तो जानती हो न?"

"जी हां, जानती हूं," मनोरमा का उत्तर था।

"तुम उसके पास रहती थी क्या?"

"जी।"

"वह कहां रहता था?"

"कलकत्ते में।"

"तुम मुझसे भी झूठ बोलने लगी हो?"

"जी हां! इसलिये कि आप भी अपनी लड़की पर पुलिस-अफसरी करने लगे हैं।"

"तो मैं कैसे पुलिस-अफसरी छोड़ सकता हूं," डिप्टी साहब ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा।

"बहुत सीधी बात है," मनोरमा ने कहा। मुझे आप विश्वासपात्र मान बता दीजिये कि उसने कौन स्थान बताया है। मैं आपको बता दूंगी कि ठीक बताया है या ग़लत। नहीं तो मुझसे कुछ न पूछिये और मुझे बता दीजिये कि मैं यहां रहूं या चली जाऊं?"

"नहीं, अब मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी," मां ने बीच में ही बात काट कर कहा, "यदि तुम्हारे पिता ने अफसरी ही करनी है तो और लोग क्या सब मर गये हैं?"

इस पर डिप्टी साहब ने मनोरमा की मां को डांटना चाहा, परन्तु उसने उनके कुछ कहने से पूर्व ही कह दिया, "लड़की ठीक तो कहती

है। यदि उसकी गवाही से मुकदमा चलाना है तो उसे हवालात में डाल दो। घर में तो बेटी बनकर रहेगी। अपराधी नहीं।"

"देखो जी," डिप्टी साहब कुछ नरम हो कहने लगे, "यह मुश्रामला बहुत ही संगीन है। खून का मामला है और वह भी मेरे दामाद का। मैं जानना चाहता हूं कि दोषी कौन है और यह लड़की उसे बचाना चाहती है।"

"खून हो, चाहे कुछ हो। मैं अपनी लड़की को फांसी नहीं लगने दूंगी।"

"यदि यह सत्य बता दे तो फांसी क्यों लगेगी? यह तब सरकारी गवाह बन जायगी। देखो मनोरमा, नरेन्द्र मान गया है कि नन्दलाल को उसने मारा है, परन्तु तुम कहती है कि तुमने मारा है।"

"तो फिर दोनों को चढ़ा दो न फांसी पर," मनोरमा की मां ने कहा, "इतने बड़े अफसर बने फिरते हो और अपनी लड़की को बचा नहीं सकते।"

"इसे बचाने के लिये ही तो नरेन्द्र को फंसाना चाहता हूं, परन्तु यह तो कुछ कहती ही नहीं।"

इस पर मनोरमा ने कहा, "पर मैं एक निर्दोष को फंसाना नहीं चाहती। उनको मैंने मारा है।"

"परन्तु वह तो कहता है कि उसने मारा है।"

"वे मुझे बचाने के लिये ऐसा कहते हैं।"

"और अपना पता भी ग़लत बता रहा है, तुम्हें बचाने के लिये न?"

"जी।"

"और तुम झूठ बोल रही हो उसको बचाने के लिये।"

"जी।"

"इससे यह सिद्ध हुआ कि तुम दोनों झूठ बोल रहे हो किसी और को बचाने के लिये।"

"जी।"

"तो वह कौन है?"

"जी।"

"क्या मतलब?"

"मतलब साफ़ है। आपके दामाद ने भारी अत्याचार किये थे। उनको संसार में रहने का अधिकार नहीं रहा था। इस कारण उनको संसार से बाहर कर दिया गया है। यह कार्य मेरे विचार में ठीक है। आप इसे भारी अपराध समझते हैं और शक्तिशाली होने से इस कार्य के करने वाले को दंड देना चाहते हैं। मैं उसे दंड दिये जाने योग्य नहीं समझती, इस कारण उसे बचाना चाहती हूँ।"

"तो तुम उसे जानती हो?"

"जी।"

"तो बता दो न। यह देखना कि वह अपराधी है या नहीं, न तुम्हारा काम है न मेरा।"

"तो यह किस का काम है?"

"एक मैजिस्ट्रेट का।"

"जिसे बीस-तीस रुपये की वेतन-वृद्धि के लिये भी आपके महकमे की सिफ़ारिश की आवश्यकता होती है। छिः ये लोग क्या न्याय करेंगे?"

"हाईकोर्ट के जज तो स्वतंत्र हैं। मैजिस्ट्रेटों की भूल को वे सुधार सकते हैं।"

"यह एक बहुत लम्बा और महंगा उपाय है। इसके अतिरिक्त हाईकोर्ट के जजों को भी तो वे काले कानून मानने पड़ते हैं जो इस समय वाइसराय ने बनाये हैं। उसने पुलिस को इतने अधिकार दे दिये हैं कि उनसे किये गये अन्याय को हाईकोर्ट के जज भी रोक नहीं सकते।"

इससे डिप्टी साहब क्रोध से उबलते हुए उठकर कमरे के बाहर चले गये।

रात भर मनोरमा की मां ने डिप्टी साहब को बहुत समझाया, जिसके परिणामस्वरूप प्रातःकाल वे बहुत नरम हो गये और रात के झगड़े के लिये मनोरमा से क्षमा मांगने चले आये।

मनोरमा इससे बहुत लज्जित हुई। वृद्ध पिता को यह कहते सुन—'मनोरमा क्षमा करना। मैं अपनी अफसरी की ज़िम्मेदारी निभाने के विचार में भूल जाता हूं कि मैं पिता भी हूं और मेरी एक लड़की भी है। रात तुम्हारी माता ने समझाया है और मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा है कि शायद मेरा पूर्ण जीवन ही भूल में व्यतीत हो गया है। तुम क्या चाहती हो—' मनोरमा के आंसू निकल गये। उसने हाथ जोड़कर कहा, "मैं आपको अपना कर्तव्य पालन करने से मना नहीं करती। परन्तु मैं तो कहती हूं कि उस सरकार की नौकरी ही क्या करनी, जो अन्याय और अत्याचार पर अवलम्बित हो। यदि आप किसी अच्छे काम करने वाले की सेवा करेंगे तो अच्छे काम करना आपकी ज़िम्मेदारी बन जायगी। तब ये बुरे कार्य तो हो ही नहीं सकते।"

"कठिनाई यह है, मनोरमा, कि मैंने जीवन भर पुलिस की ही नौकरी की है। पुलिस तो किसी सरकार की ही होती है न, और भारत की सरकार जैसी है सो तुम जानती हो।"

"परन्तु क्या आप नरेन्द्र जी को छोड़ नहीं सकते? कल ही तो आप ने कहा था कि उनके अपने कथन के अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं मिल रहा।"

"ठीक है, परन्तु तुम यह नहीं जानती कि बुरे काम करने तो हमारे बस की बात है, परन्तु कोई भला काम हम कर ही नहीं सकते। सारा का सारा महकमा कहने लगता है कि रिश्वत खा गया है। अफ़सर भी दूसरों को कष्ट देने में खुश होते हैं। नरमी से व्यवहार करने को हमारी अयोग्यता मानते हैं। अब देखो, नरेन्द्र ने मैजिस्ट्रेट के सम्मुख बयान दे दिया है कि 'अंग्रेजी राज्य को समाप्त करने के लिये एक भारी षड़यंत्र किया गया है। एक क्रान्तिकारी दल बनाया गया है जिसमें लाखों

सदस्य हैं । वह, तुम और अनेकों अन्य उस दल में सम्मिलित हैं । इस दल की शाखायें विदेशों में भी हैं और यह दल भारत को विजय करने की फौजी तैयारी कर रहा है । ये सब बातें भारी अपराध हैं और बात महकमा के बड़े अफसरों तक पहुंच गई है । मेरा इसमें हस्ताक्षेप चल नहीं सकता, पर मैं तुम्हारे लिये उसे छुड़ा सकता हूं । यदि तुम चाहो तो वह तुमसे विवाह कर स्वतंत्रता से विचर सकेगा । हां, उसे यह बताना पड़ेगा कि उस संस्था का दफ्तर कहां है ? उसका नेता कौन है और उसको धन कहां से मिलता है ?"

इन प्रश्नों से मनोरमा के मन को ढाढ़स बंध गया । अपने पिता के कथन के पूर्व भाग से तो उसे डर लग गया था कि नरेन्द्र सब कुछ बक गया है, परन्तु इन प्रश्नों से उसे विश्वास हो गया कि मतलब की कोई बात नहीं बताई गई ।

डिप्टी साहब ने अपनी बात दुहराई, "मैं चाहता हूं कि वह सरकारी गवाह बन जाय और तुम इसमें उसकी सहायता कर दो ।"

"मैं कैसे सहायता कर सकती हूं ?"

"उसे एक चिट्ठी लिखो कि तुम्हारे विचार बदल गये हैं । हिन्दुस्तान में युद्ध के पश्चात् स्वराज्य अवश्य मिल जायगा । महात्मा गांधी और अन्य नेता छोड़ दिये गये हैं । अब शेष कैदियों को छुड़ाने का प्रयत्न हो रहा है । केवल मुसलमानों से समझौता कर लेने की देरी है । बस हिन्दुस्तान आज़ाद हो जायगा । इस कारण अब उस संस्था की आवश्यकता नहीं रही जो छिपे छिपे अंग्रेज़ों से युद्ध की तैयार कर रही है । इस दल को बन्द कर देना ही ठीक है । अतएव वह उस दल के विषय में पूरी सूचना पुलिस वालों को देकर सरकारी गवाह बन जाय । मैं समझता हूं कि तुम्हारी बात वह मान जायेगा । साथ ही तुम यह लिख सकती हो कि अब मुझे तुम्हारे उससे विवाह में आपत्ति नहीं रही और तुम दोनों के लिये अमेरिका जाकर रहने का प्रबन्ध मैं कर रहा हूं ।"

इस प्रस्ताव पर मनोरमा ने कहा, "मैं कुछ लिखकर नहीं देना

चाहती। यदि आप समझते हैं कि मैं उन्हें समझा-बुझा सकती हूं तो मेरी उनसे पृथक में मुलाकात करवा दीजिये। हम दोनों परस्पर विचार-विनिमय कर कोई ढंग निकालने का यत्न करेंगे।"

इसके विषय में डिप्टी साहब ने सोचने का वचन दे दिया।

[६]

इसके कई दिन बाद की बात है। एक दिन प्रातःकाल डिप्टी साहब मनोरमा के कमरे में आये और कहने लगे, "मनोरमा, तुम्हारी नरेन्द्र से मुलाकात की मंजूरी हो गई है।"

"तो इसके लिये भी आपको स्वीकृति लेनी पड़ती है?"

"हां, मैंने यह स्वीकृति ले ली है। अब तुम्हें अवसर मिल गया है कि तुम उस पर प्रभाव डाल सको और जहां वह स्वयं फांसी से छूट सकता है, वहां तुम्हारे साथ सुख और शान्ति का जीवन भी व्यतीत कर सकता है।"

"मैं समझने और उनको समझाने का यत्न करूंगी।"

"क्या समझने का यत्न करोगी?"

"यही कि वे मुझसे विवाह करना स्वीकार करते हैं या नहीं।"

"तो क्या तुम दोनों परस्पर प्रेम नहीं करते?"

"करते थे, परन्तु अब नहीं जानती।"

"तो तुम इकट्ठे नहीं रहते रहे?"

"एक ही स्थान पर रहते अवश्य थे, परन्तु पुनर्विवाह की मेरी कुछ विशेष इच्छा नहीं थी।"

"तो फिर विवाह के विषय में पूछने की क्या आवश्यकता है?"

"यदि मेरे उनके साथ विवाह करने से उनकी जान बच सकती है तो मैं यह भी करने को तैयार हूं।"

"तुम्हें उसकी जान बचाने की इतनी चिन्ता क्यों लग रही है?"

"यह मैं स्वयं नहीं समझ सकी।"

डिप्टी साहब का विचार था कि मनोरमा झूठ बोल रही है। यद्यपि

वह कहती थी कि वह पुनर्विवाह की इच्छा नहीं रखती तथापि डिप्टी साहब को विश्वास होता जाता था कि मनोरमा का नरेन्द्र से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है और वह देहली, शायद, नरेन्द्र को छुड़ाने ही आई है। इस कारण डिप्टी साहब की विचार-धारा यह बन रही थी कि यदि नरेन्द्र के दल के अस्तित्व का और उसमें के अन्य कर्मचारियों के नाम-धाम का पता चल जाय तो नरेन्द्र को छुड़ाने पर भी उनकी भारी नेकनामी होगी। इस कारण डिप्टी साहब मनोरमा को यह अवसर देना चाहते थे कि वह नरेन्द्र को सरकारी गवाह बनने में उत्साहित कर सके।

अतएव उसी दिन मनोरमा डिप्टी साहब की मोटर में सवार हो लाल किले जा पहुँची। नरेन्द्र से मिलने का पास उसके पास था। लाल किले के अन्दर पुलिस-बैरकों के नीचे तहखाने में वह कैद था। चौंसठ सीढ़ियां नीचे उतरने पर एक सुरंग थी। उस सुरंग के एक तरफ कई कोठरियां थीं। उनमें से एक में वह था। कोठरी का दरवाजा लोहे के सीखचों का बना था और दरवाजे को ताला लगा था। पुलिस का पहरे-दार जो मनोरमा के साथ आया था सुरंग में लगी बिजली के प्रकाश में चाबियों के गुच्छे में से ताली निकाल ताला खोलने लगा। कोठरी में अन्धेरा था। केवल सुरंग में, जो एक प्रकार का कोठरी के बाहर बरामदा मानना चाहिये, एक बिजली का, हलके प्रकाशवाला, लेम्प लगा था। उसी का प्रकाश सीखचों में से कोठरी में जा रहा था। सीखचों का किवाड़ खुलने पर एक पत्थर के चबूतरे पर एक आदमी बड़ी बड़ी दाढ़ी-मूछ और सिर के लम्बे बालों वाला बैठा दिखाई दिया। यह नरेन्द्र था। लोहे के किवाड़ खुलने के शब्द से (मानो कोई नींद से जाग उठा हो) सचेत हो आने वाले को अचम्भे में देखने लगा। मनोरमा दरवाजे में ही खड़ी नरेन्द्र को पहचानने का यत्न कर रही थी। नरेन्द्र ने उसे पहले पहचान लिया और कहा, "सो तुम आगई हो?"

"जी।"

"क्यों?"

"मैं आजकल अपने पिता के घर रहती हूं। उन्होंने ही इस मुलाकात का प्रबन्ध करवाया है।"

"तो तुम्हारे पिता, जो कुछ अत्यंत कष्ट देकर भी नहीं जान सके, अब तुम्हारे प्रेम-प्रदर्शन से कहलवाना चाहते हैं?"

"मैं आपसे कुछ कहलवाने नहीं आई।"

"तो किस लिये आई हो?"

मनोरमा नरेन्द्र के सम्मुख खड़ी थी। नरेन्द्र वैसे ही चबूतरे पर बैठा था। सुरंग की बत्ती का धीमा प्रकाश नरेन्द्र के रक्तहीन मुख पर पड़ रहा था। मनोरमा की पीठ कोठरी के दरवाजे की ओर थी इससे उसके मुख पर के भावों को नरेन्द्र देख नहीं सकता था।

मनोरमा ने चबूतरे के नीचे फर्श पर बैठते हुए कहा, "मुझे आपसे अपनी सफाई देनी है। मेरा व्यवहार आपके साथ अनुचित और अयुक्तिसंगत था। उसके लिये क्षमा मांगना चाहती थी।"

"न तो अब इसकी आवश्यकता है और न ही इसमें कुछ लाभ है। जीवन का दीपक बुझ गया है। इसमें तेल समाप्त हो गया है। बत्ती से थोड़ा सा धुंआ निकल रहा है जो इस बात का सूचक है कि यह भी कभी देदीप्यमान थी।"

"इसी लिये तो आई हूं कि अपने प्रेमरूपी तेल को इस दीपक में भर दूं; इसे पुनः प्रज्वलित कर जीवन-ज्योति से भरपूर कर दूं।"

"मैं समझता हूं कि इस जीवन में अब सम्भव नहीं होगा। यही कारण है कि जीवन को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने का दृढ़ निश्चय कर चुका हूं।"

मनोरमा जहां बैठी थी वह स्थान गंदा तो था ही, साथ ही सील से गीला हो रहा था। मनोरमा को ऐसा अनुभव हुआ कि सर्दी उसकी पीठ से सिर की ओर ऐसे रेंगती हुई चढ़ रही है जैसे चींटियां। उसका नीचे का भाग सर्दी से सुन्न हो रहा था। मनोरमा ने भूमि को हाथ लगाकर देखा। सील से भीगी हुई मट्टी हाथ को लग गई। मनोरमा को

ऐसा करते देख नरेन्द्र हंस पड़ा। उसकी हंसी में वह रस नहीं था जो पहले हुआ करता था। यह सर्वथा शुष्क थी। मनोरमा को यह नीरस हंसी बहुत ही भयंकर प्रतीत हुई। वह अवाक मुख नरेन्द्र को देखती रह गई। नरेन्द्र उसको अचम्भा करते देख कहने लगा, "मनोरमा, यह तो कुछ भी नहीं। इससे कहीं अधिक यंत्रणा सहन कर चुका हूं।"

इतना कह उसने अपना हाथ दिखाया। उस पर बहुत बड़ा सा घाव बना था जो बहुत गन्दा हो रहा था। मनोरमा ने प्रश्न भरी दृष्टि से देखा तो वह कहने लगा, "अनेकों अन्य कष्टों से जब मैंने उनके कथनानुसार वक्तव्य नहीं दिया तो इस हाथ को एक लकड़ी के तख्ते पर रखकर उस पर एक कील गाड़ दी और दो घंटे तक वहां गड़ा रहने दिया गया। उस काल में मुझसे बार बार पूछा जा रहा था कि नन्दलाल को किस ने मारा है? मेरे साथी कौन हैं? नन्दलाल के घर डाका डालने वाले कौन कौन थे? मेरा एक ही उत्तर था कि यह सब कुछ मैंने ही किया है।"

"इस घाव पर दवाई लगाई जाती है या नहीं?"

"लगाई जाती है, पर यह बिगड़ता ही जाता है। न जाने क्या औषधि लगाई जा रही है?"

भूमि पर सील इतनी थी कि मनोरमा की रीढ़ की हड्डी में अकड़ाव प्रतीत होने लगा। उसे सिर में चक्कर आने लगा था। वह उठ खड़ी हुई और कहने लगी, "मैं आपके लिये क्या कर सकती हूं?"

"मुझे फिर मिलने न आना। इसके लिये कृतज्ञ रहूंगा।"

"आपने बताया था कि आपकी संस्था स्वराज्य-स्थापित करना चाहती है?"

"यह तो डिप्टी साहब ने बताया था कि तुमने उनको कहा है। मुझे अब इसमें दिलचस्पी नहीं कि तुम क्या कहती हो और क्या करती हो।"

"नवरत्न-मंडल में दादा का मत प्रबल रहा है।"

"मुझे इसके विषय में सोचने की फुरसत नहीं। न ही मस्तिष्क इस स्थान पर विचार कर सकता है। अब तो शीघ्र ही इस कलेवर को छोड़ने के लिये आत्मा छटपटा रही है।"

मनोरमा के आंसू टप टप गिर रहे थे। उसका मुख अभी भी दीवार की ओर था और नरेन्द्र उस पर के भाव को देख नहीं रहा था। उसे चुपचाप खड़ा देख नरेन्द्र ने कहा, "अच्छा, अब तुम जा सकती हो। मैं न तो उठकर तुम्हारा स्वागत कर सका और न ही तुम्हें विदा कर सकता हूं। मैं उठ ही नहीं सकता।"

मनोरमा के सिर में ज़ोर का चक्कर आया और वह गिरने ही वाली थी कि उसने दरवाज़े के सीखचों को पकड़कर अपने को सम्भाला। उसने कारण जानने के लिये पूछा, "क्यों, क्या बात है नरेन्द्र जी ?"

"मेरे शरीर के नीचे का भाग सुन्न हो गया है। मैं समझता हूं कि मुझे पक्षाघात हो गया है। मैं अपने आप उठ नहीं सकता। किसी से आश्रय लेने की आवश्यकता रहती है।"

"यह कब से है ?" हिचकियां लेते हुए मनोरमा ने पूछा।

"यों तो जब से यहां लाया गया हूं तब से ही इसका श्रीगणेश हुआ है, परन्तु एक सप्ताह से यह भाग मर गया प्रतीत होता है।"

"तो ये लोग आपको मारना चाहते हैं ?"

"मुझ पर भारी कृपा कर रहे हैं।"

मनोरमा और सहन नहीं कर सकी। वह यह कहती हुई कि, 'अच्छी बात शीघ्र ही मिलेंगे,' वहां से लुढ़कती हुई बाहर निकल गई।

[७]

मित्र-राष्ट्रों ने सानफ्रांसिस्को में एक सभा बुलाई और इसमें सम्मिलित होने के लिये भारतवर्ष के नाम पर ब्रिटिश सरकार के गुणानुवाद गाने वाले प्रतिनिधि भारत सरकार ने भेज दिये। इंगलैंड के दुर्भाग्य से श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, जो किसी निजी कार्यवश अमेरिका गई हुई थी, वहां जा धमकी और हिन्दुस्तान-सरकार और

उसके भेजे हुए हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों की ऐसी पोल खोली कि संसार के प्रायः सब मुख्य राष्ट्रों में और विशेष रूप से अमेरिका में अंग्रेजों के झूठ और कुटिलता का भंडा फूट गया। जिस बात के लिये जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करने की घोषणा की गई थी वही बात अंग्रेज़ों में भी बहुत भारी मात्रा में पाई गई।

इससे अंग्रेज़ों को अपनी नेकनीयती सिद्ध करने के लिये पहले तो भारतवर्ष में एक 'गुडविल मिशन' भेजना पड़ा और फिर राज्य-परिषद् के तीन मुख्य सदस्यों की एक समिति (Cabinet Mission) यहां आई। परिणाम-स्वरूप दुनिया भर के देशों में वाहवाह होने लगी।

प्रकट रूप में तो यह प्रतीत होता था कि इंगलैंड की राज्य-परिषद् के सदस्यों की समिति सब कुछ यहां की प्रमुख राजनीतिक पार्टियों की राय से कर रही है, परन्तु वास्तव में जो कुछ वे चाहते थे वे भारत की दोनों प्रमुख पार्टियां मानती जाती थीं। इंगलैंड की घरेलू परिस्थिति इतनी दुर्बल थी कि वह हिन्दुस्तान जैसे देश को सम्भालने में असमर्थ था। इस कारण हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता देने के साथ यहां ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने का प्रबन्ध कर दिया गया कि भविष्य में इंगलैंड की सहायता के बिना हिन्दुस्तान का जीवन दूभर हो जाय।

स्वराज्य-संस्थापन-समिति ने अपना आतंक जमाने तथा क्रान्ति उत्पन्न करने का कार्य आरम्भ कर दिया था। बर्मा से हिन्द राष्ट्रीय सेना के लोगों को सरकार ने कैद कर लिया था। इनकी संख्या पचास-साठ सहस्र के लगभग थी। इस सेना के प्रमुख नेताओं पर फौजी मुकदमे चलाने की योजना की गई। लोगों में इसके विरुद्ध आन्दोलन खड़ा हो गया और स्वराज्य-संस्थापन-समिति के नेता धीरेन्द्र ने इस परिस्थिति से लाभ उठाकर क्रान्ति का श्रीगणेश कर दिया।

आरम्भ में कलकत्ता और बम्बई में बलवे हो गये। फिर समुद्री जहाज़ी बेड़ों में हिन्दुस्तानी कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। साथ ही जबलपुर, ढाका इत्यादि स्थानों पर फौजों में हड़ताल और बलवे

आरम्भ हो गये।

परन्तु योजना के सब अंग पूर्ण नहीं हो सके। विदेशों से सहायता नहीं पहुंच सकी। सहायक देशों को विश्वास हो गया था कि अंग्रेज़ स्वयं ही भारतवर्ष को स्वतंत्र कर रहे हैं। महात्मा गांधी और उनके साथियों ने विप्लव खड़ा करने वाले फ़ौजियों और नागरिकों को आश्वासन दिला दिया कि देश को पूर्ण स्वराज्य मिल रहा है और इस समय हिंसात्मक आन्दोलन तथा विप्लव इस स्वराज्य को दूर कर देगा। दूसरी ओर धीरेन्द्र आदि नवरत्न-मंडल के सदस्यों का विचार कि केवल देश-प्रेम से लोग जी तोड़कर विप्लव खड़ा करेंगे सर्वथा सत्य सिद्ध नहीं हुआ। ब्रिटिश सरकार ने और उसकी सहायता से मुस्लिम लीग के नेताओं ने भारतवर्ष के वातावरण को इतना विषाक्त कर रखा था कि लोगों की रुचि हिन्दू-मुस्लिम समस्या की ओर पूर्ण रूप से लग गई थी। हिन्दुओं और मुसलमानों के सांझे राज्य-स्थापन के लिये प्रयत्न के स्थान पर हिन्दू-मुस्लिम झगड़े होने लगे।

महात्मा गान्धी और कांग्रेस मुसलमानों के सम्मुख झुकते जाते थे। इससे मुसलमान और अंग्रेज़ तो इनसे प्रसन्न थे ही, साथ ही हिन्दुत्व का दृष्टि-कोण रखने वाले हिन्दू भी यह समझने लगे थे कि मुसलमानों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता देकर कांग्रेस हिन्दू-संस्कृति की रक्षा का भार अपने पर ले लेगी। इससे हिन्दुओं में कांग्रेस पर श्रद्धा बढ़ती गई। देश के उन नेताओं का मान, जो हिन्दुओं और मुसलमानों का सांझा स्वराज्य चाहते थे घट गया। स्वराज्य-संस्थापन-समिति का नेता धीरेन्द्र भी अपना प्रभाव खो बैठा और उसकी विप्लव खड़ा करने की योजना बल नहीं पकड़ सकी।

शंकर पंडित छः वर्ष तक स्वराज्य-संस्थापन-समिति का कार्य करने तथा उसकी नीति को निश्चय करने के काम के पश्चात् उदासीन हो लखनऊ में एक मकान लेकर रहने लगा।

मनोरमा जो विशेष परिस्थितियों के कारण स्वराज्य-संस्थापन-समिति

में कार्य कर रही थी अब उससे उदास हो घर पर रहने लगी थी। नरेन्द्र के विषय में जो कुछ उसे पता चलता था शेखरानन्द को लिख दिया करती थी।

[८]

नरेन्द्र से मिलकर मनोरमा जब किले से बाहर निकली तो उसे सब संसार रूखा प्रतीत होने लगा। वह समझती थी कि नरेन्द्र का पकड़ा जाना और उसको किले में इस प्रकार कैद दिया जाना सब उसी की भूल से हुआ है। यदि वह कुछ धैर्य और विचारशीलता से काम लेती तो बात इस सीमा तक न पहुंचती। उसके मन में बार बार यही बात आ रही थी कि नरेन्द्र यदि मर गया तो उसकी हत्या का पाप उसी के सिर पर होगा। तो क्या अब वह बचाया जा सकता है? यदि जेल से छूट जाय तो उसे स्वस्थ करने का यत्न किया जा सकता है। इस विचार के आते ही वह उसे छुड़ाने के उपाय सोचने लगी।

जब वह घर पर पहुंची तो डिप्टी साहब उसकी प्रतीक्षा में उपस्थित थे। मनोरमा के पहुंचते ही डिप्टी साहब ने पूछा, "क्या निश्चय हुआ है, मनोरमा?"

मनोरमा ने आंखों में आंसू भरते हुए कहा, "पिता जी, उन्हें छोड़ दीजिये, नहीं तो मैं भी मर जाऊंगी।"

"मर जाओगी! भला क्यों?"

"आप उन्हें वहां रखकर मार डालेंगे और मैं यहां स्वयं ही प्राण दे दूंगी।"

"कैसे?"

"अनशन कर।"

"मैं उसे छुड़ा नहीं सकता।"

"तो आप मुझे भी उनके साथ ही जाता देखेंगे।"

डिप्टी साहब मन में सोचते थे कि सब महात्मा गान्धी ही बनना चाहते हैं। भूखे रहकर मर जाना सुगम नहीं है। इतना सोच वे कमरे से

बाहर निकल गये ।

परन्तु मनोरमा ने दृढ़ निश्चय कर लिया था । वह नरेन्द्र को शीघ्र ही मिलने के लिये कह आई थी और उससे मिलने का केवल एक ही उपाय था । वह इस जीवन को समाप्त कर ही हो सकता था ।

एक दो दिन तक तो मनोरमा के अनशन पर डिप्टी साहब को विश्वास ही नहीं आया । मनोरमा की मां ने जब कहा कि मनोरमा ने कुछ नहीं खाया तो उन्होंने यह कहकर टाल दिया, "भूख लगेगी तो खा लेगी ।"

परन्तु तीसरे दिन तो मनोरमा खाट पर लेट गई । सायंकाल जब डिप्टी साहब घर आये तो मनोरमा की मां ने आंखों में आंसू भरकर कहा, "मनोरमा पेशाब जाते समय चक्कर खाकर गिर पड़ी थी ।"

"तो मैं क्या करूं ? लड़की को तुमने हठी बना रखा है ।"

"आप मर्दों की बातें मुझे समझ में नहीं आतीं । खुद तो बच्चों को कभी समझाते-बुझाते नहीं और जब कोई बात अरुचिकर हो जाती है तो दोष दूसरों को देने लगते हैं ।"

डिप्टी साहब मनोरमा के कमरे में गये तो मनोरमा की दुर्बल अवस्था देख घबरा उठे । तीन दिन में ही उसका रक्त सब सूख गया था । गालें अन्दर को धंस गई थीं । उसे देख एकाएक डिप्टी साहब के मुख से निकल गया, "यह क्या है ?"

मनोरमा ने आंखें मूंदकर मुख मोड़ लिया । मनोरमा की मां, जो डिप्टी साहब के पीछे पीछे कमरे में आगई थी, कहने लगी, "बात क्या है ? यह भूखी रहकर प्राण दे देना चाहती है ।"

"यही तो पूछ रहा हूं कि क्यों ? उस कातिल नरेन्द्र के लिये ?"

अब मनोरमा से रहा नहीं गया । वह दुर्बल हो चुकी थी । इस कारण बोलने में उसे यत्न करना पड़ा था, जिससे उसका मुख तमतमा उठा था । वह बोली, "यदि वह कातिल है तो उस पर मुकदमा क्यों नहीं चलाया जाता ? छः मास से तहखाने में बंद कर उसे बिना मुकदमा

किये ही मार डालने का यत्न क्यों किया जा रहा है ?"

"खून का मुकदमा तो अभी नहीं चल सकता, मगर वह पकड़ा गया है डिफेन्स ऑफ इंडिया एक्ट के आधीन। वह बहुत ही खतरनाक आदमी माना गया है।"

"यह मानने वाला कौन है ? आप या आपके महकमे वाले ही तो हैं जिन्होंने झूठी रिपोर्ट कर के उसे पकड़वाया है।"

"मैं पुलिस-अफसर ज़रूर हूं, परन्तु पुलिस का महकमा नहीं हूं।"

"कुछ भी हो। भारी अन्याय हो रहा है और मैं इस अन्यायपूर्ण वातावरण में जी नहीं सकती।"

"परन्तु मनोरमा, जब महात्मा गान्धी भी व्रत रखते थे तो नमकीन पानी पीते रहते थे। कभी ग्लूकोज़ भी पानी में मिलाकर ले लेते थे। परन्तु तुम तो जल भी नहीं ले रही," हिचकियां भरते हुए मनोरमा की मां ने कहा।

मनोरमा, जो अब दो बार बोलने से ही हांफने लगी थी, बोली, "मुझे अपने व्रत से दूसरों पर दबाव नहीं डालना, जिससे इस यन्त्रणा को लम्बा करती जाऊं।"

"तो तुम क्या चाहती हो ?"

"आप मेरे सामने से हट जायें जिससे मैं अपनी अंतिम घड़ियां शान्ति से गुज़ार सकूं।"

डिप्टी साहब और उनकी स्त्री दोनों कमरे से बाहर निकल आये। बाहर आकर मनोरमा की मां ने डिप्टी साहब का मार्ग रोककर कहा, "लड़की की जान बचानी होगी। घर में एक ही तो है और वह भी इस तरह प्राण छोड़ दे तो धिक्कार है हमें।"

"मैं पूछता हूं कि इसमें मेरा क्या दोष है ?"

"नरेन्द्र को छुड़ाना होगा और वह भी शीघ्र। मनोरमा बता रही थी कि उसका नीचे का भाग मारा गया है।"

"सो तो ठीक है। नरेन्द्र की बहन राधा ने उसके छोड़े जाने की

प्रार्थना की थी। होम-मेम्बर ने डाक्टरी परीक्षा की आज्ञा दे दी; परन्तु डाक्टर ने लिखा है कि कोई चिन्ता की बात नहीं।"

"तो आप समझते हैं कि डाक्टर ने सत्य लिखा है?"

डिप्टी साहब चुप थे। यह उनके दफ़्तर के रहस्य की बात थी। उन्हें चुप देख मनोरमा की मा ने कहा, "मैं समझती हूं कि किसी कारण से डाक्टर ने झूठी रिपोर्ट कर दी है। आप उसके झूठ को प्रत्यक्ष नहीं कर सकते क्या?"

"महकमे में बदनाम हो जाऊंगा।"

"सत्य को प्रकट करने के लिये?"

"हां!"

"भारी अचम्भा है। आप ऐसे दफ़्तर में नौकरी ही क्यों करते हैं?"

डिप्टी साहब अब भी चुप थे। इस पर मनोरमा की मां ने फिर कहा, "मनोरमा नरेन्द्र से प्रेम करती है और यदि नरेन्द्र को कुछ हो गया तो निस्सन्देह वह भी प्राणान्त कर लेगी। उस समय मैं क्या करूंगी नहीं जानती।"

डिप्टी साहब ने कुछ नरम होकर कहा, "मनोरमा के पेट में भोजन जाना चाहिये। इसके लिये डाक्टर से राय करता हूं।"

डाक्टर की राय से फलों का रस बलपूर्वक रबड़ की नली से पेट में पहुंचाने का विचार हुआ। इसके लिये एक लेडी-डाक्टर की सहायता प्रस्तुत की गई। मनोरमा के विरोध पर विजय पाने के लिये उसके हाथ-पैर बांध दिये गये और फिर नली उसके मुख से गले के नीचे उतार दी गई। मनोरमा इस सब कार्यवाही में विरोध करती रही और फलों का रस न पीने का यत्न करती रही। इस विरोध-अविरोध में वह बेहोश हो गई और उसकी नब्ज छूट गई। लेडी डाक्टर डर गई और उसने तुरन्त हाथ-पांव खोल दिये और दिल को ताकत देने का एक इंजैक्शन लगा दिया।

डिप्टी साहब और उनकी स्त्री डाक्टर की घबराहट देख समझ गये थे कि अवस्था बिगड़ गई है। इससे उन्हें अपने किये पर पश्चात्ताप लगने लगा। जब इंजेक्शन के प्रभाव से पुनः होंठ फड़कने लगे तो पुनः यह उपाय प्रयोग न करने का निर्णय कर लिया। मनोरमा की मा ने कहा, "आखिर आपकी उससे इतनी दुश्मनी क्यों है कि उसे छुड़ाने का यत्न तक भी नहीं करना चाहते ?"

डिप्टी साहब कमरे से बाहर आगये और मनोरमा की मा से, जो उनके साथ थी, बोले, "मैं स्वयं नहीं जानता कि मैं क्या करूं। बात यों हुई कि जब मैंने मनोरमा का उससे विवाह का प्रस्ताव किया था, तो उसने प्रस्ताव को अस्वीकार कर मेरा भारी अपमान किया था जो मैं भूल नहीं सका। उसके विरुद्ध मैंने और मेरी सम्मति से नन्दलाल ने एक लम्बा-चौड़ा मुकदमा तैयार किया था और अब मैं उसको रद्द नहीं कर सकता। परन्तु अब मनोरमा की अवस्था देख मैं परेशान हूं और नहीं जानता कि क्या करूं। मैं जानता हूं कि नरेन्द्र का शीघ्र ही प्राणान्त हो जायेगा। फिर भी मैं नहीं जानता कि किस बहाने से उसको छुड़ाने का यत्न करूं।"

"बहुत समझदार बन रहे हैं आप ? बात बहुत सीधी है। डाक्टर को मिलकर कहो कि सत्य सत्य रिपोर्ट कर दे। मैं समझती हूं कि इससे उसे छोड़ने की आशा हो जायेगी।"

"तुम नहीं जानती रानी ! मेरे ही कहने पर डाक्टर ने झूठी रिपोर्ट की थी।"

मनोरमा की मां यह सुन अवाक मुख अपने पति का मुख देखती रह गई। वह नहीं समझ सकी कि इतना द्वेष क्यों उनके मन में भर रहा था। प्रत्येक स्त्री अपने पति के लिये मन में मान और प्रतिष्ठा रखती है। जब वह प्रतिष्ठा लुप्त हो जाय तो स्त्री अपने आपको निराधार आकाश में लटकती पाती है। यही अवस्था मनोरमा की मां की हो गई। वह जानती थी कि महकमा-पुलिस में बहुत खराब आदमी भरे हुए हैं,

परन्तु वह अपने पति को महकमे के लोगों से बहुत अच्छा मानती थी। आज यह जानकर कि वे भी ऐसी कुटिलता करते हैं, उसके मन को ठेस लगी। इससे माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहने लगी, "आपने बहुत बुरा किया है।"

"मुझे क्या मालूम था कि मनोरमा का उससे इतना लगाव हो चुका है। नन्दलाल से विवाह के समय तो उसने कुछ भी एतराज़ नहीं किया था।"

"तो अब ही कुछ करो न। मैं समझती हूं कि यदि एक-दो दिन में कुछ न किया गया तो इसका प्राणान्त हो जायगा।"

"इतनी जल्दी तो कुछ हो ही नहीं सकता।"

"यदि तुम सत्य ही उसके छुड़ाने का वचन दो तो मैं मनोरमा को कह सकती हूं और शायद वह व्रत तोड़ दे।"

"मैं यत्न करता हूं।"

मनोरमा की मां यह शुभ समाचार सुनाने के लिये भीतर चली गई। डिप्टी साहब के मन से नरेन्द्र द्वारा किये गये अपमान की याद नहीं भूली थी, परन्तु अपनी स्त्री के आग्रह तथा अपनी लड़की के जीवन जाने के भय से झुक गये। अपने दफ़्तर में वे पत्थर की भांति दृढ़ निश्चय वाले अफ़सर माने जाते थे। इसी नाम की रक्षा के लिये वे नम्रता प्रकट करने से डरते थे, परन्तु घर वालों का दबाव वे सहन नहीं कर सके।

[६]

मनोरमा को जब यह बताया गया कि उसके पिता ने वचन दिया है कि वे नरेन्द्र को छुड़ाने का पूरा यत्न करेंगे तो उसने कहा, "यत्न से क्या होता है मां? उनका जीवन तेल समाप्त हुए दीये की भांति बुझने ही वाला है। मैं नहीं जानती कि अभी भी वे जीवित हैं या नहीं।"

"तुम्हारे पिता कहते थे कि आज डाक्टर उसकी परीक्षा के लिये गया था और उसने रिपोर्ट की है कि नरेन्द्र का स्वास्थ्य सुधर रहा है।"

"उस कोठरी में तो मौत के अतिरिक्त और कुछ परिणाम हो ही नहीं सकता। वहां अन्धेरा है, सील है और हवा गन्दी है। टट्टी-पेशाब भी तो आठ फुट मुरब्बा कमरे के अन्दर ही करना पड़ता है। वहां कोई भी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।"

"अब वह छूट ही जायगा और, जैसा तुम कहती हो कि उसे अर्धांग वात हो चुकी है, तो बाहर आने पर उसको सेवा करना होगा। मैं समझती हूं, मनोरमा, कि अब तुम्हें व्रत तोड़ ही देना चाहिये। नहीं तो उसकी सेवा-शुश्रूषा कौन करेगा?"

मनोरमा ने संदेह भरी दृष्टि से मा के मुख पर देखा। परन्तु जब उसमें सरलता देखी तो पूछने लगी, "मा, मुझे धोखा तो नहीं देती हो?"

"नहीं बेटी, सत्य कहती हूं। यदि अब भी तुम्हारे पिता ने उसे न छुड़ाया तो मैं भी तुम्हारे साथ भूखी रहकर मर जाऊंगी। तुम्हारे पिता ने आज तक कभी मेरे साथ धोखा नहीं किया।"

"अच्छी बात है। मैं व्रत तोड़ती हूं, परन्तु किंचित-मात्र भी धोखा होने पर विष खाकर मर जाऊंगी।"

मनोरमा ने व्रत तोड़ दिया और डिप्टी साहब नरेन्द्र को छुड़ाने का यत्न करने लगे। वे किले में कैदियों की देख-रेख करने वाले दारोगा से मिले। उससे रिपोर्ट करवाई कि नरेन्द्र की अवस्था एकदम बिगड़ गई है। इस रिपोर्ट पर पुनः होम-मेम्बर की आज्ञा हुई कि डाक्टरी परीक्षा हो। दूसरी ओर डिप्टी साहब बनारसीदास से मिले और उससे कहकर पुनः नरेन्द्र की बहन राधा से प्रार्थना-पत्र भिजवाया। महकमा पुलिस के लोग और डाक्टर यह समझते थे कि डिप्टी साहब के दामाद का कातिल है और वे उसके छोड़े जाने को पसन्द नहीं करते। इससे पुनः परीक्षा की रिपोर्ट भी मेडिकल अफसर ने वही लिखी जो पहले थी। इस पर डिप्टी साहब उसके पास पहुंचे। उससे कहने लगे, "डाक्टर साहब, नरेन्द्र क्या सत्य ही ठीक हो रहा है?"

डाक्टर साहब ने मुस्कराते हुए कहा, "डिप्टी साहब, चिन्ता की

बात नहीं। एक-दो दिन में वह बिलकुल ठीक हो जायगा। उसके मुख और हाथों पर सूजन आगई है।"

"मतलब ?" डिप्टी साहब ने घबराकर पूछा।

डाक्टर ने गम्भीर होकर कहा, "बहुत होनहार लड़का था, परन्तु पुलिस वालों से दुश्मनी करना मामूली बात नहीं।"

डिप्टी साहब के माथे से पसीने की बूंदें टपकने लगीं। वे घबड़ा कर बोले, "मैं चाहता हूं कि आप स्पष्ट लिख दें कि उसके बचने की आशा नहीं।"

"तो आपका मतलब है कि अपनी पहली रिपोर्टों को रद्द कर दूं ?"

डिप्टी साहब ने आंखें लज्जा से नीचे कर कहा, "यह काम अब करना ही है। उसे जीता छुड़ाना चाहता हूं।"

"ओह, यह बात है! राय साहब, अकेले अकेले तो माल हज़म नहीं होना चाहिये। सुना है ला० बनारसीदास इसमें दिलचस्पी ले रहे हैं। उनके लड़के इन्द्रजीत का साला है न ? कितना दाम लगाया है आपने उसकी जान का ?"

ये बातें सर्वथा साधारण थीं। नित्य दफ़्तर में हुआ करती थीं, परन्तु डिप्टी साहब ने जब अपने साथ ही यह होते देखा तो लज्जा से भूमि में गड़ गये। आज उनमें यह कहने का साहस नहीं हुआ कि रिश्वत लिये बिना केवल नेकी के विचार से ऐसा कर रहे हैं। उन्होंने बात को सुलझाने के लिये कह दिया, "दस हज़ार।"

"बस ?" डाक्टर ने अचम्भे में पूछा, "यह तो कुछ नहीं। बनारसी दास से तो एक लाख से कम मांगना ही नहीं चाहिये था।"

"उसके राज़ी हो जाने पर और मिलेगा।"

डाक्टर ने कंधों को झटका दे, असन्तोष प्रकट करते हुए, उठकर अलमारी में से फाइल निकाली और मेज़ पर रखकर उसमें से एक काग़ज़ ढूंढते हुए बोला, "तो मैं पहली रिपोर्ट फाड़कर फेंक देता हूं और नई रिपोर्ट लिख देता हूं।"

डिप्टी साहब ने जेब में से सौ सौ रुपये के बीस नोट निकाल मेज पर रखते हुए कहा, 'यह आपका भाग है।' डाक्टर ने एक कागज निकाल टुकड़े टुकड़े कर रद्दी कागजों की टोकरी में डाल दिया और एक ताज़ा कागज ले नई रिपोर्ट लिख डाली।

बात यहीं समाप्त नहीं हुई। यह रिपोर्ट दफ्तर में से होती हुई होम-डिपार्टमैन्ट में जानी थी और वहां होम-मेम्बर की आज्ञा से ही नरेन्द्र छूट सकता था।

डिप्टी साहब के नरेन्द्र को छुड़ाने का वचन दिये दो सप्ताह से ऊपर हो चुके थे और इस काल में मनोरमा दिन में एक समय खाकर निर्वाह कर रही थी

[१०]

इस समय ब्रिटिश राज्य परिषद के सदस्यों से निश्चित् योजना के अनुसार हिन्दुस्तान की एक केन्द्रीय अन्तर्कालीन सरकार बन गई थी। इसके बनते ही मिस्टर सआदतहुसैन और वीणा के प्रयत्नों से होम-मेम्बर के पास डाक्टर की रिपोर्ट पहुंचने के पूर्व ही नरेन्द्र को छोड़ने की आज्ञा हो गई।

वह आज्ञा पुलिस के दफ्तर में आई तो डिप्टी साहब ने तुरंत टैलीफोन से अपने घर मनोरमा को सूचना भेजी और कहा कि वे उसे निकालने के लिये लाल किले जा रहे हैं।

मनोरमा यद्यपि अभी दुर्बल थी तो भी स्वयं वहां पहुंच नरेन्द्र को आराम से लाने में सहायता देना चाहती थी। उसने पिता की मोटर निकलवाई और किले के फाटक पर आ पहुंची। डिप्टी साहब ऐम्बुलेन्स-कार में सवार हो वहां जा पहुंचे। मनोरमा डिप्टी साहब के साथ जब सुरंग में पहुंची तो सुरंग के मुख पर खड़े सिपाही ने हाथ के संकेत से उन्हें रोककर कहा, "वह अन्तिम श्वासों पर है।"

मनोरमा ने अधीर होकर कहा, "पर हम उन्हें लेने आये हैं।"

"व्यर्थ है," सन्तरी का कहना था, "उसके खड़खड़ी चल रही है।"

मनोरमा उतावली की भांति सन्तरी को हाथ से एक ओर धकेल कर सुरंग में घुस गई और भागती हुई सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी। डिप्टी साहब का अनुमान था कि उसका पांव सीढ़ियों से फिसल जायगा और वह सीढ़ियों से लुढ़क, गिरकर मर जायगी। इससे अवाक मुख आंखें फाड़कर उसे सुरंग में दस-बत्ती के बिजली के लैम्प के प्रकाश में विलुप्त होते देखते रह गये।

मनोरमा आपने आप में नहीं थी। वह ज़ोर ज़ोर से पुकारती हुई, 'नरेन्द्र जी, मैं आगई हूं। नरेन्द्र जी, मैं आगई हूं !!' सुरंग में भागती हुई वहां जा पहुंची।

सुरंग की बत्ती के धीमे प्रकाश में उसने देखा कि नरेन्द्र पत्थर के चबूतरे पर लेटा हुआ है और खुर्र खुर्र का शब्द उसके गले में से निकल रहा है।

सामने का दरवाज़ा बन्द था, परन्तु ताला खुला था। शायद सिपाही उसे देखने आया था और उसे मृत्यु के पंजे में देख जीवनान्त का दृश्य देखने में अपने को अशक्त पा घबराकर सुरंग के ऊपर चला गया था और जाते समय ताला लगाना अनावश्यक समझ या भूल से वहीं खुला छोड़ गया था।

मनोरमा ने दरवाज़ा खोलते हुए फिर ज़ोर से कहा, "नरेन्द्र जी ! नरेन्द्र जी !! मैं आगई हूं। ठहरो, मैं आगई हूं।"

वह भीतर पहुंची और नरेन्द्र के सिरहाने बैठ उसका सिर अपनी गोदी में रख उसके मुख में अंगुली डाल गले से श्लेष्मा निकालने लगी। इससे श्वास कुछ सुगमता से निकलने लगा। उसने इससे कुछ आशा बांध फिर पुकारा, "नरेन्द्र जी ! नरेन्द्र जी !! मैं मनोरमा हूं।"

इतने में डिप्टी साहब ऐम्बुलेंस-कार से स्ट्रेचर लिये आ पहुंचे। उनके साथियों ने स्ट्रेचर पर नरेन्द्र को डाल दिया और उठाकर बाहर को चल पड़े। स्ट्रेचर जब कोठरी से बाहर निकला तो सुरंग में लगे बिजली के लैम्प के प्रकाश में नरेन्द्र का नीला मुख देख मनोरमा चीख

मारकर गिर पड़ी और बेहोश हो गई। यह एक नई उलझन थी। डिप्टी साहब इससे बहुत घबराये। वे वहीं खड़े रहे जब तक कि ड्राइवर नरेन्द्र को बाहर छोड़ पुनः मनोरमा को लेने के लिये वापिस नहीं आया। उन्होंने मनोरमा की नाड़ी देखी जो सर्वथा धीमी पड़ गई थी। इससे उनका अपना हृदय धक धक करने लगा, और पूर्ण शरीर कांपने लगा।

[११]

नरेन्द्र और मनोरमा दोनों डिप्टी साहब के मकान पर लाये गये। दोनों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। नरेन्द्र के विषय में तो डाक्टर साहब कहते थे कि यद्यपि रोग अत्यन्त भयानक है और शायद जीवन भर खाट पर ही गुजारना होगा, इस पर भी जीवन लम्बा हो सकता है। परन्तु मनोरमा की अवस्था आशारहित हो गई थी। हृदय की गति इतनी मंद हो गई थी कि उसका इतने काल तक जीते रहना अचम्भा प्रतीत होता था।

दोनों को दिन के ग्यारह बजे के लगभग घर पर लाया गया था। नरेन्द्र की शुद्ध वायु के प्रभाव से बड़बड़ी बंद हो गई थी, परन्तु चेतनता नहीं आई थी। मनोरमा अचेत थी। उसकी नाड़ी नहीं चलती थी, केवल स्टेथस्कोप से हृदय की धड़कन अनुभव होती थी। देहली के प्रसिद्ध डाक्टरों को एकत्रित कर लिया गया। बनारसीदास और हरबंशलाल के परिवार के लोगों को भी बुला लिया गया।

इस प्रकार दोनों में जीवन लाने का यत्न होने लगा। इन्जैक्शन पर इन्जैक्शन दिये जाने लगे। इस पर भी मनोरमा के हृदय की गति मिनट में बीस से अधिक नहीं हुई।

इस प्रकार पूर्ण दिन बीत गया। बनारसीदास की इच्छा थी कि नरेन्द्र को अपनी कोठी पर ले जाय, परन्तु मनोरमा की मां ने कहा कि यदि लड़की को चेतनता हुई और नरेन्द्र दिखाई न दिया तो शायद वह जीवित न रह सके। डिप्टी साहब ने भी बहुत मिन्नत-खुशामद की और परिणाम यह हुआ कि दोनों की चिकित्सा एक ही छत के नीचे होने

लगी।

मनोरमा को होश में लाने के लिये कई दिन लग गये। जब वह सचेत हुई तो पहला शब्द जो उसके मुख से निकला वह 'नरेन्द्र जी' था।

नरेन्द्र की चकित्सा अधिक कठिन थी। यद्यपि वह मनोरमा से एक-दो दिन पूर्व ही होश में आगया था, परन्तु खाट से उठने में उसे नौ मास से अधिक लग गये; और इस काल में मुख्य सेवा-शुश्रूषा करने वाली मनोरमा ही थी। कमला, विनय तथा विजय भी इसमें हाथ बंटाते रहते थे।

[१२]

राजनैतिक अवस्था में भारी परिवर्तन हो रहे थे। अंग्रेज़ प्रकट रूप में हिन्दुस्तानियों के साथ सुहृदयता के व्यवहार का बहाना बना राज्य दे रहे थे। कांग्रेस जो संघ-राज्य-प्रणाली को स्वीकार कर चुकी थी, मुसल-मानों को साथ रखने के लिये इस सीमा तक तैयार थी कि प्रान्तों को पूर्ण स्वतंत्रता मिल जाय। केवल प्रान्तों में आने-जाने तथा डाक-तार के विषय, देश की रक्षा का विषय, और विदेशी मामलों की बातें केन्द्र के अधिकार में रखने के लिये वह कहती थी। कांग्रेस की इस उदारता से मुसलमान संतोष तो अनुभव करते थे, परन्तु कई कारणों से वे इतना भी सम्बन्ध हिन्दू-हिन्दुस्तान से नहीं रखना चाहते थे। अंग्रेज़ उनकी इस मांग को प्रोत्साहन देते थे।

देश को स्वराज्य तो अंग्रेज़ों की आन्तरिक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय परि-स्थिति के कारण मिल रहा था। देश की अपनी शक्ति के संचय के कारण नहीं। इस कारण देश को तो जो कुछ और जैसे रूप में अंग्रेज़ों ने दिया स्वीकार करना पड़ा। हां, कांग्रेस अपने बलिदानों के कारण हिन्दुओं के प्रतिनिधित्व के योग्य हो चुकी थी। अतएव जो कुछ हिन्दुओं को मिला वह कांग्रेस के हाथों में सौंपा गया।

इसके विपरीत मुसलमानों में कोई ऐसी संस्था नहीं थी जिसने देश

तथा अपनी जाति के लिये कुछ भी बलिदान किया हो । इस पर भी मुस्लिम-लीग पार्टी को पाकिस्तान सौंपा गया ।

नरेन्द्र देश की स्थिति की इस प्रगति को स्थान पर पड़ा पड़ा सुन और देख रहा था । इंगलैंड की राज्य-परिषद (Cabinet Mission) के सदस्यों की योजना कांग्रेस ने स्वीकार की, परन्तु मिस्टर जिन्ना अथवा देश के मुसलमानों ने स्वीकार नहीं की । परिणाम-स्वरूप मुसलमानों ने लड़ाई-झगड़ा (direct action) आरम्भ कर दिया । कलकत्ता में सुरहवर्दी के प्रधान मंत्रित्व में जो कुछ हुआ वह देश को कम्पायमान कर देने वाला था । फिर नोआखली का हत्याकांड रचा गया । यह भी सुरहवर्दी के प्रधान मंत्रित्व में था ।

कांग्रेस के प्रतिनिधियों की अन्तर्कालीन सरकार बन जाने पर भी वह बंगाल में होने वाली दुर्घटनाओं को न तो होने से रोक सकी और न ही बंगाल सरकार के अपराध का दंड बंगाल सरकार को दे सकी । बंगाल सरकार ने इन दोनों स्थानों पर हिन्दुओं पर वे अत्याचार, जो महमूद गज़नवी तथा मज़हबी क़ानून रखने वाले अन्य मुसलमान ने कभी किये थे, होने दिये और अपराधियों को दंड नहीं दिया ।

इन दो स्थानों पर होने वाले अत्याचारों को देख बिहार में हिन्दुओं ने मुसलमानों को मारना आरम्भ कर दिया, परन्तु यह दंगा शीघ्र ही शान्त कर दिया गया । कांग्रेस और अन्तर्कालीन सरकार की पूर्ण शक्ति इसे शान्त करने में लगा दी गई ।

इसके पश्चात् पञ्जाब में झगड़ा हुआ और अन्तर्कालीन सरकार पुनः अकर्मण्य बन गई । पञ्जाब में मुसलमानों की संख्या अधिक थी अवश्य, परन्तु हिन्द कानून १६३५ की ६१ धारा के अनुसार राज्य प्रान्त के गवर्नर के अधीन था । इस पर भी पञ्जाब में उपद्रव हुआ । पेशावर, बन्नू, डेराइस्माईलखां, कोहाट, हज़ारा, एबटाबाद आदि स्थानों में भी हिन्दुओं के साथ भारी अन्याय और अत्याचार हुए । गांव के गांव जलाकर भस्म कर दिये गये और स्त्रियों

का अपहरण किया गया। इन स्थानों पर न तो प्रान्त की कांग्रेसी सरकार किसी प्रकार हिन्दुओं को बचा सकी, न ही उन हिन्दुओं की रक्षा के लिये अन्तर्कालीन सरकार कोई सहायता भेज सकी। जितनी सतर्कता और दृढ़ता बिहार के हिन्दू प्रान्त में दर्शाई गई थी उसका एक लेशमात्र भी सीमा प्रान्त के मुसलमानों को हिन्दुओं पर अत्याचार करने से रोकने के लिये नहीं किया गया।

अब लार्ड वेवल वाइसराय के पद से हटा दिये गये। इसलिये नहीं कि पञ्जाब के उपद्रवों में उन्होंने कोई रोक-थाम नहीं की, प्रत्युत इस कारण कि अंग्रेज़ों की पाकिस्तान को हिन्दुस्तान से पृथक करने की योजना को वे ठीक परिणाम तक नहीं ले जा सके। इनके स्थान पर एक नये वाइसराय आये।

उन्होंने तीन जून की घोषणा करवाई और इसमें पाकिस्तान बनाने की अंतिम योजना पर कांग्रेस की स्वीकृति प्रकट की गई।

महात्मा गान्धी ने एक दिन यह कहा भी कि श्री जवाहरलाल ने उपद्रवों में खून-खराबे से डरकर देश के विभाजन को स्वीकार कर लिया है, परन्तु वे भी देश के विभाजन की इस योजना का विरोध नहीं कर सके।

अंग्रेज राजनीतिज्ञों की योजना सफल हुई। हिन्दुस्तान को स्वराज्य दिया गया, परन्तु उसके विभाजन के पश्चात्। फलस्वरूप पश्चिमी पञ्जाब और सीमा प्रान्त के साठ लाख हिन्दुओं को अपने घर से धक्के खा-खाकर बाहर होना पड़ा। लाखों मारे गये। सहस्रों स्त्रियों का अपहरण किया गया और कई स्थानों पर तो ऐसा पैशाचिक नृत्य खेला गया कि संसार भर की दैवी प्रवृत्तियां दातों तले अंगुली दबाने लगीं।

[१३]

१५ अगस्त १९४७ का दिन था। भारत में अंग्रेज़ों के राज्य के अंत हो जाने की खुशी मनाई जा रही थी। नरेन्द्र अब इस योग्य हो गया था

कि उठकर कोठी के लॉन में टहल सके। वह बाहर लॉन में एक बेंत की कुर्सी पर बैठा डिप्टी साहब की कोठी पर की जा रही सजावट को देख मन ही मन गम्भीर विचार में पड़ा था। कुर्सी एक पेड़ के साये तले रखी थी। कोठी के बाहर मोटरों की भों भों के साथ झुंड के झुंड लोग, नये नये कपड़े पहने, मुख से जय हिन्द के गीत गाते हुए वाइसराय का, कौंसिल-हॉल के बाहर, जुलूस देखने जा रहे थे।

नगर भर में भारी समारोह था। शहर में सजावट पर पूरा ज़ोर लगाया गया था। परन्तु वह सब कुछ नरेन्द्र की दृष्टि के सम्मुख नहीं था। नरेन्द्र देख रहा था डिप्टी साहब का वह उत्साह जिससे वे कोठी की छत्त पर तिरंगे झंडे और तेल के दीये रात को दीपमाला के लिये लगवा रहे थे।

वह मन में सोच रहा था कि कितना परिवर्तन है। कल के अंग्रेज़ी राज्य के भक्त आज उनके विदा होने की खुशी मना रहे हैं। मनोरमा पिता की मोटर में बैठ शहर की सजावट देखने गई हुई थी। नरेन्द्र के मन में भिन्न भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न हो रहे थे। वह बहुत सोचता था कि जो कुछ हो रहा है वह कहां तक और किन के लिये आनन्द का विषय है। अंग्रेजों का राज्य गया, बहुत अच्छी बात हुई है; परन्तु किन का राज्य आया है वह यह अभी समझ नहीं सका था। कांग्रेसी नेताओं के आश्वासन पर देश भर के लोग यह समझ रहे थे कि लोगों के हित के लिये लोगों के हाथ में लोगों का राज्य है।

नरेन्द्र देख रहा था कि लॉर्ड माउन्टबेटन गवर्नर जनरल है। लार्ड आकनलेक फौजी सेनापति है। भारतीय सेना के कर्णधार अंग्रेज़ अफ़सर हैं और हिन्दुस्तान में सीमा निश्चित करने की कमीशन का प्रधान एक अंग्रेज़ है। अर्थात् जो कुछ मिल रहा है उनकी ही कृपा से मिल रहा है। यह कृपा कब तक रहेगी और इसका क्या परिणाम होगा, ये विचार उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचा रहे थे।

इस समय मनोरमा, कमला और वीणा इन्द्रजीत के साथ बाहर से

लौटी थीं। वे नरेन्द्र को लॉन में पेड़ के साये तले बैठा देख वहीं आ गईं। कुर्सियां मंगवाकर बैठते हुए इन्द्रजीत ने कहा, "नरेन्द्र भैया, देश के लिये यह दिवस बहुत ही खुशी का है। आपको अब शीघ्र स्वस्थ होकर देश के भार को उठाने के योग्य हो जाना चाहिये।"

"देश के भार से पूर्व विवाह का भी तो सोचना है," कमला ने कहा।

नरेन्द्र ने हंसते हुए कहा, "स्त्रियों को विवाह के अतिरिक्त कुछ और काम भी है क्या ?"

"मनोरमा बहन, क्या यह सत्य है ?" कमला ने पूछा।

"परन्तु मैं पूछता हूं, कि डाक्टर आपके हृदय के विषय में क्या कह गये हैं ? कल कार्डियोग्राफ लिया गया था न ?" इन्द्रजीत ने पूछा।

इसका उत्तर मनोरमा ने देते हुए कहा, "कहते थे अखरोट की भांति दृढ़ है।"

"परन्तु मैं आज इसके विपरीत पाता हूं," नरेन्द्र ने सतर्क होकर कहा, "डिप्टी साहब को तिरंगे झंडे इतने उत्साह से लगाते देख तो मुझे सन्देह हो रहा है कि इस तिरंगे की तह में यूनियन जैक ही छिपा है। जब भारत इंडिया है, जब भाषा अंग्रेज़ी है, जब स्वाधीनता के उत्सव में जाने वाले नकटाई-पतलून पहने हैं, जब देश के साथ द्रोह करने वाले अफ़सर चौधरी हैं, तब," नरेन्द्र की दृष्टि डिप्टी साहब की ओर थी जो बंगले की छत पर चढ़े हुए दीप-माला के लिये दीयों में तेल डलवा रहे थे, "तब तक वास्तविक स्वाधीनता मिली है ऐसा विश्वास नहीं होता। और यह सब कुछ देख दिल बैठता जाता है।"

"परन्तु नरेन्द्र जी," वीणा जो अभी तक डिप्टी साहब को भी स्वाधीनता का उत्सव मनाने के लिये संलग्न देख मन ही मन प्रसन्न हो रही थी, कहने लगी, "कुछ भी कहिये, महात्मा जी के उपायों की जीत हुई है। उनका कहना है कि लड़कर सारा लेने के स्थान पर सुलह से आधा मिलना भी कल्याणकारी होगा।"

नरेन्द्र चिरकाल तक रोगी रहने से चिड़चिड़े स्वभाव का होगया था। इस कारण वह उन बातों को, जो अपने मन के विपरीत समझता था, सहन करने की शक्ति नहीं रखता था। अतः कुछ उत्तेजित हो कहने लगा, "कितनी अयुक्तिसंगत और अव्यवहारिक बात है यह। क्या यह उक्ति सदैव ही सत्य हो सकती है? धन-सम्पत्ति के विषय में तो यह बात ठीक हो सकती है। इसमें एक भाग दूसरे के अभाव की पूर्ति कर सकता है, परन्तु राजनैतिक अधिकारों में तथा देश और जातियों में यह सिद्धान्त कैसे चल सकता है? मनुष्य का विवाह ऐसी स्त्री से नहीं किया जा सकता जिसका सिर उसके किसी दूसरे प्रेमी को दे दिया जाय। जो वस्तु प्रकृति ने इकट्ठी रहने के लिये बनाई है वह कैसे बांटी जा सकती है? फिर अभी तो जो कुछ अंग्रेज़ों ने दिया है और करने को कहा है कांग्रेस ने लिया है और किया है। सोच-विचारकर की गई इनकी एक भी मांग तो स्वीकार नहीं हुई। मैं समझता हूं कि अभी तो केवल अंग्रेज़ यहां से जारहे हैं। हमारी क्या स्थिति है यह अभी आंकी नहीं जा सकती।"

इस समय, बाहर सड़क पर, कुछ युवकों की एक टोली जा रही थी। वे चलते चलते गा रहे थे:—

जय हो, जय हो
जय जय जय जय जय हो
भारत भाग्य विधाता।

वीणा ने प्रफुल्लित होकर कहा, "सुनिये! सुनिये!! लोग क्या कहते हैं!"

युवकों की मंडली गा रही थी:—

पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा
द्राविड़, उत्कल, बंगा।

नरेन्द्र ने उदासीनता का भाव दिखाते हुए कहा, "यह सब निरर्थक हो गया है। अब न बंगाल रहा है, न पंजाब।"

इस समय बंगले में एक मोटर आकर खड़ी हो गई। सब का ध्यान

उस ओर चला गया। मोटर से शंकर पंडित, गौरी, गुरु व्यासदेव तथा बनारसीदास उतर पड़े। सब लोग जो लॉन में बैठे थे उठ खड़े हुए। नरेन्द्र भी उठ पड़ा और सब मोटर में आये लोगों से मिलने के लिये मोटर के पास जा पहुंचे। डिप्टी साहब भी इनको आया देख बंगले से नीचे उतर वहीं आगये।

शंकर पंडित और गौरी को देख नरेन्द्र को बहुत ही प्रसन्नता हुई। डिप्टी साहब ने सब को बंगले के भीतर गोल कमरे में ले जाकर बैठाया और नौकर को बुलाकर शर्बत लाने को कहा। बनारसीदास ने कहा, "नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं। हम सब दूध पीकर आये हैं।"

शंकर पंडित नरेन्द्र के समीप कौच पर बैठा था। उसने कहा, "नरेन्द्र भैया, मैं और गौरी कितने ही दिनों से तुम्हें मिलने को आने का विचार रखते थे। कल व्यासदेव जी कलकत्ते से आपको देखने आ रहे थे तो सुअवसर जान हम भी चले आये हैं। बताओ, अब स्वास्थ्य कैसा है?"

"सुधर रहा है।"

"अब आगे क्या विचार है?"

"किस विषय में?"

"विवाह के विषय में।"

"इतनी बीमारी के पश्चात् विवाह करना शायद हितकर नहीं होगा।"

"गुरु व्यासदेव तो तुम्हें ठीक करने ही यहां आये हैं।"

"कैसे?"

"उनका विचार तुम्हारे शरीर की शुद्धि करने का है। आयुर्वेद में लिखी पञ्च-कर्म विधि करने से, वे कहते हैं कि, तुम पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ कर लोगे।"

"जब होगा तब देखा जायगा।"

"रेवती का क्या विचार है?"

रेवतीदेवी का नाम सुनने पर नरेन्द्र और शंकर पंडित की दृष्टि उसकी ओर घूम गई। वह गोल कमरे के एक कोने में गौरी के समीप बैठी थी और गौरी उससे धीमी आवाज़ में बातें कर रही थी। नरेन्द्र को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि वे दोनों उसी के विषय में बातें कर रही हैं। वे बातों बातों में उसकी ओर देख रही थीं और मनोरमा का मुख देदीप्यमान हो रहा था।

नरेन्द्र उठकर कमरे से बाहर आ, बरामदे में खड़ा हो, लॉन के किनारे लगे हुए फूलों की ओर देखने लगा। मन ही मन वह सोच रहा था। वह मनोरमा से प्रेम करता था, परन्तु वह दो बार विवाह में अरुचि प्रकट कर चुकी थी। इससे नरेन्द्र आज पुनः विवाह का प्रश्न उठने पर गम्भीर विचार में पड़ गया। शंकर पंडित उसके पीछे आ खड़ा हुआ और पूछने लगा, "क्या बात है नरेन्द्र ?"

"मैं सोच रहा हूं," नरेन्द्र ने वैसे ही फूलों की ओर देखते हुए कहा, "देश की अवस्था इतनी अनिश्चित तथा अव्यवस्थित है कि विवाह और वह भी मनोरमा जैसी अस्थिर मन वाली स्त्री से ठीक रहेगा या नहीं।"

"मनोरमा अपने किये का प्रायश्चित् नहीं कर चुकी क्या ?"

"उसने कुछ पाप तो किया नहीं था, फिर प्रायश्चित की बात कहां से आ गई ? उसने मेरी सेवा तो बहुत की है जिसका बदला विवाह कैसे हो सकता है ? परमात्मा कोई अवसर पैदा करेगा तो इस सेवा का बदला चुका सकूंगा।"

शंकर पंडित मुस्करा रहा था। जब नरेन्द्र बात समाप्त कर चुका तब भी वह चुपचाप खड़ा नरेन्द्र का मुख देखता रहा। नरेन्द्र अपने विचारों में लीन था, परन्तु जब शंकर पंडित चुपचाप खड़ा रहा तो उसने अचम्भे में उसके मुख की ओर देखा और उसे अपनी ओर देखकर मुस्कराते पाया। इससे घबराकर उसने पूछा, "क्या है दादा ?"

"देखता हूं कि यहां राजनीति में बूढ़ों से भी अधिक मेधा रखते

हो वहां सांसारिक बातों में सर्वथा बचपन प्रकट कर रहे हो।"
"मैं तो समझता हूं कि राजनीति में भी असफल सिद्ध हुआ हूं और
विवाह के सम्बन्ध में भी। स्वराज्य मिल गया है, पर मेरी भावना की
पूर्ति कोसों दूर है। इसी प्रकार मनोरमा को पाकर भी नहीं पाया है
कह सकता हूं।"
"और मैं समझता हूं कि एक में हम बहुत दूर तक चले आये हैं
और दूसरे में तुम पूर्णतः सफल हो।"
"हां," गौरी ने बीच में ही बात काटकर कहा।
गौरी और मनोरमा भी नरेन्द्र और शंकर पंडित के पीछे पीछे
बाहर आ गई थीं और पीछे खड़ी हुई दोनों की बातें सुन रही थीं। गौरी ने
मनोरमा का हाथ पकड़ रखा था, मानो वह उसे पकड़कर बाहर ले आई
थी। गौरी ने कहा, "हां, इसमें क्या सन्देह है? देखो तो यह क्या कह
रही है।"
शंकर पंडित और नरेन्द्र गौरी की आवाज़ सुन घूमकर उन दोनों
की ओर देखने लगे। मनोरमा भूमि की ओर देख रही थी और उसका
मुख लज्जा से लाल हो रहा था। शंकर पंडित ने कहा, "देखो, मैं कहता
न था!"
भीतर गुरु व्यासदेव स्वतन्त्रता-दिवस पर आलोचना कर रहे थे।
बात डिप्टी साहब ने आरम्भ की थी। वीणादेवी का परिचय कराते
हुए आपने कहा था, "ये अब यहां निधड़क आती हैं। पहले के शत्रु
आज मित्र बन रहे हैं।"
गुरु व्यासदेव ने कहा, "मुझे यह सुनकर अति प्रसन्नता हो रही है,
परन्तु मेरा मन सुन्दर भविष्य की आशा नहीं कर रहा। जिसका आधार
सुन्दर नहीं वह परिणाम में भी सुन्दर नहीं होगा।"
"परन्तु गुरुदेव!" वीणा ने नम्रता से कहा, "कुछ तो प्राप्त किया
ही है न। आगे जो कुछ होगा हमारी इच्छा से होगा। क्या यह कम है?"
"हां, कुछ तो है। पहले से अन्तर है और वह यह है कि अंग्रेज़

राज्य करते थे, परन्तु हृदय में अनुभव करते थे कि वे अन्याय कर रहे हैं और अब वर्तमान अधिकारी अन्याय करते हुए भी यह समझेंगे कि लोगों की अनुमति से करने के कारण न्याय ही कर रहे हैं। परन्तु मुख्य बात तो निर्माण-कार्य ही है। उसके लिये अथक प्रयत्न करना होगा, जो निरन्तर चलता रह सकता है। वह जन-साधारण की सम्मति से तथा महात्मा जी के आशीर्वाद से नहीं हो सकता। इसके लिये विद्वान, चरित्रवान, धीर, वीर और अनुभवी लोगों की आवश्यकता है। जिन लोगों ने दंगा-फसाद करने वालों से भयभीत होकर उनकी अपमानजनक, अति हानिकर बातें मान ली हैं वे भविष्य में भी डराये-धमकाये जा सकते हैं।"

"तो आपको आपत्ति लोगों पर है न? सिद्धान्त-रूप में जो कुछ हुआ है उस पर तो नहीं?"

"लोगों का क्या दोष है? वे बेचारे तो मिथ्या विचारों के शिकार हुए हैं। देश के नेता व्यक्तिगत रूप में भीरु नहीं हैं। उनकी संस्था, अर्थात् कांग्रेस, भ्रामक सिद्धान्त पर निर्भर है। इस कारण सामाजिक रूप में वे भीरु बने हुए हैं, व्यक्तिगत रूप में बहुत बहादुरी करते हुए भी सामूहिक रूप में भीरुता ही करते रहे हैं और करते रहेंगे। यही लोग यदि ठीक सिद्धान्तवादी बन जायेंगे तो जाति ठीक मार्ग पर हो जायगी।"

"हम लोग ऐसा नहीं मानते। जो कुछ मिल गया है वह बहुत ही सुन्दर, प्रिय और शिव है।"

इस समय डिप्टी साहब ने बात बढ़ती देख रेडियो चला दिया। रेडियो में लड़कियां गा रही थीं, 'जय हो जय हो जय हो, भारत भाग्य-विधाता।'

शंकर पंडित और गौरी नरेन्द्र और मनोरमा को बाहर लॉन में अपने विवाह के सम्बन्ध की बातें तय करने के लिये छोड़ भीतर आगये थे। वीणा को यह कहते हुए सुन कि जो कुछ मिला है सुन्दर, प्रिय और

शिव है शंकर पंडित ने रेडियो के पास जा उसे बन्द कर कहा, "जय जय कहने से तो जय नहीं होती। मुझे तो जय जय करने में कुछ अधिक उत्साह नहीं होता। मैं तो कुछ ऐसा अनुभव करता हूं कि:—

कैसे तव जय मनायें,
दुखिया भारत माता !
तव दर्शन कहां पायें, हम तव गुण क्या गाएं।
कैसे पहिचानें हम, हो घायल तुम माता ॥
पंचाल भाल विशाल, तव वाम अंग बंगाल।
रक्त रंजित बेहाल विकराल राग गाता ॥
मुकुट करीट हिमाचल दो टूक हुआ तेरा।
है घायल वक्षःस्थल, मुख से है लहू जाता ॥
तव वाणी भई नवीन, मुख हुआ ओज विहीन।
अब इण्डियन यूनियन हो, न भारत जग-त्राता ॥
असुरों से मान गया; धन, जन, सम्मान गया।
इसको मानो सम्मान, समझ में नहीं आता ॥

समाप्त